श्रीः ।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

आनंदगिरिकृतभाषाटीकासहिता।

मंगलाचरणम् ।

ओंतत्सत् १ ओंतत्सत् २ ओंतत्सत् ३

ॐ श्रीगणेशायनमः ॐ श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप परम अनूप श्रीमहाराजाधिराज श्रीस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजीमहाराजके चरणकमलोंको बारम्बार साष्टाङ्गदंडवत् नमस्कार करके श्रीमहाराजजीकी कृपा और आज्ञासे परमानन्दके प्राप्तिकेलिये अपनी बुद्धिके अनुसार ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रश्रीभगवद्गीता उपनिषदोंका तात्पर्यार्थ हरिद्वारसमुद्रजीके मध्यस्थनगरनिवासियोंके प्राकृतदेशभाषामें निरूपण करता हूं. कैसे हैं श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज कि नित्यमुक्त पूर्णब्रह्म सनातन उत्तमपुरुष शुद्ध आत्मा स्वयंप्रकाश एकरस स्वतंत्रश्रेष्ठ परात्पर परमपुरुष परमधाम परमगति परमपद परमपवित्र परमात्मा निराकार निर्विकार निरवयव निरंजन निर्गुण अद्वैत अरूप अखंड अज अमर अचल अच्युत अक्षर अव्यक्त अगोचर अप्रमेय अचिंत्य अनंत ऐसे हैं. औरभी विष्णु शिव शक्ति चिति देवादि अनंतविशेषण हैं. फिर कैसे हैं श्रीमहाराज कि चरणहस्तनेत्राद्यवयव अनुपम महासुंदर मनोहर हैं जिनके. पीतांबरादिवस्त्र धनुषादिशस्त्र वंशी चकडोर मुकट पंखमोर मकरवत् आकृतिवाले कलकुंडल और रविवत् आकृतिवाले. बालेश्वेतरक्तहरितमोतियोंकेसहित जडित पंचरंगीमणिमोतियोंकी माला और अनेक रंगवाले फूलोंकी माला कडे

पैंजनी जड़ाऊ तगडी पहुँची अंगूठी छल्ले अंगदादि आभूषण धा-
रण रक्खे हैं जिन्होंने. बालोंमें अतर मस्तकपर केशरका प्रातिपदिक
चंद्रवत् तिलक जिसके बीचमें सूर्यवत् बिंदा चंदनका लगा रक्खा
है जिन्होंने. किसीसमय धूल और भस्मभी अखंड धारण करते हैं.
पान इलायची चाबते रहते हैं. बाल किशोर तरुण अवस्था है जि-
नकी. अकेले वा युगलरूप होकर वा स्वामी सखा बनकर वनोंमें
और चित्रविचित्र मंदिरोंमें लीलाविहार करते रहते हैं. मंदमुस्कान
सहित बोलना है जिनका. इसप्रकार अचिंत्य अलौकिक आश्चर्य अ-
गोचर अतर्क्य अप्रमेय अनंतप्रभावप्रभुताशक्तिबलवीर्यविद्यावान हैं.
जैसे अपने बलके अनुसार आकाशमें पक्षीकी गति है इसी प्रकार वेद
शास्त्र ऋषीश्वर मुनीश्वर शेष शारदा संत महंत महात्मा साधू भक्त
पंडित असंख्यातकल्पोंसे अबतक परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्र म-
हाराज मेरे स्वामीके गुणोंको पूर्वोक्तरीतिकरके वर्णन करते चले
आते हैं तोभी पार नहीं पाते. परमानंदस्वरूप होनेसे श्रीमहाराज
सबको प्यारे लगते हैं. आनंदस्वरूपसे किसीका वैर नहीं किसीकू
आनंदकी असूया करता हुवा सुनाभी न होगा और जो आनंदपदा-
र्थको परमानंदस्वरूपश्रीकृष्णचंद्रमहाराजसे पृथक् एकगुण विलक्ष-
ण पदार्थ समझते हैं और श्रीमहाराजको आनंदजनक और आनंद-
गुणक रूपादिमान् पदार्थवत् समझते हैं तो भी परमानंदस्वरूपश्री-
कृष्णचंद्रमहाराजसे सिवाय श्रेष्ठ और कोई पदार्थ आनंदगुणक औ-
र आनंदजनक नहीं. श्री कीर्ति सत्य संतोष समता शम दम इत्यादि
यह सब उसी भगवतके विभूति हैं. जो कदाचित् वेदशास्त्र मूर्तिमान्
होकर और शेष शारदा और ऋषीश्वर मुनीश्वर और वर्तमानकाल-
में जो संत महंत पंडित हैं यह सब मुझसे ऐसा कहें कि परमानंदस्वरू-
पश्रीकृष्णचंद्रमहाराजसे पृथक् श्रेष्ठ स्थावर वा जंगम सावयव वा निर-
वयव प्रमेय वा अप्रमेय कोई और पदार्थ है. प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभवभी

करादे.तोभी मुझको उस पदार्थकी चाह नहीं और न मैं जिज्ञासा करता हूं और न कुछ इसबातके निर्णय करनेमें मेरा किसीसे वाक्यवाद है और जो श्रीमहाराजभी यही कहें तो उनका कहना मेरे शिरमाथेपर है परंतु मुझमें तो यह सामर्थ्य नहीं कि परमानंदस्वरूपश्रीमहाराजसे मैं पृथक् होजाऊं. जो श्रीमहाराज यह जानें कि किसी प्रकार हमसे पृथक् होसक्ता है तो श्रीमहाराजमें अनंत अचिंत्य शक्ति है. श्रीमहाराजही मुझको आपसे पृथक् करदें यह मेरी प्रीति नाता संबंध ऐसा है कि जो श्रीमहाराजभी इसको कदाचित् पृथक् किया चाहें तोभी नहीं होसक्ता. फिर औरोंका तो क्या सामर्थ्य है. क्यों कि यह संबंध लौकिक वैदिक नहीं कि जो शाब्दअनुमानादिप्रमाणोंसे जाता रहे यह अनादि तादात्म्यसंबंध है. जो श्रीमहाराजमें सद्गुण समझकर मेरी प्रीति हुई हो तो असद्गुण जानकरजाती रहे. मेरी प्रीति स्वाभाविक सनातन है प्रमाणजन्य नहीं. और जो भगवद्भक्त श्रीमहाराजको भक्तवत्सलादि सद्गुणकर लौकिकवैदिक विद्यामें नागर राजराजेश्वर सुरेश्वर ईश्वर परमेश्वर महेश्वर परात्पर दुःखदरिद्रहर श्रीमान् सामर्थ्यवान् शोभासुंदरकी खान सुकुमार परमउदार दाता जगत्का कर्ता भर्ता अंतर्यामी जगत्स्वामी हिरण्यगर्भ विराट् विश्वरूपादि कहकर प्रत्यक्षशाब्दअनुमानादिप्रमाणोंकरके सिद्ध करते हैं. ऋषीश्वर मुनीश्वर शेष शारदादिकी साक्षी देते हैं. सो वे कहो समझो इसी प्रकार प्रीति करो उनको इतना सावकाश है मुझकू तो चरचा करनेका वा आपसे पृथक् पदार्थमें मन लगानेका न सावकाश है न सामर्थ्य है. मेरी प्रार्थना तो श्रीमहाराजसे यह है कि जो कुछ अबतक मुझसे मूर्खता हुई सो तो हुई और मेरे भलेके लिये मेरे निमित्त अबतक जो कुछ आपकू मेरी जानमें विक्षेप हुवा सोभी हुवा. परंतु अब श्रीमहाराजको मेरे निमित्त किंचित्मात्रभी विक्षेप न हो. मुझको यह बडा आश्चर्य है कि वे कैसे आपके भक्त थे.

जिन्होंने आपसे सहायता चाही. द्रौपदी गजेंद्रादिकी ऐसी क्या क्षती होती थी जो अपने प्यारेको विक्षेप दिया. श्रीरामचंद्रअवतारमें आपने हनूमानजीसे यह कहा कि हे वीर जो कुछ तुमने हमारी सहाय भक्ति करी सो लोकोंमें प्रसिद्ध है. उसके प्रत्युपकारमें यह वरदान देता हूं कि ऐसा कोई काल न हो जो मैं तुम्हारी सहाय करूं. हे भगवन् यही मैंभी चाहता हूं और लिखे देता हूं कि ऐसाही आपका चिंतवन और निश्चय मेरे लिये हो. अवतक जो जो अनुग्रह आपने मुझपर किये कहांतक कहूं अनंत हैं. जो कुछ आपने मेरा उपकार और उद्धार अपनी तरफ देखकर किया उसकी तो अवधि होचुकी और जो कुछ मुझको करना चाहियेथा उसका प्रारंभभी न होनेपाया केवल मनोराज्य करते हुवे ही आपने सफल करके मुझको सनाथ और कृतार्थ कर दिया. जब कि यह आपकी महिमा है तो मैं सिवाय आपके और किसकू श्रेष्ठ उत्तम ब्रह्मपरमेश्वर मानूं. और इस जगह कैमुतिकन्याय है कि प्रथम मैं सकाम संसारके दुःखोंमें दुःखी अनेक जंजाल झगडोंमें फँसा हुवा था. एक समय विषयानंदमें मनकू वहलानके लिये आपकी लीलानुकरण और स्वरूपानुकरणको देखा मैंने. सो वो अनुकरण आपके स्वरूप और लीलाके सामने लेशमात्रभी नहीं था. और प्राकृत भाषामें आपके गुणोंको सुना. अवतक सिवाय आपकी कृपाके नहीं जानता हूं कि इसमें क्या कारणथा जो अपने आप विना यत्नके आपके गुण स्वरूपमें प्रीति होने लगी और दुःखोंकी निवृत्ति और आनंदका आविर्भाव होने लगा. तव तो मैंने केवल आपके चरित्र और गुणोंके श्रवणकोही दुःखोंका दूर करनेवाला और परमानंदको प्राप्तकरनेवाला समझा. फिर ऐसा हुवा कि वेदशास्त्रोंमें और बडेबडे महात्मा संत महंत पंडितोंके मुखसे आपकी बड़ाई सुनी आपका बड़ा प्रभाव सुना फिर वेदगीतादिशास्त्र और सुपात्र

सज्जन आपके भक्तोंको प्राणोंसेभी प्यारा मैंने जानकर उनमें मन लगाया. शास्त्र और सद्गुरुओंकी कृपा और आपके प्रथम अनुग्रहसे मुझको यह ज्ञान हुवा कि आपही साक्षात् परमानंदज्ञानस्वरूप है. जिसके वास्ते सब लोग नानाप्रकारके यत्न करते हैं. आपके जाननेमें कुछभी यत्न नहीं और न किसी साधनकी इच्छा है. क्यों कि आप स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप हैं. आपको बुद्ध्यादिजड़ पदार्थ कैसे प्रकाशकरसक्ते हैं इस प्रकार अपने आप साक्षात् आप मुझको अनुभव अपरोक्ष हुवे अब मैं भला आपसे कैसे पृथक् होसक्ता हूं तात्पर्य जब गृहस्थाश्रममें संसारके अनेक झगड़ोंमें और शास्त्रार्थ जाननेके लिये-मतमतांतरके झगड़ोंमें लगा हुवा था तब तो सबका त्यागकर आपके सन्मुख हुवा फिर अब आपसे कैसा जुदा होसक्ताहूं.

यह मंगलाचरण समाप्त हुवा.

वक्तव्य अर्थकू मनमें रखकर उसकी संगतीके लिये प्रथम और कथा कहना उसको उपोद्घातकथा कहते हैं तात्पर्य गीता और गीतापर टीका जैसी और जिसवास्ते बनी सो कथा लिखते हैं. विना उपोद्घातकथा सुने गीताका तात्पर्यार्थ समझमें न आवेगा. सोई सुनो. श्रीमत्परमहंसपरिव्राजश्रीस्वामी मलूकगिरिजीमहाराज मुझ आनन्दगिरि इस सज्जनमनोरंजनी टीका करके गुरुदेव हैं. उनके चरणकमलोंका पूजनेवाला मैं अनुचर शिष्य हूं और श्रीपंडित राज पंडितजी श्रीमोहनलालजीमहाराज रहनेवाले कुरुक्षेत्रांतर्गत कपिस्थलनगरके मेरे विद्यागुरु हैं सुयश (कीर्ति) और माहात्म्य इन दोनों महामुनीश्वरोंका वर्तमानकालके महात्मा सज्जन लोग सबही जानते हैं मैं क्या लिखूं यह दोनों महाराज वर्तमानकालमें साक्षात् श्रीवेदव्यास भगवान् और श्रीभगवत्पूज्यपाद श्रीशंक-

राचार्यमहाराज हैं. इन दोनों महाराज और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज और श्रीस्वामी आत्मागिरिजीमहाराजके कृपासहायसे और अन्य महापुरुषोंकेभी सहायसे मुख्यबीबी वीराब्राह्मणी प्रसिद्ध बीबीझुनिया देवीके निमित्त यह भाषाटीका बनाई है. जिस बीबीवीराने श्रीबीरबिहारीजी महाराज और श्रीवीरेश्वरमहादेवजीमहाराजका मन्दिर सिकन्दराबादमें बनाकर और विधिवत् सम्वत् १९२७ में प्रतिष्ठा करके जो कुछ द्रव्य उसके पास था जिस जगे उसका सत्व था जो उसको आश्रय था समस्त महाराजको समर्पण करके उसीदिन विधिवत् सर्वस्वदानका संकल्प कर दिया. एक पुराणी धोती अपने पास रक्खी और कुछ अपने पास नहीं रक्खा. फिर श्रीवृन्दावनमें जाकर बास किया. पहलेभी पुष्करादि बहुततीर्थोंका सेवन किया. श्रीजगन्नाथस्वामी श्रीकेदारनाथ बदरीनारायणस्वामी और श्रीनाथजी इनका दर्शन किया. ऐसे ऐसे पुण्य करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हुवा. और भगवत्तत्त्व जाननेकी उनको इच्छा हुई. सुखपूर्वक उनको ब्रह्मतत्त्व जाननेके लिये मुख्य बीबीबीराब्राह्मणीके निमित्त यह टीका बनाई गई है. विशेषकरके शांकरभाष्य और आनन्दगिरिजीके टीकानुसार मैंने अर्थ लिखा है. और किसी किसी जगह श्रीधरीटीकानुसार और किसी किसी जगे महापुरुषोंके मुखारविंदका श्रवण किया हुवा अर्थ. और किसी किसी जगे अपने बुद्धीके अनुसारभी लिखा है. श्रीकृष्णचंद्रका अर्जुनसे जैसा संवाद हुवा प्रथम सो सुनना अवश्य है. इस वास्ते वो प्रसंग लिखते हैं. श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीके अर्जुन परम भक्त थे. अर्जुनकू बिनाब्रह्मज्ञान युद्धके प्रारम्भसमय शोकमोह हो गया. श्रीमहाराज उस समय अर्जुनके पास थे. जान गये कि अज्ञानसे इसकू यह शोक मोह हुवा है. ब्रह्मज्ञान सुनानेसे दूर होगा. यह विचारकर परमकरुणाकी खान श्रीभगवानने समस्तवेदोंका सार ब्रह्मज्ञान

साधनोंकेसहित उपदेशकर स्वधर्ममें स्थित कर दिया. क्योंकि बिनास्वधर्मका अनुष्ठान किये और विना अंतरंग उपासना कीये ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति नहिं. ऐसे विक्षेप समय श्रीमहाराजने जो यह ब्रह्मज्ञान अर्जुनकू उपदेश कीया इसका तात्पर्य यह है. कि कोई वक्ता तो ऐसी रीतिसे कथा कहतेहैं कि जो श्रोताका चित्त भले प्रकार एकाग्र हो. तब वक्ताका तात्पर्य समझमें आता है. और किसी वक्ताकी कथाविक्षेप चित्तकूभी एकाग्र करदेती है. सिवाय इसके महत्पुरुषोंके वाक्यमें सामर्थ्य होता है. श्रीमहाराजने अर्जुनकू ऐसी रीतीसे उपदेश किया कि विक्षिप्तचित्तभी एकाग्र होजावे. महात्मा सर्वज्ञजन देशकालवस्तुके सहित अधिकार समझकर कहते हैं. वेदोंमें जो विस्तारपूर्वक ब्रह्मविद्याका निरूपण है वहां देशकालवस्तुके सहित अधिकार देखना चाहिये. और गीतामें संक्षेप करके जो ब्रह्मज्ञान निरूपण किया है यहांभी देशकालवस्तुके सहित अधिकार देखना योग्य है. सत्ययुग द्वापर त्रेताकालमें ब्राह्मण और राजा बनमें वास करके तपसे पापोंकू नाशकर ब्रह्मविद्याका विचार करतेथे. अवस्था उनकी बहुत होतीथी. रोगी कम होतेथे. उनके वास्ते वेदोंमें विस्तारके सहित ब्रह्मविद्याका उपदेश युक्त है. दूसरा यह कि वो उपदेश समष्टीके वास्ते है. किसी एक अपने प्यारेके वास्ते नहीं कि जो विचार २ अर्थ लिखा जावे और यह उपदेश एक अपने प्यारे सखा परमभक्तके वास्ते है इस हेतुसे श्रीमहाराजने बहुत विचारके सहित यह गीताग्रंथ कहा है. सिवाय इसके श्रीमहाराजने यहभी समझा कि अर्जुनसे ऐसी रीतिके साथ कहना चाहिये कि जो शीघ्र अर्जुनके समझमें आजावे नहीं तो प्रथम हँसी हमारी है. क्योंकि ॥ वक्तुरेव हि तज्जाड्यं यत्र श्रोता न बुद्ध्यते ॥ तात्पर्य कहनेवालेकी भाषा अच्छी नहीं कि जो श्रोता नहीं समझता है. अब भले प्रकार विचार करना योग्य है कि यह गीताग्रंथ कैसा उत्तम

है कि जिसका वक्ता श्रीकृष्णचंद्रमहाराज पूर्णब्रह्म और श्रोता अर्जु-न और वेदव्यासजी कर्ता हैं. इन तीनोंकी महिमा जगतमें प्रसिद्ध है. परमकरुणाकर श्रीवेदव्यास नागरने यह विचारकर कि विशेषकरके कलियुगमें लोग मंदबुद्धि आलसी कुतर्की मंदभाग्य कमअवस्थावाले और रोगी ऐसे होंगे. और खेती वनिज नोकरी और भिक्षा इन चारप्रकारकी आजी विकाहीमें दिनरात्रि खोवेंगे. उनके उद्धारकेवास्तेभी यत्न करदेना योग्य है. क्योंकि कलि-युगमें वेदोंका पढ़ना सुनना तो पृथक् रहा. वेदोंकी पोथियोंभी वास्ते प्रमाण देनेके मिलना कठिण होंगी. जो अर्थ जिसके मनमें आवेगा संस्कृतकी वो भाषाकी पोथी बनाकर कह दिया करेगा कि यह ग्रंथ अनादि है वा वेदोंके अनुसार है। उसीर-स्तेपर मूर्ख (अनजान) चलने लगेंगे. वो समय अब वर्तमान हो रहा है. कैसे कि असंख्यात नाममात्रके पंडितोंने वेदकी पोथीभी नहीं देखी और बाततो वेदोंका प्रमाण देकर बोलते हैं. प्रत्युत बहुत लोग वेदोंसेभी परेकी बात कहते हैं. और जो जो झगड़े (उ-पाधि जल्प वितंडा) जीवोंके आपसमें परमार्थका निर्णय करनेके लिये फैल रहे हैं सो प्रसिद्ध हैं. एकजीवका एकजानी शत्रु हो रहा है और अनेक पुरुषोंकी इस झगड़ोंमें जान जाती रही. और परमार्थके जगे परमानर्थ फैल गया. तात्पर्य ऐसी ऐसी व्यवस्था समझकर व्यासजीने श्रद्धावानोंके लिये उसी अर्थकू कि जो श्रीभगवान्ने युद्धके प्रारंभसमय अर्जुनकू उपदेश कियाथा उसीकू सबसे श्रेष्ठ समझकर युक्तीके साथ सातसौ ७०० श्लोकोंमें लिखकर श्रीभ-गवद्गीता उपनिषत् उन भगवद्गीतामंत्रोंका नाम रक्खा और उसके अठारह अध्याय किये. हर एक अध्यायके अंतमें श्रीभगवद्गीता उपनिषद्ब्रह्मविद्या योगशास्त्र उस ग्रंथकू लिखा. तात्पर्य यह ग्रंथ योग-शास्त्र है भोगशास्त्र नहीं. और इसमें ब्रह्मविद्याका निरूपण है. कर्म

उपासना और योग इनको इस ब्रह्मज्ञानका साधन कहा है. और यह श्रीभगवान्‌के कहे हुवे उपनिषद् हैं सब श्लोक इसग्रंथके मंत्र हैं. और रक्षाके लिये इसग्रंथकू महाभारतमें जमाया. उन सातसौ मंत्रोंमें बहुत मंत्रतो साक्षात् श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीके मुखारविंदसे प्रगट हुवे हैं. और कुछ श्लोक व्यासजीके बनाये हुवे हैं. इसगीताके श्लोकका चौथाभाग अर्द्धभागभी मंत्र है. इसहेतुसे मंत्रशास्त्रवाले इसगीताकू मालामंत्र कहते हैं और मंत्रशास्त्रके ज्ञाता विधिपूर्वक पाठ करते हैं. जो सकामपाठ करते हैं उनकू तो मनोवांछित फल प्राप्त होता है. और जो निष्कामपाठ करते हैं उनका अंतःकरण शुद्ध होकर ब्रह्मज्ञानद्वारा उनकू परमानंदकी प्राप्ति होती ह. गीतामाहात्म्यके ग्रंथ बहुत हैं उनमें एक एक अध्यायके श्रवण और पाठ करनेका माहात्म्य और अर्द्ध अर्द्धार्द्ध श्लोकोंके पढ़नेसुननेका माहात्म्य जूदा जूदा इतिहासोंके सहित लिखा है. उन ग्रंथोंसे प्रतीत होता है कि असंख्यात पापी अंत्यज और दुराचारी प्रत्युत पशु पक्षी भूत प्रेत और राक्षसादि गीताजीके एक एक अध्याय आधे आधे श्लोकोंकू पक्षीराक्षसोंके मुखसे अनजानमें अश्रद्धापूर्वक श्रवण करके और गीतापाठीके चित्ताका धूमका और उसके देहके भस्मका स्पर्श करके और उसके अस्थिसंबंधीजलका स्पर्श करके अंतकालमें परमपदकू प्राप्त हुवे. यहां कैमुतिकन्याय है कि जो अधिकारी विधिश्रद्धासहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे पढ़ते सुनते हैं वे मुक्त हो जावें तो इसमें क्या कहना है. जिसको इतिहासोंके सहित गीतामाहात्म्यके श्रवण करनेकी इच्छा होवे तो पद्मपुराणमें पृथक् पृथक् अठारह अध्यायोंके अठारह माहात्म्य हैं. उनमें लक्ष्मीनारायणका और सदाशिवपार्वतीजीका संवाद है. और स्कंदादिपुराणोंमें भी बहुत है. सिवाय इसके प्रत्यक्षप्रमाणमें किसी और प्रमाणकी कुछ इच्छा नहीं होती. बहुत महात्मा वर्तमानकालमें प्रत्यक्ष देखलो कि

जो केवल गीताजीके प्रतापसे महात्मा संत साधू सज्जन हो गये हैं. इस गीतापर बावन टीका प्रसिद्ध हैं और दो भाष्य हैं. एकतो हनूमानजीका बनाया हुवा और दूसरा श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकराचार्यजीका बनाया हुवा. जिसपर श्रीस्वामीआनंदगिरिजीकी टीका है. और हनूमानभाष्यपर श्रीमहाराजपंडितराजमोहनलालजीकी टीका है. और श्रीसंप्रदाय और माधवीसंप्रदाय और निंबार्कसंप्रदायवालेभी अपने आचार्योंके किये हुवे भाष्य गीतापर कहते हैं. सो उन भाष्योंकू उनके संप्रदायवाले पढते सुनते हैं. इसीप्रकार बावनटीकासे सिवाय हैं कम नहीं. और देशभाषामें और यामिनीभाषामेंभी बहुत हैं. और इसग्रंथमें किसीप्रकारका संशय नहीं. जैसे कोई मनुष्यकृतश्लोककू श्रुतिस्मृति बता देता है. और कोई श्रुतिस्मृतिको मनुष्यकृत बता देता है. जैसे श्रीमद्भागवतकू कोई कहते हैं कि यही व्यासकृत है और कोई कहैं कि भगवतीभागवत व्यासकृत है. यह मनुष्यकृत है. तात्पर्य गीता ऐसा ग्रंथ नहीं. इस ग्रंथकू अन्यद्वीपोंके निवासीभी सब ग्रंथोंसे श्रेष्ठ बताते हैं. सिवाय इसके बड़े बड़े पंडित साधु विरक्त षट्शास्त्रोंके पढ़े हुवे कि जो राजलक्ष्मीपुत्रादि पदार्थोंका त्याग करके ब्रह्मलोकादिकू तृणके बराबर समझकर बनबास करते हैं. वेभी एक पुस्तक गीताजीका अवश्य अपने पास रखते हैं. सदा पाठ करते रहते हैं. तात्पर्य जितनी स्तुति महिमा श्रीभगवद्गीताजीका लिखा जावे वो कमसेभी कम है. जिसकू परमानंदकी इच्छा हो वह श्रद्धाविधिसहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे गीता पढे सुने नित्य पाठ करे. धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे इस श्लोकसे पूर्व जो नव श्लोक अंगकरन्यासादिके मंत्र हैं. वे सातसौ श्लोकोंकी संख्यासे पृथक् (सिवाय) है उनके सहित पाठ करना योग्य है. धर्मक्षेत्रे यहांसे लेकर दूसरे अध्यायके दश श्लोकतक सत्तावन श्लोक कृष्णार्जुन संवादके संगतीके लिये हैं. फिर समस्त गीतामें मुक्तिका साक्षात्का-

रण जो केवलज्ञाननिष्ठा उसका वर्णन है. और ज्ञाननिष्ठाका उपाय जो कर्मनिष्ठा उसका निरूपण है. समस्तगीताशास्त्रमें ये दो निष्ठा हैं. उपासनाका कर्मनिष्ठाहीमें अंतर्भाव है. प्रथमके छःअध्यायोंमें कर्मकांडका वर्णन है, और सातवें अध्यायसे बारःतक उपासनाका वर्णन है. और तेरःसे अठारःतक ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है. जैसे वेदोंमें कर्म उपासना ज्ञान तीन कांड हैं. ऐसेही गीताजीमें तीन कांड हैं. ये तीनों कांड परस्पर सापेक्ष हैं. अर्थात् स्वतंत्र ये तीनों मुक्तिके कारण नहीं. कर्मतो उपासनाज्ञानकी अपेक्षा रखता है. और उपासना प्रथम कर्मकी और फिर ज्ञानकी अपेक्षा रखता है. और ज्ञान प्रथम कर्म और उपासना इन दोनोंकी अपेक्षा रखता है. कर्म करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है. उपासनासे चित्त एकाग्र होता है. फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है इस प्रकार ये तीनों कांड परस्पर सापेक्ष हैं. इसकू क्रम समुच्चय कहते हैं. समसमुच्चय इसकू समझना न चाहिये क्योंकि एककालमें एकपुरुषसे कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंका अनुष्ठान नहीं हो सक्ता. इनकी स्थितिगतिवत् विरोध है. कर्ता और अकर्ताभी एककालमें कैसा समझा जावे. तात्पर्य यह है कि प्रथम कर्मनिष्ठा मुख्य रहतीहै और ज्ञाननिष्ठा गौण जब कर्मनिष्ठा परिपाक होजातीहै तब ज्ञाननिष्ठा मुख्य हो जाती है. और कर्मनिष्ठा गौण फिर ज्ञाननिष्ठापरिपाक होकर समस्त दुःखोंकू मलके सहित नाश करके परमानंदकू प्राप्त कर देती है. सब संत महंत महात्मा वेदशास्त्रोंका यही सिद्धांत है. यह नियम है कि महावाक्यार्थज्ञानके विना मुक्ति कभी नहीं होती है और महावाक्यार्थका ज्ञान तब होता है जब प्रथम पदार्थका ज्ञान हो जावे. महावाक्यमें तीन पद हैं तत् १ त्वम् २ असि ३ तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ वाच्य और लक्ष्य भेदसे दो दो प्रकारका है. श्रीभगवद्गीतामें विचारना चाहिये कि महावाक्यार्थ किस प्रकार और कह

निरूपण हुवा सो सुनो. समस्तगीतामें महावाक्यार्थंही श्रीमहाराजने निरूपण किया है.तत्रतुप्रथमेकांडेकर्मतत्त्यागवर्त्मना॥ त्वंपदार्थोविशुद्धात्मासोपपत्तिर्निरूप्यते ॥ १ ॥ अ० प्रथम कांडमें कर्म करना. उसके फलकू न चाहना. संगरहित अर्थात् आसक्तिरहित कर्म करना इस मार्गकरके त्वंपदका अर्थ दोप्रकारका (वाच्य और लक्ष्य) निरूपण किया है. शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपजीवका त्वंपदका लक्ष्यार्थ है. और अविद्यामें कार्यगुणकर्मफलमें जो सक्त सो त्वंपदका वाच्यार्थ है ॥ १ ॥ द्वितीये भगवद्भक्तिनिष्ठावर्णनवर्त्मना ॥ भगवान्परमानंदस्तत्पदार्थोविधीयते ॥ २ ॥ अ० दूसरे कांडमें भक्तिनिष्ठामार्गकरके तत्पदका अर्थ निरूपण किया. अर्थात् श्रीभगवानकू परमानंदस्वरूपादिमान् जो कहा सो तो तत्पदका लक्ष्यार्थ है.और सर्वज्ञसर्वशक्तिमान्कर्त्ताहर्त्तादिस्वरूप भगवतका तत्पदका वाच्यार्थ है॥२॥ तृतीयेतुतयोरैक्यंवाक्यार्थोवर्णितःस्फुटः ॥ एवमप्यत्रकांडानांसंबंधोस्तिपरस्परम् ॥३॥ अ० तीसरे कांडमें दोनों पदोंकी एकता लक्ष्यार्थमें निरूपण की. सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मुझकू ही जानतू. इत्यादिश्लोकोंकरके स्पष्ट महावाक्यार्थ निरूपण किया इस प्रकार तीनों कांडोंका परस्पर संबंध है ॥ ३ ॥

अथ संकेतवर्णन ॥

इस टीकामें जो संकेत हैं उनकू प्रथम कंठ करलेना योग्य है. क्यों कि हरएक जगह काम पड़ेगा सोई लिखते हैं. मू० यह मूलका संकेत है अ० यह अर्थका संकेत है सि० सह सिवायका संकेत है जो अर्थ मूलपदसे सिवाय श्लोकार्थके बीचमें लिखा है वो ❋ इस फूलके संकेतपर्यंत होगा टी० यह टीकाका संकेत है. जिस जगे पदका अर्थ भले प्रकार नहीं लिखा गया उसकू फिर टीकामें विस्तारसहित लिखा है. पू० यह संकेत पूर्णका है पदके पूर्ण करनेके लिये

चकारएवकारादि श्लोकमें प्रायशः लिखे होते हैं. किसी जगह अर्थभी देते हैं. जिस जगे पदपूणार्थ चकारादि होंगे वहां अर्थमें पू० यह संकेत लिखा होगा. उ० यह संकेत उत्थानिका और उपोद्घातका है॥ यह संकेत श्लोकके अंकका है और जिसजगे वाक्य पूर्ण हुवा वहां यह चिह्न है. पर्याय शब्द (   ) इसके बीचमें लिखा जावेगा. पाठ करनेके समय सि० मू० टी० इन संकेतोंकू मनमेंही समझ लेना उच्चारण नहीं करना. तात्पर्य इन संकेतोंकू छोड़कर शेपका उच्चारण करना योग्य है. अर्थ तो सब पदोंका लिखा जावेगा परंतु टीका सबपदोंकी न होगी.

देशभाषाकी स्तुति॥

प्रथम देशभापा सुनकर मुझकू बोध हुवा है इस हेतुसे मुझकू देशभापा प्रिय लगती है. मनुष्यलोकमें देवभाषा तो कोई कोई बोलते समझते हैं. प्रायशः सब प्राकृत (देशभाषा) बोलते समझते हैं. और इस लोकमें यह चाल है कि जो देवभाषाके ग्रंथोंकू पढ़ाते सुनाते हैं तो अर्थ उनका देशभाषाहीमें समझाते हैं. और प्रसिद्ध है कि असंख्यात संत महात्मा साधु देशभाषामेंही भगवत्के गुणानुवाद सुनकर भगवत्कू प्राप्त हुवे. और असंख्यातजन वर्तमानकालमें भगवतके सन्मुख हैं. मैं नहीं जान्ताकि कोई कोई मूर्ख भाषाकी निंदा क्यों करता है और अपनी हँसी कराकर क्यों पापका भागी होता है. हँसी तो उसकी ऐसी है कि एक आदमी देवभाषामें कथा वांचता हुवा देशभाषामें अर्थ समझाताथा. वो वक्ता देशभाषामें बोला कि देशभाषाका प्रमाण नहीं उसका पढना सुनना निष्फल है. यह सुनकर समझवाले श्रोता सब उठ खड़े हुवे और देशभाषामें कहने लगे कि वक्ता तो बडाही मूर्ख है यह सुनकर वक्ताकू क्रोध आगया. सुननेवालोंकू नास्तिक मूर्ख शूद्र वर्ण-

संकर ऐसा कहकर देशभाषामें गाली देनें लगा. सुनने वालोंने बक्तासे कहा कि सुनो महाराज! हमको तो देशभाषा प्रमाण सफल है. गालियोंका फल (दुःख) हमकू होता है. और तुमको तो देशभाषा प्रमाण नहीं. निष्फल है. तुमने हमारे कहनेका क्यों बुरा माना. और हम तो तुम्हारे कहनेमें वदतोव्याघात दोष समझकर और तुमकू कृतघ्न समझकर उठ खड़े हुवे जो बोलताहे उसीकी बुराई करता है जिस देशभाषाकी कृपासे तुम्हारे अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं उसके उपकारकू नहीं मानतेहो प्रत्युत असूया करतेहो. यह सुनकर वो बक्ता चुप हुवा. फिर सब श्रोता उसकी हँसी करते हुवे चले गये. अकेले बक्ताजी बक्ते रहे. और पापका भागी ऐसा होता है कि जिसे देवभाषा समझनेकी तो सामर्थ्य नहीं उसकू देशभाषासेभी यह हटादेना कितना बड़ा अनर्थ है. इसमें संदेह नहीं कि देव भाषा मुमुक्षूके लिये अत्यंत हितकारी है. . परंतु मंदमति क्या करे प्रायशः चारों वर्ण जो अपने परम इष्टदेव मतसे अनजान हो रहे हैं और अन्य द्वीपनिवासियोंके पंजेमें फँसे चले जाते हैं इसमें यही हेतु है कि वे लोग तो सब अपनी देशभाषामें इष्टउपासनाकू सुनपढ़कर शीघ्र समझ लेते हैं. और यह वर्णाश्रमी देशभाषाकू निष्फल अप्रमाण है ऐसा मूर्खोंसे सुनकर पशुवत् बने रहते हैं. तात्पर्य मेरा यह है कि जिसकू देवभाषाके पढ़ने सुनने समझनेका सामर्थ्य है वो तो भूलकरभी देशभाषाकी पोथियोंकू न पढे न सुने. और जो असमर्थ हैं वे देशभाषाकू परमहितकारी समझें. देशभाषामें निंदा स्तुति सुनी हुई तो फलदात्री है और फिर भगवत्के गुण सुने हुवे सफल क्यों न होंगे. तात्पर्य देशभाषा बे संदेह प्रमाण (सफल) है. अब देशभाषामें परमानंदस्वरूपश्रीकृष्णचंद्र महाराजजीके गुणोंकू सावधान होकर सुनो. जो पुरुष ब्रह्मविद्याके प्रक्रियाकू न जानता हो वो प्रथम ब्रह्मविद्याके प्रक्रियाकू याद करे जब गीताका तात्पर्य

(सिद्धांत) समझमें आवेगा क्यों कि ब्रह्मविद्यावेदांतशास्त्रमें गीता सिद्धांतग्रंथ है. प्रक्रियाके प्रकरण पृथक्हैं. सज्जनमनोरंजनी इसदेशभाषाके टीकासे पृथक् एकब्रह्मविद्याकी प्रक्रिया देशभाषामें मैंने भी वर्णन की है. जिसका नाम "आनंदामृत वर्षिणी" प्रसिद्ध है. उसकू इस टीकाका अंग और एकदेश (पूर्वभाग) समझना योग्य है. जब कि आनंदामृतवर्षिणी प्रक्रिया इस टीकाका पूर्वभाग है इसी हेतुसे वेदान्तसंज्ञाका इस टीकामें मैंने निरूपण नहीं किया. केवल सिद्धान्तपदार्थोंका निरूपण किया है. और इसी हेतुसे सज्जनविद्वान् साधु महात्मा पंडितोंसे कुछ इसमें प्रार्थना नहीं करी न संबंध अधिकारी इत्यादिकोंका लक्षण कहा. आनंदामृतवर्षिणीमें अधिकारीसम्बन्धादिकोंका लक्षण लिख चुका हूं. सज्जन साधु अपनी सज्जनता साधुताकी तरफ देखकर बिगडी अशुद्धकविताकू भी शुद्धकर देते हैं, और दुष्ट शुद्धमेंभी दोष निकाला करते हैं.इन दोनोंका यह स्वभाव अनादि और अभंग है.सज्जन तो यह समझते हैं कि एक पुरुषसे जो कुछ प्रयत्न होसका वो उसने कीया,हमकू सुधार देना चाहिये. निर्दोषकविता सर्वज्ञजनोंकी होती है.असर्वज्ञके कहनेमें जो दोष प्रतीत होनेसे उसके समस्तपुरुषार्थकू क्यों नाश करना चाहिये.सिवाय इसके यहभी समझना चाहिये कि मुझकू जो यह दोषप्रतीत होता है तो मैं सर्वज्ञ हूं वा अल्पज्ञ हूं जो सर्वज्ञ गुणदोषोंका निर्णय करे तब तो सबकू प्रमाण होता है. नहीं तो निन्दक दुष्ट कहलाता है. क्यों कि गुणकू गुण और दोषकू दोष सर्वज्ञही नियमकरके कह सक्ता है.जो अल्पज्ञ दोष निकालता है उसके बकनेकू मूर्ख मानता है.सज्जन हंसके सदृश सारग्राही होते हैं इसीहेतुसे निन्दकदुष्टोंसेभी प्रार्थना करना व्यर्थ है.सज्जनोंके चरणोंकू नमस्कार करके सज्जनमनोरंजनी यह श्रीभगवद्गीता उपनिषदोंकी टीका अर्थात् श्रेष्ठजनोंके मनकू रंजन करनेवाली और आनंद देनेवाली है.अब इस टीकाका प्रारम्भकरता हूं.॥

ॐ ।

श्रीभगवद्गीता ।

भाषाटीकासहित

मू० १ ओम् अस्य श्रीभगवद्गीतामालामंत्रस्य २ श्रीभगवान् वेदव्यासऋषिः ३ अनुष्टुप् छंदः ४ श्रीकृष्णः परमात्मा देवता ॥ ५ ॥

अ० यह ओम् नाम परमात्माका है वास्ते मंगलाचरणके प्रथम इसका उच्चारण, करते हैं १ इस श्रीभगवद्गीतामालामंत्रके २ श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषि३सि० हैं.और इसमालामंत्रका ❋ अनुष्टुप्छंद ५ सि० है. और इसमंत्रके ❋ श्रीकृष्णपरमात्मा देवता५सि०है. ❋

मू० अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे ॥ इति बीजम् १

अ० यह मंत्र है. अर्थ इसका आगे लिखा जावेगा. यह बीज १ सि० है इसमालामंत्रका. ❋

मू०सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज॥इतिशक्तिः१

अ० यह शक्तिः १ सि० है इसकी. ❋

मू० अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः ॥ इति कीलकम् १

अ० यह कीलक १ सि० है इसका. ❋

मू०नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः ॥ इत्यंगुष्ठाभ्यां नमः १

अ० यह मंत्र पढकर दोनों हाथके तर्जनीउंगलीसे दोनोंहाथके

अंगूठोंका स्पर्श करते हैं. अंगूठेके पास जो उंगली है उसका नाम तर्जनी है. १

मू०नचैनंक्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतः ॥ इति तर्जनीभ्यांनमः १

अ० यह मंत्र पढ़कर दोनों अंगूठोंसे दोनों तर्जनी उंगलियोंका स्पर्श करते हैं. १

मू०अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्यएवच ॥ इति मध्यमाभ्यांनमः १

अ० दोनों अंगूठोंसे दोनोंमध्यमाका स्पर्श करते हैं. १

मू०नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोयंसनातनः ॥ इत्यनामिकाभ्यांनमः १

अ० दोनोंअंगूठोंसे दोनोंअनामिकाका स्पर्श करते हैं. १

मू०पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रशः ॥ इति कनिष्ठिकाभ्यांनमः १

अ० दोनोंअंगूठोंसे दोनोंकनिष्ठिकाका स्पर्श करते हैं. १

मू०नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच ॥ इतिकरतलकरपृष्ठाभ्यांनमः १

अ० यह मंत्र पढ़कर प्रथम दाहने हाथके नीचे वाम हाथ रखते हैं. फिर वामेहाथके नीचे दाहना हाथ रखते हैं. यह सब विधि गुरूके बतलानेसे अच्छीतरह आजाता है.

यहांतक करन्यास हुवा.

अब अंगन्यासके मंत्र लिखते हैं.

मू०नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणीतिहृदयायनमः १

अ०यह मंत्र पढ़कर पांचोंउंगलियोंसे हृदयका स्पर्श करतेहैं. १

मू०नचैनंक्लेदयन्त्यापइतिशिरसेस्वाहा १

अ०यह मंत्र पढ़कर पांचोंउंगलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं. १

मू०अच्छेद्योयमदाह्योयमितिशिखायैवषट् १

अ०यह मंत्र पढकर पांचोंउंगलियोंसे चोटीका स्पर्श करते हैं १

मू०नित्यःसर्वगतःस्थाणुरितिकवचायहुम् १

अ० यह मंत्र पढकर दाहने हाथसे बामे खवेका और बामेहाथसे दाहने खवेका स्पर्श करते हैं १

मू०पश्यमेपार्थरूपाणीतिनेत्रत्रयायवौषट् १

अ० दाहने हाथसे दोनोंनेत्रोंको छूते हैं. १

मू०नानाविधानिदिव्यानीत्यस्त्रायफट् १

अ० यह मंत्र पढ़कर दाहने हाथकी तर्जनी और मध्यमा ये दो उंगली बामेहाथकी हथेली पर मारते हैं. १

यहांतक अंगन्यास हुवा.

मू०श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः इतिसंकल्पः१

अ० यह संकल्प पढ़कर यह चितवन करे कि यह पाठ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीके प्रसन्नहोनेके लिये करताहूं १

अथध्यानम्.

संकल्पसे पीछे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीका ध्यान करना योग्यहै. ध्यान. कुरुक्षेत्रके अंतर्गतज्योतीश्वर तीर्थपर दोनों सेनाके बीचमें रथपर सवार इस स्वरूपसे श्रीकृष्णचंद्रभगवान् अर्जुनको ब्रह्मज्ञान सुना रहे हैं. चरणकमलोंके अंगूठोंमें सोनेके छल्ले पहरे हुवे. चरणोंमें कडे सोनेके पैंजनी चांदीसोनेकी. जिसमें पंचरंगी मणी जडीहुई. पीलीधोती जिसमें रक्त किनारी लगीहुई जिसपर अनेक प्रकार और

नानारंगोंके बेलबूंटे बनेहूवे जिसके चमकसे चंद्रसूर्यकी ज्योति फीकी प्रतीतहोती है. पहर रहे हैं पंचरंगी बेलदार अंगरखा. जिसमें कलाबत्तून और गोटा ठप्पा जगेजगे लगा हुवा है. नीचे उसके रक्तकुरता पहरे हुवे. गलेमें पंचरंगीमणिमोतियोंकी माला और नानारंगके फूलोंकी माला पहर रहे हैं. हाथोंमें सोनेचांदीके छल्ले अंगूठी कडे पहुँची बाजूबंद जडाऊ पहर रहे हैं. गुलानारी दुपट्टेसे कमर कसीहुई. घूंगरूवाले बालोंमें अतर फुलेलपड़ा हुवा. सिरसे बसंती दुपट्टा किनारीदोर बंधा हुवा. कानोंमें तीन तीन बाले रक्त श्वेत हरित मोतियोंके सहित लटक रहे हैं. एक हाथमें तो छडी शोभित दूसरेमें ज्ञानमुद्रा बनाये हुवे १४–१५ वर्षकीसी अवस्था प्रतीत होती है. मंदमुसकानसहित अर्जुनको समझाते हैं. बिजलीकी तरह दांतोंकी चमक प्रातःकालके सूर्यवत् होठोंपर लाली. कमलवत् बड़े बड़े नेत्र हैं जिनके. जिनमें सुरमा लगाहुवा रक्त डोरे खिचेहुवे हैं भराहुवा चेहरा चौडी उभरी हुई छाती है जिनकी. नीलकमल नीलनीरधर नीलमणिवत् रंगहै जिनका. जिसमें उत्कट लाली झलक रही है. प्रसन्नमुख मस्तकपर प्रातिपदिक चंद्रवत् तिलक धारण कर रक्खा है जिन्होंनें. ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे मनमें बास करो.

मू० पार्थायप्रतिबोधितांभगवतानारायणेनस्वयं व्यासेनग्रथितांपुराणमुनिनामध्येमहाभारते ॥ अद्वैतामृतवर्षिणींभगवतीमष्टादशाध्यायिनीमम्बत्वामनसादधामिभगवद्गीतेभवद्वेषिणीम् ॥ १ ॥

अ० अम्ब १ भगवद्गीते २ त्वा ३ मनसा ४ दधामि ५ नारायणेन ६ भगवता ७ स्वयम् ८ पार्थाय ९ प्रतिबोधितां १० महाभारते ११ मध्ये १२ पुराणमुनिना १३ व्यासेन १४ ग्रथितां १५ अद्वैतामृतवर्षिणीम् १६ भगवतीम् १७ अष्टादशाध्यायिनीम् १८ भवद्वेषि-

णीम् १९ ॥ १ ॥ अ० हेमात १ हे भगवद्गीते २ तुमको ३ मनकर-
के अर्थात् मनसे ४ धारण करता हूं ५ सि० हृदयमें. कैसी हो तुम
कि जो ❀ नारायणभगवान्ने ६।७ आप८अर्जुनसे ९कही१०सि०
और ❀ महाभारतके मध्यमें ११।१२ प्राचीनमुनिव्यासने १३।१४
गूंदी १५ तात्पर्य व्यासजीनें महाभारतके छठे भीष्मपर्वमें श्रीभग-
वद्गीता ब्रह्मविद्या कही है. १५सि० फिर कैसी हो तुम.हे भगवद्गीते ❀
अद्वैत अमृत वर्षता है जिसमें १६ सि० पुनः ❀ भगवती १७सि०
पुनः ❀ अठारः अध्याय हैं जिसमें. १८ सि० पुनः ❀ संसारसे द्वेष
है जिसका. १९ सि० ऐसी तुम हो ❀ टी० भगवान्ने जो कहे उप-
निषद् उनके भगवद्गीता उपनिषद् कहते हैं. व्याकरणके रीतीसे सं-
बोधनमें ऐसा बोलते हैं. कि हे भगवद्गीते. बहुतजगे इसी प्रकार अ-
क्षरोंका बदल होजाताहै. जैसे माताका हे मात १।२ पूर्णब्रह्मका ना-
म नारायण है. भगवानका विशेषण है. ६ ऐश्वर्य वीर्य यश लक्ष्मी
ज्ञान वैराग्य इन छःका नाम भग है.जिसमें यह पूर्णहों सो भगवान्.
और स्त्री होतो भगवती अथवा उत्पत्ति नाश गति अगति विद्या
अविद्या इनछःको जो जानता है सो भगवान् या भगवती. यह
ग्रंथ पूर्णब्रह्म भगवान्का कहा हुवा है. इस हेतुसे बहुत प्रमाण हैं.
७ भेदवादी जीवब्रह्मके भेदकू सिद्धांत कहते हैं. उसका खंडन कर-
नेकेलिये यह विशेषण है. १६ उन्नीसवे पदका यह अर्थ प्रतीत
होता है कि गीता और संसारका वैर है. परंतु यह नहीं प्रतीत हो-
ताथा कि इन दोनोंमें बलवान् कौन है. इसवास्ते यह विशेषण है.
१७ तात्पर्य इस श्लोकका यह है.कि गीताजीका पढ़नेवाला पाठ
करनेवाला प्रथम गीताजीका ध्यान और स्तुती करता है. हे गीते
तुमको साक्षात् श्रीकृष्णचंद्रने अर्जुनसे कही और व्यासजीने महा-
भारतके बीचमें लिखी. तुम मातासेभी सिवाय हितचाहनेवाली दुः-
खरूप संसारका नाशकरनेवाली ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकरके युक्त

हो. अठारः विद्यामें जो अर्थ है सोई तुम्हारे अठारः अध्यायोंमें है. उस अर्थके विचारनेसे सब वेदोंका सिद्धांत अद्वैत (जीवब्रह्मकी एकता) है उसका अपरोक्ष ज्ञान होजाता है. इसवास्ते हे मात! तुमको मैं मनसे अपने हृदयमें धारण करताहूं ॥ १ ॥

मू० नमोस्तुतेव्यासविशालबुद्धेफुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ॥येनत्वयाभारततैलपूर्णःप्रज्वालितोज्ञानमयःप्रदीपः ॥ २ ॥

व्यास १ विशालबुद्धे २ फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ ते ४ नमः ५ अस्तु ६ येन ७ त्वया ८ भारततैलपूर्णः ९ ज्ञानमयः १० प्रदीपः ११ प्रज्वालितः १२ ॥ २ ॥ अ० हे व्यास १ हे विशालबुद्धे २ हे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ आपके अर्थ ४ नमस्कार ५ हो ६ जिन ७ आपने ८ भारततैलकरकेपूर्ण ९ ज्ञानरूप १० दीपक ११ प्रज्वलित किया (जलाया) १२ टी० बड़ी बुद्धि है जिनकी २ फूले कमलके चौड़ेपत्रवत् नेत्र हैं जिनके ३ इन दो विशेषणोंका तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत् वर्तमान कालकी व्यवस्था व्यासजी सबै देखते समझते हैं क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं. ॥ २ ॥

मू०प्रपन्नपारिजातायतोत्रवेत्रैकपाणये ॥ ज्ञानमुद्रायकृष्णायगीतामृतदुहेनमः ॥ ३ ॥

कृष्णाय १ नमः २ प्रपन्नपारिजाताय ३ तोत्रवेत्रैकपाणये ४ ज्ञानमुद्राय ५ गीतामृतदुहे ६ ॥ ३॥ अ०—श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीको १ नमस्कार २ सि० है. कैसेहैं श्रीमहाराज ❋ भक्तोंकेलिये कल्पवृक्ष ३ सि० हैं. पुनः ❋ छड़ी वेतकी एकहाथमें है जिनके ४ सि० पुनः ❋ ज्ञानमुद्रा है जिनकी. अर्थात् तर्जनी उंगलीसे अंगूठा मिलाये हुवे अर्जुनको समझाते हैं. ५ गीतारूप अमृत दुहा है जिन्होंने ६ ॥ ३ ॥

मू० सर्वोपनिषदोगावोदोग्धागोपालनन्दनः ॥ पार्थो वत्सःसुधीर्भोक्तादुग्धंगीतामृतंमहत् ॥ ४ ॥

सर्वोपनिषदः १ गावः २ दोग्धा ३ गोपालनंदनः४ पार्थः५ वत्सः ६ सुधीः ७ भोक्ता ८ दुग्धम् ९ गीतामृतम् १० महत् ११ ॥ ४ ॥ अ० सबउपनिषद् १ गौः २ अर्थात् गौके सदृश हैं. २ दोहनेवाले ३ श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी. ४ अर्जुन ५ बच्छा ६ सुंदर बुद्धिवाला ७ पीनेवाला ८ दूध ९ गीतारूप अमृत १० सि० कैसा है यह. ❋ बडा ११॥ तात्पर्य श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीने सब उपनिषदोंका सारासार अर्थ अर्जुनको निमित्त करके शुद्धान्तःकरणवालोंके लिये कहा है. गीताजीका अर्थ जानकर फिर संदेह नहीं रहता इसवास्ते महत् विशेषण है. और फिर शरीर धारण नहीं करता गीतापाठी इसवास्ते अमृत विशेषण है. ॥ ४ ॥

वसुदेवसुतंदेवंकंसचाणूरमर्दनम् ॥ देवकीपरमानंदंकृष्णंवन्देजगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

कृष्णम् १ वंदे २ जगद्गुरुम् ३ वसुदेवसुतम् ४ देवम् ५ कंसचाणूरमर्दनम् ६ देवकीपरमानंदम् ७ ॥ ५ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीको १ नमस्कार करता हूं मैं. २ ॥ सि० कैसे हैं श्रीमहाराज. ❋ जगत्के गुरू ३ वसुदेवजीके पुत्र ४ ज्ञानस्वरूप अथवा दीप्तिमान मूर्तिवाले ५ कंसचाणूरके मारनेवाले ६ देवकीजीको परमानंदके देनेवाले ७ इसश्लोकमें किशोर अवस्थाका ध्यान है.॥५॥

मू०भीष्मद्रोणतटाजयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला शल्यग्राहवतीकृपेणवहिनीकर्णेनवेलाकुला॥अश्वत्थामविकर्णघोरमकरादुर्योधनावर्त्तिनी सोत्तीर्णाखलुपांडवैःकुरुनदीकैवर्त्तकेकेशवे ॥ ६ ॥

केशवे १ कैवर्तके २ खलु ३ पांडवैः ४ सा ५ कुरुनदी ६ उत्तीर्णा ७ भीष्मद्रोणतटा ८ जयद्रथजला ९ गांधारनीलोत्पला १० शल्यग्राहवती ११ कृपेण १२ वहिनी १३ कर्णेन १४ ॥ वेलाकुला १५ अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा १६ दुर्योधनावर्त्तिनी १७ ॥ ६ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी १ मल्लाह हुवेसंते २ अर्थात् श्रीकृष्णचंद्र मल्लाह होनेसे हि. १ । २ निश्चय ३ पांडवनने ४ सो ५ कुरुनदी उतरी ६ । ७ अर्थात् पांडवनने कुरुवंशी दुर्योधनादीको जीता ७ सि० कैसीहै वो नदी ❋ भीष्म और द्रोणाचार्य किनारे हैं जिसके. ८ जयद्रथ है जल जिसमें. ९ गांधारीके पुत्र नीलेकमल हैं जिसमें. १० शल्य ग्राह है जिसमें ११ कृपाचार्य करके १२ वहनेवाली १३ कर्णकरके १४ वेल व्याप्त होरहीहै जिसमें. १५ अश्वत्थामा और विकर्ण घोरमकर हैं जिसमें. १६ दुर्योधन चक्र है जिसमें. १७ तात्पर्य श्रीकृष्णचंद्र महाराजजी पांडवोंके सहायकरनेवाले थे तव पांडवनने कौरवोंको जीता ॥ ६ ॥

मू० पाराशर्य्यवचःसरोजममलंगीतार्थगन्धोत्कटंनानाख्यानककेसरंहरिकथासम्बोधनाबोधितं ॥लोकेसज्जनषट्पदैरहरहःपेपीयमानंमुदाभूयाद्भारतपङ्कजंकलिमलप्रध्वंसिनःश्रेयसे ॥ ७ ॥

भारतपंकजम् १ नः २ श्रेयसे ३ भूयात् ४ कलिमलप्रध्वंसि ५ पाराशर्यवचःसरोजम् ६ अमलम् ७ गीतार्थगन्धोत्कटम् ८ नाना ९ आख्यानककेसरम् १० हरिकथासंबोधनाबोधितम् ११ लोके १२ सज्जनषट्पदैः १३ अहरहः १४ मुदा १५ पेपीयमानम् १६ ॥ ७ ॥ अ० भारतरूप कमल १ हमारे २ कल्याणके अर्थ ३ हो ४ अर्थात् हमारा भला करो २ । ३ । ४ सि० कैसा है सो भारतकमल. ❋ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला ५ व्यासजीके वचनरूपसरमें

जमा है. ६ सि० पुनः ❋ निर्मल ७ गीताका जो अर्थ सोई उत्कट तीव्र गंध है जिसमें. ८नाना भांति भांतिकी (तरह तरहकी) ९ कथा (केसर) है जिसमें. १० हरिकथासंबोधनोंकरके जागरहाहै. ११ अर्थात् श्रीकृष्णचंद्रमहाराजके कथाका जो ज्ञान समझना उसकरके खिला हुवा है; ११ जगत्में १२ सज्जनरूप भ्रमर १३ आनंदपूर्वक १४ दिनदिनप्रति (नित्य) १५ सि० उसकमलके रसकू ❋ पीते हैं १६ तात्पर्य जिस महाभारतमें भगवत्संबधी कथा है और जिसके बीचमें श्रीभगवद्गीता विराजमान है. जिसकू श्रेष्ठलोग पढ़ते सुनते हैं. आनंदसहित ऐसा निर्दोष महाभारत हमारा भला करो. ॥ ७ ॥

मू० मूकंकरोतिवाचालं पंगुंलंघयतेगिरिम् ॥ यत्कृपातमहंवन्देपरमानन्दमाधवम् ॥ ८ ॥

अहम् १ तम् २ परमानंदमाधवम् ३ वंदे ४ यत्कृपा ५ मूकम् ६ वाचा ७ अलम् ८ करोति ९ पंगुम् १० गिरिम् ११ लंघयते १२ ॥ ८ ॥ अ० मैं १ तिन २ परमानंदस्वरूपलक्ष्मीजीके पतिकू ३ नमस्कार करताहूं ४ जिनकी कृपा ५ गूंगेकू ६ बाणिकरके ७ पूर्ण ८ करदेतीहै. ९ अर्थात् जिनकी कृपासे गूंगा तरह तरहके शब्द बोलने लगता है. ९ सि० और ❋ पंगु १० पहाड़ ११ उलंघ जाताहै १२ अर्थात् जिनकी कृपा लँगड़ेकू पर्वतका उल्लंघन करादेती है १२ ॥ ८ ॥

मू० यंब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतःस्तुन्वन्तिदिव्यैःस्तवैर्वेदैःसांगदपक्रमोपनिषदैर्गायन्तियंसामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसापश्यन्तियंयोगिनोयस्यान्तंनविदुःसुरासुरगणादेवायतस्मैनमः ॥ ९ ॥

अ० ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः १ दिव्यैः २ स्तवैः ३ यम् ४ स्तुन्वन्ति ५ सामगाः ६ साङ्गपदक्रमोपनिषदैः ७ वेदैः ८ यम् ९ गायन्ति १०

योगिनः ११ ध्यानावस्थिततद्गतेन १२ मनसा १३ यम् १४ पश्यन्ति १५ सुरासुरगणाः १६ यस्य १७ अंतम् १८ न १९विदुः २०तस्मै २१ देवाय २२ नमः २३ ॥ ९ ॥अ०ब्रह्मा वरुण इन्द्र रुद्र मरुतदेवता १ दिव्य २ स्तोत्रोंकरके ३ जिसकी ४ स्तुति करते हैं. ५ सामवेदकेगानेवाले ६ अंग, पद, क्रम, और उपनिषद् इन सहित ७ सि० जो वेद हैं तिन *वेदोंकरके ८ जिसकू ९ गाते हैं १०योगी ११ ध्यानमें मनकू ठहरायकर तद्गत १२ मनकरके १३ अर्थात्१३ परमेश्वरमें मन प्राप्तकरके अर्थात् लगाकर१३जिसकू१४देखतेहैं.१५ देवता और असुरोंके गण१६जिसके१७अंतकू १८ नहीं १९ जानते हैं. २०. तिस २१ देवताकेअर्थ २२ नमस्कार२३ सि०है. *॥९॥

मू०इतिध्यानम्

अ०यह ध्यान समाप्त हुवा ॥ १ ॥

प्रथमाध्यायका प्रारम्भ ॥

मू०धृतराष्ट्रउवाच ॥ धर्मक्षेत्रेकुरुक्षेत्रेसमवेतायुयुत्सवः॥ मामकाःपांडवाश्चैवकिमकुर्वतसंजय ॥ १॥

धृतराष्ट्रः १ उवाच २ अ०धृतराष्ट्र१बोलताभया २अर्थात् राजाधृतराष्ट्र संजयसे यह बोला १।२संजय १ मामकाः २ च ३ पांडवाः ४ एव ५ धर्मक्षेत्रे ६ कुरुक्षेत्रे ७ समवेताः ८ युयुत्सवः ९ किम् १० अकुर्वत ११ ॥ १॥ अ०हे संजय१ मेरे पुत्रादि(दुर्योधनादि)२और ३ पंडुके पुत्रादि पांडव (युधिष्ठिरादि) ४ पू० ५ पदपूर्णार्थ यह एवपद है ५ धर्मभूमि ६ कुरुक्षेत्रमें ७ इकट्ठे होकर ८ युद्धकी इच्छाकरनेवाले ९ क्या १० करते हुवे ११ अर्थात् लड़ाई हुई वा एकता होगई १० ॥ ११ ॥ तात्पर्य राजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन था इस वास्ते लड़ाईमें नहीं गया था. संजय राजाका सारथी राजाके पास

रहा. उसकू व्यासजीने यह वरदान देदिया था कि जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें होगी उसकू तुम इसीजगे बैठे हुवे साक्षात् देखोगे. जोजो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें हुई वो सब संजयने राजा धृतराष्ट्रसे कही. इसहेतुसे गीतामें राजा धृतराष्ट्र और संजयका भी संवाद है. ये दोनों हस्तिनापुरमें रहे ॥ अर्थात् श्रीकृष्णार्जुनके संवादकू संजयने धृतराष्ट्रसे निरूपण किया है ॥ १ ॥

मू० संजयउवाच ॥ दृष्ट्वातुपांडवानीकंव्यूढंदुर्योधनस्तदा ॥ आचार्यमुपसंगम्यराजावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजयः १ उवाच २ अ० संजय १ बोला २ अर्थात् धृतराष्ट्रसे. तदा १ राजा २ दुर्योधनः ३ व्यूढम् ४ पांडवानीकम् ५ दृष्ट्वा ६ तु ७ आचार्यम् ८ उपसंगम्य ९ वचनम् १० अब्रवीत् ११ ॥ २ ॥ अ० सि० जिस कालमें दोनों सेना सजकर युद्धकेलिये आमनेसामने खडी हुई ❋ तिसकालमें १ राजा २ दुर्योधन ३ सि० चक्रकमलाकारादि ❋ रचीहुई ४ पांडवोंकी सेनाकू ५ देखकर ६ फिर ७ गुरुके पास जाकर ९ सि० यह ❋ वचन १० बोला ११ सि० कि जो आगे नवश्लोकोंमें अर्थ है ❋ टी० द्रोणाचार्य शस्त्रविद्याके गुरू हैं ८ तात्पर्य दुर्योधन पांडवनके सेनाकू भलेप्रकार सजीहुई देखकर मनमें डरा और यह जानाकि जहां यह रचना है तो फिर ये कैसे जीते जावेंगे. जो हमारे गुरू इससे सिवाय रचना रचें तब भलाईकी बात है. इसवास्ते राजा गुरूकेपास जाकर बोला. ॥ २ ॥

मू० पश्यैतांपांडुपुत्राणामाचार्यमहतींचमूं ॥
व्यूढांद्रुपदपुत्रेणतवशिष्येणधीमता ॥ ३ ॥

आचार्य १ पांडुपुत्राणाम् २ एताम् ३ महतीम् ४ चमूम् ५ पश्य ६ धीमता ७ तव ८ शिष्येण ९ द्रुपदपुत्रेण १० व्यूढाम् ११ ॥ ३ ॥

अ० हेगुरो १ पांडवनके २ इस ३ बडी४सेनाकू ५ देखो६ बुद्धिमान् ७ आपके ८ शिष्य ९ द्रुपदकेपुत्रने १० रचीहै. ११ तात्पर्य आपका शिष्यहोकर आपका सामना करता है यह देखिये. ॥ ३ ॥ उ० और इस सेनामें जो शूरवीर हैं उनकू भी देखलीजिये. क्योंकि यथायोग्य जोडीके साथ लडाना चाहिये.

मू० अत्रशूरामहेष्वासाभीमार्जुनसमायुधि ॥
युयुधानोविराटश्चद्रुपदश्चमहारथः ॥ ४ ॥

अत्र १ शूराः २ महेष्वासाः ३ युधि ४ भीमार्जुनसमाः ५ युयुधानः ६ विराटः ७ च ८ द्रुपदः ९ च १० महारथः ११४ अ०इसमें अर्थात् इस सेनामें १ सि० जो ❋शूर २सि० हैं ❋ बडेबडे धनुष हैं जिनके ३ युद्धमें ४ भीमार्जुनके बराबर ५ सि० नाम उनके यह हैं ❋युयुधान ६ और विराट ७।८और द्रुपद ९।१० सि०महारथ यह सबका विशेषणहै. कैसेहैं ये ❋महारथ११ सि०असंख्यात शस्त्रधारियोंसे जो युद्ध करे और अस्त्रशस्त्रविद्यामें चतुरहो उसकू अतिरथ कहते हैं. और दशसहस्रसे जो अकेला युद्धकरे उसकू महारथ कहते हैं. और जो एकसे एक लडे उसकू रथी कहते हैं. इससे कमकू अर्द्धरथीकहते हैं. ११ ॥ ४ ॥

मू०धृष्टकेतुश्चेकितानःकाशिराजश्चवीर्यवान् ॥
पुरुजितकुन्तिभोजश्चशैब्यश्चनरपुंगवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतुः १ चेकितानः २ काशिराजः ३ च ४ वीर्यवान् ५पुरुजित् ६ कुंतिभोजः ७ च ८ शैब्यः ९ च १० नरपुंगवः ११ ॥ ५ ॥ अ० धृष्टकेतु १ चेकितान २ और काशिका राजा ३ । ४ सि० कैसे हैं ये ❋बलवान् ५ सि० यह सबका विशेषण है ❋पुरुजित् ६ और कुंतिभोज ७।८ और शैब्य ९।१० सि० कैसे हैं ये ❋पुरुषोंमें उत्तम ११ सि० यह तीनोंका विशेषणहै ❋ ११ ॥ ५ ॥

मू० युधामन्युश्चविक्रान्तउत्तमौजाश्चवीर्य्यवान् ॥
सौभद्रोद्रौपदेयाश्चसर्वएवमहारथाः ॥ ६ ॥

युधामन्युः १ च २ विक्रांतः ३ उत्तमौजाः ४ च ५ वीर्यवान् ६ सौभद्रः ७ द्रौपदेयाः ८ च ९ सर्वे १० एव ११ महारथाः १२ ॥६॥ अ० युधामन्यु १ पू० २ सि० कैसा है यह ❋ तेजस्वी सुन्दर३और उत्तमौजा ४।५ बलवान् ६ अभिमन्यु ७ और द्रौपदीके पांचों पुत्र ८।९ सि० ये ❋ सब १० ही ११ महारथ १२ सि० हैं ❋ ॥ ६ ॥

मू० अस्माकंतुविशिष्टायेतान्निबोधद्विजोत्तम ॥
नायकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थंतान्ब्रवीमिते ॥ ७ ॥

द्विजोत्तम १ अस्माकम् २ ये ३ विशिष्टाः ४ मम ५ सैन्यस्य ६ नायकाः ७ तान् ८ तु ९ निबोध १० ते ११ संज्ञार्थम् १२ तान् १३ ब्रवीमि १४॥७॥ अ० हे ब्राह्मणोंमें उत्तम १ हमारे २ सि० सेना-में ❋ जो ३ श्रेष्ठ ४ सि० हैं. और ❋ मेरे ५ सेनाके ६ सि० जो ❋ सर-दार अग्रणी ७ तिनकू ८ भी ९ देखिये १० आपसे ११ भलेप्रकार जानलेनेकेलिये १२ तिनकू १३ अर्थात् तिनके नाम कहता हूं मैं. टी० अगले श्लोकमें ❋ १४ तात्पर्य युद्धसे प्रथमहि भले प्रकार इन कू समझलेना चाहिये वास्ते युद्धकरनेके. ॥ ७ ॥

मू० भवान्भीष्मश्चकर्णश्चकृपश्चसमितिंजयः ॥
अश्वत्थामाविकर्णश्चसौमदत्तिस्तथैवच ॥ ८ ॥

भवान् १ भीष्मः २ च ३ कर्णः ४ च ५ कृपः ६ च ७ समितिंजयः ८ अश्वत्थामा ९ विकर्णः १० च ११ सौमदत्तिः १२ तथा १३ एव १४ च १५ ॥ ८ ॥ अ० आप १ और भीष्मजी २।३ और कर्ण ४। ५ और कृ-पाचार्य ६।८ समितिंजय ८ अश्वत्थामा और विकर्ण १०।११ सौमद-त्ति १२ तैसे १३हि १४ और १५ सि० भी बहुत शूरवीर हैं ❋ ॥८॥

मू० अन्येचबाहवःशूरामदर्थेत्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

अन्ये १ च २ बहवः ३ शूराः ४ मदर्थे ५ त्यक्तजीविताः ६ नानाशस्त्रप्रहरणाः ७ सर्वे ८ युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥ अ० सि० जिनके नाम पीछे कहे उन्होंसे सिवाय ❋ और १ भी २ बहुत ३ शूर ४ सि० हैं हमारे सेनामें. जिन्होंने ❋ मेरेवास्ते ५ त्यागदीईहै आशा जीवनेकी ६ अनेक प्रकारसे शस्त्रचलावनेवाले ७ सब ८ युद्धमें चतुर ९ सि० हैं ❋ ॥ ९ ॥ उ० इस कथा कहनेसे राजादुर्योधनका जो आशयहै सो कहता है.

मू०अपर्य्याप्तंतदस्माकंबलंभीष्माभिरक्षितम् ॥ पर्य्याप्तंत्विदमेतेषांबलंभीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

तद् १ अस्माकम् २ बलम् ३ अपर्याप्तम् ४ भीष्माभिरक्षितम् ५ इदम् ६ तु ७ एतेषाम् ८ बलम् ९ पर्याप्तम् १० भीमाभिरक्षितम् ॥११॥ १०॥ अ० सि० पीछे जो कहा ❋ सो १ हमारा२बल३ सि० पांडवनके साथ लडनेकू ❋ समर्थ है वा बहुत है. ४ सि० क्योंकि ❋ भीष्मजी करके रक्षा कीयागया है ५ अर्थात् भीष्मजी हमारे बलकी रक्षा करनेवाले हैं. कैसे हैं भीष्मजी. वृद्धहोनेसे सूक्ष्म बुद्धिवाले (चतुर) हैं५ सि० और ❋ यह ६ पू०७ इनका ८ बल ९ अर्थात् पीछे जो कहा पांडवनका बल ९ सि० सो हमारे साथ लडनेकू ❋ असमर्थ है वा थोडा है. १० सि० क्योंकि संख्यामेंभी कम है. और चंचलबुद्धिवाले ❋ भीमकरके रक्षित है. ११ अथवा हमारा बल पांडवनके साथ लडनेकू असमर्थ प्रतीत होता है. क्योंकि भीष्मजी सेनापति वृद्ध हैं. और वे उभयपक्षी हैं. (दोनोंतरफ मिले हूवे हैं) भीष्मजी प्रत्यक्षतो हमारे तरफ हैं और जय पांडवनकी चाहते हैं श्रीकृष्णके प्रसन्नताकेलिये. और पांडवनका बल हमको जीतनेकू समर्थ प्रतीत होता है. क्योंकि भीम

बलवान् जवान् एकपक्षवाला सेनाका सरदार है. सिवाय इसके श्रीकृ-ष्णचन्द्र उनको सहाय करने वाले हैं. टी० ४।१० इन दोनों पदोंका अर्थ बहुत और थोडा या समर्थ और असमर्थ ऐसा दोनौं प्रकारका होसक्ताहै. जो पहले पदका अर्थ थोडा वा असमर्थ कीया जावेगा तो पीछलेपदका अर्थ बहुत वा समर्थ कीयाजावेगा और जो पहलेपदका अर्थ बहुत वा समर्थ कीयाजावेगा तो पीछलेपदका अर्थ थोडा वा असमर्थ कीया जावेगा ४।१० ॥ १० ॥

मू० अयनेषुचसर्वेषुयथाभागमवस्थिताः॥ भीष्म-मेवाभिरक्षन्तुभवन्तःसर्वएवहि ॥ ११ ॥

भवन्तः १ सर्वे २ एव ३ हि४ सर्वेषु ५ च ६ अयनेषु ७ यथाभागम् ८ अवस्थिताः ९ भीष्मम् १० एव ११ अभिरक्षन्तु १२॥११॥ अ० सि० मेरी प्रार्थना आपसे यह है कि *आप १ सब२ पू०३ हि४ सब ५ पू० ६ मूर्चोंमें ७ अपने अपने ठिकानेपर ८ खडे हूवे ९ भीष्मजीकी १० पू० ११ सब तरफसे रक्षा करते रहिये१२ तात्पर्य ऐसा न हो कोई भीष्मजीकू धोखेसे मारजावे. वेजीते रहनेसे हमारा भला है, अथवा ऐसा न हो कि भीष्मजी पांडवनसे मिलकर हमारी सेना मरवादें क्योंकि भीष्मजी दुमक्षी प्रतीत होते हैं. इसवास्ते नित्य उनकी रक्षा करते रहना. ११ उ० राजादुर्योधनकू द्रोणाचार्यजीसे बात करता हूवा देख भीष्मजीने जाना कि राजाकू हमारे तरफसे कुछ खटका प्रतीत होताहै. इसवास्ते पांडवनसे लडनेकेलिये भीष्मजीने उठकर शंख बजाया.

मू० तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवृद्धःपितामहः ॥ सिंहनादंविनद्योच्चैःशंखंदध्मौप्रतापवान् ॥ १२ ॥

कुरुवृद्धः १ प्रतापवान् २ पितामहः ३ उच्चैः ४ सिंहनादम् ५ विनद्य ६ तस्य ७ हर्षम् ८ संजनयन् ९ शंखम् १० दध्मौ ११॥१२॥ अ०

कुरूनमें बडे १ प्रतापवाले २ भीष्मजी ३ ऊंचा ४ सिंहशब्दवत् ५ शब्द करके ६ अर्थात् बहुत हँसकर ६ तिसकू ७ अर्थात् राजाकू ७ हर्षको उत्पन्न करतेहूवे ९ अर्थात् राजाकू प्रसन्नकरनेकेलिये १० शंख ११ बजाते भये॥ १२ ॥

मू० ततःशंखाश्चभेर्य्यश्चपणवानगोमुखाः ॥ सहसैवाभ्यहन्यन्तसशब्दस्तुमुलोभवत् ॥ १३ ॥

ततः १ शंखाः २ च ३ भेर्यः ४ च ५ पणवानकगोमुखाः ६ सहसा ७ एव ८ अभ्यहन्यन्त ९ सः १० शब्दः ११ तुमुलः १२ अभवत् १३ ॥ १३ ॥ अ० पीछे उसके १ शंख २ और ३ नगारे ४ और ५ ढोल आनक गोमुख ६ एकवेर ७ ही ८ सि० राजादुर्योधनके सेनामें ❋ सवतरफसे बजते भये. ९ सो १० शब्द ११ बडा १२ होता भया. १३ तात्पर्य जिससमय प्रथम भीष्मजीने शंख बजाया पीछे उसके नानाप्रकारके बजने लगे. टी० यह बाजोंके नाम हैं ६

मू०ततः श्वेतैर्हयैर्युक्तेमहतिस्यन्दनेस्थितौ ॥ माधवःपांडवश्चैवदिव्यौशंखौप्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

ततः १ माधवः २ पांडवः ३ च ४ एव ५ दिव्यौ ६ शंखौ ७ प्रदध्मतुः ८ महति ९ स्यन्दने १० स्थितौ ११ श्वेतः १२ हयैः १३ युक्ते १४ ॥ १४ ॥ अ० उ० जब राजादुर्योधनके सेनामें शंखादि बाजे बजे. पीछे उसके १ सि०राजायुधिष्ठिरके सेनामें प्रथम ❋ श्रीकृष्ण चन्द्रमहाराज २ और अर्जुन ३ । ४ भी ५ दिव्य (अलौकिक) ६ शंखोंकू ७ बजाते भये ८ सि० कैसे हैं अर्जुन और श्रीमहाराज कि एक ❋ बडे ९ रथमें १० सवार है. ११ सि० कैसा है वो रथ ❋ श्वेत १२ घोडोंकरके १३ युक्त १४ सि० है. अर्थात् श्वेतघोडे उसरथमें जुडे हूवे हैं ❋ १४ ॥

मू० पांचजन्यंहृषीकेशोदेवदत्तंधनंजयः ॥
पौंड्रंदध्मौमहाशंखंभीमकर्मावृकोदरः ॥ १५ ॥

हृषीकेशः१ पांचजन्यम् २ धनंजयः ३ देवदत्तम् ४ वृकोदरः ५ भीमकर्मा ६ पौंड्रम् ७ महाशंखम् ८ दध्मौ ९ ॥ १५ ॥ अ०उ० जिनशंखोंको माधवादीने बजाया उनके नाम कहते हैं. इन्द्रियोंके-स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज १ पांचजन्यनामवाले २ सि० शंखकू बजाते भये ❀ अर्जुन ३ देवदत्तनामवाले ४ सि० शंखकू बजाते भये ❀ भीम भयंकरकर्म है जिसका ६ सि० सो ❀ पौंड्रनाम है जि-सका ७ सि० उस ❀ महाशंखकू ८ बजाता भया. ९ तात्पर्य श्रीम-हाराजने पांचजन्यशंख बजाया अर्जुनने देवदत्त शंख बजाया भीमने पौंड्रशंख बजाया ॥ १५ ॥

मू० अनन्तविजयंराजाकुन्तीपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥
नकुलःसहदेवश्चसुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्रः १ राजा २ युधिष्ठिरः ३ अनन्तविजयं४ नकुलः५ च ६ सहदेवः ७ सुघोषमणिपुष्पकौ ८ ॥ १६ ॥ अ०कुन्तीकेपुत्र १ राजा २ युधिष्ठिर ३ अनन्तविजयनामवाले ४ सि०शंककू बजाते भये ❀ नकुल ५ और ६ सहदेव ७ सुघोष और मणिपुष्पक शंखकू ८ सि० बजाते भये ❀ तात्पर्य राजाने अनन्तविजय शंख बजाया नकु-लने सुघोषशंख बजाया सहदेवने मणिपुष्पक शंख बजाया॥ १६ ॥

मू० काश्यश्चपरमेष्वासःशिखंडीचमहारथः ॥
धृष्टद्युम्नोविराटश्चसात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

काश्यः १ च २ परमेष्वासः ३ शिखंडी ४ च ५ महारथः ६ धृष्ट-द्युम्नः ७ विराटः ८ च ९ सात्यकिः १० च ११ अपराजितः ॥ १२ ॥ १७ ॥ अ०काशीकाराजा १ पू०२श्रेष्ठ है धनुष जिसका ३और शिखं-

डी ४ ।५महारथ ६ धृष्टद्युम्न ७ और विराट ८।९ और सात्यकी१० ११सि० कैसे हैं यह तीनों ❋अपराजित १२सि० हैं ❋टी०न जीतसके दूसरा जिसकू उसे अपराजित कहते हैं १२ तात्पर्य ये सब पृथक् पृथक् (अपना अपना) शंख बजाते भये. इस श्लोकका अन्वय आगले श्लोकके साथ है. ॥ १७॥

मू० द्रुपदोद्रौपदेयाश्चसर्वशःपृथिवीपते ॥
सौभद्रश्चमहाबाहुःशंखान्दध्मुःपृथक्पृथक् ॥ १८॥

पृथिवीपते १ द्रुपदः २ द्रौपदेयाः ३ च ४सौभद्रः ५चद्महाबाहुः ७सर्वशः ८ पृथक् ९ पृथक् १०शंखान्११दध्मुः १२॥ १८ ॥अ० उ०संजय धृतराष्ट्रसे कहता है. हे राजन् १ द्रुपद २ और द्रौपदीके पांचो पुत्र ३।४ और अभिमन्यु५।६ बडी हैं भुजा जिसकी. ७ सि० ये सब और जो पीछे कहे ❋सब तरफसे ८ पृथक् पृथक् ९। १० सि० अपने अपने ❋शंखोंकू ११ बजाते भये १२ ॥ १८॥

मू० सघोषोधार्त्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ॥
नभश्चपृथिवींचैवतुमुलोव्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

सः १ घोषः २ धार्तराष्ट्राणाम् ३ हृदयानि ४व्यदारयत् ५नभः६ च ७ पृथिवीम् ८ च ९ एव१० तुमुलः ११ व्यनुनादयन् १२॥१९॥ अ० सो १ घोष २ दुर्योधनादिके३हृदयकू ४ फाडताभया५ अर्थात् दुर्योधनादि उस शब्दकू सुनकर डरे. मारेडरके उनका हृदय कम्पनेलगा. मानो फटनेलगा५आकाश६और७ पृथिवीकू ८ व्याप्तकरके अर्थात् आकाश और पृथिवीमें६।७व्याप्तहोकरपू०९।१०बहुत११शब्दपरशब्द होता भया१२ सि० दुर्योधनादिके हृदयकू फाडता भया ❋तात्पर्य पृथिवीसे लेकर आकाशपर्यन्त वह शब्द व्याप्त होगया१९

मू० अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वाधार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः॥

प्रवृत्तेशस्त्रसम्पातेधनुरुद्यम्यपांडवः॥ २०॥
हृषीकेशंतदावाक्यमिदमाहमहीपते॥ अर्जुनउवा
च॥सेनयोरुभयोर्मध्येरथंस्थापयमेच्युत॥ २१॥

अथ १ कपिध्वजः २ धार्तराष्ट्रान् ३ व्यवस्थितान् ४ दृष्ट्वा ५ शस्त्रसम्पाते ६ प्रवृत्ते ७ पांडवः ८ धनुः ९ उद्यम्य १० ॥ २०॥ पृथिवीपते १ तदा २ हृषीकेशम् ३ इदम् ४ वाक्यम् ५ आह ६ अर्जुनउवाच अच्युत ७ मे ८ रथम् ९ उभयोः १० सेनयोः ११ मध्ये १२ स्थापय १३ ॥ २१॥ अ० उ० वीसवें श्लोकका इक्कीसवें श्लोकके साथ संवन्ध है. शंखादिका शब्द सुनकर जो व्यवस्था दुर्योधनादिकी हुई सोतो कही, और वोही शब्द सुनकर अर्जुनने जो किया सो कहता है संजय धृतराष्ट्रसे. जब दोनों तरफ बाजा वजने लगा. पीछे उसके १ अर्जुन २ दुर्योधनादिकू ३ भले प्रकार खडेहुवे ४ देखकर ५ शस्त्रोंका चलना ६ प्रवृत्तहुवा चाहता था. अर्थात् हाथियार चलाने ही चाहतेथे. उस समय ७ अर्जुन ८ धनुपकू ९ उठाकर १० अर्थात् तीरकमान दुरुस्त करके संवारिके १० टी० हनूमानजी अर्जुनके ध्वजामें रहतेथे इस व्युत्पत्तीसे अर्जुनका नाम कपिध्वज है. २ ॥ २०॥ हे राजन् धृतराष्ट्र १ सि० जिसकालमें हथियार चलनेवालेथे ❋ तिसकालमें २ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजसे ३ यह ४ वाक्य ५ वोला. ६ अर्जुनवोला हे अच्युत ७ मेरे ८ रथकू ९ दोनों १० सेनाके ११ वीचमें १२ खडा करो १३ टी० भक्तीका प्रताप देखना चाहिये कि भक्त भगवान्पर आज्ञा करते हैं और जो भक्त चाहते हैं वैसाही श्रीभगवान् करते हैं १३ ॥ २०। २१॥

मू० यावदेतान्निरीक्ष्येहंयोद्धुकामानवस्थितान्॥
कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥ २२॥

एतान् १ योद्धुकामान् २ अवस्थितान् ३ यावत् ४ अहम्

निरीक्ष्ये ६ अस्मिन् ७ रणसमुद्यमे ८ मया ९ कैः १० सह ११ योद्धव्यम् १२ ॥ २२ ॥ उ० कबतक वहां रथ खड़ा किया जावे यह शंका करके कहताहै अर्जुन कि. अ० ये जो युद्धकी कामनावाले खडे हुवे हैं इनकू १।२।३ जबतक ४ मैं ५ देखूं ६ अर्थात् यह मैं देखने चाहता हूं किं ६ इसरणके प्रारम्भसमय ७।८ मुझकू ९ किनके १० साथ ११ युद्ध करना योग्यहै. १२ तात्पर्य अर्जुनका तमाशा देखनेमें नहीं है. १२ ॥ २२ ॥

मू० योत्स्यमानानवेक्ष्येहंयएतेत्रसमागताः ॥
धार्त्तराष्ट्रस्यदुर्बुद्धेर्युद्धेप्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

योत्स्यमानान् १ अहम् २ अवेक्ष्ये ३ एते ४ ये ५ अत्र ६ युद्धे ७ समागताः ८ दुर्बुद्धेः ९ धार्तराष्ट्रस्य १० प्रियचिकीर्षवः ११ ॥२३॥ अ० सि० इन् ❋ युद्ध करनेवालोंकू १ मैं २ देखूं ३ सि० तोकि ❋ ये ४ जो ५ इसयुद्धमें ६।७ आये हैं ८ सि० कैसेहैं ये ❋ दुष्टबुद्धीवाले दुर्योधनकी ९।१० जय चाहते हैं. ११ ॥ २३ ॥

मू० संजयउवाच॥ एवमुक्तोहृषीकेशोगुडाकेशेनभारत ॥ सेनयोरुभयोर्मध्येस्थापयित्वारथोत्तमम् ॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषांचमहीक्षिताम् ॥ उवाचपार्थपश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

भारत १ गुडाकेशेन २ एवम् ३ उक्तः ४ हृषीकेशः ५ उभयोः ६ सेनयोः ७ मध्ये ८ भीष्मद्रोणप्रमुखतः ९ सर्वेषाम् १० च ११ महीक्षिताम् १२ रथोत्तमम् १३ स्थापयित्वा १४ इति १५ उवाच १६ पार्थ १७ एतान् १८ समवेतान् १९ कुरून् २० पश्य २१ ॥२४॥२५ अ० सि० इनदोनों श्लोकोंका अन्वय एक है ❋ संजय धृतराष्ट्रसे

कहता है. हेराजन् १ अर्जुनकरके २ इसप्रकार ३ कहेहुवे ४ श्रीभगवान् ५ अर्थात् अर्जुनने श्रीभगवान्से जब यह कहा कि मेरा रथ दोनों सेनाके बीचमें खडा कीजिये. यह सुनकर श्रीभगवान् ५ दोनोंसेनाके ६।७ बीचमें ८ भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने ९ और सबराजाओंके १०।११।१२ सि० सामने ❋ उत्तमरथकू १३ खडा करके १४ यह १५ बोले १६ हे अर्जुन १७ इन १८ मिले हुवे १९ कौरवोंकू २० देख २१ तात्पर्य ये सब योद्धा प्रत्यक्ष हैं इनकू तूँ देख ॥ २४ ॥ २५ ॥

मू० तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थःपितॄनथपितामहान् ॥ आचार्य्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥२६

अथ १ पार्थः २ तत्र ३ पितॄन् ४ स्थितान् ५ अपश्यत् ६ पितामहान् ७ आचार्यान् ८ मातुलान् ९ भ्रातॄन् १० पुत्रान् ११ पौत्रान् १२ सखीन् १३ तथा १४ ॥ २६ ॥ अ० सि० ढाई श्लोकतक एक अन्वय है ❋ जब श्रीभगवान्ने कहा कि अर्जुन देख इनकू पीछे उसके १ अर्जुन २ तिससेनामें ३ चाचाआदिकूं ४ सि० युद्धकेलिये ❋ खडे हुवे ५ देखता भया. ६ तात्पर्य अर्जुनने चाचाआदिकूं देखा. ६ पितामहकू ७ आचार्योंकू ८ मामाओंकू ९ भाइयोंकू १० भतीजेआदिकोंकू ११ पौत्रोंकू १२ मित्रोंकू १३ सि० जैसे चाचा आदिकोंकू देखा अर्जुनने ❋ तैसेही १४ सि० आचार्यादिकोंकू देखा ❋ छठे पदवाले क्रियाका सबकर्मोंके साथ सम्बन्ध है. ॥२६ ॥

मू० श्वशुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोरपि ॥ तान्समीक्ष्यसकौंतेयःसर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥ २७ ॥ कृपयापरयाविष्टोविषीदन्निदमब्रवीत् ॥अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेमंस्वजनंकृष्णयुयुत्सुंसमुपस्थितम् ॥ २८॥ सीदंतिममगा

त्राणिमुखंचपरिशुष्यति ॥ वेपथुश्चशरीरेमेरोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

श्वशुरान् १ सुहृदः २ च ३ एव ४ तान् ५ सर्वान् ६ बन्धून् ७ अवस्थितान् ८ समीक्ष्य ९ उभयोः १० अपि ११ सेनयोः १२ सः १३ कौंतेयः ॥ २७ ॥ परया १ कृपया २ आविष्टः ३ विषीदन् ४ इदम् ५ अब्रवीत् ६ अर्जुनः ७ उवाच ८ कृष्ण ९ इमम् १० स्वजनम् ११ युयुत्सुम् १२ समुपस्थितं १३ दृष्ट्वा १४ ॥ २८ ॥ मम १ गात्राणि २ सीदन्ति ३ मुखं ४ च ५ परिशुष्यति ६ मे ७ शरीरे ८ वेपथुः ९ च १० रोमहर्षः ११ च १२ जायते ॥ २९ ॥ अ० ससुरोंकू १ और सुहृदोंकू २।३ भी ४ सि० देखा अर्जुनने ❋ तिन ५ सब ६ सम्बन्धियोंकू ७ सि० युद्धमें मरनेकेलिये ❋ जमे हुवे ८ देखकरके ९ सि० वे सब कौनसे हैं इसअपेक्षामें यह कहते हैं कि ❋ दोनों १० ही ११ सेनाके १२ सि० संबंधियोंकू देखकरके ❋ सो १३ अर्जुन १४ ॥ २७ ॥ परमकृपाकरके १।२ युक्त ३ दुःखमें भराहुवा ४ यह ५ बोला ६ सि० जो अध्यायके समाप्ति पर्यन्त कहना है ❋ अर्जुन ७ बोलता भया ८ हे कृष्ण ९ युद्धकी इच्छा करनेवाले अपने संबंधी इनकू १०।११ १२ सि० रणमें मरनेकेलिये ❋ स्थितहुवे १३ देखकर १४ ॥ २८ ॥ मेरे १ हाथ पांव आदि अंग २ ढीले हुवे जाते हैं ३ और मुख ४।५ सूखता है ६ मेरे ७ शरीरमें ८ कम्पा ९ और १० रोमावली ११ भी १२ उत्पन्न होतीहै. १३ ॥ २९ ॥

मू० गांडीवंस्रंसतेहस्तात्त्वक्चैवपरिदह्यते ॥ नचशक्नोम्यवस्थातुंभ्रमतीवचमेमनः ॥ ३० ॥

हस्तात् १ गांडीवम् २ स्रंसते ३ त्वक् ४ च ५ एव ६ परिदह्यते ७ अवस्थातुम् ८ न ९ च १० शक्नोमि ११ मे १२ मनः १३ भ्रमति

१४ इव १५ च १६॥३०॥ अ० सि० मेरे ❃ हाथसे १ गांडीवधनुष २ गिरताहै ३ और त्वचा ४।५ भी ६ सि० मारेशोकके ❃ जलतीहै ७ सि० इसयुद्धमें ❃ खडा रहनेकू ८ नहीं समर्थहूं मैं. ९।१० ११ मेरा १२ मन १३ सि० ऐसा हो रहाहै ❃ भ्रमताहै. १४ जैसे १५ १६ सि० कोई ❃ तात्पर्य मेरे मनमें नानाप्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न होतेहैं. ॥ ३० ॥

मू० निमित्तानिचपश्यामिविपरीतानिकेशव ॥ नचश्रेयोनुपश्यामिहत्वास्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

केशव १ विपरीतानि २ निमित्तानि ३ च ४ पश्यामि ५ आहवे ६ स्वजनम् ७ हत्वा ८ न ९ च १० श्रेयः ११ अनुपश्यामि १२ ॥३१॥ अ० हेकेशव १ विपरीतशकुनोंको २।३ पू० ४ देखता हूं मैं. ५ सि० इसहेतुसे ❃ युद्धमें ६ अपने सम्बन्धियोंकू ७ मारकर ८ पीछे कल्याण नहीं देखता हूं मैं. ९।१०।११।१२ तात्पर्य अपने सम्बधियोंकू मारकर मुझकू अपना भला नहीं प्रतीत होता है. ॥ ३१ ॥

मू० नकांक्षेविजयंकृष्णनचराज्यंसुखानिच ॥ किंनोराज्येनगोविन्दकिंभोगैर्जीवितेनवा ॥ ३२ ॥

कृष्ण १ विजयं २ न ३ कांक्षे ४ राज्यं ५ सुखानि ६ च ७ न ८ च ९ गोविंद १० राज्येन ११ किं १२ वा १३ भोगैः १४ जीवितेन १५ नः १६ किं १७ ॥ ३२ ॥ अ० उ० इनकू मारकर पीछे तेरी विजय होगी, तुझकू राज मिलेगा, सुख होगा, यह भला होगा वा नहीं, यह शंका करके कहता है. हेकृष्ण १ विजय २ नहीं ३ चाहता हूं मैं ४ राज्य और सुखकू ५।६ भी ७ नहीं ८।९ सि० चाहाता हूंमैं ❃ हेभगवन् १० राज्यकरके ११ क्या १२ और १३ भोगोंकरके १४ जीवनेकरके १५ हमकू १६ क्या १७ तात्पर्य न कुछ राज

करनेमें आनन्दहै. केवल परमानन्दस्वरूप आत्माके यथार्थ जानने-मेंही परमानन्द है ऐसे समझवालेकू विवेकी कहते हैं. ॥ ३२ ॥

मू० एषामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाःसुखानिच ॥ तइ-मेऽवस्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच ॥ ३३ ॥

नः १ येषाम् २ अर्थे ३ राज्यम् ४ भोगाः ५ सुखानि ६ च ७ कांक्षितम् ८ ते ९ इमे १० युद्धे ११ प्राणान् १२ धनानि १३ च १४ त्यक्त्वा १५ अवस्थिताः १६॥ ३३ ॥ अ०हमकू १ जिनके २ वास्ते ३ राज्य ४ भोग ५ सुखभी ६।७ इच्छितहै ८ अर्थात् जिनके वास्ते राज्य भोग सुख हम चाहते हैं ८ वे ९ सि० ही ❋ये १० युद्धमें ११ प्राणोंकू १२ और धनकू १३।१४ त्यागकर १५ खडेहैं. १६ अर्थात् प्राण और धनकी आशा त्यागकर वा प्राण और धन त्यागनेके लिये खडे हैं. १६ ॥ ३३ ॥

मू० आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैवचपितामहाः ॥ मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसम्बन्धिनस्तथा ३४॥

आचार्याः १ पितरः २ पुत्राः ३ तथा ४ एव ५ च ६ पितामहाः ७ मातुलाः ८ श्वशुराः ९ पौत्राः १० श्यालाः ११ तथा १२ सम्बंधिनः १३ अ० उ० वे येहैं. गुरु १ चाचाआदि २ भतीजेआदि ३ पू० ४।५।६ पितामह ७ मामा ८ श्वशुर ९ पौत्र १० साले ११ सि० जैसे ये हैं ❋तैसेही १२ सिं० और❋सम्बंधि १३ सि० हैं. ॥ ३४ ॥

मू० एतान्नहंतुमिच्छामिघ्नतोऽपिमधुसूदन ॥ अपित्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंनुमहीकृते ॥ ३५ ॥

एतान् १ घ्नतः २ अपि ३ न ४ हन्तुम् ५ इच्छामि ६ मधुसूदन ७ त्रैलोक्यराज्यस्य ८ हेतोः ९ अपि १० किम् ११ नु १२ महीकृते १३॥३५॥ अ० इन मारनेवालोंकूभी १।२।३ नहीं ४ मारनेकी ५

इच्छा करता हूं मैं. ६ अर्थात् मैं यह जानता हूं कि ये दुर्योधनादि हमकूं मारेंगे तोभी इनकू मारनेकी हमकू इच्छा नहीं. हेकृष्णचन्द्र ७ त्रैलोक्यराज्यके ८ हेतुसे ९ भी १० अर्थात् जो इनके मारनेमें मुझको तीनों लोकोंका राज्य मिले तोभी इनकू नहीं मारूंगा, क्या ११ फिर १२ पृथिवीके प्राप्तिकेलिये १२ सि० मारूं ❋॥ ३५ ॥

मू० निहत्यधार्त्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

जनार्दन १ धार्तराष्ट्रान् २ निहत्य ३ नः ४ का ५ प्रीतिः ६ स्यात् ७ एतान् ८ आततायिनः ९ हत्वा १० अस्मान् ११ पापम् १२ एव १३ आश्रयेत् १४ ॥ ३६ ॥ अ० हेजनार्दन १ दुर्योधनादिकू २ मारकर ३ हमकू ४ क्या ५ सुख ६ होगा. ७ अर्थात् किंचिन्मात्रभी सुख न होगा ७ सि० प्रत्युत ❋ इन आततायियोंकू ८।९ मारकर १० हमकू ११ पापही १२।१३ आश्रय है. १४ अर्थात् उलटा हमकू पापही लगेगा. १४ टी० अग्नीका देनेवाला, विष खिलानेवाला, शस्त्र हाथमें लेकर मारनेके वास्ते जो आवे, धनका हरनेवाला, खेतमकानादिका हरनेवाला, स्त्रीका हरनेवाला, ये छः आततायी कहलाते हैं दुर्योधनादिमें ये सब दोष थे. नीतिशास्त्रमें लिखा है कि जो आततायी सामने आजावे तो सामर्थ्यवान् विना विचार आततायीकू मार डाले. मारनेवालेकू दोष नहीं. परन्तु इसवाक्यसे विशेषवाक्य धर्मशास्त्रका यह है कि सदोषकूभी नहीं मारना. प्रत्युत वाणीसेभी उसकू दुःख न देना. न मनमें उसका बुरा करनेका संकल्प करना. यही आशय अर्जुनका है. ९॥ ३६॥

मू० तस्मान्नार्हावयंहंतुंधार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ॥ स्वजनंहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव ॥ ३७॥

तस्मात् १ स्वबान्धवान् २ धार्तराष्ट्रान् ३ हन्तुम् ४ वयम् ५ न ६

अहो: ७ माधव ८ स्वजनम् ९ हि १० हत्वा ११ कथम् १२ सुखिनः १३ स्याम १४ ॥३७॥ अ० उ० किसी जीवमात्रकूभी मारना अयोग्य है. और यह तो दुर्योधनादि हमारे सम्बन्धी हैं. तिसकारणसे १ अपने संबंधीदुर्योधनादिकोंको २।३ मारनेकेवास्ते ४ हम ५ नहीं योग्यहैं ६। ७ अर्थात् इस योग्य हम नहीं कि अपनेही संबंधियोंकू मारें. ७ हे कृष्ण चन्द्र ८ अपने संबंधियोंको ९ ही १० मारकर ११ किसप्रकार १२ सुखी १३ होंगे. १४ अर्थात् अपने संबंधियोंकू मारकर हमकू किसी प्रकारभी सुख न होगा १४ ॥३७॥

मू० यद्यप्येतेनपश्यन्तिलोभोपहतचेतसः॥कुलक्षयकृतंदोषंमित्रद्रोहेचपातकम् ॥३८॥ कथंनज्ञेयमस्माभि पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ॥ कुलक्षयकृतंदोषंप्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

यद्यपि १ एते २ कुलक्षयकृतम् ३ दोषम् ४ मित्रद्रोहे ५ च ६ पातकम् ७ न ८ पश्यंति ९ लोभोपहतचेतसां १० ॥३८॥ जनार्दन १ कुलक्षयकृतम् २ दोषम् ३ प्रपश्यद्भिः ४ अस्माभिः ५ अस्मात् ६ पापात् ७ निवर्तितुम् ८ कथम् ९ न १० ज्ञेयम् ११ ॥ ३९ ॥ अ० उ० जिसपापका तूं विचार करता है यह ज्ञान दुर्योधनादिकूभी है वा नहीं यह शंका करके कहता है. यद्यपि १ ये २ सि० दुर्योधनादि * कुलके क्षय करनेमें नाश करनेमें जो दोष है उसकू ३.४ और मित्रके द्रोहमें जो पातक है उसकू ५।६।७ नहीं ८ देखते हैं ९ सि० क्योंकि * लोभ करके मैला हो गया है अन्तःकरण जिनका. १० तात्पर्य दुर्योधनादिका अन्तःकरण लोभ करके मैला हो गया है. इसहेतुसे वे इन दोनों पातकोंकू नहीं समझते हैं. सो वे यद्यपि नहीं समझते हैं तो मत समझो ॥३८॥ सि० परन्तु * हे कृष्णचन्द्र १ कुलक्षयकृतदोषके २।३ देखनेवाले हमने ४।५ इस पापसे ६।७ निवृत्त होनेकू ८ किसप्रकार

९ नहीं १० जाननेको योग्य है. ११ तात्पर्य कुलके नाश करनेमें और मित्रके द्रोहमें जो दोष है उसकू हम आपकी कृपासे ज्ञानचक्षुकरके देखते समझते हैं. हेभगवन् देख समझकरभी इसपापसे हम क्यों न बचें. अर्थात् इसपापसे निवृत्त होना चाहिये यह हमकू जानना योग्य है. ॥ ३९ ॥

मू० कुलक्षयेप्रणश्यन्तिकुलधर्माःसनातनाः ॥
धर्मेनष्टेकुलंकृत्स्नमधर्मोभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलक्षये १ सनातनाः २ कुलधर्माः ३ प्रणश्यन्ति ४ धर्मे ५ नष्टे ६ कृत्स्नम् ७ कुलम् ८ अधर्मः ९ अभिभवति १० उत ११ ॥ ४० ॥ अ० कुलके नाशहोनेमें १ सनातन कुलके धर्म २।३ नाश हो जाते हैं ४ धर्मनाश होनेमें ५।६ समस्तकुल ७।८ अधर्मी ९ हो जाता है. १० पू० ११ ॥ ४० ॥

मू० अधर्माभिभवात्कृष्णप्रदुष्यन्तिकुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषुदुष्टासुवार्ष्णेयजायतेवर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

कृष्ण १ अधर्माभिभवात् २ कुलस्त्रियः ३ प्रदुष्यन्ति ४ वार्ष्णेय ५ दुष्टासु ६ स्त्रीषु ७ वर्णसंकरः ८ जायते ९ ॥ ४१ ॥ अ० हेकृष्णचन्द्र १ अधर्मके बढनेसे २ कुलकी स्त्री ३ भ्रष्ट होजाती हैं. ४ हे भगवन् ५ स्त्री दुष्ट (भ्रष्ट) होनेसे ६।७ वर्णसंकर ८ उत्पन्न होता है. ९ टी० वृष्णिवंशमें जो उत्पन्न हो उसकूं वार्ष्णेय कहते हैं. यह नाम श्रीकृष्णभगवान्का है. ॥ ५ ॥ ४१ ॥

मू० संकरोनरकायैवकुलघ्नानांकुलस्यच ॥
पतन्तिपितरोह्येषांलुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

कुलघ्नानाम् १ कुलस्य २ च ३ संकरः ४ नरकाय ५ एव ६ एषाम् ७ पितरः ८ हि ९ पतन्ति १० लुप्तपिंडोदकक्रियाः ११ ॥ ४२ ॥ अ० कुलनाशकरनेवालोंके १ कुलका २ वर्णसंकर ३ भी ४ नरकके

वास्ते ५ ही ६ सि०है. और॥ इनके ७ अर्थात् कुलघ्नोंके ७ पितर ८ भी ९ पतित हो जातेहैं. १० अर्थात् स्वर्गसे वे भी नरकमें गिर पडते हैं. १० सि० क्योंकि॥ लोप होगईहै पिंड और जलकी क्रिया जिनकी ११ अर्थात् न कोई उनको जलदाता रहताहै न पिंड देनेवाला. वर्णसंकर (स्त्री भ्रष्टहुवेबाद जो प्रजा होती है सो) आपभी नरकमें जाता है. और जिसकुलमें उत्पन्न होता है वो कुलभी नरकमें जाता है. ११ ॥ ४२ ॥

मू० दोषैरेतैःकुलघ्नानांवर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंतेजातिधर्माः कुलधर्माश्चशाश्वताः ॥ ४३ ॥

वर्णसंकरकारकैः १ एतैः २ दोषैः ३ कुलघ्नानाम् ४ शाश्वताः ५ जातिधर्माः ६ कुलधर्माः ७ च ८ उत्साद्यंते ९ ॥ ४३॥ अ० वर्णसंकर करनेवाले इन दोषोंने १।२।३ अर्थात् कुलका नाश करना मित्रोंसे कपट करना आदि जो दोष हैं इनदोषोनें ३ कुलघ्नोंके ४ सनातन ५ कुलधर्म ६ और जातिधर्म ७।८ लोप किये हैं. ९ तात्पर्य यही दोष जातिधर्म और कुलधर्मोंका लोप करते हैं. ॥ ९ ॥ ४३ ॥

मू० उत्सन्नकुलधर्माणांमनुष्याणांजनार्दन ॥
नरकेनियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

जनार्दन १ उत्सन्नकुलधर्माणाम् २ मनुष्याणाम् ३ नरके ४ नियतम् ५ वासः ६ भवति ७ इति ८ अनुशुश्रुम ९ ॥ ४४ ॥ अ० हेजनार्दन १ लोप हो जाते हैं कुलके धर्म जिनके २ सि० ऐसे॥ पुरुषोंका ३ नरकमें ४ सदा ५ वास ६ होताहै. ७ यह ८ पीछे सुनते रहे हैं हम ९ सि० पुराणादिमें॥ ॥४४॥

मू० अहोबतमहत्पापंकर्तुंव्यवसितावयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेनहंतुंस्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहोबत १ वयम् २ महत्पापम् ३ कर्तुम् ४ व्यवसिताः ५ यद् ६ राज्यसुखलोभेन ७ स्वजनम् ८ हन्तुम् ९ उद्यताः १० ॥ ४५ ॥ अ० उ० सन्ताप करनेसेभी पाप दूर हो जाता है, जो आगेकू पाप न करनेका नियम करे यह समझकर अर्जुन सन्ताप करता है. अर्जुनने अपने सम्बान्धियोंके साथ युद्ध करनेका जो मनोराज्य किया इसकूभी पाप समझा. बडेकष्टकी बात है. ऐसीजगे अहोबत बोला करतेहैं. अर्जुन कहता है कि. अहोबत १ हम २ बडापापकरनेकू ३।४ निश्चितहुवे. ५ अर्थात् हमने बडा पाप करनेका निश्चय किया ५ जो ६ राज्यसुखका लोभ करके ७ अपने सम्बन्धियोंको मारनेकू ८।९ उद्यत हुवे. १० तात्पर्य अपने सम्बान्धियोंको मारनेके लिये हमने यत्न किया १० ॥ ४५ ॥

मू० यदिमामप्रतीकारमशस्त्रंशस्त्रपाणयः ॥
धार्त्तराष्ट्रारणेहन्युस्तन्मेक्षेमतरंभवेत् ॥ ४६ ॥

शस्त्रपाणयः १ धार्तराष्ट्राः २ यदि ३ माम् ४ अप्रतीकारम् ५ अशस्त्रम् ६ रणे ७ हन्युः ८ तत् ९ मे १० क्षेमतरम् ११ भवेत् १२ ॥४६॥ अ० उ० प्राणधारीकू प्राणसेभी श्रेष्ठ परमधर्म अहिंसा है, यही समझकर अर्जुन कहता है. शस्त्र हैं हाथमें जिनके १ सि० ऐसे ❋ दुर्योधनादि २ जो ३ मुझ अप्रतीकार अशस्त्रकू ४।५।६ रणमें ७ मारें ८ तो ९ मेरा १० बहुत भला ११ हो १२ टी० जो अपने साथ बुराई करे उसके साथ बुराई न करे उसकू अप्रतीकार कहते हैं. ५ धनुषादिशस्त्र अर्जुनने उस समय हाथमेंसे रख दियेथे इसहेतुसे अर्जुनने आपने आपकू अशस्त्र कहा ६॥ ४६ ॥

मू० संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वार्जुनःसंख्येरथोपस्थउपाविशत् ॥ विसृज्यसशरंचापंशोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

अ० संजयः १ उवाच २ अर्जुनः ३ संख्ये ४ एवम् ५ उक्त्वा ६ सशरम् ७ चापम् ८ विसृज्य ९ रथोपस्थे १० उपाविशत् ११ शोकसंविग्नमानसः १२ ॥४७॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै १।२ सि० हेराजन् ❀ अर्जुन ३ रणमें ४ इसप्रकार ५ कहकर ६ साहित शरके ७ धनुषकू ८ विसर्जन करके ९ अर्थात् कमानका चिल्ला उतार और तीर तरकशमें रखकर ९ रथके पीछले भागमें १० बैठ गया, ११ शोकमें डूब गया है मन जिसका १२ तात्पर्य अर्जुनकू उससमय अत्यन्त शोक मोह हुवा ॥ ४७ ॥

इतिश्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयाध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

मू० संजयउवाच॥तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥ विषीदन्तमिदंवाक्यमुवाचमधुसूदनः॥ १ ॥

मधुसूदनः १ तम् २ इदम् ३ वाक्यम् ९ उवाच ५ तथा ६ कृपया ७ आविष्टम् ८ अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ७ विषीदन्तम् १० ॥ १ ॥ उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि हेराजन् अ० श्रीभगवान् १ तिस २ सि० अर्जुनसे ❀ यह ३ वाक्य ४ बोलते भये. ५ सि० कैसाहै वो अर्जुन ❀ तिसप्रकार ६ कृपाकरके ७ युक्तहै. ८ अर्थात् जो गति अर्जुनकी पीछले अध्यायमें कही. और आंसूकरके पूर्ण और व्याकुल हो रहे हैं नेत्र जिसके. ९ अर्थात् अर्जुनके नेत्रोंमें आंसू भर गये. १० और विषादको प्राप्त हो रहा है. १० ॥ १५ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच॥कुतस्त्वाकश्मलमिदंविषमेसमुपस्थितम्॥अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।२।

अर्जुन १ त्वा २ इदम् ३ कश्मलम् ४ विषमे ५ कुतः ६ समुप-

स्थितम् ७ अनार्यजुष्टम् ८ अस्वर्ग्यम् ९ अकीर्तिकरं १० ॥२॥ अ० हेअर्जुन १ तुमको २ यह ३ कायरपना ४ रणमें ५ कहांसे ६ प्राप्त हुवा ७ सि० कैसाहै यह कायरपना ❀ नहीं हैं श्रेष्ठ जो जन उनकरके सेवन करनेके योग्य है. ८ अर्थात् तूं तो उत्तम श्रेष्ठ है. यह तेरे योग्य नहीं अश्रेष्ठोंके योग्य है. फिर कैसाहै यह कायरपना. सि० कि ❀ स्वर्गको प्राप्त करनेवाला नहीं. सि० प्रत्युत ❀ अयश करनेवाला है. १० ॥ २ ॥

मू० क्लैब्यंमास्मगमःपार्थनैतत्त्वय्युपपद्यते ॥
क्षुद्रंहृदयदौर्बल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप ॥ ३ ॥

पार्थ १ क्लैब्यम् २ मास्मगमः ३ एतत् ४ त्वयि ५ न ६ उपपद्यते ७ परंतप ८ क्षुद्रम् ९ हृदयदौर्बल्यम् १० त्यक्त्वा ११ उत्तिष्ठ १२ ॥ ३ ॥ अ० हेअर्जुन १ नपुंसकपनेको २ मत प्राप्त हो ३ यह ४ तुझमें ५ नहीं ६ शोभा पाता है. ७ हेपरंतप अर्जुन ८ नीचताको ९ और हृदयके दुर्बलताको १० त्याग कर ११ सि० युद्धके लिये ❀ खडा हो. १२ ॥ ३ ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ कथंभीष्ममहंसंख्येद्रोणंचमधुसूदन ॥ इषुभिःप्रतियोत्स्यामिपूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

मधुसूदन १ संख्ये २ द्रोणम् ३ च ४ भीष्मम् ५ प्रति ६ इषुभिः ७ अहम् ८ कथं ९ योत्स्यामि १० अरिसूदन ११ पूजार्हौ १२ ॥४॥ अ० उ० नंपुसकपनेसे मैं युद्ध नहीं करता हूं यह न समझिये. किंतु मुझको युद्ध करनेमें अन्याय प्रतीत होता है, यह प्रकट करता है अर्जुन. हे मधुसूदन १ रणमें २ द्रोणाचार्य ३ और ४ भीष्मपितामहके ५ प्रति ६ अर्थात् द्रोणाचार्य और भीष्मजीके साथ ६ बाणोंकरके ७ कैसे ८ युद्ध करूं ९ हे वैरियोंको मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र १० सि० भीष्म और द्रोणाचार्य ये दोनों ❀ पूजा करनेके योग्य हैं. ११ तात्प-

र्य जिनपर फूल चढाना योग्यहैं उनके साथ लडना यह वाणीसे कहनाभी अयोग्यहै. फिर तीरोंसे उनके साथ कैसे लडना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥

मू० गुरूनहत्वाहिमहानुभावाञ्छ्रेयोभोक्तुंभैक्ष्यमपीहलोके ॥ हत्वार्थकामांस्तुगुरूनिहैवभुंजीयभोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

महानुभावान् १ गुरून् २ अहत्वा ३ हि ४ भैक्ष्यं ५ अपि ६ भोक्तुं ७ श्रेयः ८ इह ९ लोके १० अर्थकामान् ११ गुरून् १२ हत्वा १३ तु १४ इह १५ एव १६ रुधिरप्रदिग्धान् १७ भोगान् १८ भुंजीय ॥ १९ ॥ ५ अ० बडा प्रभाव है जिनका १ सि० ऐसे *गुरूको २ न मारके ३ हि ३ भिक्षाका अन्न ५ भी ६ भोगना ७ श्रेष्ठ है इसलोकमें. ९।१० अर्थात् यही बात श्रेष्ठ है कि गुरूको कभी न मारना गुरूके न मारनेसे भीख माँगकर खाना श्रेष्ठ है. और अर्थके कामनावाले ११ गुरूको १२ मारके १३ तो १४ इसलोकमें १५ ही १६ रुधिर (रक्त)के सनेहूवे भोगोंकू १७।१८ हम भोगोंगे. १९ तात्पर्य वे भोग हमकू नरक प्राप्त करें गे १९ टी० अर्थकामान् यह भोगोंका भी विशेषण हो सक्ता है. ॥ ५ ॥

मू० नचैतद्विद्मः कतरन्नोगरीयोयद्वाजयेमयदिवा नोजययुः ॥ यानेवहत्वानाजिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखेधार्त्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

नः १ कतरत् २ गरीयः ३ एतत् ४ न च ६ विद्मः ७ यद्वा ८ जयेम ९ यदि १० वा ११ नो १२ जयेयुः १३ यान् १४ हत्वा १५ न १६ जिजीविषामः १७ ते १८ एव १९ धार्तराष्ट्राः २० प्रमुखे २१ अवस्थिताः २२ ॥ ६ ॥ अ० उ० पीछे बहुतजगे और इस अध्यायमें भी इसके पीछले श्लोकमें अर्जुनकू विपर्यय हुवा सो स्पष्ट प्रतीत हो-

ता है. और इसछठे श्लोकमें संशय और इससे अगले आठवें श्लोकमें अज्ञान स्पष्ट प्रतीत होता है. अज्ञान, संशय, और विपर्यय ये तीनों ब्रह्मज्ञानसे जाते हैं. ब्रह्मविद्याश्रवण करनेसे अज्ञान, मननकरनेसे संशय, और निदिध्यासनकरनेसे विपर्ययका नाश होता है. अर्जुन कहता है हेभगवन्. हमकू १ सि० भिक्षाका अन्न श्रेष्ठ है वा गुरुआदिकूं मारकर राज्यभोगना श्रेष्ठ है इनदोनोंमें ❋ क्या २ श्रेष्ठ है. ३यह ४ नहीं ५।६ जानतेहैं हम ७ सि०और जो इनके साथ हम लडें भी, तोभी हमकू यह संशय है कि ❋ यद्वा८ सि० उनकू ❋हम जीतेंगे ९ यदिवा १०।११ हमकू १२ वे जीतेंगे १३ सि० और जो हम उनकू जीत भी लेंगे तो भी वो हमारी जीत किसी कामकी नही क्योंकि ❋जिनकू १४ मारके १५ नहीं १६ जीना चाहते हैं हम. १७वे १८ही१९दुर्योधनादि २० सन्मुख२१सि०मरनेकू ❋खडे हैं. २२॥६

मू० कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छामित्वां धर्मसंमूढचेताः॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितंब्रूहितन्मेशिष्यस्तेहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः १ धर्मसम्मूढचेताः २ त्वां ३ पृच्छामि ४ मे ५ यत् ६ निश्चितम् ७ श्रेयः ८ स्यात् ९ तत् १० ब्रूहि ११ अहम् १२ ते १३ शिष्यः १४ त्वाम् १५ प्रपन्नम् १६ माम् १७ शाधि १८॥ ७॥ अ० उ० अर्जुनकू जब अत्यन्त शोक सन्ताप हुवा और कर्तव्याकर्तव्यका विचार भी जातारहा. तब फिर धीरज करके मनकू सावधान किया और यह विचार किया कि वेदोंमें महात्माओंके मुखसे मैंने यह सुनाहै कि शोकके समुद्रकू आत्माको जाननेवाला तरता है. धन, धर्म, कर्म और पुत्रादिकरके मोक्ष नहीं होताहै जीवकों. ॥ तरतिशोकमात्मवित् नकर्मणानप्रजयानधनेन त्यागेनैकेनअमृतत्वमानशुः ॥ इन श्रुतियोंका अर्थ बेसन्देह

सत्यहै. क्योंकि धर्म कर्ममें सब जानताहूं, करताहूं, धर्मका अवतार साक्षात् मेरे भाईहैं. वेदोक्तकर्मकांडके जाननेमें और अनुष्ठान करनेमें मुझको किंचित् सन्देह नहीं. और भेदोपासना (परमेश्वरके भक्तीका) फल साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे स्वामी, सखा, भाई मेरेपास है. तोभी यह मुझकू शोक है. इसी हेतूसे स्पष्ट यह प्रतीत होता है कि शोक आत्माके ज्ञानसेही नाश होता है. वोही मुझकू नहीं. यह पूर्वोक्त विचारकर अर्जुन ब्रह्मविद्या श्रवणकरनेके-लिये प्रथम ब्रह्मविद्यामें अपना अधिकार प्रकट करताहै दो श्लोकोंमें अर्थात् ब्रह्मविद्याके अधिकारीका लक्षण कहताहै. दीनतारूपदोष-करके दूषित होगया है स्वभाव जिसका १ अर्थात् जो आत्माकू नहीं जानता है उसकू कृपण कहते हैं. कृपणता, कृपणपना, दीनता इन सब पदोंका एकही अर्थ है. ॥ योवाएतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैतिसकृपणः ॥ यह बृहदारण्यउपनिषद्श्रुति है. तात्पर्यार्थ इसका यह हैकि जो विनाआत्मज्ञानके मरजाताहै वो कृपण दीनहै. इसपदमें अर्जुनका तात्पर्य यही है कि मैंभी अव-तक कृपण अज्ञानी हूं १ सि० और ❋ ब्रह्ममें संमूढ है चित्त जिसका २ सि० सोमैं ❋ आपसे ३ बुझताहूं ४ मुझकू ५ जो ६ निश्चितश्रेय ७ । ८ हो ९ सो १० कहो. ११ सि० शिष्य वा पुत्रसे सिवाय और किसीसे ब्रह्मज्ञान नहीं कहना. यह शंका करके कहता है कि ❋ मैं १२ आपका १३ शिष्य १४ सि० हूं. वाणी करके अनन्यगुरुभक्तकू गुरूने ज्ञान सुनानायोग्य है यहशंका करके कहता है कि ❋ आपको शरणागत १५ । १६ सि० हूं मैं आपही मेरी रक्षा करनेवाले हैं. सबप्रकार मुझकू आपकाही आश्रय है. आप ❋ मुझकू १७ उपदेश कीजिये. १८ टी० जो धारण कि-याजावे उसकू धर्म कहते हैं. धारयतीति धर्मः इस व्युत्पत्तीसे धर्मभी एक ब्रह्मका नाम है. वेदोक्तधर्मकू तो अर्जुन भलेप्रकार जान

उस धर्ममें अपनेकू मूढ क्यों कहता. २ एक अनित्यश्रेय होता है. जैसे ब्राह्मणादि आशीर्वाद दियाकरते हैं तुह्मारा श्रेय (कल्याण) भला हो. ऐसे श्रेयकू मैं नहीं बूझता हूं. किं तु जो निश्चय सदा वनारहै. तात्पर्य मेरा मोक्षसे है. परमश्रेय मोक्षकूही कहते हैं. जिसकों दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति नित्य कहते हैं उसका साधन मुख्य साक्षात् मुझसे कहो यह मेरा तात्पर्य है ७। ८॥ ७॥

मू०नहिप्रपश्यामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम्॥अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धंराज्यंसुराणामपिचाधिपत्यम्॥ ८॥

भूमौ १ असपत्नम् २ ऋद्धम् ३ राज्यम् ४ च ५ सुराणाम् ६ आधिपत्यम् ७ अपि ८ अवाप्य ९ इन्द्रियाणाम् १० उच्छोषणम् ११ यत् १२ शोकम् १३ मम १४ अपनुद्यात् १५ न १६ हि १७ प्रपश्यामि १८॥ ८॥ अ०उ०वेदोंमें यह कथाहै कि नारदजीने सनकादिकनसे यह प्रश्न कियाकि महाराज मुझकू सब विद्या सांगोपांग आती है. और जैसा उनमें कहा है वैसाही मैं अनुष्ठान करताहूं. और ब्रह्मलोकके पदार्थोंपर्यन्त सबपदार्थ मुझकू प्राप्त है. परन्तु मेरा शोक नहींगया. सनकादिमहाराजने उत्तर दिया कि आत्मविद्या तुमने नहीं पढी होगी. नारदजीने कहा कि यह तो मैंने नामभी नहीं सुना. नहीं तो मै अवश्य पढता. सनकादीने नारदजीसे यह कहा कि उसी विद्यासे शोकका नाश होता है. फिर नारदजीने ब्रह्मविद्या सनकादिकनसे ब्रह्मजिज्ञासाकरके श्रवण कीई. तब उनका शोकनाश हुवा. यही विचार करके अर्जुन कहता है इस मंत्रमें. पृथिवीमें १ सि० तो ❋ शत्रुरहित पदार्थोंके भरेहुवे राज्यकू २।३।४सि०प्राप्त होकर ❋ और ५ देवतोंके ६ आधिपत्यकू ७ भी ८ प्राप्तहोकर ९ सि० परलोकमें ❋ अर्थात् देवतोंके अधिपति (स्वामी) इन्द्र ब्रह्म

विष्णु शिवादि होकर ९ इन्द्रियोंका १० सुखानेवाला सन्तापकरनेवाला ११ जो १२ शोक १३ मेरा १४ दूर हो नाशहो १५ सि० यह बात विनाब्रह्मज्ञानके ❋ नहीं देखताहूं मैं. १६।१७।१८ सि० क्यों कि नारदजीने वैष्णवमहात्मासे वरसों अंगोंकेसहित वेद और सब विद्याशास्त्रपढे, वरसों अनुष्ठान किये, भेदभक्ति कीई, ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र विष्णुभगवान्के परम प्यारे जब उनकाही विना ब्रह्मविद्याके शोकनाश न हुवा, तो फिर मेरा कैसा होगा. इस श्लोकसे साफ प्रतीत होताहै कि शोक आत्मज्ञानसेही नाश होता है. सिवाय आत्मज्ञानसे और कोई कर्म उपासना योगादि साक्षात् मुख्य उपाय नही. भेदवादी उपासक जो यह कहते हैं कि केवल मूर्त्तिमान् विष्णु शिव राम कृष्णादि देवतोंके दर्शन करनेसे शोक दूर होजाता है. विचार करना चाहिये कि जैसा दर्शन अर्जुनकू था ऐसा तो इससमय भेदवादियोंकू स्वप्नमें भी होना कठिन है. अर्जुनका तो शोक मोहं विनाब्रह्मविद्याके गया ही नहीं, तो औरोंका विनाब्रह्मज्ञानके कैसे नाश होगा. देवतोंका दर्शनादि अन्तःकरणके शुद्धीको हेतु है. फिर ज्ञानद्वारा मोक्षका हेतु है. ॥ ८ ॥

मू० संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशंगुडाकेशःपरंतप॥नयोत्स्यइतिगोविन्दमुक्त्वातूष्णींबभूवह ॥ ९ ॥

संजयः १ उवाच २ परंतप ३ गुडाकेशः ४ हृषीकेशम् ५ एवम् ६ उक्त्वा ७ न ८ योत्स्ये ९ इति १० गोविन्दम् ११ उक्त्वा १२ तूष्णीम् १३ बभूव १४ ह १५ ॥ ९ ॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है १।२ सि० कि हे राजन् ❋ परंतप ३ अर्जुन ४ श्रीकृष्णचन्द्रसे ५ इसप्रकार ६ कहकर ७ सि० कि जैसा पीछे कहा ❋ और अभी ❋ नहीं ८ युद्ध करूंगा. ९ यह १० गोविन्दजीसे ११ कहकर १२ चुप १३ होगया १४ पू० १५ टी० निद्रा

अर्जुनके वशमें थी इस हेतूसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है. ४ इन्द्रियोंके स्वामी है श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज, इस हेतूसे हृषीकेश श्रीमहाराजका नाम है. ५ तत्त्वमस्यादि वेदोंके महावाक्योंकरकेही श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी प्राप्ति होती है, इस व्युत्पत्तीसे श्रीमहाराजका नाम गोविन्द है. ११तात्पर्य अर्जुनका यह है कि युद्धसे प्रथम ब्रह्मज्ञान मुझकू उपदेश करदीजिये. क्योंकि जो यह पूर्वोक्त अज्ञान, संशय, विपर्यय मेरा बनारहा, और मै मारागया तो मैं कृपण दीनही रहा. मुझको परमगति न होगी. विचार करना चाहियेकि अर्जुन कैसे संकोच (असावकाशके) समय ब्रह्मज्ञान श्रवणकरनेकेलिये कैसी श्रीमहाराजसे प्रार्थना करता है. मैं आपका चेला हूं आपको शरणागत हूं मुझकू उपदेश कीजिये. राज्यादि मुझकू नहीं चाहते हैं अब इस समयके लालामुन्शीसाहुकारादि कहतेहैं कि साहब शास्त्रोंको सुननेका किसको सावकाश है. यहां मरनेकोभी सावकाश नहीं. ऐसे कामियोंके पास जब यमदूत आवेंगे तब कामकी गति उनकू प्रतीत होगी. यमदूतोंसेभी यही कहना चाहीये कि अजी हमकू मरनेका सावकाश कहां है.तुमकू सूझता नहीं कि हम अपने काममें लगेहुवे हैं. जैसे गृहस्थ अतिथि अभ्यागतोंसे कह देते हैं. ९

मू० तमुवाचहृषीकेशःप्रहसन्निव भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येविषीदन्तमिदंवचः ॥१०॥

भारत १ उभयोः २ सेनयोः ३ मध्ये ४ विषीदन्तम् ५ तम् ६ प्रहसन् ७ इव ८ हृषीकेशः ९ इदम् १० वचः ११ उवाच १२ ॥ १० ॥ अ० उ० जब अर्जुन चुप होगया. पीछे फिर क्या हुवा इस अपेक्षामें संजय कहता है कि हेराजन् १ दोनोंसेनाके २।३ मध्यमें ४ अतिदुःखित तिसकू ५।६ उपहास करते हुवे ७ जैसे ८ अर्थात् जैसे किसीका उपहास कररहे हैं ऐसे ८ श्रीभगवान् ९ अ

तिदुःखित तिसके प्रति ८ अर्थात् अर्जुनसे ९ यह १० वचन ११ बोले १२ [सि०जो आगे समाप्तिपर्यन्त कहना है ❋ टी० विनाब्रह्मज्ञानके बडे बडे लोगोंका उपहास होता है. अर्जुनका उपहास श्रीमहाराजने किया तो इसमें क्या आश्चर्य है ६।७ इतिहास. एक समय बडेबडे ब्रह्मज्ञानी और भेदवादीभक्तभी श्रीरामचन्द्रजीमहाराजके पास बैठेथे हनूमानजी सेवामेंथे श्रीमहाराजने अपने सेवाभक्तीका माहात्म्य प्रकटकरनेकेलिये हनूमानजीसे यह बूझा कि तुम कौनहो. हनूमानजीने सोचाकि जो यह कहता हूं कि आपका सेवक दास हूं तो यह सब ब्रह्मज्ञानी मुझकू अज्ञानी समझकर मेरा उपहास करेंगे. और यह समझेंगेकि इनकी सेवाभक्ति कैसी है जो अबतक आत्मज्ञान न हुवा. और जो मैं ब्रह्महूं यह कहता हूं तो यह सब भक्त यह समझेंगे कि इनकी कैसी यह भक्ति है, और श्रीमहाराजमें कैसा यह भाव है कि जो अपनेहीकू ब्रह्म कहते हैं. फिर तात्पर्य श्रीमहाराजका समझकर यह बोले हनूमानजी कि देहदृष्टी करके तो आपका दास हूं, और जीवबुद्धीकरके आपका अंश हूं. और वास्तव जो आप हैं शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप सोई मैं हूं. श्लोक देहदृष्ट्यातुदासोहंजीवबुद्ध्यात्वदंशकः॥ वस्तुतस्तुतदेवाहमितिमेनिश्चितामतिः॥ यह सुनकर सब प्रसन्न हुवे. समस्त श्रीभगवद्गीताका सारार्थ यही है. समस्तगीताशास्त्रमें इसीका विस्तारार्थ उपाय और उपेय अंगांगीवत् कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है.॥ १०॥

मू०श्रीभगवानुवाच॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे॥गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः११

श्रीभगवान् १ उवाच २ त्वम् १ अशोच्यान् २ अन्वशोचः ३ प्रज्ञावादान् ४ च ५ भाषसे ६ पंडिताः ७ गतासून् ८ अगतासून् ९ च १० न ११ अनुशोचन्ति १२॥ ११॥ अ० उ० परमकृपाकी

खान श्रीभगवान् अर्जुनकू ब्रह्मज्ञान सुनाते हैं. समस्तगीताशास्त्रमें केवल एक ज्ञाननिष्ठाकाही निरूपण है. अष्टांगयोग सांख्ययोग भेद-भक्तियोग और कर्मयोगादिका जो किसीजगे प्रसंग है वो ज्ञाननिष्ठाका अंगही श्रीमहाराजने कहा है. और जैसे श्रीरामायणमें रामचरित्रोंसे सिवाय और भी अनेक कथा हैं. परन्तु मुख्य श्रीरामजीके चरित्र हैं. इसी प्रकार इस श्रीभगवद्गीताउपनिषद्ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रमें ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है. उसीकू मैं आनन्दगिरिनामवाला श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामीमलूकगिरीजीमहाराजका अनुचर शिष्य (सेवक दास) श्रीमहाराज जो मेरे स्वामी गुरुदेव उनके चरणकमलोंको पूजनेवाला श्रीमहाराजके कृपासे निरूपण करताहूं. श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि हे अर्जुन. १।२ तू नहींशोचकरनेके योग्य जो हैं तिनके निमित्त २ सि० तो ❋ शोच करता है ३ और पंडितोंके सरीखे ४।५ शब्दोंकू बोलता है ६ अर्थात् पंडितोंके सरीखीं बातों कहता है. राजसुखभोगोंकरके हमकू क्या है इत्यादि. ६ पंडित ७ जीतिमरेहुवोंका ८।९।१० नहीं ११ शोच करते हैं. १२ टी० भीष्मद्रोणादिके निमित्त व्यवहारमें भी शोच करना वे जोग है. क्योंकि वे सदाचारी हैं. मरकर सद्गतीकू प्राप्त होंगे. और परमार्थमें भी शोचकरना न चाहिये. क्योंकि वे नित्य अविनाशीहैं. अर्थात् न वाच्यार्थमें शोच बनता है न लक्ष्यार्थमें. २ उनके बिना हम कैसे जीवेंगे इनकू कैसे सुख होगा ९ सि० यह सब अज्ञानका धर्म है. विद्वानोंको यह नहीं होता, इस हेतूसे प्रतीत होता है कि तूं ज्ञानी पंडित नहीं. दोचार बातों पंडितोंकेसी सीखकर बोलता है, अहिंसा परमधर्म है इत्यादि ❋ इतिहास एकपुरुषके दोलडके जवान् बहुत गुणवान् थेहेहुवे दैवयोगसे एकहीदिन एकही कालमें मरगये. नगरके लोग उसकू समझाने लगे. पंडितोंने अनेकश्लोक उसकू त्याग ज्ञान वैराग्यके सुनाए. और इस मंत्रका उत्तरार्ध भी सुनाया.

वो पुरुष सुनतेही इस आधे श्लोकके प्रसन्नमुख होकर उत्तरदिशाकू चला. पंडितोंने बूझा कहां जातेहो. उसने उत्तर दिया कि मैंने दुःखरूपगृहस्थाश्रमका संन्यास किया. विद्वत्संन्यासी होकर बिचरूंगा. पंडितोंने कहा कि अभी तुम्हारी तरुण अवस्था है. और तुम्हारे घरमें तीन तरुणस्त्री हैं. एक तुम्हारी दो तुम्हारे लडकोंकी और मावाप तुम्हारे वृद्ध विद्यमान हैं. दोनों लडके तुम्हारे घरमें मरेपडे हैं. क्या यही समय संन्यासका है, किंचित् तुमकू मरेजीवतोंका शोच नहीं. उसने उत्तर दिया कि जो श्लोक तुमने पढा उसका अर्थ विचारकर तुमकू भी तो अनुष्ठान करना योग्यहै. नहीं तो परउपदेशकुशल बहुतेरे ॥ जेआचरहिंतेनरनघनेरे ॥ विना अनुष्ठानके पंडिताई किसकामकी है. मरेजीवतोंका शोच उसीकू है जिसने यह मंत्र कहा है. मेरा शोच करना निष्फल है. और यह वेदकी आज्ञा है कि जिससमय वैराग्य हो उसीसमय संन्यास करे. यदहरेव विरजेत्तदहरेवप्रव्रजेत् ॥ यह कहकर उसीसमय विरक्त होगया. विचारना चाहिये कि गीताका सुनना इसकू कहते हैं, जिस श्लोकका उत्तरार्ध सुनकर यह पुरुष कृतार्थ हुवा. इसका अर्थ सबही जानते हैं कहतेहैं सुनतेहैं, परन्तु उनका कहना जानना और सुनना सब निष्फल है.क्यों कि रोटीके जानने कहने सुननेसे पेट किसीका नहीं भरताहै, खानेसेही पेट भरता है. यही आशय गीताके अर्थका है. ऐसा पुरुष कोई होगा कि सत्यसंतोषत्यागवैराग्यभक्तिशमदमादिका अर्थ और फल न जानता होगा,परन्तु सुन समझकर अनुष्ठान नहीं करतेहैं. इसी हेतूसे भटकते रहते हैं.भगवद्वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान करनेके लिये कमर बांधना चाहिये, या सोचना योग्य है. देखोतो सही. श्रीमहाराजतो अपने मुखारविन्दसे यह कहते हैं कि मरेजीवतोंका शोच नहीं करना. यह बात भलेकी है वा नहीं, शोचकरनेमें क्या बुराई है, न शोचकरनेमें क्या भलाई है, और शोच वास्तव

है या भ्रान्ति है, यह मुझमें कबसे है, इसका क्या स्वरूप है, क्या अधिष्ठान है, जीवगतहै, वा अन्तःकरणगत है, एकरस रहता है, वा घटतावढता रहता है, किस बातसे वढता है, किस साधनसे घटता है,क्या इसके समूल निवृत्तीका उपाय है,ऐसा२विचार करके समस्त गीताके अर्थका अनुष्ठान करना योग्य है. जब गीताका अर्थ जानना सुनना कहना सफल है. ॥ ११ ॥

मू० नत्वेवाहंजातुनासंनत्वंनेमेजनाधिपाः ॥
नचैवनभविष्यामःसर्वेवयमतःपरम् ॥ १२ ॥

जातु १ अहम् २ न ३ आसम् ४ न ५ तु ६ एव ७ त्वम् ८ न ९ इमे १० जनाधिपाः ११ न १२ अतः १३ परम् १४ वयम् १५ सर्वे १६ न १७ भविष्यामः १८ न १९ च २० एव २१॥१२॥अ० उ० आत्मा नित्य है,इसहेतूसे शोच करना न चाहिये. आत्माकू अद्वैत नित्य सिद्ध करते हुवे शोच न करनेमें हेतु कहते हैं. पीछे क्या कभी १ मैं २ नहीं ३ होताभया ४सि० यह ❋ नहीं५ पू० ६।७ अर्थात् पीछे मैंथा७सि०और❋तूं८सि० क्यापीछे ❋ नहीं९सि०था यह नहीं.अर्थात् तूं भी पीछे था.और❋ये १०राजा ११ सि०क्यापीछे ❋ नहीं १२ सि०थे.यह नहिं अर्थात् यह भी पीछे थे. तूं और मैं और ये सब राजा वर्तमानमें विद्यमान ही हैं. और ❋ इससे १३ पीछे १४अर्थात् इस स्थूलशरीरत्यागसे पीछे १४हम१५सब सि०क्या ❋ नहीं१७होंगे१८सि०यह❋नहीं१९पू०२०।२१अर्थात् तूं और मैं और ये राजा अवश्य आगेकू भी होंगे. क्यों की सच्चिदानन्दरूप आत्मा एक नित्य है. तात्पर्य तूं और ये राजा और मैं सब वास्तव एकही त्रिकालाबाध्य हैं. त्वंपदार्थकी तत्पदार्थके साथ लक्ष्यार्थ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपमें ऐक्यता जानना योग्य है. इसमंत्रमें जीवोंकू नानात्व जो प्रतीत होताहै, यह औपाधिक भेद है. वास्तव जीव ए-

कही है. अथवा समस्त श्लोकका अन्वय करके सर्वे वयम् इन दोनों शब्दोंकू हेतु करदेना. अर्थात् जीव एकही है.कुतः कियंतः सर्वे वयम्. अर्थात् तूं और मैं और ये राजा क्या आगे नहोंगे, यह नहीं. अवश्य होंगे. कुतः कियंतः सर्वे वयम् बहुवचन आदरके लिये है.अर्थात् सब जीव आत्माही है. ॥ १२ ॥

मू० देहिनोस्मिन्यथादेहेकौमारंयौवनंजरा ॥
तथादेहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्रनमुह्यति ॥ १३ ॥

देहिनः १ यथा २ अस्मिन् ३ देहे ४ कौमारम् ५ यौवनम् ६ जरा ७ तथा ८ देहांतरप्राप्तिः ९ धीरः १० तत्र ११ न १२ मुह्यति १३ ॥ १३ ॥ अ० उ० आप अपनेकू जो नित्य कहते हो, यह तो सत्य है, परन्तु जीव नित्य कैसे होसक्ता है. प्रत्यक्ष जन्म लेताहै, मरताहै, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं. जीवकू १ जैसे २ इसदेहमें (स्थूलदेहमें) ३।४ कौमार ५यौवन ६ जरा ७ सि० अवस्था होतीं हैं ❀ तैसे ही ८ दूसरे देहकी प्राप्ति ९ सि० होजातीहै ❀ धीरजवाला १० तहां ११ अर्थात् देहोंके उत्पत्तिनाशमें ११ नहीं १२ मोहकू प्राप्त होता है. १३ अर्थात् जीवकू जराजन्मवान् नहीं मानता है. १३ तात्पर्य जैसे जीव स्थूल शरीरमें प्रथम बालक कहा जाता है, फिर उसीकू जवान कहते हैं, फिर उसीकू बूढा कहते हैं. जीव तीनों अवस्थामें वास्तव एकही रस रहताहै.तैसे ही दूसरे देहमें एकरस रहताहै. मरना उत्पन्न होना देहोंका धर्म है. जीव सदा एकरस नित्य है. यथा अहम् और जैसे मुसाफर एकसराय छोडकर दुसरे सरायमें बसकर अपनेकू मराजन्मा नहीं मानता, तैसे ही जीव मुसाफरके तरः और शरीर सरायकेतरः है. यह समझकर शरीर छूटनेका कुछ शोच करना न चाहिये आगे बहुत शरीर मिलेंगे. सरायकेतरः आत्मा असंख्यात बरसोंका मुसाफर है. नयेशरीरमें जाकर पीछलेकी गति

दुःखसुखादि भूल जाताहै, और दूसरे अवस्थामें जैसे जीव अन्यजात नहीं होजाता, अपनेकू वोही मानता है. जो बालकावस्थामें मानता था. तैसे ही दूसरे शरीरमें भी वोही एकरस सच्चिदानन्द आत्माकू समझना चाहिये. सदाचारी पुण्यात्मापुरुष तो देहके छूटनेसे आनन्दकू प्राप्तहोते हैं. क्यों कि इसदेहके पीछे सुन्दर दिव्यदेहकी प्राप्ति होगी. बुरामकान छूटकर जो अच्छा मंदिर मिले तो उसके निमित्त क्या शोक करना चाहिये. ॥ १३ ॥

मू॰ मात्रास्पर्शास्तुकौन्तेयशीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत ॥ १४ ॥

कौन्तेय १ मात्रास्पर्शाः २ तु ३ शीतोष्णसुखदुःखदाः ४ आगमापायिनः ५ अनित्याः ६ भारत ७ तान् ८ तितिक्षस्व९॥१४॥अ॰ उ॰ न जानिये दूसरा देह कैसा मिलेगा, शीतोष्णादिका उसमें आराम होगा वा नहीं, इस हेतूसे वर्तमान इष्टपदार्थोंके वियोगमें दुःख प्रतीत होता है. इसदेहके छूटतेही सब इष्टपदार्थोंका वियोग हो जायगा, यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते हैं कि. हे अर्जुन १ इन्द्रियोंके वृत्तियोंका शब्दादिविषयोंके साथ जो सम्बन्ध है इसकू मात्रास्पर्श कहते हैं. २ अर्थात् देखना भोजनादि ये सब २ शीतोष्णसुखदुःखको देनेवाले ३। ४ सि॰ किसीकालमें शीत किसीकालमें गरमी कभी ये अनुकूल कभी प्रतिकूल इसहेतुसे कभी सुख कभीं दुःख बनाही रहता है. कैसेहै ये भोजनादिपदार्थंकि दिनरात्रिवत् ❋आनेजानेवाले ५ सि॰ हैं.इसीहेतुसे सबपदार्थ❋ अनित्य ६ हेअर्जुन ७ तिनकू ८ अर्थात् जाग्रत्अवस्थाके भोगोंकू ८ सि॰ स्वप्नपदार्थवत् समझकर❋सहनकर ९ अर्थात् तिनकें निमित्त वृथा हर्षविषाद मत कर हर्षविषादके वश मत हो ९ तात्पर्य इष्टपदार्थोंका संयोगवियोगादि झूंटी भ्रान्ति है. वास्तव

आत्माका न किसीके साथ सम्बन्ध है, न वियोग है. सिवाय आत्माके और कोई पदार्थ सुखदाई नहीं. सो नित्य प्राप्त है. सिवाय इसका विचारकर जो सहन करता है उसकू दुःख कम होता है. नहीं तो सहना सबकूहीं पडताहै अनित्यपदार्थोंमें क्या तो हर्ष करना, क्या शोक करना कितने कालकेलिये क्यों कि क्षणपीछे हर्ष क्षणपीछे शोक होताही रहता है इनकू अनित्य समझकर इनके वश नहीं होना यही इनका सहना है. इष्टपदार्थके लिये तो यत्न नहीं करना, और उसके वियोगमें कुछ दुःख नहीं मानना और अनिष्टपदार्थोंसे उद्वेग नही करना. वर्तमानमें जैसा हो वोही हर्ष शोक रहित भोगना, यही एक अनुष्ठान वहुत है. ॥ १४ ॥

मू० यंहिनव्यथयन्त्येतेपुरुषंपुरुषर्षभ ॥ समदुःखसुखं धीरंसोऽमृतत्वायकल्पते ॥ १५ ॥

पुरुषर्षभ १ एते २ यम् ३ पुरुषम् ४ न५ व्यथयन्ति ६समदुःखसुखम् ७ धीरम् ८ सः ९ हि १० अमृतत्वाय ११ कल्पते १२ ॥ १५ ॥ अ० उ० प्रयत्नकरके दुःख दूर कर देना चाहिये और सुख सम्पादन करना चाहिये. शीतोष्णादिकू क्यों सहना यह शंकाकरके श्रीभगवानका इसमंत्रमें आशय यह है कि प्रयत्नकरनेसे उनका सहना हजार जगै श्रेष्ठतम है. क्योंकि सहनेका वडा फल है, सो हमसे सुन. सिवाय इसके यह नियम नही कि प्रयत्न करनेसे अवश्यही दुःखशीतोष्णादि दूर हो जावे प्रत्युत प्रयत्नकरना दूने दूःखका हेतू है क्योंकि एकतो प्रथम दुःख था, दुसरे यत्नमें महादुःख हुवा. और जब वो कार्य सिद्ध न हुवा तब औरभी महादुख हुवा, सहनेसे प्रयत्नकरनेमें क्लेशही क्लेशहै इसहेतुसे सहनाही श्रेष्ठतमहै सोई सुन. हे अर्जुन १ ये २ सि० मात्रास्पर्शशीतोष्णादि ❋ जिसपुरुषकू ३ । ४ नहीं ५ विषादके वश करते हैं. ६ सि० कैसा है वो पुरुष ❋ समान है सुखदुःख जिसको ७ सि० और बुद्धिमान् ❋ धीर ८ सि० हैजो

*सो ९ ही १० मुक्तीके वास्ते ११ योग्य है वा समर्थ है १२ अर्थात् जो मानापमानादिकू प्रारब्धकर्मका भोग समझकर सहताहै, उसके निवृत्तीके लिये यत्न नहीं करता है सोई मुक्तीके योग्य है वोही मुक्त होगा. तात्पर्य दुःखादीमें आत्माकी कुछभी क्षती नहीं समझता है इसमें हेतु यह है कि विचारवान् है. विचारवान् ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीही अपमानादिकू सहसक्ता है, और वोही मोक्षका अधिकारी है; इसवास्ते ज्ञान संपादन करना योग्यहै ॥ १५ ॥

मू० नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः॥उभयोरपिदृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

असतः१ भावः२ न ३विद्यते ४ सतः ५ अभावः ६ न ७ विद्यते ८ अपि ९ तु १० अनयोः ११ उभयोः १२ अन्तः १३ तत्त्वदर्शिभिः १४ दृष्टः १५ ॥१६॥ अ० उ० परमार्थदृष्टीकरके तो शीतोष्णादिपदार्थ वास्तव तीनोंकालमें नहीं. नित्य अखंड पूर्ण आत्माही है. उसका अभाव नहीं होता,और शीतोष्णादिपदार्थोंका भाव नहीं होता यह विचारकर विद्वानोंकू शीतोष्णादि बाधा नहीं करते जो कोई यह कहेकि शीतोष्णादिका सहना अत्यन्त कठिन है, वो कैसे सहा जावे, कदाचित् अत्यंत सहनेमें आत्माका नाश न होजा. उसके उत्तरमें यह कहते हैं. असतकी १ सत्ता २ नहीं ३ है. ४ सतकी ५ असत्ता ६ नहीं ७ है. ८ सि० यह नहीं समझना कि इनका निर्णय किसीने नहीं किया है*अपितु ९।१० इनदोनोंका ११।१२ अन्त १३ तत्त्वदर्शीपुरुषोंनें १४ देखा है. १५ अर्थात् ब्रह्मज्ञानियोंनें इनदोनों सत् और असत्का तत्त्व यही निर्णय किया है कि सत्स्वरूप आत्मा निर्लेप असंस्पर्शपदार्थ है. और असत्स्वरूपशीतोष्णादिका आत्मामें गंधमात्रभी नहीं. सोई वेदोंनेभी यह कहा है. मंत्र ॥ ननिरोधोनचोत्पत्तिर्नबद्धोनचसाधकः ॥ नमुमुक्षुर्नवैमुक्तइत्येषापरमार्थ-

ता ॥ तात्पर्य इसमंत्रका यही है कि सिवाय आत्माके कभी कुछ हुवा ही नहीं. फिर निवृत्ति किसकी करना चाहिये. और जो किसीकू सिवाय आत्माके कुछ प्रतीत होता है वो भ्रान्ति है. क्योंकि भले प्रकार कोईभी किसीपदार्थका करामलकवत् निःसंशय निश्चय नहीं करते. कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है. सबका सम्मत न होनेसेही स्पष्ट प्रतीत होताहै कि,वास्तव सिवाय आनंदस्वरूप आत्माके और कुछ नहीं.सिवाय इसके इसबातकू ऐसे समझोकि जैसे दस महल्लोंका नाम एक नगर है,बीस हवेलियोंका नाम एक महल्ला है,मृत्तिकापाषाणकाष्ठादिका नाम हवेली है,पृथिवीके परमाणुवोंका जो संघात है उसकू मृत्तिकाकाष्ठादी कहते हैं, ऐसे विचार करते करते परमाणु एक पदार्थ सिद्ध होता है. परमाणु उसकू कहते हैं. जो किनका नेत्रका तो विषय नहीं,परन्तु अनुमानद्वारा ऐसा निश्चय करते हैं कि,मकानमे पृथिवीके किनके उडते नहीं दीख पडते, झरोखेके चांदनीमें दीख पडते हैं. इसहेतूसे प्रतीत होता है कि औरभी इससे सूक्ष्म होंगे. सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म किनकेकू परमाणु कहते हैं. जब यह जीव अनुमानमें चतुर हो जाता है, तब इसकू प्रत्यक्षानुमानशाब्दादिप्रमाणोंसे आत्माका भाव और जगतका अभाव साक्षात् प्रतीत होने लगता है. यह विचार बहुत सूक्ष्म है अवश्य इसका मनन करना योग्य है. जैसे पीछे विचार करते करते सबपदार्थोंका अभाव हो गया सब कल्पित प्रतीत होने लगे. एक परमाणु रह गया. जब भले प्रकार बुद्धि निर्मल हो जाती है तब वोभी कल्पित प्रतीत होने लगता है. फिर उसका अत्यन्ताभाव हो जाता है. इसवास्ते जबतक यह विषय समझमें न आवे तबतक अंतःकरणके शुद्धीका उपाय कर्मोपासना करे ॥ १६ ॥

मू० अविनाशितुतद्विद्धियेनसर्वमिदंततम् ॥ विनाशमव्ययस्यास्यनकश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

येन १ इदम् २ सर्वम् ३ ततम् ४ तत् ५ तु ६ अविनाशि ७ विद्धि ८ अस्य ९ अव्ययस्य १० विनाशम् ११ कर्तुम् १२ कश्चित् १३ न १४ अर्हति १५ ॥ १७ ॥ अ० उ० सामान्यकरके तो आत्माकू नित्य प्रतिपादन किया. अब फिर विशेषकरके दूसरे प्रकारसे आत्माकू नित्य प्रतिपादन करते हैं. जैसे पीछले श्लोकमें आत्माकू सच्छब्दकरके निरूपण किया, तैसेही इसमंत्रमें अविनाशी शब्दकरके निरूपण करते हैं. आत्मा अतिसूक्ष्मपदार्थ है. इसवास्ते श्रीमहाराज उसकू अनेकशब्दोंकरके बरणन करते हैं. पुनरुक्ति समझना न चाहिये. इसप्रकरणमें बहुतजगे तो अर्थमें पुनरुक्ति प्रतीत होती है. जैसे सत् नित्य और अविनाशि इन शब्दोंका एकही अर्थ है. और बहुतजगे एक वो शब्द लिखा है. यह बारम्बार अनेकयुक्तियोंके साथ उपदेशवास्ते जल्दसमझनेके है. पुनरुक्तिदोष नहीं. जिसकरके १ अर्थात् सत्स्वरूपआत्माकरके परमानन्दस्वरूपआत्मासे १ यह २ सब ३ सि० जगत् *व्याप्त ४ सि० हो रहाहै * तिसकू ५ अर्थात् आत्माकू ५ ही ६ अविनाशि ७ जान तूं. ८ इसअविनाशीका ९।१० अर्थात् अविनाशि निर्विकारका ९।१० नाश करनेकू ११।१२ कोई १३ नहीं १४ योग्यहै. वा नहीं समर्थ है. १५ अर्थात् ऐसा कोई समर्थ नहीं कि जो आत्माका नाश करे. वा कम करे. १५ तात्पर्य यह जगत् आत्मा करके व्याप्त है. इसकू ऐसा समझना चाहिये कि आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है. विचार करो जगतमें ऐसा कोईभी बुरा वा भला पदार्थ नहीं कि जिसमें कुछ आनन्द नहो. आनन्दकरके यह जगत पूर्ण है. और आनन्दकरके हि इसकी स्थिति है. वोही आनन्द तीनों अवस्थामें अविनाशी है, साक्षात् स्वयं प्रकाश है. इसहेतुसे प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप है. ॥ १७ ॥

मू० अन्तवन्तइमेदेहानित्यस्योक्ताःशरीरिणः॥ अनाशिनोऽप्रमेयस्यतस्माद्युध्यस्वभारत ॥ १८ ॥

इमे १ देहाः २ अन्तवन्तः ३ उक्ताः ४ शरीरिणः ५ नित्यस्य ६ अनाशिनः ७ अप्रमेयस्य ८ तस्मात् ९ युध्यस्व १० भारत ११ ॥ ॥ १८ ॥ अ०उ० सत्पदार्थ आत्माकूतो नित्य सिद्ध किया, अब असत्पदार्थ देहादि अनात्माकू अनित्य सिद्ध करते हैं. अर्थात् असत्पदार्थोंका अभाव कहते हैं. ये १ सि० आविद्यकभौतिककल्पित ❋देह २ अन्तवाले ३ अर्थात् अनित्य कहे हैं. ४ देहधारीजीवके ५ अर्थात् अध्यारोपमें आत्माकू देही शरीरी कहते हैं. और विवर्तवादमें उसकू नित्य कहते हैं. वास्तव वो अनिर्वाच्य है. और देहोंका भाव वास्तव है नहीं. देहोंकू अनित्य कहना, जीवकू नित्य कहना, यह सब विवर्तवाद है. सि० कैसाहै वो आत्माकि ❋सदा एकरूप है. ६ अर्थात् सदा उसका एक सच्चिदानन्द निर्विकार नित्यमुक्तरूप है. इसीहितुसे सो, अविनाशी है.७ सि० जो ऐसा है तो सबकू सत्त्वादिपदार्थोंवत् समझमें क्यों नहीं आताहै, यह शंकाकरके कहते हैं. कि सो आत्मा ❋अप्रमेय है.८अर्थात् बुद्ध्यादिका विषय नहीं. क्यों कि बुद्धीका आदि है. इसीहितूसे बुद्धीसे परे श्रेष्ठ है. बुद्धीका साक्षी है. यही उसकी पहचान है. जैसे कोई यह कहे की मेरी आंख मुझकू दिखाओ. उत्तर उसका यही है कि जिसकरके तूं सबकू देखता है, वोही तेरी आंख है. ऐसेही जिसकरके बुद्धीकोभी ज्ञान है. वो ज्ञानस्वरूप स्वयंसिद्ध है. और जो अबभी इतने विशेषणोंसे आत्माका स्वरूप तेरे समझमें न आया होगा, क्यों कि आत्मा अतिसूक्ष्म है. जब की आत्मा अतिसूक्ष्म है तिसकारणसे ९ अर्थात् इसीवास्ते ९ युद्धकर तूं १० हेअर्जुन ११ सि० यहमैं तुझसे कहता हूं ❋तात्पर्य स्वधर्मका अनुष्ठान करनेसे अन्तःकरणशुद्धिद्वारा आत्माका स्वरूप समझमें आजाता है. चर्चाचतुराईका वहां कुछ काम नहीं, अथवा जब की आत्मा नित्य है, न उसका नाश है, न उसकू दुःखसुखादिका सम्बन्ध है, तिसकारणसे हेअर्जुन स्वधर्म मतत्याग. सुखदुःखा-

दिका सहन कर. नित्यस्य अनाशिनः अप्रमेयस्य ये तीनों शरीरि- णःइसपदके विशेषण हैं. अर्थात् सदा एकरस अविनाशी अप्रमेय दे- हधारी एसे जीवके शरीर अन्तवाले कहे हैं. अविनाशीका देहोंके साथ आविद्यक सम्बन्ध है, इसहेतूसे देहप्रवाहरूपकरके नित्यप्रतीत होते हैंवास्तव नित्य. अनित्य हैं नहीं ॥ १८ ॥

मू० यएनंवेत्तिहन्तारंयश्चैनंमन्यतेहतम्॥ उभौतौन विजानीतोनायंहन्तिनहन्यते ॥ १९ ॥

यः १ एनम् २ हन्तारम् ३ वेत्ति ४ यः ५ च ६ एनम् ७ हतम् ८ मन्यते ९ तौ १० उभौ ११ न १२ विजानीतः १३ अयम् १४ न १५ हन्ति १६ न १८ हन्यते १७ ॥ १९ ॥ अ० उ० भीष्मादिके मरनेमें जो शोक करता था अर्जुन, की ये मरेंगे वो तो श्रीमहाराजने दूर किया परन्तु अर्जुनकू अपने निमित्तभी यह शोक है की भी- ष्मादिके मारनेमें मुझकू पाप होगा, इसकूभी दूर करते है. अर्थात् श्रीमहाराज अर्जुनसे यह कहते हैं, की जैसे मारना हननरूपक्रियामें कर्मकू अर्थात् भीष्मादिकू नित्य निर्विकार अविनाशी समझा, तैसे ही कर्ताकू अर्थात् अपनेकू अकर्ता समझ. तात्पर्य किसीक्रियामें भी आत्मा कर्ता या कर्म नहीं, यह कहते हैं अब श्रीमहाराज. जो १ इ- सकू २ अर्थात् आत्माकू २ सि० हननक्रियामें ❋ मारनेवाला ३ अ- र्थात् कर्ता ३ जानताहै ४ और जो ५।६ इसकू ७ अर्थात् आत्माकू ७ मराहुवा ८ अर्थात् कर्म ८ मानताहै. ९ वे १० दोनों ११ नहीं १२ जानते १३ सि० कि ❋ यह १४ अर्थात् आत्मा १४न१५ सि० किसीकू ❋ मारताहै १६ न १७ मरताहै. १८ तात्पर्य जो आत्माकू किसीक्रियामें भी कर्ता कर्म जानते हैं वे पापपुण्यके भागी होते हैं. तूं तो आत्माकू अक्रिय याने अकर्ता जानकर युद्धकर, तुझकू पाप नहोगा. आत्मा नकर्ता है नकर्म है. ॥ १९ ॥

मू॰ नजायतेम्रियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वाभवितावा नभूयः॥ अजोनित्यः शाश्वतोयंपुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे॥ २०॥

अयम् १ कदाचित् २ न ३ जायते ४ वा ५ न ६ म्रियते ७ वा ८ भूत्वा ९ भूयः १० भविता ११ न १२ अयम् १३ अजः १४ नित्यः १५ शाश्वतः १६ पुराणः १७ शरीरे १८ हन्यमाने १९ न २० हन्यते २१ ॥२०॥ अ॰ उ॰ उत्पन्नहोना व्यवहारिक सत्ताकू प्राप्तहोना, बढना, औरका औररूप होजाना, घटनेलगना, नाशहोजाना, ये छः धर्म देहके आत्माके नहीं. सोई इसश्लोकमें कहते हैं. यह१ आत्मा१ कभी २ न ३ जन्मताहै, ४ या ५ न ६ मरताहै. ७ और ८ होकर९ फिर १० रहनेवाला ११ सि॰ ऐसा भी यह आत्मा ❋ नहीं १२ अर्थात् जिनका जन्म होता है, वे अवश्य मरते हैं. आत्माको न जन्म है न नाश है. क्योंकी सादिपदार्थोंका नाश होताहै. आत्मा अनादि है, परन्तु छः अनादिपदार्थोंमें अविद्यादि पदार्थ भी अनादि कहे जाते हैं, उनका ज्ञान कालमें नाश सुना जाताहै. अर्थात् अविद्यादि पदार्थोंकाभी जन्म नहीं. क्योंकी वे अनादि हैं परन्तु होकर अर्थात् हुवे फिर नहीं रहतेहैं ऐसा भी यह आत्मा नहीं. यह अर्थ है. (नवें पदसे लेकर बारवें पदतक) १२ सि॰ फिर कैसा है ❋ यह १३ आत्मा १३ जन्मरहित १४ एकरस १५ नित्य १६ सनातन१७ सि॰ है ❋ शरीरके मारेजानेमें १८।१९ नहीं २० माराजाताहै,२१ अर्थात् शरीरके नाश हानेमें नहीं नाश होताहै आत्माका.२१ ॥२०॥

मू॰ वेदाविनाशिनंनित्यंयएनमजमव्ययम् ॥ कथंसपुरुषःपार्थकंघातयतिहन्तिकम् ॥ २१ ॥

यः १ एनम् २ अविनाशिनम् ३ नित्यम् ४ अजम् ५ अव्ययम् ६ वेद ७ पार्थ ८ सः ९ पुरुषः १० कम् ११ कथम् १२ हन्ति १३

कम् १४ घातयति १५ ॥ २१ ॥ अ० उ० ज्ञानदृष्टीकरके सब क्रियामें आत्मा प्रेरकभी निर्विकार है. इस हेतुसे मैं तेरा प्रेरकभी असंगहूं. मेरे निमित्तभी तुझकू किसीप्रकारका शोच करना न चाहिये. अर्थात् यहभी मतसमझ कि श्रीभगवान् मुझकू हिंसामें प्रेरते हैं. कभी ऐसा न होकि इस पापके यही भागी हों. इस श्लोकमें यही कहते हैं. जो १ इस २ आत्माकू २ अविनाशी ३ नित्य ४ अज ५ निर्विकार ६ जानताहै. ७ हे अर्जुन ८ सो ९ पुरुष १० किसकू ११ किसप्रकार १२ मारताहै. १३ अर्थात् आत्मा किसीकू किसीप्रकार नहीं मारताहै. १३ सि० और ❋ किसकू १४ सि० किस प्रकार ❋ मरवाता है. १५ अर्थात् किसीकू किसीप्रकारभी नहीं मरवाताहै. आत्मा किसी क्रियामें कर्ताका प्रेरक नहीं. तात्पर्य श्रीमहाराजने जैसे अपनेकू निर्विकार अकर्ता असंग ऐसा निरूपण किया वैसे ही जीवकूभी निर्विकार कहा. इस कहनेसे जीवब्रह्मकी एकता स्पष्ट सिद्ध है. इस प्रकरणका यही सिद्धान्त है. ॥ २१ ॥

मू० वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णातिनरोपराणि ॥तथाशरीराणिविहायजीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही ॥ २२ ॥

यथा १ नरः २ जीर्णानि ३ वासांसि ४ विहाय ५ अपराणि ६ नवानि ७ गृह्णाति ८ तथा ९ जीर्णानि १० शरीराणि ११ विहाय १२ अन्यानि १३ नवानि १४ संयाति १५ देही १६ ॥ २२ ॥ अ० उ० आत्माकू तो अविनाशी निर्विकार समझा मैंने. आत्माके निमित्त तो मुझकू अब किसीप्रकारका शोच नहीं. अर्थात् आत्म किसीक्रियामें न कर्त्ता है, न प्रेरक, न कर्म है. और आत्माके नाश करनेमें वा कम करनेमें न कोई साधन है. परन्तु आत्माक शरीरसे जो वियोग होता है इसके निमित्त तो शोच करना चा

हिये. यह शंका करके कहते हैं. जैसे १ मनुष्य २ जीर्ण ३ वस्त्रोंकू ४ त्यागके ५ और ६ नये ७ सि० वस्त्रोंकू ❀ ग्रहण करता है. ८ तैसेही ९ जीर्ण १० शरीरोंकू ११ त्यागके १२ और १३ नये १४ सि० शरीरोंकू ❀ प्राप्त होता है १५ आत्माजीव १६. सि० न जानिये दुसरा शरीर कैसा मिले. पहलेसे अच्छा न मिले इसके निमित्तभी शोच करना न चाहिये. क्योंकि धर्मात्मापुरुषोंकू वेसन्देह उत्तम शरीर मिलते हैं.पापियोंकू यह शोच करना चाहिये धर्मात्मापुरुषोंकू पुण्यके तारतम्यतासे देवतोंके शरीर मिलतेहैं. पापात्मा नरकमें जाते हैं. उनकू नारकीशरीर मिलते हैं. मिलेहुवे कर्मकरनेवालोंकू मनुष्योंके शरीर मिलते हैं. ज्ञानी महापुरुष मुक्त होते हैं. तात्पर्य विना ब्रह्मज्ञानके सबकू दूसरा शरीर मिलता है. चौदवें अध्यायमें विशेप निरूपण करेंगे. इस प्रसंगकू गरुडपुराणादिकी प्रक्रियाभी इसी सिद्धान्तसे मिलजाती है श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंके मुखसे श्रवण करनेसे; ॥ २२ ॥

मू०नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः॥
नचैनंक्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतः॥ २३ ॥

एनम् १ शस्त्राणि २ न ३ छिन्दान्ति ४ पावकः५ एनम् ६ न ७ दहाति ८ आपः ९ एनम् १० न ११ च १२ क्लेदयन्ति १३ मारुतः १४ न १५ शोपयाति १६ ॥ २३ अ० उ० पीछे कहाथा कि आत्मा किसी प्रकार भी नहीं माराजाताहै.अर्थात् आत्मा किसी साधंनकरके साध्य (सिद्ध) होनेके योग्य नहीं. उसीकू अब स्फुट करते हैं. इस आत्माकू १ शस्त्र २ नहीं ३ छेदन करते हैं ४ अग्नि५ इसकू ६ नहीं ७ जलाताहै ८ जल ९ इसकू १० नहीं ११ । १२ गलाताहै १३ पवन १४ नहीं १५ सुखाताहै. १६ तात्पर्य अन्य और भी किसी साधन करके साध्य नहीं. आत्मा स्वयंसिद्ध निर्विकार है. निरवयव होनेसे क्रिया सावयव हैं. इसीहेतूसे आत्मा अक्रिय है.॥२३॥

मू० अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्यएवच ॥
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोयंसनातनः ॥ २४ ॥

अयम् १ अछेद्यः २ अदाह्यः ३ अक्लेद्यः ४ अशोष्यः ५ एव ६ च ७ नित्यः ८ सर्वगतः ९ स्थाणुः १० अचलः ११ सनातनः १२ अयम् १३ ॥ २४ ॥ अ० उ० शस्त्रादिसाधनोंकरके आत्मा इस हेतुसे साध्य नहीं कि आत्मा निर्विकारादि विशेषणों करके विशेषित है. यह कहते हैं. डेढ श्लोकमें. यह १ आत्मा १ नहीं है छेदनकरनेके योग्य २ नहीं है जलानेके योग्य ३ नहीं है गलानेके योग्य ४ नहीं है सुखानेके योग्य ५ । ६ । ७ अर्थात् आत्मा न छिद् सक्ताहै न जल सक्ताहै न गल सक्ताहै सि० क्योंकि ❋ नित्य ८ सवजगे-व्याप्त ९ स्थाणुवत् स्थिर १० निश्चल ११ सनातन १२ सि० हैं ❋ यह १३ सि० आत्मा. ❋ (यहां पदोंमें पुनरुक्ति प्रतीत होती है इसका उत्तर प्रथमही हम लिखआये हैं.) ॥ २४ ॥

मू० अव्यक्तोयमचिन्त्योयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवंविदित्वैनंनानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अयम् १ अव्यक्तः २ अयम् ३ अचिन्त्यः ४ अयम् ५ अविकार्यः ६ उच्यते ७ तस्मात् ८ एवम् ९ एनम् १० विदित्वा ११ अनुशोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४॥२५॥अ०उ०यह आत्मा१ अव्यक्त २ मूर्तिरहित २ सि० है. ❋ यह आत्मा ३ अचिन्त्य ४ सि० है. अर्थात् चितवन करनेमें नहीं आताहै. अन्तःकरणका विषय नहीं ❋ यह आत्मा ५ अविकारी ६ कहा है ७ सि० इस क्रियाका नित्यादि सब पदोंके साथ सम्बन्ध है. जब कि यह आत्मा ऐसा है ❋ तिस कारणसे ८ इस प्रकार ९इस आत्माकू १० जानकर ११ पीछे शोच करनेकू १२ नहीं १३ योग्यहै तू. १४ तात्पर्य जो लक्षण आत्माका पीछे निरूपण किया उसकू जान समझकर शोच नहीं रहताहै. २

मू० अथचैनंनित्यजातंनित्यंवामन्यसेमृतम् ॥
तथापित्वंमहाबाहोनैवंशोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

अथ १ च २ एनम् ३ नित्यजातम् ४ मन्यसे ५ वा ६ नित्यम् ७ मृतम् ८ महाबाहो ९ तथा १० अपि ११ एवम् १२ न १३ शोचितुम् १४ त्वम् १५ अर्हसि १६ ॥ २६ ॥ अ० उ० जो कदाचित् देहोंके साथ आत्माको जन्ममरण तूं समझता हो,तो भी शोच करना न चाहिये यह कहते हैं. और जो १ । २ सि० कदाचित् ❋ इसआत्माकू ३ नित्यजात ४ मानताहै ५ अर्थात् जीवका देहोंके साथ सदा जन्म होताहै. ५ वा ६ सदा ७ मरताहै ८ सि० देहोंके साथ ❋ हे अर्जुन ९ तोभी १० । ११ सि० जैसे अगले श्लोकमें कहता हूं ❋ इसप्रकार १२ नहीं १३ शोच करनेकू १४ तूं १५ योग्यहै. १६ ॥ २६ ॥

मू० जातस्यहिध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥
तस्मादपरिहार्येर्थेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

हि १ जातस्य २ मृत्युः ३ ध्रुवः ४ मृतस्य ५ च ६ जन्म ७ ध्रुवम् ८ तस्मात् ९ अपरिहार्ये १० अर्थे ११ त्वम् १२ शोचितुम् १३ न १४ अर्हसि १५ ॥२७॥ अ० जबकि १ जन्मवालेको २ मरण ३ निश्चय ४ सि० हैं. अर्थात् जो उत्पन्न हुवा है वो अवश्य मरेगा, इसमें प्रमाण प्रत्यक्ष व्यवहार है ❋ और मरेहुवेको ५ । ६ जन्म ७ निश्चय ८ सि० है. अर्थात् जोमरताहै उसका जन्म अवश्य होता है, क्योंकि कर्ता होकर मराहै. अपने कियेहुवे कर्मोंका भोग करनेकेलिये अवश्य जन्म लेगा. विनाभोग वा विनाज्ञान कर्मोंका कभी नाश नहीं होता है ❋ तिस कारणसें ९ अवश्यंभाविकाममें १० । ११ तूं १२ शोच करनेकू १३ नहीं १४ योग्यहै. १५ टि० जो काम अवश्य होनेवालाहै, जिसको कुछ इलाज यत्न परि-

हार प्रतीकार नहीं. उसमें क्या शोच करना चाहिये. जो होना है वो अवश्य होगा. और जो नहोना है वो कभी न होगा. यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ॥ तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥ जो भावीका प्रतीकार होता, तो राजानल, राम, युधिष्ठिरादिकू क्यों दुःख होता. १०।११ तात्पर्य भीष्मादिका इन देहोंसे एकदिन अवश्य वियोग होना है तूं क्यों शोच करता है वियोग अवश्य भावी है, और राजधनादिके निमित्त भी शोच मतकर. क्यों कि क्या तो भीष्मादि धनकू छोडकर मरजावेंगे, अथवा पहले धनही उनकू छोडदेगा, इस हेतूसे तूं मत शोचकर. ॥ २७ ॥

मू० अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना ॥ २८ ॥

भारत १ भूतानि २ अव्यक्तादीनि ३ व्यक्तमध्यानि ४ अव्यक्तनिधनानि ५ एव ६ तत्र ७ का ८ परिदेवना ९ ॥ २८ ॥ अ० उ० जैसे सीपीमें चांदीकी, रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति है. इसी प्रकार यह जगत् प्रतीत होताहै, फिर क्यों शोच करताहै यह कहते हैं. हे अर्जुन १ सि० पृथिव्यादि ये सब (अपने कार्य अन्तःकरणादि शरीर पुत्रादिके सहित) पंच *भूत २ सि० ऐसे हैं कि * अव्यक्त अदर्शन अनुपलब्धि आदि है जिनका, अर्थात् आदिमें ये भूत अदर्शनरूप थे, इनका दर्शनमात्र भी नही था. ३ सि० और *व्यक्त है मध्य जिनका ४ अर्थात् उत्पत्तीसे पीछे नाशसे पहले बीचमें प्रतीत होते हैं शुक्तीमें रजतवत्. ४ सि० और अव्यक्तही है मरण जिनका ५ अर्थात् इनका जो अदर्शन है वोही इनका मरण है. नाश हुवे पीछे भी ये नही दीखते हैं, यह अभिप्राय है. ५ निश्चय (निस्सन्देह)यह जगत् अविद्याभ्रान्तीसे प्रतीत होता है, वास्तव नहीं. ६

तहां ७ अर्थात् ऐसे पदार्थोंके निमित्त (जिनकी गति पीछे कही)७ क्या ८ शोक प्रलाप, विलाप९ सि० करना चाहिये. भ्रान्तीके सर्पने काटा हुवा कोई नहीं मरता है. जो आदि और अन्तमें नहीं वो वर्तमानमें भी नहीं. श्रुति यही कहे है, आदावन्तेचयन्नास्तिवर्तमानेपितत्तथा॥ ❀तात्पर्य यह संसार स्वप्नवत् है। इस संसारमें ये भीष्मादि और यह सब सेना और, इनकेसाथ युद्धकरना राज्य भोगना ये सब स्वप्नके पदार्थ हैं. इनके निमित्त वृथा विलाप मत कर॥ शोकनिमित्तस्य प्रलापस्य नावकाशोऽस्तीत्यर्थः॥ कः शोकनिमित्तोविलापः प्रतिबुद्धस्यस्वप्नदृष्टबन्धुष्विव शोकोनयुज्यते इत्यर्थः॥२८॥

मू०आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैवचान्यः॥आश्चर्यवच्चैनमन्यःशृणोतिश्रुत्वाप्येनंवेदनचैवकश्चित्॥ २९ ॥

कश्चित् १ एनम् २ आश्चर्यवत् ३ पश्यति ४ तथा ५ एव ६ च ७अन्यः ८ आश्चर्यवत् ९ वदति १० अन्यः ११ एनम् १२ आश्चर्यवत् १३ च १४ शृणोति १५ कश्चित् १६ श्रुत्वा १७ अपि १८ एनम् १९ न २० च २१ एव २२ वेद २३ ॥ २९ ॥ अ० उ० आत्माका जानना एक आश्चर्य अलौकिक अद्भुत बात है. आत्माके जाननेमें बहुत प्रयत्न कराना चाहिये.कोई १ इस आत्माकू २ सि० शमदमादिसाधनसम्पन्न हुवा ज्ञानचक्षूकरके असंख्यातपुरुषोंमें जो देखता है, सो ❀आश्चर्यवत् ३ देखताहै. ४ अर्थात् लौकिकपदार्थोंकी तरः आत्माका देखना नहीं बनसक्ता है. और तैसेही ५।६।७ अन्य और कोईएक महात्मा ८ आश्चर्यवत् ९ कहताहै, १० सि० आत्माकू ❀ अन्य और कोई महात्मा ११ इसआत्माकू १२आश्चर्यवत् १३ ही १४ सुनताहै, १५ कोई १६ सि० साधनरहितपुरुष तत्त्वमसि अहम्ब्रह्मास्मि इत्यादिमहावाक्योंकू ❀सुनकर १७भी १८

इस आत्माकू १९ नहीं ही नहीं २० । २१ । २२ जानताहै. २३ तात्पर्य त्रिलोक वा चौदेंलोक वा चौदेंसेभी सिवाय जिसके मतमें कोई और ऊंचा वैकुंठादिलोक हो, उनमें जितने नामरूपवाले इन्द्रियान्तःकरणके विषय जितने पदार्थ हैं, उन सब पदार्थोंकू लौकिक कहते हैं, जो पुरुष आत्माकू लौकिकपदार्थवत् सुना चाहता है, वा देखा चाहता है, वा कहा चाहता है, यह कभी नहीं होसक्ता. क्योंकि आत्मा लौकिकपदार्थवत् नहीं, अलौकिकआश्चर्यवत् है, जोइन्द्रियान्तःकरणका विषय तो है नहीं, सो सुनाजावे, कहाजावे, देखा जावे, जाना जावे, अनुभव कियाजावे (करामलकवत्) यही आश्चर्य है. ॥ २९ ॥

मू० देहीनित्यमवध्योयंदेहेसर्वस्यभारत ॥
तस्मात्सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

भारत १ अयम् २ देही ३ सर्वस्य ४ देहे ५ नित्यम् ६ अवध्यः ७ तस्मात् ८ सर्वाणि ९ भूतानि १० त्वम् ११ शोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४ ॥ ३० ॥ अ० उ० ग्यारवें श्लोकसे आत्माका और अनात्माका जो विवेक निरूपण करते हुवे चले आते हैं, इसप्रकरणकू अब समाप्त करते हैं. हे अर्जुन १ यह २ सि० शुद्धसच्चिदानन्द ❋ आत्मा ३ सबके ४ देहमें ५ सि० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❋ नित्य ६ अवध्य ७ सि० है. अर्थात् इसका बध नहीं हो सक्ता, यह मर नहीं सक्ता. तात्पर्य किसी क्रियाका विषय नहीं. अविकारी अक्रिय है ❋ तिसकारणसे ८ सब भूतोंकू ९।१० अर्थात् कर्तृकर्मादिरूपभूतोंके निमित्त १० तूं ११ शोच करनेकू १२ नहीं १३ योग्य है. १४ तात्पर्य मरे जीवतोंके निमित्त तूं शोच मत कर. जो पंडितोंकेसी बातें करताहै, तो फिर सच्चाही पंडित होना चाहिये. पंडित ब्रह्मज्ञानीका नाम है. सो होना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥

मू० स्वधर्ममपिचावेक्ष्यनविकम्पितुमर्हसि ॥

धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्यनविद्यते ॥ ३१ ॥

स्वधर्मम् १ अपि २ च ३ अवेक्ष्य ४ विकम्पितुम् ५ न ६ अर्हसि ७ हि ८ धर्म्यात् ९ युद्धात् १० अन्यत् ११ श्रेयः १२ क्षत्रियस्य १३ न १४ विद्यते १५ ॥ १६ ॥ अ० उ० लौकिकरीतीसे अब श्रीमहाराज अर्जुनकू समझाते हैं. आठश्लोकोंमें. अर्जुनने पीछे कहाथा कि महाराज अपने सम्बन्धियोंकू युद्धमें मारता हुवा समझकर मेरा शरीर कम्पता है, उसवाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज कहते हैं, कि प्रथमतो विचारदृष्टीकरके तुझकू घबराना न चाहिये. सिवाय इसके अपने धर्मका स्मरण करकेभी तुझकू घबराना योग्य नहीं. क्योंकि परमार्थदृष्टीकरके तो कम्पनका सावकाश है ही नहीं. और अपने धर्मकूभी १।२।३ देखकर ४ कंपाकरनेकू ५ नहींयोग्य है तूं ६।७ सि० और यह जो तूने पीछे कहा कि रणमें अपने सम्बन्धियोंकू मारकर अपना भला नहीं देखता हूं, यह मत समझ ❋ क्योंकि ८ धर्मयुक्तयुद्धसे ९।१० सि० सिवाय पृथक् ❋अन्यत् ११ सि० भिक्षाटनादीमें ❋क्षत्रियका १२ कल्याण भला) १३ नहीं है. १४।१५ सि० इन आठोंश्लोकोंमें (इकतीसवेंसेअडतीसवें तक) प्रकरणका अर्थतो यही है.जो अक्षरार्थ है परन्तु तात्पर्य इनआठश्लोकोंका परमार्थभी है.उसकू ऐसे समझोकी क्षत्रियार्जुनके जगे तो मुमुक्षु वा ज्ञानी और युद्धके जगे अन्तःकरणइन्द्रियादिका निरोध ❋श्रीमहाराजविद्वानोंकू समझाते हैं, कि विचारदृष्टीकरकेभी शरीरादिका निरोध करना चाहिये, घबराना योग्य नहीं. और अपने धर्मकूभी देखकर इन्द्रियादिकोंका विषयोंसे निरोध करना योग्य है. क्योंकि शास्त्रका तात्पर्य बहिर्मुखतामें नहीं. और जो पुरुष ज्ञाननिष्ठ नहीं पूर्वमीमांसाकू वा उपासनाकू इष्टधर्म समझता है, तोभी अन्तःकरणादिके निरोधरूपधर्मसे पृथक् अन्यत् बहिर्मुख होना इत्यादि ..नका भला करनेवाला नहीं. ॥ ३१ ॥

मू० यदृच्छयाचोपपन्नंस्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनःक्षत्रियाःपार्थलभन्तेयुद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

पार्थ १ ईदृशम् २ युद्धम् ३ सुखिनः ४ क्षत्रियाः ५ लभन्ते ६ अपावृतम् ७ स्वर्गद्वारम् ८ यदृच्छया ९ च १० उपपन्नम् ११ ॥ ३२ ॥
अ०उ० आनन्दका मार्ग अपने आप तुझकू प्राप्त हुवा है, तूं तो बडा भागी है. शोच क्यों करता है. हे अर्जुन १ ऐसे युद्धकू २।३ सुखी क्षत्रिय ४।५ अर्थात् स्वर्गादिजन्यसुखके भोगनेवाले ५ प्राप्त होते हैं. ६ अर्थात् ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियोंकू प्राप्त होता है. ६ सि० कैसाहै यह युद्ध कि ❋ खुला स्वर्गका दरवाजा ७।८ और यदृच्छाकरके ९।१० प्राप्त हुवा है. ११ अर्थात् विनाबुलाए बिनाप्रार्थना (इच्छा किये) अपने आप प्राप्त हुवा है. ११ सि० परमार्थ यह है कि यह मनुष्यशरीर सुदुर्लभ बडे भाग्यसे अपने आप ईश्वरके कृपाकरके प्राप्त हुवा है. इसमें अन्तःकरणादिकोंका निरोध करना. कैसा है कि खुला हुवा मोक्षद्वार है. परमानन्दजीवन्मुक्तीके भोगनेवाले महात्मा संघातका निरोध करते हैं, इस शरीरके प्राप्त होनेका फल शब्दादि भोग नहीं. और परलोकके भोग भी अनित्य होनेसे दुःखदेनेवाले हैं. इसशरीरसे मोक्षमार्गमेंही प्रयत्नकरना योग्य है ❋ ॥ ३२ ॥

मू० अथचेत्त्वमिमंधर्म्यंसंग्रामंनकरिष्यसि ॥
ततःस्वधर्मंकीर्त्तिंचहित्वापापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अथ १ चेत् २ त्वम् ३ इमम् ४ धर्म्यम् ५ संग्रामम् ६ न ७ करिष्यसि ८ ततः ९ स्वधर्मम् १० कीर्तिम् ११ च १२ हित्वा १३ पापम् १४ अवाप्स्यसि १५ ॥ ३३ ॥ अ०उ० व्यतिरेकमुखकरके पक्षान्तर यह कहते हैं, कि जो तूं युद्ध न करेगा तो तेरी बडी क्षती होगी. और १ जो २ तूं ३ इसधर्मयुक्तसंग्रामकू ४।५।६ न करेगा ७।८ सि० तो ❋ तिसकारणसे ९ अपने धर्मकू १० और

कीर्तिकू ११।१२ त्यागकर १३ पापकू १४ प्राप्त होगा. १५ सि० परमार्थ यह है कि जो इंद्रियादिकोंका निरोधरूप अपने धर्मकू न करोगे तो तुम्हारा धर्म जाता रहनेसे तुम्हारी कीर्तीभी नाश हो जायगी, ऐसा पापकरनेसे नरककू प्राप्त होगे. तात्पर्य धर्मात्मा वेही हैं जिनका संघात निरोध है. और जिनका यश सज्जनोंमें होवे, वेही सुयशवाले हैं. नहीं तो अपने अपने पेशे जातीमें कोई न कोई एक प्रधान कहलाता है ❋ ॥ ३३ ॥

मू० अकीर्तिंचापिभूतानिकथयिष्यंतितेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्यचाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

भूतानि १ ते २ अकीर्तिम् ३ च ४ कथयिष्यन्ति ५ अव्ययाम् ६ संभावितस्य ७ च ८ अकीर्तिः ९ मरणात् १० अपि ११ अतिरिच्यते १२ ॥ ३४ ॥ अ०उ० यह नहीं समझना कि अकिर्ती होनेसे मेरी क्या क्षती होगी. दोचार वर्ष कहकर सब चुप होजावेंगे, अपितु तेरी अकीर्ति सदा वनी रहेगी, यह कहते हैं. छोटे वडे सब स्त्रीपुरुषप्राणीमात्र १ तेरी २ अकीर्तीकू ३ भी ४ कहेंगे ५ सि०और तुझकू नरकभी होगा. कैसीहै वो अकीर्ति कि ❋ सदा वनी रहेगी यह तात्पर्य है ६ सि० फिर इससे मेरी क्या क्षती होगी यह शंका करके कहते हैं कि अकीर्ति सबके वास्ते ही बुरी है ❋ और प्रतिष्ठावाले पुरुषकी ७।८ अकीर्ति ९ सि० तो मरनेसे १० भी ११ सिवायहै. १२ सि० परमार्थ यह है, कि जिस कीर्तीकेवास्ते तुम दिनरात प्रयत्न करते हो. यह चाहते हो कि हमारा नाम बना रहे सो परमधर्म जो संघातका निरोधकरना इसके न करनेसे सदा जीते जी और मरकर दूसरे जन्ममें इसप्रकार सदा अकीर्ति बनी रहेगी, जीतेजी तो लोगोंकी निन्दा सहनी पडेगी, और मरकर यमराजके सामने दुर्दशा होवेगी वो क्लेश मरनेसे भी अधिक है ❋ ॥ ३४ ॥

मू० भयाद्रणादुपरतंमंस्यन्तेत्वांमहारथाः ॥
येषांचत्वंबहुमतोभूत्वायास्यसिलाघवम् ॥ ३५ ॥

महारथाः १ त्वाम् २ भयात् ३ रणात् ४ उपरतम् ५ मंस्यन्ते ६ येषाम् ७ च ८ त्वम् ९ बहुमतः १० भूत्वा ११ लाघवम् १२ यास्यसि १३ ॥ ३५ ॥ अ० उ० लोक यह नहीं समझेंगे कि अर्जुन युद्धमें हिंसा पाप समझकर उपराम हुवा है. यह नहीं समझेंगे, समझेंगे तो फिर क्या यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं. शूरवीरदुर्योधनादि १ तुझकू २ सि० मरनेके ❋ भयसे ३ रणसे ४ हटा हुवा ५ मानेंगे ६ अर्थात् यह समझेंगे कि मरनेका भयकरके अर्जुन रणमेंसे भाग गया (हटगया) ६ सि० जो वे ऐसाही समझेंगे तो मेरी इसमें क्या क्षती होगी, यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं ❋ जिनका अर्थात् दुर्योधनादिका ७ और ८ सि० सिवाय उनके अन्य बहुत पुरुषोंका ❋ तूं ९ बडा १० सि० कहलाता है. दुर्योधनादि तुझकू बहुत गुणवाला मानते हैं. ऐसा ❋ होकर ११ छुटाईकू १२ प्राप्त होगा. १३ अर्थात् वेही दुर्योधनादि कि जो तुझकू बहुत गुणवाला शूरवीर मानते हैं तुझकू कातर नपुंसक मूर्ख बतावेंगे, यह तेरी क्षती होगी. जिनके बीचमें तूं बहुगुणवाला माना जाता है, उनकेही बीचमें छुटाईकू प्राप्त होगा १३ परमार्थ यह है कि जितेन्द्रिय महात्मा महापुरुष अजितेन्द्रिय बहिर्मुखोंकू ऐसा समझेंगे कि शरीर इन्द्रिय प्राण और अन्तःकरणका निरोध करना तो कठिन समझ रक्खा है. रोचकवाक्योंका आश्रय लेकर भोग भोक्ते हैं. धन्य समझ और धन्यसाधन: किंचिन्मात्रभी शास्त्रका तात्पर्य न समझा अग्नीकू अग्निसे बुझाते हैं. अन्तःकरणादिके निरोधकू बखेडा बताते हैं. महात्मालोक ऐसे पुरुषोंकू आलसी प्रमादी विषयी बहिर्मुख मानते हैं. ज्ञानभक्तिक-

मेंका आश्रा लेकर जो बहिर्मुख अजितेन्द्रिय होंगे, तों नीचताकूं प्राप्त होजावेंगे.॥ ३५ ॥

मू॰ अवाच्यवादांश्चबहून्वदिष्यंतितवाहिताः॥
निन्दन्तस्तवसामर्थ्यंततोदुःखतरंनुकिम्॥ ३६॥

तव १ सामर्थ्यम् २ निन्दन्तः ३ तव ४ अहिताः ५ बहून् ६ अवाच्यवादान् ७ च ८ वदिष्यन्ति ९ ततः १० दुःखतरम् ११ किम् १२ नु १३ ॥ ३६ ॥ अ॰ उ॰ तुझकू छोटाभी समझें गे. और तेरे १ पराक्रमकी निन्दा करते हुवे २।३ तेरे ४ वैरी ५ सि॰ तेरे निमित्त ❀बहुतअवाच्यवचनोंकू ६।७ भी अर्थात् न कहनेके योग्य जो वचन तिनकूभी ८ कहेंगे. ९ सि॰ इससे मेरी क्या क्षती होगी, यह शंका करके कहते हैं.❀तिससे १० अर्थात् समर्थ होकर दुर्वाक्य सुननेसे सिवाय और १० विशेष दुःख ११ क्या १२ सि॰होगा.❀नु यह शब्दवितर्कमें बोला जाता है. जैसे कोई किसीकू नानाधिक्कार देकर बोले कि और इसकुकर्मसे सिवाय क्या होगा ऐसेही अर्जुनकू तानादेकर श्रीमहाराज कहते हैं कि दुर्वाक्य सहनेसे सिवाय और क्या दुःख होगा यह इस नुशब्दका तात्पर्यार्थहै. १३ परमार्थ यह है, कि संसारमें जो अजितेन्द्रिय बहिर्मुख हैं, और दैवयोगसे उनकू धन प्राप्त होगयाहै. वा राज्यादिअधिकार मिलगया है,उनकू कोई बुरा न कहे, उनके अवगुण समझकर चुप् रहें. यह नहीं समझना किंतु वेदवेदान्तपातंजलशास्त्र उनकी निन्दा करते हैं. सिवाय उनके सज्जन साधुलोक निस्पृही सब उनकू बुरा समझते हैं.प्रसंगसे कहभीदेते हैं. और जो गृहस्थलोक मुखपर नहीं कहते, तो पीछे बुरा कहते हैं. विचारो इससे सिवाय उन निर्भागोंकू और विशेषदुःख क्या होगा, और उनसे सिवाय और कोन बुरा है. जिनकी वेदशास्त्रमहात्मा बुराई कहें. ॥ ३६ ॥

मू०हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गंजित्वावाभोक्ष्यसेमहीम्॥
तस्मादुत्तिष्ठकौन्तेययुद्धायकृतनिश्चयः॥३७॥

हतः १ वा २ स्वर्गम् ३ प्राप्स्यसि ४ वा ५ जित्वा ६ महीम् ७ भोक्ष्यसे ८ कौन्तेय ९ तस्मात् १० उत्तिष्ठ ११ युद्धाय १२ कृतनिश्चयः १३ ॥ ३७॥ अ० उ० पीछे अर्जुनने कहाथा कि न जानिये ये मुझकू जीतेंगे वा मैं इसकू जीतूंगा उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं, कि तेरा दोनों प्रकार भला होगा. सि० युद्धमें *जो मरगया १।२सि० तूं तो मरकर *स्वर्गकू ३ प्राप्त होगा ४ और ५ सि० जो जीतगया तो *जीतकर ६ पृथिवीकू ७ भोगेगा ८ अर्थात् राज्य करेगा. ८ हे अर्जुन ९ तिसकारणसे १० उठ खडा हो. ११ अर्थात् दोनों प्रकार अपनी भलाई समझकर युद्ध कर. ११ सि० कैसा है. तूं *युद्धके-लिये १२ किया है निश्चय जिसने १३ अर्थात् युद्धकरनेका निश्चय करके तो तूं यहाँ आया है.अब क्यों कायरपना करताहै. तात्पर्य पहलेही अर्जुनने युद्धकरनेका निश्चय करलिया है, कुछ श्रीमहाराजका तात्पर्य युद्ध करानेमें नहीं. तूं युद्धकर खडाहो यह प्रासंगिक लौकिक रीति है. अभिप्राय श्रीमहाराजका परमार्थमें ही है. परमार्थ यह है, कि श्रीमहाराज भक्तोंसे कहते हैं. जो तुम शरीर इन्द्रिय प्राण और अन्तःकरण इनका निरोध करते करते मरगये इस परमधर्ममें तो बडे बडे लोकोंकू प्राप्त होंगे, और जो अंतःकरणादिकू तुमने जीतलिया (वशमें करलिया) तो ज्ञानद्वारा जीवतेही जीवन्मुक्तीका आनन्द भोगोगे. ऐसा विचारकर सावधान होके इन्द्रियादिकोंका निरोधकरो. दोनों पक्षमें आनन्दहै नरशरीर दुर्लभ है. ॥ नरतनुपायविषयमनदेहीं ॥ पलटिसुधातेंशठविषलेहीं. ॥ ३७॥

मू० सुखदुःखेसमेकृत्वालाभालाभौजयाजयौ॥
ततोयुद्धाययुज्यस्वनैवंपापमवाप्स्यसि॥३८॥

सुखदुःखे १ समे २ कृत्वा ३ लाभालाभौ ४ जयाजयौ ५ ततः ६ युद्धाय ७ युज्यस्व ८ एवम् ९ पापम् १० न ११ अवाप्स्यसि १२ ॥ ३८ ॥ अ० उ० पीछे अर्जुनने कहाथा कि युद्ध करनेमें मुझकू पाप होगा, उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं. सुख दुःखकू १ समान २ करके ३ अर्थात् इन दोनोंकू फलमें बराबर समझकर ३ लाभकू और अलाभकू ४ जयकू और अजयकू ५ सि० भी समान समझकर ❀ पीछे उसके ६ युद्धकेवास्ते ७ चेष्टाकर ८ अर्थात् युद्धकर. ८ इसप्रकार ९ पापकू १० नहीं ११ प्राप्त होगा तूं १२ तात्पर्य सुखदुःखका कारण लाभ और अलाभ है. लाभालाभका कारण जय और अजय है. इन सबमें रागद्वेषरहित होकर युद्ध कर. कभी पाप न होगा. परमार्थ यह है कि अन्तःकरणादिके निरोधकालमें सुखदुःखकू इष्टानिष्टके प्राप्तीकू बराबर समझना चाहिये, हर्षशोक न करना. प्रथम अन्तःकरणादिके निरोधकालमें विघ्न दुःख अपमानादि बहुत होते हैं, और फिर सुखसन्मानादिभी बहुत हैं. दोनोंमें हर्षशोकत्यागकरके अन्तःकरणका निरोध करताही रहे. इसप्रकार बन्धनकू नहीं प्राप्त होगे. और जो दुःखसुखविघ्नसन्मानादिके झपट्टेमें आगये वा स्वर्गादिफलमें फँसगये तो फिर बन्धनसे छूटना कठिनहै. तात्पर्य अन्तःकरणादिका निरोध निष्काम होकर करना योग्य है. इसप्रकार बहिरंगकर्मोंके त्यागमें पाप न होगा. ॥ ३८ ॥

मू० एषातेभिहितासांख्येबुद्धिर्योगेत्विमांशृणु ॥ बुद्ध्यायुक्तोययापार्थकर्मबन्धंप्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

एषा १ सांख्ये २ बुद्धिः ३ ते ४ अभिहिता ५ योगे ६ तु ७ इमाम् ८ शृणु ९ पार्थ १० यया ११ बुद्ध्या १२ युक्तः १३ कर्मबन्धम् १४ प्रहास्यसि १५ ॥ ३९ ॥ अ० उ० ग्यारःवें श्लोकसे लेकर तीसवेंश्लोकतक बीसश्लोकोंमें अर्जुनका शोक मोहदूरकरनेकेलिये ब्रह्म-

ज्ञानका उपदेश किया,फिर आठश्लोकोंमें लौकिक न्यायकरके अर्जुनकू समझाया, अब उस लौकिकन्यायकू समाप्तकरके ज्ञाननिष्ठामें अर्जुनकू तत्परकरनेकेलिये ज्ञाननिष्ठाका जो साधन भगवद्भक्त्यादि निष्कामकर्मयोग उसकू फलके सहित निरूपण करतेहैं. हे अर्जुन ग्यारःवें श्लोकसेलेकर तीसवेंश्लोकतक बीसश्लोकोंमें जो तुझकू ज्ञानका उपदेश किया. यह १ आत्मतत्वकेविषय २ ज्ञान ३ तेरेअर्थ ४ तुझसे कहा. ५ सि० मैनें ❋ अर्थात् यहतो मैनें ब्रह्मज्ञानोपदेश किया, परन्तु यह अत्यंत सूक्ष्म अलौकिक आश्चर्यपदार्थ है. जो तेरे समझमें न आयाहो तो इसकी प्राप्ति और समझकेलिये इसका साधन भगवद्भक्त्यादि निष्कामकर्म. योगविषय ६ भी ७ सि० ज्ञानमें अब कहता हूं ❋ इसकू ८ सुन तूं ९ हेअर्जुन १० सि० यह वो ज्ञान तुझकू सुनाता हूं. कि ❋ जिसज्ञानकरके ११। १२ युक्त १३ सि० हुवा तूं ❋ अर्थात् जिसज्ञानका अनुष्ठान करके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा कर्मरूप बन्धकू १४ अर्थात् धर्माधर्मरूपबन्धनकू १४ भलेप्रकार त्याग देगा १५ अर्थात् बन्धनसे छूटजायगा मुक्तहोजायगा. १५ ॥ ३९ ॥

मू० नेहाभिक्रमनाशोऽस्तिप्रत्यवायोनविद्यते ॥ स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात् ॥४०॥

इह १ अभिक्रमनाशः २ न ३ अस्ति ४ प्रत्यवायः ५ न ६ विद्यते ७ अस्य ८ धर्मस्य ९ स्वल्पम् १० अपि ११ महतः १२ भयात् १३ त्रायते १४॥४०॥ अ० उ० जैसे खेतीआदिमें फलपर्यंत अनेकविघ्न होते हैं ऐसेही इस भगवदाराधनादिनिष्कामकर्मयोगमें भी होंगे, तो फिर अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति कठिन प्रतीत होती है. तात्पर्य फलके प्राप्तिपर्यंत यत्न निर्विघ्न समाप्त होना.निष्कामकर्मयोगका कठिन प्रतीत होताहै, यह शंका करके कहते हैं.निष्कामकर्मयोगमें १ सि० किसीप्रकारका बीचमेंही विघ्न होजावे तोभी ❋ प्रार-

म्भका नाश २ नहीं है.३।४ सि॰ जैसे किसीने माघमासमें प्रातःकालस्नानकरनेका प्रारंभ किया और दोचारदिनके पाछे उस महीनेके बीचमें कुछ विघ्न होगया कि जिसकरके वो निष्काम पुरुष महीनाभर स्नान न कर सका तो उस थोडेही कालके स्नान करनेका अर्थात् प्रारंभमात्रकाभी नाश नहीं होता है. तात्पर्य वो सकामकर्मवत् और खेतीआदेकर्मवत् निष्फल नहीं जाता है, एक न एक दिन अवश्यही निष्कामपुरुषकू निष्कामकर्मयोगके फिर सन्मुख करके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठकरके मुक्त करेगा. द्वितीयशंका यह है कि जैसे मंत्रका जप वा पाठ विधिवत् न होसके तो उसमें उलटा पाप होता है, अथवा रोग दूरकरनेके लिये औषधि खाते हैं. जो कदाचित् वैद्यके समझमें रोग न आवे तो उलटा औषधि खानेसे ही प्राणी मर जाता है. यह निष्काम कर्मभी ऐसाही होगा, क्योंकि प्रथम तो धर्मकर्मभक्तिआदिका स्वरूप यथार्थ जानना ही कठीन है. सब पंडितआचार्योंका एक सिद्धान्त नहीं, और जो किसीएक मतमें निश्चयभी किया तो उसकर्मका अनुष्ठान विधिवत् होना कठिन है; और जो दूसरेके वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान किया और बतलानेवालेने बुद्धीके भ्रमसे वा मतमतान्तरकरके खेंचसे यथार्थ न बतलाया तो फलदेना तो पृथक् रहा, उलटा पाप लगनेसे डर लगता है. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं, कि ये दोष सकामकर्मयोगमें है. निष्कामकर्मयोगमें ❋ प्रत्यवाय (पाप) ५ नहीं है ६।७ इस धर्मका ८।९ थोडा १० भी ११ सि॰ अनुष्ठान किया हुवा प्रारम्भमात्रभी ❋ बडे भयसे १२।१३ अर्थात् दुःखालयसंसारसे १३ रक्षा करता है. १४ तात्पर्य भगवदाराधनादि निष्कामकर्मयोग थोडाभी अपने शक्तीके अनुसार किया हुवा अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठाको प्राप्त करके जन्ममरण (दुःखरूपसंसार) से छुडाकर पूर्णब्रह्मपरमानंदस्वरूप

आत्माकूं प्राप्त करता है. पीछले पूर्वपक्षमें कहे हुवे दोष सब सकामकर्मोंमें हैं. निष्कामकर्म और सकामकर्मोंका बडा भेद है.॥४०॥

मू० व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन ॥
बहुशाखाह्यनन्ताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

कुरुनन्दन १ इह२ व्यवसायात्मिका ३ बुद्धिः४ एका५ अव्यवसायिनाम् ६ बुद्धयः ७ अनन्ताः ८ च ९ बहुशाखाः १० हि ११ ॥ ॥ ४१ ॥ अ० उ० जब कि निष्कामकर्मयोगका यह अद्भुतमाहात्म्य आप कहते हो तो सबलोग इसीका अनुष्ठान क्यों नहींकरते. मूर्त्तिमान् परमेश्वरका दर्शन वैकुंठ स्वर्गादिफल क्यों चाहते हैं यह शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं कि हेअर्जुन १ इस मोक्षमार्गमें २ सि० मुमुक्षुअन्तर्मुखव्यवसायीपुरुषोंके विषय ❋ निश्चयस्वरूपवाली ३ अर्थात् निश्चयकरनेवाली आत्माकी ३ बुद्धि ४ अर्थात् ज्ञान ४ एक ५ सि० ही है ❋ तात्पर्य इस अर्थमें जिसबुद्धीका निश्चय है अर्थात् निश्चल है जो बुद्धि इस अर्थमें कि निष्काम भगवदाराधनादिकर्मयोगकरके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञान होकर निःसन्देह परात्परपरमानन्दपूर्णब्रह्मआत्माकू (जिसकू परमगति कहते हैं)प्राप्त होता है जीव. इसका नाम व्यवसायात्मिका बुद्धि है, सो यह मोक्षमार्गमें एकही है, अर्थात् इसएकज्ञानके सिवाय और दूसरा कोई ज्ञान, मोक्षका हेतु नहीं और जिनका यह निश्चय नहीं उनकू.अव्यवसायी बहिर्मुख प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहित कहते हैं. उनके ६ ज्ञान ७ अनन्त ८ और ९ बहुतशाखाभेदवाले १० भी ११ सि० हैं ❋ तात्पर्य वैदिकमार्ग तो सनातनसे एक ही चला आता है, कि जो पूर्वोनिरूपण किया. स्मार्तमतसे उसका विरोध नहीं, और कल्पितमत अनन्त हैं. और एकएकमेंभी नानाभेद हैं. जिसवास्ते नयेमत लोगोंने कल्पित किये हैं. श्रौतस्मार्तसनातनमार्गकू छोड दिया है, इसका हेतु तेंतालिसवें श्लोकमें श्रीमहाराज कहेंगे. ॥ ४१ ॥

मू॰ यामिमांपुष्पितांवाचंप्रवदन्त्यविपश्चितः॥
वेदवादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः॥४२॥

याम् १ वाचम् २ पुष्पिताम् ३ प्रवदन्ति ४ पार्थ ५ इमाम् ६ वेदवादरताः ७ अविपश्चितः ८ न ९ अस्ति १० अन्यत् ११ इति १२ वादिनः १३ ॥४२॥ अ॰ उ॰ प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहित बहिर्मुख अव्यवसायी जिसकू आप कहतेहैं वे क्या बिनाप्रमाणके कर्मउपासना करते हैं, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं यहकि उनके प्रमाणोंकू सुन. सि॰ वेदोंके सिद्धान्तका तात्पर्य जाननेवाले महात्मा व्यवसायिनः ❋ जिसवाणीकू १।२पुष्पिता ३ कहतेहैं. ४ तात्पर्य जैसे किसीवृक्षमें फूल तो बहुत सुंदर दीखे परन्तु फल उसमें नहीं लगता है, वा लगताहैं तो कडवा, ऐसेही वेदोंमें रोचक वाक्य हैं. अर्थात् अर्थवादवालीश्रुति है,सुननेमें तो वे बहुतप्रिय प्रतीत होती हैं फल उनका कुछ नहीं, अर्थात् जो फल उसका अव्यवसायी कहते हैं वो फल उस श्रुतिका नहीं; जैसे व्रततीर्थादिका माहात्म्य अर्थवाद है, तात्पर्य उनका अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रता इसमें हैं, स्वर्गवैकुंठपुत्रादिमें नहीं ऐसेऐसे वाणीकू कि जिसकू वेद पुष्पित कहते हैं हेअर्जुन इसकू ५।६ सि॰ ही अव्यवसायिनः मोक्षका साधन सिद्धान्त कहते हैं. कैसेहैं वे अव्यवसायिनः ❋ वेदवादमें है प्रीति जिनकी ७ अर्थात् वेदोंमें अर्थवाद (रोचकवाक्य) हैं. वे उनकू प्रिय लगते हैं, और वास्ते चरचा करनेके (अपनी पंडिताई दिखानेके) लिये उन अर्थवादोंकू कंठ करलेते हैं ऐसे. ७ अविवेकी मन्दमति बहिर्मुख ८ सि॰ फिर कैसेहैं ये लोक कि आप अज्ञानी बने तो बने, ब्रह्मज्ञानकूभी खंडन करते हुवे ब्रह्मज्ञानियोंकू अज्ञानी बनाते हैं. तात्पर्य वे यह कहते हैं कि जो हमारा मत है अर्थात् भेदसिद्धान्त है इससे सिवाय नहिं ९ है १० अन्यत् ११ सि॰

और कोईमतसिद्धान्त अद्वैतब्रह्मज्ञान ज्ञाननिष्ठा संन्यास जो हम कहते हैं यही सिद्धान्त है ❋ यह १२ कहनेका स्वभाव है जिनका १३ तात्पर्य वेदान्तमें दोष निकालनेका यही बकनेका स्वभाव है जिनका औरभी इनके विशेषण अगले श्लोकमें हैं. ॥ ४२ ॥

मू० कामात्मानःस्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ ४३ ॥

कामात्मानः १ स्वर्गपराः २ जन्मकर्मफलप्रदाम् ३ भोगैश्वर्यगतिम् ४ प्रति ५ क्रियाविशेषबहुलाम् ६ ॥ ४३ ॥ अ० उ० ऐसा अनर्थ वे क्यों करते हैं. इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. कि वे कामी विषयी अर्थात् बहिर्मुख १ सि० हैं. फिर कैसे हैं कि ❋ स्वर्गही है परमपुरुषार्थका अवधि जिनको २ सि० इस विशेषणसे स्पष्ट यह प्रतीत होताहै कि यज्ञ दान व्रत तीर्थ और भगवदाराधनादि जो करते हैं ये तो कैवल्यमोक्षके लिये नहीं करते. किन्तु भोगोंके लिये करते हैं. स्वर्गपद तो उपलक्षण है.अर्थात् वैकुंठ गोलोकादि सावयवलोक सब आगये. पीछले श्लोकमें जो कहाथा कि वे इस पुष्पितावाणीकू सिद्धान्त कहते हैं उस वाणीके विशेषण और भी सुन. कैसी है वो वाणी ❋ जन्मकर्मफलकी देनेवाली ३ सि० हैं.अर्थात् उस वाणीके अनुसार जो कर्म कियाजाता है उस कर्मका यही फल है, कि वारम्वार संसारमें जन्म होना,जन्मही उस कर्मका फल है.फिर कैसी है ❋ भोग और ऐश्वर्य इनके प्राप्तीके प्रति ४।५ सि० तात्पर्य भोगैश्वर्यके प्राप्तीके लिये साधन है वो वाणी. उस वाणीके अनुसार अनुष्ठान करनेसे भोगकी और ऐश्वर्यकी प्राप्ती होती है. फिर कैसी है वो वाणी ❋ क्रियाविशेष बहुत हैं जिसमें ६ सि० अर्थात् उस वाणीमें नानाप्रकारकी क्रिया हैं,और एक एक क्रियाका अन्त नहीं प्रतीत होता है. क्योंकि अनन्त अर्थात् बहुत हैं. हेअर्जुन

उन अव्यवसाय्योंके ऐसे ऐसे वाक्योंका प्रमाण है ऐसी ऐसी वाणी वकेहुवे संसारमें भ्रमते रहते हैं, ऐसे पुरुषोंको साक्षात् मोक्षकी साधनरूप व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है. अगले श्लोकके साथ इसका अन्वय है ❋ ॥ ४३ ॥

मू० भोगैश्वर्यप्रसक्तानांतयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौनविधीयते ॥ ४४ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् १ तया २ अपहृतचेतसाम् ३ समाधौ ४ व्यवसायात्मिका ५ बुद्धिः ६ न विधीयते ८ ॥ ४४ ॥ अ० उ० भेदवादी सदा ब्रह्मज्ञानसे विमुख रहकर संसारमें भ्रमते हैं, यह कहते. हैं श्रीमहाराज. भोग और ऐश्वर्य इनमें जो आसक्त है १ सि०और ❋ तिसकरके २ अर्थात् उसपुष्पितावाणीकरके २ हर.गया है चित्त जिनका ३ अर्थात् उस पुष्पितावाणीकरके उनकी विवेकबुद्धि आच्छादित होगई याने ढकगई है. उनके ३ अन्तःकरणमें ४ व्यवसायात्मिका बुद्धि ५ ।६ नहीं ७ उत्पन्न होती है ८ वा नहीं स्थिर होती. ८ तात्पर्य उनका चित्त शान्त नहीं होता, क्योंकि सदा इस लोक परलोकके विषयोंमें तत्पर रहते हैं. टी० जो समाधान कियाजावे उसकूभी समाधि कहते हैं, इस व्युत्पत्तीसे यहां समाधीका अर्थ अन्तःकरण है. ४ ॥ ४४ ॥

मू० त्रैगुण्यविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥४५॥

त्रैगुण्यविषयाः १ वेदाः २ अर्जुन ३ निस्त्रैगुण्यः ४ भव ५ निर्द्वन्द्वः ६ नित्यसत्त्वस्थः ७ निर्योगक्षेमः ८ आत्मवान् ॥ ९ ॥ ४५ ॥ अ० उ० जब कि वेदोंहीमें पुष्पितावाणी याने रोचक अर्थात् निष्फलवाक्य हैं, तो उन वाक्योंके कहनेवालेका और उनवाक्योंके अनुसार अनुष्ठान करनेवालेका क्या दोष है, यह शंका करके

श्रीमहाराज कहते हैं कि क्या वेदोंमें केवल पुष्पिता वाणीही है, साक्षात् मोक्षका साधन क्या उसमें नहीं. अर्थात् वेदोंमें रोचक वाक्यभी हैं, और साक्षात् मोक्षके साधनमंत्रभी हैं. प्रत्युत मारणउच्चाटनादिमंत्र बहुत हैं. परन्तु मुमुक्षूकू सिवाय साक्षान्मोक्षसाधनोंके और वाक्योंसे कुछ काम नहीं इस गीताशास्त्रमें ब्रह्मविद्या यह साक्षात् मोक्षका साधन निरूपण करताहूं मैं. समस्त वेदवाक्योंसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं, जो उनका प्रमाण दिया जावे. मुमुक्षुका प्रयोजन केवल मोक्षके साधनोंसे है, सोई सुन. सत्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी कामनावाले पुरुषोंके विषय १ सि० भी हैं ❋ वेद २ अर्थात् जैसेकू तैसा फल देनेवालेभी हैं. और साक्षात् मोक्षका साधन भी हैं. वेहैं २ हे अर्जुन ३ सि० परन्तु तुझकू तो मैं ब्रह्मविद्या साक्षात् मोक्षका साधन सुनताहूं. इस समय तूं तो गुणातीत निष्काम ४ हो ५ सि० रोचकवाक्योंके तरफ दृष्टि मत कर, गुणातीत होनेके साधन यह है. ❋ द्वन्द्वरहित ६ सि० हो. अर्थात् प्रारब्धवशात् जो सुखदुःखइष्टानिष्टादि प्राप्त हो सबकू सहनकर. सुखदुःखादिके प्राप्तीमें हर्ष विषादके वश मतहो. निर्द्वन्द्व होनेमें हेतु यह साधन है कि ❋ नित्यसत्त्व जो आत्मा उसमें स्थित ७ सि० हो. अर्थात् आत्मनिष्ठ हो, अथवा सदा सत्त्वगुणमें दीर्घकालस्थिति होसक्ती है, इसीवास्ते यह कहते हैं. कि ❋ योगक्षेमरहित ८ सि० हो. अर्थात् जो पदार्थ लौकिक प्राप्त नहीं उसके प्राप्तीका तो उपाय मत कर, और जो प्राप्त है उसके रक्षामें प्रयत्न मत कर. पूर्वोक्तसाधनोंका हेतुं यह साधन है. कि ❋ अप्रमत्त ९ सि० हो. अर्थात् प्रमादी प्रमत्त मत हो. सदा चैतन्य अनालस्य रहना योग्य है. विषयोंसे विमुख होकर आत्माके सन्मुख होना चाहिये. पूर्वोक्तसाधन जिसको नहीं उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्न होना कठिन है. ❋ ॥ ४५ ॥

मू० यावानर्थउदपानेसर्वतःसंप्लुतोदके॥ तावान्सर्वेषुवेदेषुब्राह्मणस्यविजानतः॥ ४६॥

यावान् १ अर्थः २ उदपाने ३ सर्वतः ४ संप्लुतोदके ५ तावान् ६ सर्वेषु ७ वेदेषु ८ विजानतः ९ ब्राह्मणस्य १० ॥ ४६ ॥ अ० उ० इसलोकपरलोकके सुन्दरभोगोंसे हटाकर निष्काम गुणातीत होना आप कहते हो, इसमें क्या आनन्द है. यह तो रूखीसूखी शिला प्रतीत होती है. सुन्दरकर्म उपासना करके स्वर्गवैकुंठादिमें जाकर आनन्द भोगना योग्य है. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं. कि सि० जैसे ❋ जितना १ प्रयोजन २ उदपानमें ३ सि० जगेजगे यत्रकुत्र भ्रमनेसे सिद्ध होता है अर्थात् जलपान कियाजावे जिसमें उसकू उदपान कहते हैं. कूपसरसरितादिकोंका नाम उदपान है. कूपादिकोंके जलोंमें स्नान करना तीरना और नावका चलाना इत्यादि प्रयोजन एकजगे सिद्ध नहीं होसक्ता. जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है तात्पर्य जितना प्रयोजन उदपानमें जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है. वो ❋ समस्त ४ समुद्रमें ५ सि० एकजगेही सिद्ध होजाता है तात्पर्य जैसे समुद्रमें सब प्रयोजन उदपानोंका सिद्ध होजाता है. तैसाही जितना ❋ सब वेदोंमें ६।७ सि० जो फल है. अर्थात् समस्तवेदोक्तकर्म उपासनायोगादिका अनुष्ठान करनेसे जो फल (जगे जगे स्वर्गवैकुंठादिमें भ्रमनेसे) परिछिन्न आनन्द प्राप्त होता है ❋ उतनाही ८ अर्थात् वो सब फल प्रत्युत उससे भी विशेष पूर्णनिरतिशयानन्दफल ८ परमार्थतत्त्वके जाननेवाले परमहंसब्रह्मविज्ञानीब्राह्मणकू ९।१० सि० प्राप्त होता है. तात्पर्य स्वर्गवैकुंठादि साधन हैं आनन्दके. मुख्यफल परमानन्द है. सोई गुणातीत निष्काम ब्रह्मज्ञानीका स्वरूप है. पूर्णपरमानन्द विद्वानोंकोही प्राप्त होता है. सिवाय ब्रह्मविदोंके औरोंकू पूर्णपरमानन्द नहीं प्राप्त होता है. जैसे कूपादि

जलोंसे सब प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है. इसी हेतूसे गुणातीत निष्काम ब्रह्मनिष्ठ होनाही सबसे श्रेष्ठ है ❋ ॥ ४६ ॥

मू० कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचन ॥
माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसंगोस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

ते १ अधिकारः २ कर्मणि ३ एव ४ मा ५ फलेषु ६ कदाचन ७ कर्मफलहेतुः ८ मा ९ भूः १० ते ११ अकर्मणि १२ संगः १३ मा १४ अस्तु १५ ॥ ४७ ॥ अ० उ० जो ब्रह्मज्ञानीकूं सब फलकी प्राप्ति होती है, तो ब्रह्मज्ञानकाही अनुष्ठान करके इसलोक परलोकके सब भोगोंकू भोगना योग्य है. अल्पफलदायक ऐसे कर्म उपासना और योगादिका अनुष्ठान करना कुछ आवश्यक नहीं प्रयोजन तो हमारा फलसे है.सो ज्ञाननिष्ठासेही प्राप्त हो जायगा,यह शंकाकरके श्रीमहाराज कहते हैं. कि तेरा १ अधिकार २ सि० तो ❋ कर्ममें ३ ही ४ सि० है. और नहिं है ५फलमें ६कभी७सि०तेरा अधिकार.अर्थात् साधनअवस्थामें सिद्धअवस्थामें वा किसीअवस्थामेंभी तेरा अधिकार स्वर्गवैकुंठादिफलभोगोंमें नहीं. क्योंकि तूं मुमुक्षु है. तूंनें परमश्रेयका साधन मुझसे बूझाहै. हे अर्जुन मुमुक्षूका अधिकार अन्तःकरणके शुद्धीके लिये कर्मोंमें तो है, परंतु स्वर्गवैकुंठादिके भोगोंमें अधिकार नहीं. क्योंकि प्रथमतो वे अनित्यादिदोषोंकरके दूषित हैं, और मोक्षमें प्रतिबन्ध हैं, इसहेतूसे ❋ कर्मोंके फलमें हेतू८मत्९ हो. १०अर्थात् मनमें कर्मोंके फलकी तृष्णा मत रख,कि जिससे कर्मोंके फलके प्राप्तीका हेतु तुझकू होना पडे. तात्पर्य कर्मोंके फलमें प्राप्तीमें हेतु तृष्णा है, उसकू त्याग. और १० तेरा ११ अकर्ममें १२ प्रीति याने निष्ठा १३ मत १४ हो १५ अर्थात् जबतक अन्तःकरण शुद्ध होवे, तबतक कर्ममें तेरी निष्ठा रहे. यह उपदेश भी है, और आशीर्वाद भी है, वास्ते निर्विघ्नताके. ॥ ४७ ॥

मू० योगस्थःकुरुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाधनंजय॥
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते॥४८॥

धनंजय १ योगस्थः २ संगम् ३ त्यक्त्वा ४ सिद्ध्यसिद्ध्योः ५ समः ६ भूत्वा ७ कर्माणि ८ कुरु ९ योगः १० समत्वम् ११ उच्यते १२ ॥ ४८ ॥ अ० उ० कर्मकरनेका विधि कहतेहैं. हे अर्जुन १ योगमें स्थित हुवा २ सि० कर्मोंमें और कर्मोंके फलमें ❋ आसक्तीकू ३ त्यागकर ४ सि० और कर्मोंकी ❋ सिद्धि और असिद्धीमें ५ सम होकर ६।७ कर्मोंकू ८ कर. ९ योग १० समताकू ११ कहतेहैं. १२ तात्पर्य समतामें स्थित होकर कर्म कर. ॥ ४८ ॥

मू० दूरेणह्यवरंकर्मबुद्धियोगाद्धनंजय॥
बुद्धौशरणमन्विच्छकृपणाःफलहेतवः॥ ४९ ॥

धनंजय १ बुद्धियोगात् २ कर्म ३ दूरेण ४ हि ५ अवरम् ६ बुद्धौ ७ शरणम् ८ अन्विच्छ ९ फलहेतवः १० कृपणाः ११ ॥४९॥ अ० हेधनंजय १ ज्ञानयोगसे २ कर्म ३ अत्यन्त ४।५ निकृष्ट ६ सि० है. अर्थात् श्रेष्ठ नहीं. इसवास्ते ❋ ज्ञानमें ७ रक्षाकरनेवालेकी ८ प्रार्थनाकर. ९ तात्पर्य अभयप्राप्तीका जो कारण परमार्थज्ञानका उसकी प्रार्थना (जिज्ञासाकर) उसको शरणहो. परमार्थज्ञानका आश्रा ले. कामनावाले फलकेतृष्णावाले १० दीन याने अज्ञानी ११ सि० होते हैं ❋ तात्पर्य कर्मोंसे अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ होना चाहिये स्वर्गादिकी इच्छा नहीं रखना. ॥ ४९ ॥

मू० बुद्धियुक्तोजहातीहउभेसुकृतदुष्कृते॥
तस्माद्योगाययुज्यस्वयोगःकर्मसुकौशलम्॥५० ॥

बुद्धियुक्तः १ इह २ सुकृतदुष्कृते ३ उभे ४ जहाति ५ तस्मात् ६ योगाय ७ युज्यस्व ८ योगः ९ कर्मसु १० कौशलम् ११ ॥५०॥ अ० ज्ञानयुक्त १ जीतेंहि २ पुण्य और पाप इन दोनोंकू ३।४ त्या-

गदेताहै. ५ तिस कारणसे ज्ञानयोगकेवास्ते ७ प्रयत्नकर ८ ज्ञानयोग ९ कर्मोंमें १० चतुरता ११ सि० है *तात्पर्य कर्मकरनेमें चतुरता क्याहै कि बन्धनरूप कर्मोंमेंसे ज्ञानकू प्राप्त होजाना. अर्थात् कर्म करके अकर्म होजाना यही कर्म करनेमें चतुरता है. नहीं तो जो कर्म करनेसे इसी जन्ममें ब्रह्मज्ञान न हुवा तो कर्मोंका करना निष्फल हुवा.

मू० कर्मजंबुद्धियुक्ताहिफलंत्यक्त्वामनीषिणः ॥
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताःपदंगच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

बुद्धियुक्ताः १ हि २ मनीषिणः ३ कर्मजम् ४ फलम् ५ त्यक्त्वा ६ जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः ७ अनामयम् ८ पदम् ९ गच्छन्ति १० ॥५१॥
अ० ज्ञानयुक्त १ हि २ पंडित ३ कर्मसे प्राप्त हुवे ४ फलकू ५ त्यागकरके ६ जन्मरूपबन्धनसे छूटें हुवे ७ समस्तउपद्रवरहितपदकू ८। ९ प्राप्त होते हैं. १० तात्पर्य कर्मोंसे जो उत्पन्न होते हैं, (प्राप्त होते हैं) स्वर्गवैकुंठादि फलविशेष उनका त्यागकरके ज्ञानी पंडितही मुक्त होते हैं, कभी उपासकयोगी पंडित अपने किये हुवे कर्मोंके फलकू प्राप्त होते हैं, मोक्षकू नहीं प्राप्त होते. ॥ ५१ ॥

मू० यदातेमोहकलिलंबुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदागन्तासिनिर्वेदंश्रोतव्यस्यश्रुतस्यच ॥ ५२ ॥

यदा १ ते २ बुद्धिः ३ मोहकलिलम् ४ व्यतितरिष्यति ५ तदा ६ श्रोतव्यस्य ७ श्रुतस्य ८ च ९ निर्वेदम् १० गन्तासि ११ ॥५२॥
अ० उ० यह कर्म करते करते मैं किसकालमें ब्रह्मज्ञानको अधिकारी हूंगा, और मेरा चित्त शान्त होकर आत्मामें कब आत्माकार होगा, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज अर्जुनकेप्रति दोश्लोकोंमें यह कहते हैं. जिसकालमें १ तेरी २ बुद्धि ३ मोहरूपकीचकू ४ भलेप्रकार तरेगी. ५ तात्पर्य देहादिपदार्थोंमें जो तेरी आत्मबुद्धि है, देहादिपदा-

थोंकू जो तूं अपना आत्मा समझता है, वा उनमें ममता करना, वा उनकेसाथ आत्माकी एकता करना, वा तादात्म्याध्यास करना, इसीकू मोहरूपकींच कहते हैं. यह अविवेक तेरा जब दूर होगा, तिसकालमें ६ श्रुत और श्रोतव्यके ७।८।९ वैराग्यकूं १० प्राप्त होगा तूं. ११ अर्थात् पीछे जो जो सुनाहुवा है, और आगेकू जो जो सुननेके योग्य समझ रक्खा है, इन सबसे तुझकू वैराग्य होजायगा. न कुछ सुननेकी इच्छा करेगा, और न पीछले सुनेमें कुछ संशय रहेगा. इसप्रकार शुभाशुभकर्मोंसे उपराम होकर जब फिर ब्रह्मज्ञानकू प्राप्त होगा. ॥उक्तंच॥ग्रन्थमभ्यस्यमेधावीविचार्यचपुनः पुनः॥ पलालमिवधान्यार्थीत्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥ इसका अर्थ यह हैकि मुमुक्षु प्रथम ग्रन्थोंका भलेप्रकार अभ्यासकरके वारम्वार विचार करे. फिर अपने स्वरूपकू प्राप्त होकर ग्रन्थोंकू त्याग देता है. जैसे धानकी इच्छावाला पुरालकू त्याग देताहै, और धानका ग्रहणकरता है, श्रुतश्रोतव्यसे वैराग्य होना, इसीकू कहते हैं. ॥ ५२ ॥

मू० श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला ॥
समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

यदा १ ते २ बुद्धिः ३ समाधौ ४ निश्चला५ अचला ६स्थास्यति ७तदा ८ योगम् ९ अवाप्स्यसि१० श्रुतिविप्रतिपन्ना११ ॥५३॥अ० सि० और जिस कालमें १ तेरी२ बुद्धि ३ आत्मामें ४ विक्षेपरहित ५ विकलपरहित ६ स्थित होगी ७ तिसकालमें ८ समाधियोगकू ९ प्राप्तहोगा तूं. १० सि०अबतक कैसी है तेरी बुद्धिकी अनेकशास्त्रपुराणेतिहासादि, और श्रुतिस्मृत्यादिकोंका * श्रवणकरनेसे विक्षेपकू प्राप्त हुई है. ११ तात्पर्य जबतक पूर्वापरवाक्योंका अविरोधसमन्वय नहीं समझेगा, तबतक चित्तकी शांति कभी न होगी, और वेदशास्त्रमें अवश्य श्रद्धाविश्वासकरके आत्मनिष्ठ होना योग्य है. रोचकवाक्योंमें नहीं अटकना यही इसप्रकरणका अभिप्राय है. ॥ ५३ ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्यकाभाषासमाधि-स्थस्यकेशव ॥ स्थितधीःकिंप्रभाषेतकिमासीतव्र जेतकिम् ॥ ५४ ॥

केशव १ समाधिस्थस्य २ स्थितप्रज्ञस्य ३ का ४ भाषा५स्थि-तधीः ६ किम् ७ प्रभाषेत ८ किम् ९ आसीत १० किम् ११ व्रजे-त १२ ॥ ५४ ॥ अ० उ० ब्रह्मज्ञानीके लक्षण जाननेकी इच्छा करके अर्जुन श्रीभगवानसे प्रश्न करता है. हे केशव १ सि० स्वभावसेही जो * निर्विकल्पसमाधीमें स्थित है सि० और अहंब्रह्मास्मि इस-महावाक्यार्थमें दृढ * स्थित है बुद्धि जिसकी तिस्की ३ क्या४ भाषा ५ सि० है, अर्थात् और लोग उसकू कैसा कहते हैं. कहाजावे अन्यकरके उसकू भाषा कहते हैं. तात्पर्य उसका लक्षण क्या है; और आत्मस्वरूपमेंही * निश्चल है बुद्धि जिसकी सो ६ कैसे ७ बोलताहै, ८ कैसे ९ बैठताहै, १० कैसे ११ चलता है. १२ अर्थात् उसज्ञानीका बोलना बैठना और चलना किसप्रकारका है, यह तीन प्रश्न उसज्ञानीकेप्राति हैं, कि जो सविकल्पसमाधीमें स्थित है. और पहला प्रश्न निर्विकल्पसमाधिवालेज्ञानीकेप्रति है. तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी-की किसीसमय निर्विकल्पसमाधी स्वाभाविक बनी रहती है, किसी समय प्रयतसे और किसीसमय सविकल्प अंतःकरणकी वृत्ति होजा-तीहै ज्ञानीकी. अर्जुन दोनों प्रकारके ज्ञानियोंका लक्षण बूझताहै. ५४॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ प्रजहातियदाकामान्सर्वा-न्पार्थमनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मनातुष्टःस्थि-तप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

पार्थ १ यदा २ सर्वान् ३ कामान् ४ प्रजहाति ५ मनोगतान् ६ आत्मना ७ आत्मनि ८ एव ९ तुष्टः १० तदा ११ स्थितप्रज्ञः १२ उच्यते १३ ॥ ५५ ॥ अ० उ० साधककेलिये जो ज्ञानके साधन

हैं, वेही सिद्धके स्वाभाविक लक्षण हैं. अर्जुनके प्रश्नके अनुसार ज्ञानीका लक्षण श्रीमहाराज निरूपण करते हैं,और साधककेलिये यही अन्तरंगज्ञानके है. अध्यायके साधन समाप्तिपर्यन्त. प्रथम अब प्रथम प्रश्नका उत्तर, कहतेहैं दोश्लोकोंमें. हे अर्जुन १ जिसकालमें २ सब-कामनाकू ३ । ४ त्यागदेताहै ५ सि० जो महापुरुष कैसी हैं वे कामना कि इसलोकपरलोकके पदार्थोंकी सूक्ष्मवासना ❋ मनमें प्रवेश होरहीं है ६ तात्पर्य जिसकालमें सूक्ष्मवासनासहित समस्त (इसलोकपरलोककी) वासना त्यागदेताहै, और पूर्णानन्दस्वरूप ऐसे आत्मा करके ७ आत्मामें ८ हि ९ तृप्त १० सि० है. जिसकालमें जो महापुरुष उसकू ❋ तिसकालमे ११ स्थितप्रज्ञ १२ कहते हैं. १३ तात्पर्य ब्रह्माकारवृत्तीमें निश्चल होरहीहै बुद्धि जिसकी उसकू महात्मा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं और निर्विकल्प समाधिसहित ब्रह्मज्ञानका साधन समस्तवासनाका त्याग, सार है. वासनासंपरित्यागः यही वासिष्ठमेंभी कहा है. ॥ ५५ ॥

मू० दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषुविगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधःस्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखेषु १ अनुद्विग्नमनाः २ सुखेषु ३ विगतस्पृहः ४ वीतरागभयक्रोधः ५ स्थितधीः ६ मुनिः ७ उच्यते ८ ॥५६॥ अ० दुःखोंमें १ नहीं होता है, उद्विग्न, या क्षोभित, या विक्षिप्त, मन जिसका २ सुखोंमें ३ नाश होगईहै इच्छा जिसकी ४ जाते रहे हैं राग भय और क्रोध जिससे ५ सि० ऐसेमहात्माकू ❋ ब्रह्मज्ञानी ६ परमहंस या संन्यासी ७ कहते हैं. ८ सि० विद्वान् पंडित और दुःखसुखादिमें सम होना यही ब्रह्मज्ञानके साधन हैं. ❋ ॥ ५६ ॥

मू०यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम् ॥
नाभिनन्दतिनद्वेष्टितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

यः १ सर्वत्र २ अनभिस्नेहः ३ तत् ४ तत् ५ शुभाशुभम् ६ प्राप्य ७ न ८ अभिनन्दति ९ न १० द्वेष्टि ११ तस्य १२ प्रज्ञा १३ प्रतिष्ठिता १४ ॥ ५७ ॥ अ० उ० कैसे बोलता है ज्ञानी, इस दूसरे प्रश्नका उत्तर कहते हैं. जो १ सर्वत्र २ सि० पुत्र पोथी और देहादिपदार्थोंमें ✻ स्नेह (प्रीति) रहित ३ सि० है. और ✻ तिसतिस ४।५ शुभकू और अशुभकू ६ प्राप्त होकर ७ अर्थात् जो शुभपदार्थ है, याने अपनेकू इष्ट प्रिय अनुकूल ऐसाहै, तिसकू प्राप्त होकर तो ७ नहीं ८ हर्ष करताहै. ९ सि० और जो अशुभ पदार्थ है, याने अपनेकू अनिष्ट अर्थात् प्रतिकूल है, तिसकू प्राप्त होकर ✻ नहीं १० द्वेष करता है. ११ सि० जो महापुरुष ✻ तिसकी १२ बुद्धि १३ निश्चल १४ सि० है ब्रह्मस्वरूपमें, और जो पूर्वोक्तसाधन करेगा उसकी बृत्ति ब्रह्माकार हो जावेगी ✻ तात्पर्य बोलनेसे रागद्वेषादिगुणदोष सबके प्रतीत हो जाते हैं, यह बात प्रसिद्ध है. परन्तु ज्ञानीके नहीं प्रतीत होते हैं, क्यों कि ज्ञानी हर्षद्वेषादिके कारण हुवे सन्तेभी उदासीन हुवा बोलता है. यह उदासीनवत् बोलनाही ज्ञानीका लक्षण है. इत्यभिप्रायः ॥ ५७ ॥

मू० यदासंहरतेचायंकूर्मोंगानीवसर्वशः ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

यदा १ अयम् २ सर्वशः ३ इन्द्रियाणि ४ इन्द्रियार्थेभ्यः ५ संहरते ६ च ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १० कूर्मः ११ अंगानि १२ इव १३ ॥ ५८ ॥ अ० जिसकालमें १ यह २ सि० योगी ✻ सबतरफसे ३ इन्द्रियोंकू ४ इन्द्रियोंके अर्थोंसे ५ संकोचकर लेता है, ६ और ७ सि० चित्तमें स्मरणभी नहीं करता है, तिसकालमें ✻ तिसविद्वानकी ८ बुद्धि ९ निश्चल १० सि० सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसे आत्मामें होतीहै. इसीसाधनसे मुमुक्षूकी हो जायगी. इन्द्रियोंके निरोधमें विद्वानकूं आ-

यास दुःख नहीं होता है, इसबातकू दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं श्रीमहाराज * कछवा ११ सि० अपने हाथ पांव * अंगोंके १२ जैसे १३ सि० स्वाभाविकसंकोच करलेता है, इसीप्रकार विद्वान् स्वाभाविक विषयोंसे इन्द्रियोंकू निरोध करलेताहै * ॥ ५८ ॥

मू० विषयाविनिवर्तन्तेनिराहारस्यदेहिनः॥ रसवर्जंरसोप्यस्यपरंदृष्ट्वानिवर्तते ॥ ५९ ॥

निराहारस्य १ देहिनः २ विषयाः ३ विनिवर्तन्ते ४ रसवर्जम् ५ अस्य ६ परम् ७ दृष्ट्वा ८ रसः ९ अपि १० निवर्तते ११ ॥५९॥
अ० उ० इन्द्रियोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति न होना यह लक्षण जो ब्रह्मज्ञानीका श्रीमहाराज कहते हैं, इसमें तो अतिव्याप्ति दोष आता है. क्योंकि ऐसे तो निराहारी रोगीभी होतेहैं यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं कि, निराहारीजीवके १।२ सि० भी * विषय ३ निवृत्त हो जाते हैं. ४ सि० यह तो सत्य है, परन्तु * रसवर्जित ५ सि० निवृत्त होते हैं * अर्थात् विषयोंसे राग उसका नहीं दूर होता है. तात्पर्य विषयोंमें उसकी तृष्णा और सूक्ष्मकामना बनी रहती है. और इसब्रह्मज्ञानीका ६ पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्दआत्माकू ७ देखके ८ आर्थात् आनन्दस्वरूपआत्माकू प्राप्तहोकर ज्ञानीका ८ रस ९ भी १० निवृत्त होजाताहै. ११ सि० इसप्रकार समझनेसे पूर्वोक्तलक्षणमें अतिव्याप्तिदोष नहीं * ॥५९॥

मू० यततोह्यपिकौन्तेयपुरुषस्यविपश्चितः ॥
इन्द्रियाणिप्रमाथीनिहरन्तिप्रसभंमनः ॥६०॥

कौन्तेय १ यततः २ हि ३ विपश्चितः ४ पुरुषस्य ५ अपि ६ इन्द्रियाणि ७ प्रमाथीनि ८ प्रसभम् ९ मनः १० हरन्ति ११ ॥६०॥
अ० उ० विनाइन्द्रियोंके संयम किये ज्ञान होना दुर्लभ है, इसवास्ते साधनअवस्थामें तो इन्द्रियोंके निरोध करनेमें अत्यंत प्रयत्न

करना योग्य है, यह कहते हैं दोश्लोकोंमें हेअर्जुन १ सि० मोक्षमें ❋प्रयत्न करनेवालेकी २ सि० इन्द्रिय❋भी ३ सि० और❋वि-द्वानविवेकी पुरुषके ४।५ भी ६ इन्द्रिय ७ प्रमथनस्वभाववाले याने क्षोभकरनेवाले ८ बलकरके ९ मनकू १० हर लेतेहैं. ११ अर्थात् जबरदस्तीसे मनकू विषयोंमें विक्षिप्त करदेते हैं.जबकि विद्वानके इ-न्द्रियभी विद्वानके मनकू विषयोंमें विक्षिप्त करदेतेहै, तो फिर मुमु-क्षुसाधककू तो साधनअवस्थामें भलेप्रकार चैतन्यरहकर प्रयत्न कर-ना योग्य है.इतिहास एकसमय व्यासजी जैमिनीकू (अपने शिष्यकू) यही श्लोकसुना रहेथे.जैमिनीजीने कहा की आपका कहना तो स-व सत्य है. परन्तु यह नहीं हो सक्ता की जो इंद्रिय विद्वान्के मन-कूभी विषयोंमें विक्षिप्त करदेवें अविद्वानके मनकू विक्षिप्त करसक्ते हैं. व्यासजीने बहुत उनकू समझाया, परन्तु व्यासजीके इसवाक्यमें उनकू विश्वास नआया. व्यासजीने कहा कि इस श्लोकका अर्थ फिर किसीकालमें तुमकू समझावेंगे, यह कहकर चलदिये. उसीदिन दो-घडीदिन रहे ऐसी मायारचि की दसग्यारह स्त्री तरुण मायाकी रचकर और आपभी एक सुन्दरस्वरूपस्त्रीबनकर,और जैमिनीके कुटीके सा-मने जाकर हंसी, चोहल खेल बिहारका प्रारम्भ करादिया. जिसकाल-में बारीकवस्त्र उनस्त्रियोंका पवनसे जो उडा और गेंद उछालते हुवे जो हाथ उन स्त्रियोंने ऊपरको किये उसकालमें उदर, जंघा, स्तन, इत्यादिअंग उनस्त्रियोंके जैमिनीजीकू दीख गये. फिर उसीकालमें ऐसा बादल हो गया जैसा भादोंमें होता है. अंधेरा होगया, मन्दमन्द बरसने लगा, पवन चलने लगा, वे सबमायाकी स्त्री तो लोप हो गईं, व्यासजीका जो स्वरूपस्त्रीका बना हुवाथा वोही एक रहगया. सो व-ह स्त्रीजैमिनीजीके पास गई, और कहा कि महाराज मेरे संगकी सहेलीन जानियेकहां गई, मैं अकेली रहगईहूं अब रातकी कहां जाउं आप आज्ञा करो तो रातभर एकमकानमें मैं भी पडी रहूंगी

प्रथम तो जैमिनीजीने उसकू रात्रीके समय अपने पास रखनेको बहुत मना किया, फिर उसकी दीन बोली सुनकर कुछ दया आगई उसस्त्रीसे यह कहा कि इसदूसरे मकानमें जाकर भीतरसे सांकल लगा ले. यहां एकभूत रात्रीके समय आयाकरता है. वो मेरे सरीखी बोली बोलेगा, उसके कहनेसे किवाड मत खोलिये, नहीं तो वो भूत तुझकू खा जायगा. व्यासजीने मनमें कहा कि विद्वान होनेमें तो इसके सन्देह नहीं, यततो बडा किया है, जैमिनीजीका वो वाक्य सुनकर मकानके भीतर जाकर भीतरसे सांकल लगाय लीई उसस्त्रीने. वो स्त्रीरूपीव्यास फिर निजस्वरूप (व्यास) होकर ध्यानमें बैठ गये. जैमिनीजी जब ध्यान करने बैठे, तब उस स्त्रीकी याद होगई बारम्वार मनकू निरोध करें, मन शान्त ही नहो. जैमिनीजी ध्यान जप छोडकर उठे, और उस मन्दिरके द्वारपर जाकर कहा, कि हे प्रिये मैं जैमिनीहूं तुझसे बचनेके लिये भूतकी झूंटी कथा तुझकू सुनादिईथी. अब तूं बेसन्देह कपाट खोलदे. तेरे बिना मुझकू निद्रा नहीं आती है. इसीप्रकार प्रार्थना करते करते हारगये. मारे काम और विरहके फिर कोठेपर जाकर छत उखाडकर भीतर कूद पडे. व्यासजीने एक थप्पड जैमिनीजीके मुखपर मारकर कहा कि तूं विद्वान् वा अविद्वान्. जैमिनिजी लज्जाकू प्राप्त हुवे. व्यासजीने कहा कि तुह्मारे विद्वत्तामें और साधुतामें सन्देह नहीं जो चाहिये था वोही तुमने किया. कदाचित् इसप्रकार विद्वान् धोखा खाकर अनर्थकर बैठे उसकू कभी प्रत्यवाय याने पातक नहीं. थोडेदिन हुवे ऐसीही एक व्यवस्था दक्षणदेशमें हुई, उसकूभी सुनो. दैवयोगसे एक स्त्री भूली हुई. रात्रीके समय किसीमहात्माके कुटीपर चली आई. महात्माने इसीप्रकार भूतकी कथा सुनाकर दूसरे मकानमें सुवा दीई. रात्रीके समय थोडी रात रहे वे महात्माभी छत उखाडकर कूदे. सो उनके शरीरमें एक लकडी घुस गई, उससे बडा भारी घाव हो गया. वो स्त्री इनकू पह-

चानकर घबराई. पछताती हुई कहने लगी कि मुझसे बडा अपराध हुवा. जो किवाड न खोले. महात्माने उसकू समझा दिया, और यह कहा, कि तूं शोच मत कर. और जो मैं मर जाऊं तो यह लिखा हुवा मेरा लोगोंकू दिखा देना. यह कह उसीसमय महात्माने अपने रक्तसे वो सब व्यवस्था संस्कृत श्लोकोंमे लिख दीई. नाम उसव्यवस्थाका रक्तगीता लिखकर परमधामकू प्राप्त हुवे. सो वो रक्तगीता प्रसिद्ध है. और वो संसारसे उपराम करनेवाली है. तात्पर्य सारार्थ उसकां यही है कि जो इसश्लोकका अर्थ है. ॥ ६० ॥

मू० तानिसर्वाणिसंयम्ययुक्तआसीतमत्परः ॥ वशेहियस्येन्द्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

तानि १ सर्वाणि २ संयम्य ३ युक्तः ४ मत्परः ५ आसीत ६ यस्य ७ इन्द्रियाणि ८ वशे ९ तस्य १० हि ११ प्रज्ञा १२ प्रतिष्ठिता १३ ॥ ६१ ॥ अ० उ० जब कि इन्द्रिय यह अनर्थ करते हैं, तो इसीवास्ते तिन सब इन्द्रियोंकू १।२ सि० बिषयोंसे ❀ रोक करके ३ सावधान हुवा ४ मुझ सच्चिदानन्दपरायण ५ सि० हुवा. अर्थात् मैं सच्चिदानन्दस्वरूप अद्वैत हूं, सिवाय मुझ सच्चिदानन्दपूर्णब्रह्मके और कुछ पदार्थ तीनों कालमें नहीं. इसध्यानमें तत्पर हुवा ❀ बैठता है. ६ जिसके ७ इन्द्रिय ८ बशमें ९ सि० हैं ❀ तिसकी १० हि ११ बुद्धि १२ निश्चल १३ सि० है, सच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्ममें वो ज्ञानी कैसे बैठता है, इसप्रश्नका उत्तर इसमंत्रमें कहा ❀ तात्पर्य ज्ञानी सब इन्द्रियोंकूनिरोध करके आत्मामें मग्न हुवा बैठा रहता है. ॥ ६१ ॥

मू० ध्यायतोविषयान्पुंसःसंगस्तेषूपजायते ॥ संगात्संजायतेकामःकामात्क्रोधोभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

विषयान् १ ध्यायतः २ पुंसः ३ तेषु ४ संगः ५ उपजायते ६ संगात् ७ कामः ८ संजायते ९ कामात् १० क्रोधः ११ अभिजायते॥ ॥ १२ ॥ क्रोधात् १ संमोहः २ भवति ३ संमोहात् ४ स्मृतिविभ्रमः ५ स्मृतिभ्रंशात् ६ बुद्धिनाशः ७ बुद्धिनाशात् ८ प्रणश्यति ९॥६२॥ ॥ ६३ ॥ अ० उ० इन्द्रियोंके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होताहै उसकूतो निरूपण किया. अब अन्तःकरणके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होता है, सो कहते हैं दोश्लोकोंमें. सि० गुणबुद्धीकरके ❋ विषयोंका ध्यान करनेसे १।२ पुरुषकी ३ तिनमें ४ अर्थात् स्त्रीशब्दादिविषयोंमें ४ आसक्ति ५ हो जातीहै. ६ आसक्त हो जानेसे ७ सि० फिर अधिक ❋ कामना ८ होजातीहै. ९ कामनासे १० क्रोध ११ सि० उत्पन्न होताहै ❋ ॥ ६२ ॥ क्रोधसे १ अविवेक २ होजाताहै. ३ अर्थात् मुझकू यह करना योग्य है, वा नहीं, इस विचारका अभाव होजाता है. अविवेक होनेसे ४ स्मृतीका विभ्रम ५ सि० होजाता है. अर्थात् जो कुछ शास्त्र आचार्योंसे सुन रक्खाथा उस अर्थके स्मृतीका अभाव होजाता है. उससमय कुछ नहीं स्मरण होता है, सिवाय उसविषयके. कि जिसका चितवन करनेसे जिसविषयमें चित्त आसक्त होगया है, फिर ❋ स्मृतिका अभाव होजानेसे ६ वा विचलजानेसे वा भ्रंश होजानेसे ६ बुद्धीका नाश ७ सि० हो जाताहै. अर्थात् समझकर फिरभी चैतन्य होजावे यह बुद्धि नहीं रहती है ❋ बुद्धीका नाश होनेसे ८ नाश होजाता है. ९ सि० वोही पुरुष. जिसका विषयोंमें चितवन करनेसे सूक्ष्मसंग होगयाथा. अर्थात् वो पुरुष मोक्षमार्गसे भ्रष्ट होता है. उसतरफसे तो मानो मर गया. ऐसे आदमीकू मुरदेके बराबर समझना चाहिये, कि जो सच्चिदानन्दस्वरूपसे विमुख होकर विषयोंके सन्मुख है, वो जीताहुवाही मुरदाहै. क्यौं कि परमपुरुषार्थ जो मोक्ष है उसके योग्य नहीं. तात्पर्य सब अनर्थोंका और पापदुःखोंका मूलमा[र्जनी]य है क्यों कि प्रथम स्त्रीशब्दादिपदार्थोंमें गुण समझकर अर्थात्

स्त्रीआदीकू किसीएक अंशमें सुखदेनेवाला समझकर जो पुरुष उन-विषयोंका मनमें ध्यान करता रहताहै. फिर चितवन करते करते प-दार्थोंमें सूक्ष्म आसक्ति होकर अधिक कामना होजाती है. फिर उसकें प्राप्तीके प्रयत्नोंमें नानाप्रकारके उपद्रव होजाते हैं. उपाधि वढते वढते पशुवत् मनुष्य होजाता है ❋ इन दोनों श्लोकोंका अर्थ आनन्दामृत वर्षिणीके ९ वेंअध्यायमें औरभी स्पष्ट लिखा है. ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

मू० रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन् ॥ आ-त्मवश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

विधेयात्मा १ इंद्रियैः २ विषयान् ३ चरन् ४ तु ५ प्रसादम् ६ अधिगच्छति ७ रागद्वेषवियुक्तैः ८ आत्मवश्यैः ९॥ ६४॥ अ० उ० श्रोत्रादिइन्द्रियोंकरके शब्दादिविषयोंकू न भोक्ताहो, ऐसा तो कोई भी ब्रह्मज्ञानी भगवद्भक्त उपासक योगी कर्मी इत्यादि नहीं दीखता है. और इन्द्रियोंके असंयममें आप अनर्थ कहतेहो तो फिर ब्रह्मज्ञा-नीमें और अज्ञानीपुरुषोंमे क्या भेद हुवा. यह शंका करके श्रीमहा-राज दोश्लोकोंमें ज्ञानीके भोगनेकी रीती फलकेसहित निरूपण कर-ते हैं. विवेकी ब्रह्मज्ञानी आत्मोपासक १ इन्द्रियोंकरके २ विषयोंकू ३ भोक्ता हुवा ४ भी ५ निजानन्दकू ६ प्राप्त होताहै. ७ सि० कैसे हैं वे इन्द्रिय कि जिनकरके विषयोंकू भोक्ता हुवा मुक्त होजाता है ❋ रागद्वेषरहित ८ सि० हैं. अर्थात् भोगसमय ज्ञानीका विषयोंमें रा-गद्वेष नहीं. एकतो ज्ञानीमें और अज्ञानीमें यह भेद है, और दूसरे ज्ञानीके इन्द्रिय ❋ मनके वशमें हैं. ९ टी० आठवां और ९वां ये दोनोंपद इन्द्रियैः इस दूसरे पदके विशेषण हैं. ८।९ ॥ ६४ ॥

मू० प्रसादेसर्वदुःखानांहानिरस्योपजायते ॥ प्रसन्नचेतसोह्याशुबुद्धिःपर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

प्रसादे १ अस्य २ सर्वदुःखानाम् ३ हानिः ४ उपजायते ५ प्रस-

अचेतसः ६ हि ७ बुद्धिः ८ आशु ९ पर्यवतिष्ठते १० ॥ ६५ ॥ अ० उ० निजानन्दकू प्राप्त होनेसे क्या होता है इसअपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. निजानन्दकू प्राप्त होनेसे १ इसके २ अर्थात् परमहंसज्ञानीमहापुरुषके २ दुःखोंकी ३ हानि ४ होजाती है. ५ अर्थात् आध्यात्मिकादि सबदुःखोंका नाश होजाता है ५ सि० और ❀ निजानन्दकू प्राप्त हुवाहै अन्तःकरण जिसका अर्थात् आत्मामें स्थित हुवाहै चित्त जिसका. उसकी ६ हि ७ बुद्धि ८ शीघ्र जलदी ९ निश्चल होती है. १० सि० उसीआत्मामें ❀ टी० प्रसाद प्रसन्नता सुख आनन्द आत्मा इन शब्दोंका एकही अर्थ है. इसजगे विषयानन्दके प्रसन्नतासे तात्पर्यार्थ नहीं. १ ॥ ६५ ॥

मू० नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना॥
नचाभावयतःशान्तिरशान्तस्यकुतःसुखम्॥ ६६ ॥

अयुक्तस्य १ बुद्धिः २ न ३ अस्ति ४ अयुक्तस्य ५ भावना ६ न ७ च ८ अभावयतः ९ शान्तिः १० न ११ च १२ अशान्तस्य १३ सुखम् १४ कुतः १५ ॥ ६६ ॥ अ० उ० यति अन्तर्मुखज्ञानीकू जो आनन्द पीछे निरूपणाकिया वो अयति याने बहिर्मुख अज्ञानीकू नहिं होता है, यह कहते हैं श्रीमहाराज इसमंत्रमें. सि० प्रथमतो ❀ अयतीको १ बुद्धि २ सि० हि ❀ नहीं ३ है ४ अर्थात् प्रथम तो आत्माका निश्चयकरनेवाली व्यवसायात्मिकाबुद्धि बहिर्मुखअज्ञानीको नहीं उदयहोती है. इसीहेतूसे ४ अज्ञानीको ५ आत्माका ध्यान ६ नहीं. ७ अर्थात् जबकि वो आत्माकू जानताहि नहीं तो फिर आत्माका ध्यान वो कैसे करेगा, इसीहेतूसे वो आत्मध्यान रहित है ७ और ८ ध्यानरहितकू ९ शान्ति १० नहीं. ११ फिर १२ विक्षिप्तचित्तवालेकू १३ सुख १४ कहाँसे १५ अर्थात् किसप्रकार हो सक्ता है. तात्पर्य विनाब्रह्मज्ञानके परमानन्दकी प्राप्ति नहीं.॥६६॥

मू० इन्द्रियाणांहिचरतांयन्मनोनुविधीयते ॥
तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

चरताम् १ इन्द्रियाणाम् २ यत् ३ मनः ४ हि ५ अनुविधीयते ६ तत् ७ अस्य ८ प्रज्ञाम् ९ हरति १० अम्भसि ११ वायुः १२ नावम् १३ इव १४ ॥ ६७ ॥ अ० उ० अयुक्तपुरुषकी बुद्धि आत्मामें निश्चल क्यों नहीं होती इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. सि० अज्ञानीके इन्द्रियोंका विषयोंके साथ जिससमय संबंध है, अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय जब शब्दकू सुनता है, नेत्र जिससमय रूपकू देखता है, इसीप्रकार सब इन्द्रियोंकू समझलेना. उस सम्बन्ध समय ❋ विषयसंबन्धी १ इन्द्रियोंके २ सि० साथ ❋ जो ३ मन ४ भी ५ सि० कभी अकेले इन्द्रियके साथभी उसी विषयमें ❋ प्रवृत्त होजावे. ६ अर्थात् जिस रूपादि विषयमें चक्षुरादिइन्द्रिय प्रवृत्तहो रहाहो उसकालमें जो मनभी उसी विषयमें उसइन्द्रियके साथ प्रवृत्त होजावे, तो ६सो ७ सि० इन्द्रिय कि जिसका साथी मन हुवा है, वोही इन्द्रिय ❋ इस अज्ञानीके ८ बुद्धिकू ९ हरलेताहै. १० अर्थात् विषयोंमें विक्षिप्त करदेताहै १० सि० इसमें दृष्टान्त यह है कि ❋ जलमें ११ पवन १२ नावकू १३ जैसे १४ सि० उलट पुलट करताहै, झकोले देताहै. और जिस समय नावकू मल्लाह सँभालता है, उसीप्रकार ज्ञानी मनकू सावधान करते हैं. अज्ञानीका ऐसा सामर्थ्य नहीं ❋ तात्पर्य जबकी यह व्यवस्थाहै कि एक इन्द्रियकेसाथ मन लगा हुवा अनर्थ करता है, तो फिर क्या कहनाहै, जो सब इंद्रियोंके साथ मिलकर मन अनर्थ करावे. मृग हस्ती पतंग मच्छी भ्रमर ये पांचो शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध विषयोंमेंसे क्रमसे एक एक विषयके मारे हुवे मरते हैं. अज्ञानी जीव मनुष्यके तो पांचो प्रबल होरहेहैं इसकारणसे अज्ञानीकी बुद्धि आत्मामें निश्चल नहीं होती है. इत्यभिप्रायः ॥ ६७ ॥

मू० तस्माद्यस्यमहाबाहोनिगृहीतानिसर्वशः ॥
इन्द्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता॥ ६८ ॥

महाबाहो १ यस्य २ इन्द्रियाणि ३ इंद्रियार्थेभ्यः ४ सर्वशः ५ निगृहीतानि ६ तस्मात् ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १० ॥ ६८ ॥ अ० उ० शरीर प्राण इंद्रिय और अन्तःकरण इनका जो निरोध याने संयम अर्थात् इनको वश करनाहै. यही तो मोक्षका अन्तरंग साधन है. और यही मुक्तपुरुषोंका लक्षण है. स्थितप्रज्ञके प्रकरणमें पीछे जितने मंत्र कहे, और आगे जो और मंत्र कहनेके रहेहैं, उन सबका तात्पर्य्य यही है. और सोई तात्पर्य श्रीमहाराज इसमंत्रमें कहते हैं. हेअर्जुन १ जिसके २ इंद्रिय ३ शब्दादिविषयोंसे ४ सबप्रकारकरके ५ निरुद्धहैं, ६ तिसकारणसे ७ तिसकी ८ अर्थात् परमहंसविद्वान ब्रह्मज्ञानीकी ८ बुद्धि ९ निश्चल १० सि० है परमानन्द स्वरूपमें. वा ज्ञानीकी बुद्धि श्रेष्ठ याने सर्वोत्कृष्ट है, यह जानना योग्य है. और साधकपक्षमें जिज्ञासूकी याने मुमुक्षूकी बुद्धि निश्चल होजाती है, ब्रह्ममें इंद्रियादिकोंका निरोधकरनेसे ॥ इत्यभिप्रायः ॥ ६८ ॥

मू० यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्त्तिसंयमी ॥
यस्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः ॥ ६९ ॥

सर्वभूतानाम् १ या २ निशा ३ तस्याम् ४ संयमी ५ जागर्त्ति ६ यस्याम् ७ भूतानि ८ जाग्रति ९ सा १० निशा ११ पश्यतः १२ मुनेः १३ ॥ ६९ ॥ अ० उ० सबप्रकारकरके इंद्रियोंका निरोध होना अर्थात् निष्कर्महोना यह पूर्वोक्तलक्षणतो असंभावित प्रतीत होता है. यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते हैं. तात्पर्य इसमंत्रका यह है, कि ज्ञाननिष्ठा जो ज्ञानीकी है,वहां क्रिया और कारकका गन्धमात्रभी नहीं. निष्क्रिय ब्रह्मज्ञानीकू कोई ज्ञानीहि जानसक्ताहै. कर्मनिष्ठपुरुष नैष्कर्मज्ञाननिष्ठाकू क्याजानें, क्यों कि कर्म्मनिष्ठा और ज्ञा-

ननिष्ठाका दिनरात्रिवत् अन्तर है. इसहेतूसे अज्ञानीजीव कर्मनिष्ठोंकू यह लक्षण असम्भावित प्रतीत होताहै. सोई दिखाते हैं, इसमंत्रमें. सबभूतोंकी १ अर्थात् अज्ञानीजीव कर्मनिष्ठ इन्होंको १ जो २ सि० रात्रिवत् ज्ञाननिष्ठा ❋ रात्रि ३ सि० है ❋ तिसमें ४ अर्थात् ज्ञाननिष्ठामें ४ ब्रह्मज्ञानी सर्वकर्मसंन्यासी ५ जागताहै. ६ तात्पर्य ज्ञाननिष्ठा अज्ञानीकर्मनिष्ठोंकेलिये रात्रिवत् हैं. क्योंकि ज्ञाननिष्ठाकी अव्यवस्था अज्ञानी नहीं जानतेहैं, और न उनका उसमें कुछ व्यापार होताहै. और सोही ज्ञाननिष्ठा ज्ञानियोंको दिनवत् है. क्यों कि ज्ञानी उसमेंही विचरते हैं, और. जिसमें ७ अर्थात् कर्मनिष्ठामें ७ अज्ञानी कर्मनिष्ठप्राणी जागते हैं ९ अर्थात् जिसकर्मनिष्ठामें कर्मनिष्ठ व्यापार करते हैं, कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं. ९ सो १० अर्थात् कर्मनिष्ठा १० सि० रात्रिवत् ❋ रात्रि ११ सि० है. किसकी ब्रह्मतत्त्वकू ❋ देखते हुवे ज्ञानी संन्यासीकी. १२।१३ तात्पर्य ज्ञानीका कर्मनिष्ठामें किंचित् लेशमात्रभी व्यापार नहीं, इसहेतूसे कर्मनिष्ठा विद्वान्‌की रात्रि है. इस मंत्रमें समुच्चयकाभी खंडन स्पष्ट प्रतीत होता है. ॥ ६९ ॥

मू० आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापःप्रविशन्ति यद्वत्॥ तद्वत्कामायंप्रविशन्तिसर्वेसशान्तिमाप्नोतिनकामकामी ॥ ७० ॥

यद्वत् १ आपः २ समुद्रम् ३ प्रविशन्ति ४ आपूर्यमाणम् ५ अचलप्रतिष्ठम् ६ तद्वत् ७ सर्वे ८ कामाः ९ यम् १० प्रविशन्ति ११ सः १२ शान्तिम् १३ आप्नोति १४ कामकामी १५ न १६ ॥ ७० ॥
अ० उ० ऐसे कर्मसंन्यासी कि जिनको कर्मनिष्ठा रात्रिवत् है, उनके शरीरका निर्वाह कैसाहोता है, इसअपेक्षामें यह मंत्रभी कहते हैं. और चौंसटवें मंत्रमें इसशंकाका उत्तर अन्यप्रकारसे देभी चुकेहैं. इसमंत्रका तात्पर्य यह है, कि विना इच्छाकियेहुवे संसारके तुच्छ-

पदार्थ प्राप्त होजाता तो कितनी बातहै. प्रत्युत सब सिद्धिऋद्धि महात्माकेसामने हाथ जोडके खडीं रहतींहै.सदा यह इच्छा रखतीं हैं कि जिनकेवास्ते परमेश्वरने हमकू रचा है,कभी कृपा करके वेभी तो हमकू सफल करें. दृष्टान्तके सहित इसबातकू कहते हैं. श्रीमहाराज इसमंत्रमें. जैसे १ सि॰विनाबुलाये नदीसरोवरादिके ❋जल २ समुद्रमें ३ प्रविष्ट होतें हैं ४ सि॰ कैसा है वोसमुद्र❋सबतरफसे भराहुवा ऐसा पूर्ण है. ५ सि॰ और❋अचलहै प्रतिष्ठा याने मर्यादा जिसकी ६ सि॰ यहतो दृष्टान्त है❋तैसे ही ७ सब ८ भोग ९ सि॰ प्रारब्धके प्रेरेहुवे❋जिसकू १० अर्थात् निष्कामज्ञानीकू १० प्राप्त होते हैं. ११ सि॰ कैसाहै❋सो १२ सि॰ ज्ञानी❋शान्तिकू १३ प्राप्त है; १४ भोगोंकी कामना करनेवाला १५ नहीं १६ अथवा जो भोगोंकी कामनावालाहै सो शान्ति और ब्रह्मानन्द इनकू नहीं प्राप्त होता है. ॥ ७० ॥

मू॰ विहायकामान्यःसर्वान्पुमांश्चरतिनिस्पृहः॥
निर्ममोनिरहंकारःसशान्तिमधिगच्छति॥ ७१ ॥

यः१पुमान् २ सर्वान् ३कामान् ४ विहाय ५ निस्पृहः ६ निर्ममः ७ निरहंकारः ८ चरति ९ सः १० शांतिम् ११ अधिगच्छति १२ ॥ ७१ ॥ अ॰ उ॰ चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वकज्ञाननिष्ठासे ही मोक्षकू प्राप्त होता है पुरुष. गृहस्थ याने कर्मनिष्ठ मोक्षके भागी नहीं. शुभकर्मकरनेसे शुभलोकोंकू प्राप्त होते हैं, यह नियम याने विधि है. और जो कदाचित् कोई कहे कि कर्मनिष्ठगृहस्थभी विना संन्यास किये मुक्त होजातेहैं, तो चतुर्थाश्रमका माहात्म्य वृथाही वेदोंमें प्रतिपादन कीया है, क्या काम है शीतोष्णादि सहनेका, क्यों संन्यास करना चाहिये. और जनकादीके कथाका तात्पर्य परार्थमें है, स्वार्थमें नहीं. अर्जुनने बूझाथा ज्ञानी कैसे चलता फिरता है इस चौथे प्रश्नका उत्तर इसमंत्रमें कहते हुवे चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वकज्ञाननिष्ठा-

का माहात्म्य और लक्षण निरूपण करते हैं श्रीमहाराज. जो १ पुरुष २ सबभोगोंकू ३। ४ त्यागके ५ इच्छारहित ६ ममतारहित ७ अहंकाररहित ८ विचरताहै ९ सो १० शान्तिकू ११ अर्थात् मोक्षकू ११ प्राप्त होता है. १२ अर्थात् जिसमें ये लक्षण नहीं वो मोक्षकी आशा न रक्खे, यह नियम बिधिहै. १२ तात्पर्य कोई ज्ञान रहित त्यागी ऐसे होते है, कि उनकू त्यागनेके पीछे फिर उसत्यागे हुवे पदार्थकी इच्छा हो जाती है. ज्ञानी देहादिकपदार्थोंके रहनेकी भी इच्छा नहीं रखतें हैं, फिर पीछे त्यागे हुवे पदार्थकी इच्छा तो क्यों करनेलगेंगे, इसवास्ते उसको निस्पृहः यह विशेपण है. और कोई ऐसे होतेहैं कि उनकेपास त्यागनेके पीछे आपहीआप पदार्थ विना-इच्छा प्राप्त होतेहैं. परन्तु उनमें उनकी ममता हो जातीहै. और ज्ञानीके पास जो विनाइच्छा पदार्थ प्राप्त होतेहैं उनमें ज्ञानीकी ममता नहीं होतीहै, इसवास्ते निर्ममः यह ज्ञानीका विशेषण है. और कोई ऐसे त्यागी होतेहैं कि न तो उनकू इच्छा होतीहै, और जो पराइइच्छासे पदार्थ आजावे उसमें ममताभी नहीं होती है. परंतु इनतीनों बातोंका अहंकार बना रहताहै. ज्ञानीको अहंकारभी नहीं होता यह ज्ञानीका लक्षण है. इसकू ज्ञाननिष्ठा कहते हैं. ॥ ७१ ॥

मू० एषाब्राह्मीस्थितिःपार्थनैनांप्राप्यविमुह्यति ॥
स्थित्वास्यामन्तकालेपिब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

पार्थ १ एषा २ ब्राह्मीस्थितिः ३ एनाम् ४ प्राप्य ५ न ६ विमुह्यति ७ अन्तकाले ८ अपि ९ अस्याम् १० स्थित्वा ११ निर्वाणम् १२ ब्रह्म १३ अधिगच्छति १४ ॥ ७२ अ० उ० ज्ञाननिष्ठाकी महिमा बर्णनकरते हुवे इस स्थितप्रज्ञके प्रकरणकू समाप्त करते हैं श्रीभगवान्. हे अर्जुन १ यह २ सि० जो पूर्वोक्त सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक ❋ ब्रह्मज्ञाननिष्ठामें स्थिति ३ सि० है इसकू ४ प्राप्त होकर ५ सि० कोई संन्यासी ❋ नहीं ६ मोहकू

प्राप्त होता है. ७ सि० ब्रह्मचर्याश्रमसेही जो संन्यासाश्रम ग्रहण करके ज्ञाननिष्ठामें स्थित रहतेहैं, वे महात्मा मोक्षको प्राप्त होवें तो इसमें क्या कहना है ❋ अन्तकालमें ८ भी ९ अर्थात् अवस्थाके चौथे भागमें भी ९ इसमें १० अर्थात् ब्रह्मनिष्ठामें चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक १० स्थित होकर ११ निर्वाणब्रह्मकू १२। १३ अर्थात् समस्तअनर्थोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ती है लक्षण जिसमोक्षका, उसकू १३ प्राप्त होताहै. १४ ॥ ७२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेसांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरे अध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ ज्यायसीचेत्कर्मणस्तेमताबुद्धिर्जनार्दन ॥ तत्किंकर्मणिघोरेमांनियोजयसिकेशव ॥ १ ॥

केशव १ चेत् २ कर्मणः ३ बुद्धिः ४ ज्यायसी ५ ते ६ मता ७ जनार्दन ८ तत् ९ माम् १० घोरे ११ कर्मणि १२ किम् १३ नियोजयसि १४ ॥ १ ॥ अ० उ० अर्जुनने समझा कि श्रीभगवानकू ज्ञाननिष्ठा सम्मतहै. क्यों कि द्वितीय अध्यायमें ज्ञाननिष्ठाकी बहुत प्रशंसा कीई, और यह भी कहा कि चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक-ज्ञाननिष्ठाही मोक्षका हेतू है. जो श्रीमहाराजकू ज्ञाननिष्ठा श्रेष्ठ प्रिय ऐसी है, तो मुझकू कर्ममें क्यों लगातेहैं. यह विचारकर अर्जुन कहता है. हेकेशव १ जो २ कर्मसे ३ ज्ञान ४ श्रेष्ठ ५ आपकू ६ सम्मत ७ सि० है ❋ हेजनार्दन ८ तो ९ मुझकू १० हिंसात्मक ११ कर्ममें १२ क्यों १३ प्रेरतेहो. १४ अर्थात् जबकि आप ज्ञाननिष्ठाकूही मोक्षका हेतू समझते हो, तो, फिर मुझसे यह क्यों कहते हो, कि तूंतो कर्मही कर. तेरा तो कर्ममें ही अधिकार है. ॥ १ ॥

मू०व्यामिश्रेणेववाक्येनबुद्धिंमोहयसीवमे ॥
तदेकंवदनिश्चित्ययेनश्रेयोहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

व्यामिश्रेण १ इव २ वाक्येन ३ मे ४ बुद्धिम् ५ मोहयसि ६ इव ७ तत् ८ एकम् ९ निश्चित्य १० वद ११ येन १२ अहम् १३ श्रेयः १४ अवाप्नुयाम् १५ ॥ २ ॥ अ० उ० किसीजगे तो श्रीमहाराज ज्ञानकी महिमा कहते हैं, और किसीजगे कर्मकी. इसमिले हुवे वाक्यमें स्पष्ट नहीं प्रतीत होता, कि इनदोनोंमें श्रेष्ठ क्या है. यह विचारकर अब अर्जुन यह कहताहै. मिलेहुवेवत् वाक्य करके १।२।३ मेरे ४ बुद्धीकू ५ मानो भ्रांत करतेहो. ६।७ अर्थात् मुझकू ऐसा प्रतीत होताहै, कि मानो जैसे कोई मिलेहूवे वाक्यकरके मोहकू प्राप्त करता है. वास्तव न आप मुझकू मोह करतेहो. और न आपका वाक्य मिलाहुवा, न सन्देहजनक है. क्यों कि आप परमकरुणा, दया, और कृपा, इनकी खानहैं. हे करुणाकर मेरे इसअज्ञान दूर करनेकेलिये इन दोनों ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठामें एक जो श्रेष्ठहो७ तिस एककू ८।९ निश्चय करके १० कहो आप ११ जिसकरके १२ अर्थात् ज्ञानकरके वा कर्म करके १२ मैं १३ कल्याणकू १४ प्राप्त हूंगा. १५ ॥ २ ॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ लोकेस्मिन्द्विविधा
निष्ठापुराप्रोक्तामयानघ॥ ज्ञानयोगेनसां-
ख्यानांकर्मयोगेनयोगिनाम् ॥ ३ ॥

अनघ १ अस्मिन् २ लोके ३ द्विविधा ४ निष्ठा ५ मया ६ पुरा ७ प्रोक्ता ८ सांख्यानाम् ९ ज्ञानयोगेन १० योगिनाम् ११ कर्मयोगेन १२ ॥ ३ ॥ अ० उ० इसमंत्रमें तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि हे अर्जुन जो मैंने (स्वतंत्र पृथक् पृथक् दो निष्ठा) स्वतंत्र दो पुरुषोंके निमित्त कहीहों तो यह तेरा प्रश्न बनसक्ताहै, कि कर्मनिष्ठा

और ज्ञाननिष्ठा इनदोनोंमेंसे एक श्रेष्ठ मुझसे कहो. और जबकि मैंने एकनिष्ठाकूहि दोप्रकारकी (एक पुरुषके निमित्त अधिकारभेदसे उत्तरोत्तर) कहीहै, और एकपुरुषकू ही अधिकारभेदसे दो प्रकारका अधिकारी कहा है,तो इसहेतूसे यह प्रश्न तुह्मारा बेजोग है. क्यों कि स्वतंत्रएकनिष्ठासे कल्याण नहीं होसक्ता, और न दोनोंके समसमुच्चयसे होसक्ताहै. क्रमसमुच्चयसे कल्याण होता है, यह मैंने पीछे कहाहै. मिलाहुवा वाक्य नहीं कहा. फिर भी अब भले प्रकार स्पष्ट कहताहूं सावधानहोकर सुन. हे अर्जुन १ इसजनकेविषये२।३ अर्थात् मुमुक्षु दोनोंनिष्ठाका अधिकारी एकही पुरुष है, इसएकपुरुषके निमित्त ३ दो हैं प्रकार जिसके ४ सि० ऐसी एक ❋ निष्ठा ५ मैंनें ६ पहले ७ अर्थात् द्वितीय अध्यायमें वावेंदोंमें ७ कही हैं. ८ सि० वे दो प्रकार यह हैं ❋ विरक्तसंन्यासीपरमहंस शुद्धान्तःकरणवालोंकू ९ ज्ञानयोगकरके १० अर्थात् विरक्तोंकेलिये ज्ञाननिष्ठा कही है, और ज्ञानके प्रथमभूमिकावाले १० कर्मयोगियोंकू ११ कर्मयोगकरके १२ अर्थात् मलिनान्तःकरणवालोंकू कर्मनिष्ठा कही है. क्योंकि कर्म करनेसेही अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान होता है. १२ तात्पर्य दोनोंनिष्ठाका केवल एकब्रह्मनिष्ठाहीमें है. जबतक अन्तःकरण शुद्ध होकर उपरति याने वैराग्य न होवे तबतक कर्म करना योग्य है. और जब अन्तःकरण शुद्धहोकर वैराग्यादिका आविर्भाव होजावे तब कर्मोंका संन्यासकरके ज्ञाननिष्ठ होजावे. टी० लोकस्तुभुवनेजनेइत्यमरः ॥ श्रीधरजीनेंभी यही अर्थ किया है. ॥३॥

मू०नकर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यंपुरुषोश्नुते ॥
नचसंन्यसनादेवसिद्धिंसमधिगच्छति ॥ ४ ॥

कर्मणाम् १ अनारम्भात् २ पुरुषः ३ नैष्कर्म्यम् ४ न ५ अश्नुते ६ संन्यासात् ७ एव ८ सिद्धिम् ९ च १० न ११ समधिगच्छ-

ति १२॥ ४ ॥ अ० उ० दोनिष्ठा आप कहतेहो. एकमेंतो कर्मोंका अनुष्ठानकरना पडताहै, और एकमें कर्म नहीं करने पडताहै. मेरे जानमें पहलेसेही वो एक निष्ठा श्रेष्ठ है, कि जिसमें कर्म करना न पडे. यह शंका करके कहते हैं. सि० विना अन्तःकरण शुद्ध-हुवे ❋ कर्मोंके १ अनारम्भसे २ अर्थात् कर्मोंके न करनेसे २ मनुष्य ३ ज्ञाननिष्ठाकू ४ नहीं ५ प्राप्त होता है. ६ अर्थात् विनाअन्तःकरण शुद्ध हुवे कर्मोंके केवल ६ त्यागसे ७ ही ८ सि० विना ज्ञानहुवे ❋ मोक्षकू ९ भी १०नहीं ११ प्राप्त होता है. १२ अथवा विनाअन्तःकरण शुद्ध हुवे केवल चतुर्थाश्रम याने संन्यास ग्रहण करनेसे ज्ञानकू वा मोक्षकू नही प्राप्तहोताहै कोईभी. १२ तात्पर्य विनाअन्तःकरण शुद्धहुवे जो कर्म त्याग देता है. उसकू न इसलोकमें सुख, न परलोकमें और उसकू न स्वर्ग, न मोक्ष, न ज्ञान प्राप्त होता है. इसवास्ते जबतक अन्तःकरण भलेप्रकार शुद्ध न होवे तबतक भगवदाराधनादिकर्मोंका अनुष्ठान करता रहे. फिर ज्ञाननिष्ठाका अधिकारी हो जायगा. ॥ ४ ॥

मू०नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यतेह्यवशःकर्मसर्वःप्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५॥

जातु १ कश्चित् २ हि ३ क्षणम् ४ अपि ५ अकर्मकृत् ६ न ७ तिष्ठति ८ हि ९ सर्वः१० प्रकृतिजैः ११ गुणैः १२ अवशः १३ कर्म १४ कार्यते १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० अन्तरंग कर्मोंकू अज्ञानी नहीं त्यागसक्ताहै, ज्ञानीहि उनके त्यागनेमें समर्थ है. क्योंकि उनका त्याग स्वरूपसे नहीं होसक्ता. विचारदृष्टी करके उनमें आसक्त न होना उनकू मिथ्याकल्पित, मायिक,अनात्मधर्म, समझना यही उनका त्याग है. यह अज्ञानीसे नहीं होसक्ता, सोई कहते हैं. कभी १ कोई २ भी ३ अर्थात् ब्रह्मज्ञानरहित कोई अज्ञानी ३ पलमात्र ४

भी ५ अकर्मकृत् ६ नहीं ७ ठरता है. ८ अर्थात् अज्ञानी कर्म नकरता हुवा अक्रिय हुवा पलभरभी किसीकालमें नहीं रहता. तात्पर्य सदा कुछनकुछ करताही रहता है. ८ क्योंकि ९ सब १० अर्थात् अज्ञानी प्राणीमात्र १० प्रकृतीसे उत्पत्ति है जिनकी तिनसत्वरजतमगुणोंकरके ११।१२ सि० प्रेराहूवा*अवश हूवा १३ अर्थात् परतंत्र हुवा गुणोंके वश हुवा अज्ञानीजीव १३ कर्म १४ करताहै. १५ तात्पर्य अज्ञानीजीवसे सत्त्वादिगुण बलकरके कर्म करवाते हैं. मायाकरके प्रेरित परवशहुवा कर्म करताहै. यह मायाकी प्रबलता ज्ञानसेही दूरहोती है. ॥ ५ ॥

मू० कर्मेन्द्रियाणिसंयम्ययआस्तेमनसास्मरन् ॥
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःसउच्यते ॥ ६ ॥

कर्मेन्द्रियाणि १ संयम्य २ मनसा ३ इन्द्रियार्थान् ४ स्मरंन् ५ यः ६ आस्ते ७ सः ८ विमूढात्मा ९ मिथ्याचारः १० उच्यते ११ ॥ ६ ॥ अ० उ० मलिनअंतःकरणवाला जो कर्म त्याग देताहै, उसकी श्रीभगवान् बुराई कहते हैं. कर्मेन्द्रियोंकू १ रोककरके २ सि०और*मनसे ३ शब्दादिविषयोंकू ४ स्मरण करता हुवा ५ जो ६ बैठाहै, ७ अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता ७ सो ८ मलिनअन्तःकरणवाला ९ सि० कर्मत्यागी*मिथ्याचारी १० कहाहै. ११ अर्थात् ऐसे त्यागीकू दम्भी कपटी ऐसा कहते हैं, और झूंटाहै मौन आसनादि आचार जिसका. ११ ॥ ६ ॥

मू० यस्त्विन्द्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेन्द्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते ॥ ७ ॥

यः१ तु२ इन्द्रियाणि३ मनसा ४ नियम्य५ अर्जुन ६ कर्मेन्द्रियैः ७ कर्मयोगम् ८ असक्तः ९ आरभते १० सः ११ विशिष्यते १२ ॥७॥ अ० उ० मलिनअन्तःकरणवाले कर्मत्यागीसे क-

र्मकरनेवाला श्रेष्ठ है, यह कहते हैं. सि० मलिनमनवाला तो कपटी है❋और जो १।२ ज्ञानेन्द्रियोंकू ३ मनकरके ४ सि० विषयोंसे❋ रोककर ५ हे अर्जुन ६ कर्मेन्द्रियोंकरके ७ कर्मयोगकू ८ आसक्त हुवा ९ करताहै १० सो ११ विशेष है. १२ सि० पूर्वोक्तसे ❋ तात्पर्य फलकी इच्छासे रहित है, और कर्मोंमें जो असक्त है, सो अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानकू प्राप्त होगा, इसहेतुसे विशेष है.॥७॥

मू०नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापिचतेनप्रसिध्येदकर्मणः॥ ८ ॥

ही १ अकर्मणः२ कर्म ३ ज्यायः ४नियतम् ५ कर्म ६ त्वम् ७ कुरु ८ ते ९ अकर्मणः १० देहयात्रा ११ अपि १२ च १३ न १४ प्रसिध्येत् १५ ॥ ८ ॥ अ० जबकि १ नकरनेसे २ कर्म ३ श्रेष्ठ ४ सि० है. इसहेतुसे❋वेदोक्त ५ निष्कामकर्मकू ६ तूं ७ कर ८ सि० नहीं तो❋तुझअकर्मीकी ९।१० देहयात्रा ११भी १२ और १३ सि० मोक्षभी❋नहिं १४ सिद्ध होगा. १५ टी० कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे करना श्रेष्ठ है. २।३ जो तूं अपना स्वधर्मकर्म युद्ध न करेगा, तो तुझकू भोजनवस्त्रादि भी देहके रक्षाके लिये नहीं मिलेंगे, और विनाअन्तःकरण शुद्ध हूवे तुझकू ज्ञानका अभाव होनेसे तूं मुक्तभी न होगा. इत्यभिप्रायः ९।१० ॥ ८॥

मू०यज्ञार्थात्कर्मणोन्यत्रलोकोयंकर्मबन्धनः ॥
तदर्थंकर्मकौंतेयमुक्तसंगःसमाचर ॥ ९ ॥

यज्ञार्थात्१ कर्मणः२ अन्यत्र ३ कर्मबन्धनः४ अयम्५ लोकः ६ कौन्तेय ७ मुक्तसंगः ८ तदर्थम् ९ कर्म १० समाचर ११ ॥ ९ ॥ अ० उ० इसलोकके वा परलोकके पदार्थोंकी कामना करके जो कर्म किया जाताहै वो बन्धका हेतू है, यह कहते हैं. सि० यज्ञोवैविष्णुः यह श्रुति है यज्ञनाम विष्णूका है, विष्णुसच्चिदानन्दव्याप-

कक्रू कहते हैं. तात्पर्यार्थ यज्ञशब्दका तत् त्वम् इन पदोंके लक्ष्यार्थ-में है ❃ यज्ञनारायणार्थ १ कर्मसे २ पृथक् ३ सि॰ जो और सकाम कर्म हैं. तिन ❃ कर्मकरके बन्धनकू प्राप्त होता है. ४ यह ५ जीव ६ हेअर्जुन ७ सि॰ तूंतो ❃ निष्कामअसंगहुवा ८ परमेश्वरार्थ ९ कर्म १० कर. ११ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदान्दस्वरूप जो आत्मा है उसके प्राप्तिके लिये. ११ तात्पर्य अज्ञानके निवृत्तिकेलिये कर्मोका अनुष्ठान कर. अज्ञानकी जो निवृत्ती है यही आत्माकी प्राप्तिहै. ॥ ९॥

मू॰ सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोस्त्विष्टकामधुक् ॥ १०॥

प्रजापतिः १ सहयज्ञाः २ प्रजाः ३ सृष्ट्वा ४ पुरा ५ उवाच ६ अनेन ७ प्रसविष्यध्वम् ८ एषः ९ वः १० कामधुक् ११ अस्तु १२ ॥ १० ॥ अ॰ उ॰ सर्वथा न करनेसे सकामकर्म करनाही श्रेष्ठ है. अब यह कहतेहैं, चार श्लोकोंमें. ब्रह्माजीका वाक्य इसमें प्रमाण है. ब्रह्माजी १ सहितयज्ञोंके प्रजाकू २।३ रचकर ४ अर्थात् यज्ञ और प्रजाकू रचकर ४ पहले ५ सि॰ प्रजासे यह ❃ बोले ६ सि॰ कि हेकर्मनिष्ठा-वालीप्रजा ❃ इसकरके ७ अर्थात् कर्मयज्ञकरके ७ उत्तरोत्तर बढोगे तुम. ८ यह यज्ञ ९ तुमकू १० कामधुक् ११ हो. १२ अर्थात् वांछितफल देनेवाला हो १२ यह मेरा आशीर्वाद है. ॥ १० ॥

मू॰ देवान्भावयतानेनतेदेवाभावयन्तुवः ॥
परस्परंभावयन्तःश्रेयःपरमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

अनेन १ देवान् २ भावयत ३ ते ४ देवाः ५ वः ६ भावयन्तु ७ परस्परम् ८ भावयन्तः ९ परम् १० श्रेयः ११ अवाप्स्यथ १२ ॥ ११ ॥ अ॰ उ॰ बढनेका प्रकार निरूपण करते हैं. इस यज्ञकरके १ देवताओंकू २ बढाओ तुम ३ तात्पर्य देवता यज्ञकरनेसे बढते हैं. उनका भोजन यज्ञही है. सि॰ और यज्ञका भाग पानेवाले ❃

वे ४ देवता ५ तुमकू ६ बढाओ. ७ सि० इसप्रकार ❋ परस्पर आपसमें ८ बढते हुवे ९ सि० तुम और देवता ❋ परमकल्याणकू १० । ११ अर्थात् स्वर्गजन्यसुखकू ११ प्राप्त होगे. १२ टी० यज्ञकरनेसे देवता तुमकू ३ वांछित फलदेंगे ७ ॥ ११ ॥

मू०इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यन्तेयज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्योयोभुंक्तेस्तेनएवसः ॥ १२ ॥

यज्ञभाविताः १ देवाः २ वः ३ इष्टान् ४ भोगान् ५ हि ६ दास्यन्ते ७ तैः ८ दत्तान् ९ एभ्यः १० अप्रदाय ११ यः १२ भुंक्ते १३ सः १४ स्तेनः १५ एव १६ ॥ १२ ॥ अ० उ० यज्ञकरके बढीहुये वा प्रसन्नहुये १ देवता २ तुमकू ३ सि० स्त्रीपुत्रअन्नवस्त्र इत्यादि ❋ प्यारे ४ भोगोंकू ५ हि ६ देंगे. ७ तात्पर्य देवता मोक्ष नहीं देसक्तेहैं. मोक्षकी प्राप्ति तो सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठासे ही होतीहै. तिनकरके ८ दियेहुवोंकू ९ अर्थात् देवतोंके दियेभोगोंकू. इनके ९ अर्थ १० तात्पर्य उनही देवतोंके अर्थ. न देकर ११ अर्थात् साधूकू भोजन कराना इत्यादि पंचयज्ञ न करके ११ जो १२ भोजन करता है १३ सो १४ चोर १५ सि० है ❋ निश्चयसे. १६ तात्पर्य नित्य विनापंचयज्ञकिये भोगभोगना अनर्थका हेतु है.॥१२॥

मू०यज्ञशिष्टाशिनःसन्तोमुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजतेतेत्वघंपापायेपचन्त्यात्मकारणात्॥१३॥

यज्ञशिष्टाशिनः १ सन्तः २ सर्वकिल्बिषैः ३ मुच्यन्ते ४ ये ५ तु ६ आत्मकारणात् ७ पचन्ति ८ ते ९ पापाः १० अघम् ११ भुंजते १२ ॥ १३ ॥ अ० उ० गृहस्थोंकू नित्य नियमकरके पंचयज्ञकरना योग्य है, जो करतेहैं उनकी स्तुति करतेहैं श्रीमहाराज. और जो नहीं करते उनकी निन्दा करते हैं. यज्ञमेंका बचाहुवा अन्न भोजन करते हुवे १ । २ सबपापोंसे ३ छूट जातेहैं. ४ और जो५।६

आत्माके वास्ते ७ अर्थात् केवल अपनाही और अपने कुटुम्बका पेट भरनेके वास्ते ही ७ पाक करतेहैं ८ (पचंति यह क्रिया उपलक्षण मात्रहै.) तात्पर्य जो केवल कुटुम्बकेलिये रसोई मन्दिरादि बनाते हैं, वस्त्रादिकोंका भोग भोगते हैं, साधु या परमेश्वर इनका उनपदार्थोंमें नाममात्रभी नहीं. वे ९ पापी १० पापकू ११ भोजन करते हैं १२ सि० खंडनीपेषणीचुल्लीउदकुम्भीच मार्जनी॥ पंचसूनागृहस्थस्य ताभिःस्वर्गेनविन्दति॥ अ० ओखली चक्की चूल्हा जलरखनेकी जगा बुहारी जिसकू सोहरनी सोहनी और झाडू भी कहते हैं. इन पांचमें दिनप्रति अनेक हत्या पांचप्रकारसे होती रहतीं हैं इसहेतुसेही गृहस्थोंका अन्तःकरण मलिन रहता है, और स्वर्ग नहीं मिलता है.॥ स्वाध्यायोब्रह्मयज्ञश्चपितृयज्ञस्तुतर्पणम्॥ होमोदेवोबलिर्यज्ञोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ अ० वेदशास्त्रादिका पढना वा पाठकरना इसकू ब्रह्मयज्ञ कहते हैं. तर्पणकू पितृयज्ञ कहते हैं. हवन करना और बलि वैश्वदेवकर्म करना इन दोनोंकू देवयज्ञ कहते हैं. अतिथि अभ्यागतोंका पूजन करके उनकू भोजन कराना, वस्त्रादिदेना, इसकू नरयज्ञ कहतेहैं. तात्पर्य पठन पाठन तर्पण होम बलि वैश्व देव कर्म विरक्तसाधुओंकू भोजन कराना इन पांच यज्ञ करनेसे नित्यकेनित्य पांचों हत्या दूर होती हैं. जो नहीं करते हैं उनकी वढतीं रहतीं हैं. ॥ १३ ॥

मू० अन्नाद्भवन्तिभूतानिपर्जन्यादन्नसम्भवः॥
यज्ञाद्भवतिपर्जन्योयज्ञःकर्मसमुद्भवः॥ १४॥

अन्नात् १ भूतानि २ भवन्ति ३ पर्जन्यात् ४ अन्नसम्भवः ५ यज्ञात् ६ पर्जन्यः ७ भवति ८ यज्ञः ९ कर्मसमुद्भवः १०॥१४॥ अ० उ० कर्मकरनेसेही वृष्टिद्वारा अन्नादिपदार्थोंकी प्राप्ति होती है. इसहेतुसेभी कर्मकरना योग्य है यह कहते हैं तीनश्लोकोंमें. अन्नसे १

मनुष्यादि प्राणी २ होते हैं. ३ अर्थात् अन्नका परिणाम जो शुक्रशोणित स्त्रीपुरुषोंका वीर्य,ये दोनों मिलकर मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न होते हैं. ३ वर्षासे ४ अन्न होता है. ५ यज्ञसे ६ वर्षा ७ होतीहै.८यज्ञ९ कर्मसे होता है. १० सि०ऋत्विज् और यजमान इनका जो व्यापार है, वोही कर्महै. उससे यज्ञ सिद्ध होता है. ॥ १४॥

मू०कर्मब्रह्मोद्भवंविद्धिब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतंब्रह्मनित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् ॥ १५॥

कर्म १ब्रह्मोद्भवम् २ विद्धि ३ ब्रह्म ४ अक्षरसमुद्भवम् ५ ब्रह्म ६ सर्वगतम् ७ तस्मात् ८ यज्ञे ९ नित्यम् १० प्रतिष्ठितम् ११॥१५॥ अ० कर्मकू१ वेदसे उत्पन्न हुवा २ जान तूं ३ वेदकू ४ मायोपहितब्रह्मसे उत्पन्न हुवा ५ सि० जान. माया मिथ्याहै❋ ब्रह्म ६ पूर्ण है. ७ तिसकारणसे ८ यज्ञमें ९ नित्य १० स्थित है. ११ सि० भूतादि पदार्थ जितने पीछे कहे उन सबका कारण मायोपहित ब्रह्महै,सो पूर्ण है. तिसकारणसे यज्ञमेंभी स्थितहै❋तात्पर्य यद्यपि ब्रह्मपूर्ण है, परन्तु उसकी प्राप्ती निष्कामकर्म करनेसे अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञान होकर होतीहै, इसवास्ते यज्ञमें ब्रह्म नित्यस्थित है, यह कहा.॥१५॥

मू०एवंप्रवर्तितंचक्रंनानुवर्तयतीहयः ॥
अघायुरिन्द्रियारामोमोघंपार्थसजीवति ॥ १६ ॥

एवम् १ चक्रम् २ प्रवर्तितम् ३ यः ४ न ५ अनुवर्तयति ६ पार्थ ७ सः ८ इह ९ मोघम् १० जीवति ११ अघायुः १२ इन्द्रियारामः १३ ॥ १६ ॥ अ०उ०ईश्वरसे वेद, वेदसे कर्म, कर्मसे मेघ, मेघसे अन्न, अन्नसे प्राणी, और प्राणी जब वेदोक्तकर्म करते हैं, तब फिर मेघादि होते हैं. ऐसाही फिर करते हैं फिर होते हैं. इसप्रकार १ चक्र २ सि० परमेश्वरने लोगोंके पुरुषार्थके सिद्धीके लिये❋प्रवृत्त किया है. ३ जो ४ सि० कर्मका अधिकारी इसमें❋नहीं ५ प्र-

वृत्त होता,६ अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता ६ हे अर्जुन ७ सो ८ इस संसारमें ९ वृथा १० जीवताहै. ११ सि० कैसा है सो ❋ पापरूप अवस्था है उसकी १२ सि० और ❋ इन्द्रियों करके विषयोंमें विहार है जिसका. १३ सि० सो पृथिवीपर भार है. आप डूबा और औरोंकू डुबाता है ❋ ॥ १६ ॥

मू० यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ॥
आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते ॥ १७ ॥

यः १ तु २ मानवः ३ आत्मरतिः ४ एव ५ तृप्तः ६ च ७ आत्मनि ८ एव ९ च १० संतुष्टः ११ स्यात् १२ तस्य १३ कार्यम् १४ न १५ विद्यते ॥ १६ ॥ १७ ॥ अ० उ० अज्ञानियोंकू अन्तःकरणके शुद्धीकेलिये निष्काम कर्मयोग कहकर, और सर्वथा न करनेसे सकाम करनाही अच्छा है, यह कहकर, अब ज्ञानीकू कर्मका अनुपयोग कहते हैं दो श्लोकोंमें. अर्थात् ज्ञानीकू कर्म करना कुछ आवश्यक नहीं. और जो आत्माकू यथार्थ पूर्णानन्द ब्रह्मस्वरूप नहीं जानताहै,उसकू तो अज्ञानकी निवृत्तीके लिये अवश्यही निष्काम कर्म करना योग्य है, यह कहते हैं श्रीमहाराज. जो १।२ मनुष्य ३ सि० ऐसाहै कि ❋ आत्माहीमें है प्रीति जिसकी ४।५ अर्थात् आत्मासे पृथक्पदार्थमें जिसकी प्रीति नहीं ५ और आत्माहीमें तृप्तहै ६।७ अर्थात् इसलोकके और परलोकके पदार्थोंके प्राप्तीसे तृप्तिनहीं जानताहै ७ और आत्मामेंही ८।९।१० संतुष्ट ११ है. १२ अर्थात् आत्मासे पृथक्पदार्थकी न इच्छा रखताहै, और न उसकी दृष्टीमें आत्मासे सिवाय श्रेष्ठ पदार्थ है. ऐसा जो विरक्त ज्ञानी या संन्यासी है १२ तिसकू १३ करनेके योग्य १४ सि० कुछ भी कर्म ❋ नहीं १५ है. १६ तात्पर्य जो कोई कदाचित् कर्मकांडी ब्राह्मणादिक यह कहे संन्यासियोंसे, कि जैसे भिक्षाटनादि कर्म तुम करतेहो ऐसेही

तीर्थयात्रा, देवपूजादिकर्मकरनेमें तुम्हारी क्या क्षती है. उत्तर इसका प्रसिद्ध स्पष्ट है, कि जिसकी जहां प्रीति होती है,वो उसी जगे तत्पर रहता है. इस हेतुसे ज्ञानी आत्मामें परायण रहते हैं. उनकू देवपूजादिकर्म करनेका सावकाशही नहीं, और भिक्षाटनादि विद्वानका गौणकर्म है बाल्यभोजनवत्. और उसके विना तो शरीरकी स्थिति नहीं होसक्ती. देवपूजादिकर्मकेविना विद्वान्कीक्या क्षती होती है, जो सुन्दर सच्चिदानन्ददेवकू छोड,जडपाषाणादिदेवताका आराधन करे. तात्पर्य सिवाय आत्मनिष्ठाके विद्वान्कू और कुछ कर्तव्य नहीं सो वो निष्ठा ज्ञानीकी स्वाभाविक है, कर्तव्य नहीं. ज्ञानी शुद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, नित्यनिर्विकार पूर्णब्रह्म है ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ॥ १७॥

मू०नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥
नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ १८॥

तस्य १ कृतेन २ एव ३ अर्थः ४ न ५ अकृतेन ६ इह ७ कश्चन ८ न ९ सर्वभूतेषु १० अस्य ११ कश्चित् १२ अर्थव्यपाश्रयः १३ च १४ न १५ ॥ १८॥ अ०उ० वेदमें लिखाहै कि ज्ञानमार्गमें देवता विघ्न करते हैं यह सत्य है, परन्तु ज्ञानसे पहले विघ्न करतेहैं, ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त नहीं होनेदेते.मतमतान्तरके पंडितोंकी बुद्धीमें बैठकर और राजादिकोके मनमें स्थित होकर प्राणीकू कर्मों में प्रेरतेहैं, और अनेक विघ्न करतेहैं. और ज्ञानहुवे पीछे तो वेही देवता ज्ञानीकू अपना आत्मा जानतेहैं, चाहतेहैं आत्माके बराबर. यहभी तो वेदमें ही लिखाहै. श्रीभगवान् भी सातवें अध्यायमें कहेंगे, ज्ञानीत्वात्मैवमेमतम्. तात्पर्य कोई यह शंकाकरे कि देवतोंका भयकरके, वा कुछ देवतोंसे आशा करके तो ज्ञानीकू कर्म करना योग्य है इस शंकाको दूरकरनेकेलिये यह मंत्र कहतेहैं श्रीमहाराज. जबकि

ज्ञानी देवतोंकोभी जीतचुका, फिर अब उसकू कर्मकरनेसे और न करनेसे क्या प्रयोजन है, यह कहतेहैं. इत्यभिप्रायः. तिसकू १ अर्थात् ज्ञानीकू १ सि॰ कर्म ❋ किये करके २ भी ३ सि॰ किसीसे इसलोक वा परलोकमें कुछ ❋ प्रयोजन ४ नहीं. ५ सि॰ और ❋ न कियेसे ६ सि॰ भी ❋ इस लोकमें ७ कुछ ८ सि॰ उस ज्ञानीकू पाप (प्रायश्चित) ❋ नहीं ९ सि॰ होता. और ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❋ सबभूतोंमें १० इसका ११ अर्थात् ज्ञानीका ११ कोई १२ अर्थमें आश्रा १३ भी १४ नहीं. १५ तात्पर्य देवतामनुष्यादीसे ज्ञानीका व्यवहारमें वा परमार्थमें कुछ प्रयोजन नहीं. क्योंकि ज्ञानीके शरीरका निर्वाह तो प्रारब्धवशात् हुवेचलाजाताहै, उसकू कोई अधिक या न्यून नहीं करसक्ता. और न उसके स्वरूपकू कोई अधिक न्यून करसक्ता फिर कर्मकरनेमें क्या तो उसकी क्षती और क्या उसकू लाभ.॥ १८ ॥

मू॰ तस्मादसक्तःसततंकार्यंकर्मसमाचर॥
असक्तोह्याचरन्कर्मपरमाप्नोतिपूरुषः॥ १९ ॥

तस्मात् १ सततम् २ असक्तः ३ कार्यम् ४ कर्म ५ समाचर ६ असक्तः ७ पूरुषः ८ हि ९ कर्म १० आचरन् ११ परम् १२ आप्नोति १३ ॥ १९ ॥ अ॰ उ॰ विरक्त ज्ञानीकू ही कर्मका अनुपयोगहै, अज्ञानीकू वा गृहस्थाज्ञानीकू मैं नहीं कहताहूं. हे अर्जुन. तिसकारणसे १ निरन्तर २ असंग हुवा ३ करनेके योग्य ४ कर्मकू ५ कर तूं ६ असक्त ७ पुरुष ८ हि ९ कर्मकू १० करताहुवा ११ सि॰ अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानी होकर ❋ मोक्षकू १२ प्राप्त होताहै. १३ ॥ १९ ॥

मू॰ कर्मणैवहिसंसिद्धिमास्थिताजनकादयः॥
लोकसंग्रहमेवापिसंपश्यन्कर्तुमर्हसि॥ २० ॥

जनकादयः १ कर्मणा २ हि ३ एव ४ संसिद्धिम् ५ आस्थिताः ६

लोकसंग्रहम् ७ अपि ८ संपश्यन् ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ एव १२ ॥२०॥ अ० उ० सदासे कर्मकरके ही बडे२ महात्मा मुमुक्षू अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानकू प्राप्त हुवे हैं, यह कहते हैं. जनकादि १ कर्म करके २ ही ३ निश्चयसे ४ सि० अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ❋ ज्ञानकू ५ प्राप्त हूवेहैं. ६ सि० और जो कदाचित् तूं यह मानता हो कि मैं तो पहलेही ज्ञानी हूं, फिर अब कर्म क्यों करूं. उत्तर इसका यह है कि ❋ लोकसंग्रहकू ७ हि ८ देखताहुवा ९ अर्थात् यह विचारकर कि अज्ञानीजनभी महात्माओंका देखादेखी आचरण करतेहैं. ज्ञानियों के छोडदेनेसे अज्ञानीभी कर्म छोडकर कुमार्गमें प्रवृत्त होंगे, उनसे कर्म करानेकेलिये कर्मकरना योग्यहै. इस प्रयोजनकू स्मरण करताहुवा ९ कर्म करनेकू १० योग्यहै तूं ११ निश्चयसे. १२ तात्पर्य श्रीभगवान्‌का यह है, कि हे अर्जुन जो तूं अज्ञानीहै तबतो अन्तःकरणकी शुद्धि होनेकेलिये कर्म कर. और जो तूं ज्ञानी है, तो लोकसंग्रहकेलिये कर्म कर. गृहस्थाश्रमकी शोभा कर्मसेही है. इसीवास्ते जनकादि करते रहे. सर्वथा कर्मका अनुपयोग मैंने विरक्तसंन्यासियोंकेवास्ते कहा है. ॥ २० ॥

मू० यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

श्रेष्ठः १ यत् २ यत् ३ आचरति ४ तत् ५ तत् ६ एव ७ इतरः ८ जनः ९ सः १० यत् ११ प्रमाणम् १२ कुरुते १३ लोकः १४ तत् १५ अनुवर्तते १६ ॥ २१ ॥ अ० उ० बहुतेरे लोग जो कर्म, पाप वा पुण्य करते हैं, उनकर्मोंके भागी होतेहैं वे लोग कौन. तो धनवाले और हुकमवाले और पंडित और जातिमें जो प्रधान इत्यादि बडे बडे आदमी जो कहलाते हैं वे. ये क्यों भागी होतेहैं. इनसेही बुरेभले कर्मों का प्रचार जगत्में होताहै सोई कहते हैं इसमंत्रमें. श्रेष्ठ १ सि० पुरुष

❋जो २ जो ३ आचरण करताहै. ४ सोसोही ५।६।७ अन्यजन ८। ९ सि॰ कर्म करताहै. और ❋सो १० सि॰ प्रतिष्ठितजन ❋जिस-कू ११ अर्थात् कर्मयोगकूं वा ज्ञानयोगकूं ११ प्रमाण १२ करताहै. १३ सि॰ अजान ❋ जन १४ तिसकेही अनुसार वर्तता है. १५ १६ ॥ २१ ॥

मू॰ नमेपार्थास्तिकर्तव्यंत्रिषुलोकेषुकिंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यंवर्तएवचकर्मणि ॥ २२ ॥

पार्थ १ त्रिषु २ लोकेषु ३ मे ४ किंचन ५ कर्तव्यम् ६ न ७ अस्ति ८ अवाप्तव्यम् ९ अनवाप्तम् १० न ११ एव १२ च १३ कर्मणि १४ वर्ते १५ ॥ २२ ॥ अ॰ उ॰ लोकसंग्रहकेलिये ज्ञानी होकर किसीने कर्म कियाहै,इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहतेहैं, कि प्रथमतो मैं-ही ऐसाहूं. हे अर्जुन १ तीनलोकमें २।३ मुझकू ४ कुछभी ५ कर्तव्य ६ नहीं ७ है. ८ सि॰ और ❋प्राप्तहोनेके योग्य ९ सि॰ वस्तु जो चाहिये वो मुझकू सबक्या ❋ नहीं प्राप्तहैं. १०। ११ तोभी १२।१३ कर्ममें १४ वर्तताहूंमैं. १५ तात्पर्य मोक्षपर्यन्त मुझकू सबपदार्थ प्राप्तहैं, और मुझकू न किसीका खटका है,न मुझपर किसीकी आज्ञा है. तो भी मैं कर्म करताहूं, लोकसंग्रहकेलिये. कर्म न करना यह केवल विरक्त साधुवोंके वास्ते विधिहै. ॥ २२ ॥

मू॰ यदिह्यहंनवर्तेयंजातुकर्मण्यतंद्रितः ॥
ममवर्त्मानुवर्तन्तेमनुष्याःपार्थसर्वशः ॥ २३ ॥

यदि १ जातु २ अतन्द्रितः ३ अहम् ४ हि ५ कर्मणि ६ न ७ वर्तेयम् ८ पार्थ ९ सर्वशः १० मनुष्याः ११ मम १२ वर्त्म १३ अनुवर्तंते १४ ॥ २३ ॥ अ॰ उ॰ आप अपनी इच्छासे कर्म करतेहो, जो न करो तो क्याहो, यह शंका करके कहते हैं. जो १ कभी २ अनालस्य हुवा ३ अर्थात् आलस्य रहित होकर ३ मैं ४ ही ५ कर्ममें

६ न ७ वर्तूं ८ अर्थात् जो मैं ही कर्म न करूं तो, ८ हे अर्जुन ९ सबप्रकार करके १० मनुष्य ११ मेरे १२ मार्गकूं १३ पीछे वर्तेंगे १४ अर्थात् सबलोग कर्म छोडदेंगे. जिसरस्तेसे मैं चलूँगा उसीरस्तेसे सब चलेंगे. ॥ २३ ॥

मू० उत्सीदेयुरिमेलोकानकुर्यांकर्मचेदहम् ॥
संकरस्यचकर्तास्यामुपहन्यामिमाःप्रजाः॥२४॥

चेत् १ अहम् २ कर्म ३ न ४ कुर्याम् ५ इमे ६ लोकाः ७ उत्सीदेयुः ८ संकरस्य ९ च १० कर्ता ११ स्याम् १२ इमाः १३ प्रजाः १४ उपहन्याम् १५ ॥ २४ ॥ अ० उ० जो मनुष्य आपके देखादेखी कर्म छोडदेंगे, तो उसमें आपनें क्या किया, और आपको क्या क्षती है. यह शंका करके कहते हैं. जो १ मैं २ कर्म ३ न ४ करूं ५ सि० तो * ये ६ सि० अज्ञानी * जीव ७ सि० मेरे देखादेखी कर्म न करनेसे * भ्रष्ट होजावेंगे. ८ अर्थात् वर्णसंकर होजावेगा. इसहेतुसे मैनें ही प्रजाकूं भ्रष्ट किया, और ८ वर्णसंकरका ९ भी १० कर्ता ११ सि० मैंही * हुवा १२ सि० मेरा अवतार वास्ते धर्मकी रक्षाकेथा, मैनें धर्मकी रक्षा क्या की, उलटा मनुष्योंकूं वर्णसंकर किया. और इसी हेतुसे * इसप्रजाकूं १३ । १४ भ्रष्ट करनेवाला मैं हुवा. १५ अर्थात् उलटा प्रजाका अन्तःकरण मैला करनेवाला मैं हुवा. मैंनेही यह प्रजा मैली कीई. इत्यर्थः ॥ २४ ॥

मू० सक्ताःकर्मण्यविद्वांसोयथाकुर्वन्तिभारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

भारत १ यथा २ अविद्वांसः ३ कर्मणि ४ सक्ताः ५ कुर्वन्ति ६ तथा ७ विद्वान् ८ असक्तः ९ कुर्यात् १० लोकसंग्रहम् ११ चिकीर्षुः १२ ॥ २५ ॥ अ० उ० अज्ञजीवोंपर कृपाकरके लोकसंग्रहके लिये गृहस्थ और ज्ञानी ऐसा होकर भी कर्म करे यह कहते हैं. हे

अर्जुन १ जैसे २ अज्ञानी ३ कर्ममें ४ सक्त हुवे ५ सि० कर्म ❋ करतेहैं, ६ तैसे ७ ज्ञानी ८ असक्त हुवा ९ करे. १० सि० कैसा है वो ज्ञानी ❋ लोगोंकीरक्षा ११ करनेकी इच्छावाला १२ सि० है. वो ज्ञानी यह समझताहै कि ये कर्म और लोगोंके भलेके वास्ते मैं करताहूं ❋ ॥ २५ ॥

मू० नबुद्धिभेदंजनयेदज्ञानांकर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणिविद्वान्युक्तःसमाचरन् ॥ २६ ॥

अज्ञानाम् १ कर्मसंगिनाम् २ बुद्धिभेदम् ३ न ४ जनयेत् ५ विद्वान् ६ युक्तः ७ सर्वकर्माणि ८ समाचरन् ९ जोषयेत् १० ॥ २६ ॥ अ० उ० अज्ञानियोंपर जब कृपा करना ही ठहरा, तो फिर उनकू कर्ममें क्यों प्रवृत्त करना चाहिये. उनकू भी ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करना योग्य है, यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं, कि कर्मसंगीकू याने अज्ञानियोंकू कभी भूलकरभी ब्रह्मज्ञान सिखाना न चाहिये. ब्रह्मज्ञानके अधिकारी और ही मुमुक्षु शुद्धान्तःकरणवाले हैं. पुत्र स्त्री और धन इनमें जो आसक्त हैं वे नहीं. अज्ञानी कर्मसंगियोंके १ २ बुद्धीका भेद ३ न ४ उत्पन्न करे. ५ विद्वान् ६ सावधान हुवा ७ सि० अपने स्वरूपमें ❋ सवकर्मोंकू ८ करता हुवा ९ सि० अज्ञानियोंकू कर्ममें ❋ प्रेरे. १० अर्थात् आपभी करे और उनसे भी करावे १० तात्पर्य कर्मोंमें पुत्रादिपदार्थोंमें और देहादिमें जो आसक्त हैं. उनके बुद्धीकू ज्ञानी कर्मोंमेसे न हटावे. अर्थात् उनसे यह न कहे कि आत्मा अकर्ता, अद्वैत, अभोक्ता, स्वतंत्र, शुद्ध, सच्चिदानन्द, निर्विकार, ऐसा है. तुम कर्म क्यों करतेहो. कर्मतो जडहै. इसप्रकार उनकी बुद्धीका भेद न करे. क्योंकि उनका रागद्वेषादि सहित अंतःकरण होनेसे उनकू आत्माका ज्ञान न होगा. और कर्म छोड देनेसे उनकू इस लोकमें सुख न होगा, न परलोकमें. न उनके अन्तःकरण

मेंसे तम रज और कामक्रोधादि दूर होंगे. इसहेतुसे अज्ञानीजन कर्म न करनेसे उभयभ्रष्ट होजावेंगे.

मू० प्रकृतेःक्रियमाणानिगुणैःकर्माणिसर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्माकर्ताहमितिमन्यते ॥ २७ ॥

सर्वशः १ कर्माणि २ प्रकृतेः ३गुणैः ४ क्रियमाणानि ५ अहंकार-विमूढात्मा६इति ७मन्यते८अहम्९कर्ता१०॥२७॥अ०उ०अज्ञानी कर्मोंमे मनसे आसक्त होजाता है यह कहतेहैं. सबप्रकार करके१ कर्म २ प्रकृतीके ३ गुणोंकरके ४ कियेजातेहैं. ५ अर्थात् गुणही कर्त्ता है अहंकारकरके विमूढहै अन्तःकरण जिसका ६ सि० वो *यह ७ मानताहै ८ सि० कि*मैं ९ करता १० सि० हूं. इसी हेतूसे कर्मोंमें आसक्त होजाताहै*टी० अहंकारकरके अर्थात् इन्द्रियादिकोंमें आत्माका अध्यास करके अर्थात् मैं देखताहूं, खाताहूं, समझताहूं, इत्यादि. इसप्रकार इन्द्रियादिकोंकेसाथ आत्माकी एकता करके भ्रान्तीकू प्राप्तहुईहै बुद्धि जिसकी वो यह मानताहै कि मैं कर्ताहूं. ॥ २७ ॥

मू०तत्त्ववित्तुमहाबाहोगुणकर्मविभागयोः ॥
गुणागुणेषुवर्तन्तइतिमत्वानसज्जते ॥ २८ ॥

महाबाहो १ गुणकर्मविभागयोः २ तत्त्ववित् ३ तु ४ इति ५ मत्वा ६ न ७ सज्जते ८ गुणाः ९ गुणेषु १० वर्तते ११ ॥२८॥अ० उ० ज्ञानी कर्मोंमें मनसे नहीं आसक्त होताहै, यह कहते हैं. हे अर्जुन १ गुण और कर्मोंके विभागका २ तत्त्व जाननेवाला ३ तो ४ यह मानकर ६ नहीं ७ आसक्त होताहै ८ सि० कर्मोंमें क्या मानताहै वो, इस अपेक्षामें कहते हैं कि * इंद्रिय ९ विषयोंमें १० वर्तती हैं ११ सि० आत्मा निर्विकार शुद्ध है. ज्ञानी यह मानताहै * टी० मै गुणात्मक नहीं हूं. अर्थात् गुणरूप मैं नहीं. इसप्रकार तो

गुणोंसे आत्माकू पृथक् समझता है. और ये कर्म मेरे नहीं. इसप्रकार कर्मोंसे आत्माकू पृथक् समझता है. २ ॥ २८ ॥

मू॰ प्रकृतेर्गुणसंमूढाःसज्जन्तेगुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदोमंदान्कृत्स्नविन्नविचालयेत् ॥२९॥

प्रकृतेः १ गुणसंमूढाः २ गुणकर्मसु ३ सज्जन्ते ४ तान् ५ अकृत्स्नविदः ६ मन्दान् ७ कृत्स्नवित् ८ न ९ विचालयेत् १० ॥२९॥
अ॰ उ॰ कर्मसंगी मन्दमति हैं, इसहेतुसे भी उनकू ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं करना, यह कहते हैं. प्रकृतीके १ सि॰ सत्वादि ❋ गुणोंकरके भ्रान्त हुवे २ गुणोंके कर्मोंमें ३ आसक्त हैं ४ सि॰ जो ❋ तिन अल्पज्ञमन्दमतिपुरुषोंकू ५ । ६ । ७ सर्वज्ञ ज्ञानी ८ न ९ विचाले १० सि॰ कर्मोंसे ❋ अर्थात् उनकू ब्रह्मतत्त्वोपदेश नहीं करना. वे ब्रह्मज्ञानके अभी अधिकारी नहीं, जब वे आप जिज्ञासा करें तब उनकू उपदेश करना योग्य है. इत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

मू॰ मयिसर्वाणिकर्माणिसंन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममोभूत्वायुध्यस्वविगतज्वरः ॥३०॥

मयि १ अध्यात्मचेतसा २ सर्वाणि ३ कर्माणि ४ संन्यस्य ५ निराशीः ६ निर्ममः ७ विगतज्वरः ८ भूत्वा ९ युध्यस्व १० ॥३०॥
अ॰ उ॰ मुमुक्षूकू जिसप्रकार कर्मकरना चाहिये सो कहते हैं. मुझ सर्वज्ञत्वादिगुणविशिष्टसर्वात्मामें १ विवेकबुद्धीकरके २ अर्थात् अन्तर्यामीके आधीन हुवा यह कर्म करताहूं मैं, यह कर्म परमेश्वरार्थ है, मुझकू फलकी इच्छा नहीं, इसबुद्धीकरके. सबकर्मोंकू ३ । ४ अर्थात् सबकर्मोंके फलकू ४ सि॰ परमेश्वरमें ❋ अर्पण करके ५ आशारहित ६ ममतारहित ७ सन्तापरहित ८ होकर ९ युद्धकर. १० सि॰ क्षत्रियोंका युद्धही स्वधर्म याने कर्म है, सो इसप्रकार कर, जैसे ऊपर कहा ❋ टी॰ कर्म करनेके समय किसीप्रकार फलकी

इच्छा याने आशा नहीं रखना. ६ कर्मोंके फलमें ममतारहित इस-वास्ते होना चाहिये, कि उनका फल परमेश्वरको अर्पण होचुका. अभावपदार्थमें ममता नहीं बनसक्ती है. ७ कर्म करनेके समय धीरज उत्साह चाहिये ८ ॥ ३० ॥

मू० येमेमतमिदंनित्यमनुतिष्ठन्तिमानवाः ॥
श्रद्धावन्तोनसूयन्तोमुच्यन्तेतेपिकर्मभिः ॥ ३१॥

ये १ श्रद्धावन्तः २ अनसूयंतः ३ मानवाः ४ मे ५ इदम् ६ मतम् ७ नित्यम् ८ अनुतिष्ठन्ति ९ ते १० अपि ११ कर्मभिः १२ मुच्यन्ते १३ ॥३१॥ अ० उ० प्रमाणोंकेसहित मैंने यह उपदेश कियाहै, इसके अनुष्ठानकरनेमें बडा गुण है, यह कहते हैं श्रीमहा-राज. जो १ श्रद्धावाले २ असूयारहित ३ मनुष्य ४ सि० मैंने जो पीछे उपदेश किया ❀ मेरे ५ इस ६ मतकू ७ नित्य ८ अनुष्ठान करेंगे. ९ अर्थात् जबतक भलेप्रकार अन्तःकरणमेंसे रागद्वेषादि दूर न होवें, तबतक जो कर्म मेरी आज्ञासे करेंगे ९ वे कर्माधिकारी कर्मसंगी १० भी ११ कर्मों करके १२ अर्थात् कर्मोंसे १२ छूट जावेंगे, १३ अर्था-त् कर्मकरनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध होजायगा, फिर वे अपने आप कर्मोंकू त्यागकर ज्ञाननिष्ठ होजावेंगे, १३ टी० जो श्रीमहाराज कहते हैं, सो सत्य है, बेसन्देह भगवदाराधनादिकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे अतःकरण शुद्ध होकर ज्ञानद्वारा मुक्ति होतीहै, इसकू श्रद्धा कहते हैं २ गुणोंमें दोष निकालना उसकू असूया कहतेहैं, भगवत्के उपदेशमें यह दोष नहीं निकालते हैं,कि परमेश्वर फलका तो त्याग करवातेहैं, और कर्मकरनेकू कहतेहैं ऐसे ऐसें दोषरहित पुरुषोंकू अनसूयन्तः कहतेहैं ३ ॥ ३१ ॥

मू० येत्वेतदभ्यसूयन्तोनानुतिष्ठन्तिमेमतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः ॥३२॥

ये १ तु २ मे ३ एतत् ४ मतम् ५ न ६ अनुतिष्ठन्ति ७ अभ्यसूयन्तः ८ तान् ९ अचेतसः १० नष्टान् ११ सर्वज्ञानविमूढान् १२ विद्धि १३ ॥ ३२ ॥ अ० उ० गुणमें जो दोषकी कल्पना करते हैं वे महानीच हैं, सोई कहते हैं जो मेरे मतका अनुष्ठान करतेहैं वे तो विद्वान् हैं. और जो १ । २ मेरे ३ इसमतका ४ । ५ नहीं ६ अनुष्ठान करते हैं ७ सि० प्रत्युत ❋ असूया करते हैं ८ तिन अल्पज्ञ मुरदोंकू ९ । १० । ११ सब ज्ञानके विषय मूढ हैं १२ सि० यह ❋ जान तूं. १३ टी० मोक्षमार्गमें मुरदेके तुल्य है इसवास्ते उनकू नष्ट कहा. ११ कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, तमोगुण दूर होता है, उपासनासे चित्त एकाग्र होता है, रजोगुण दूर होता है, यही कर्म उपासना और अष्टांगयोगादिका परमप्रयोजन है, फिर ज्ञानसे मोक्ष होता है, यह मेरा मत है. इससे पृथक् जो किसीका पन्थ मतसम्प्रदाय है, उनसबकू सर्वरूपब्रह्मज्ञानके विषय मूर्ख जान तूं. १२ । १३ गुणोंमें जो अवगुणोंकी कल्पना करते हैं, उनकू अभ्यसूयन्तः कहते हैं. कल्पना ऐसे करते हैं कि जो शुभउपदेश करें, उनकू वाक्यवादी कहते हैं. जो मौन रहे उसकू पाखंडी, मूर्ख, अभिमानी, ऐसा कहते हैं. जो संतोषसे बैठारहे उसकू आलसी बतावें. जो उद्यम करे, उसकू लोभी कहें. तात्पर्य मैनें बहुत यह विचार किया है, कि कोई ऐसा गुण विद्वानोंका नहीं, कि जिसकू दुष्टोंनें दूषित न कियाहो. अक्षरोंका अर्थ फेरकर अनर्थ करें तो फिर इसमें क्या आश्चर्य है. ॥ ३२ ॥

मू०सदृशंचेष्टतेस्वस्याःप्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिंयान्तिभूतानिनिग्रहःकिंकरिष्यति ॥३३॥

भूतानि १ प्रकृतिम् २ यान्ति ३ स्वस्याः ४ प्रकृतेः ५ सदृशम् ६ ज्ञानवान् ७ अपि ८ चेष्टते ९ निग्रहः १० किम् ११ करिष्यति १२

॥ ३३ ॥ अ० उ० सबही मनुष्य प्रथम कर्मोंका अनुष्ठान करके अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ क्यों नही होते हैं, जिससे पूर्ण परमानन्द नित्यनिर्विकारकी प्राप्ति होती है, इससीधे रस्तेपर प्राणी क्यों नहीं चलते हैं, नानाप्रकारके अर्थोंकी अल्पना करके आपकी आज्ञाकू क्यों नहीं मानते हैं. इसअपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. कि सब, प्राणी १ सि० अपने ❋ प्रकृतीकू २ प्राप्तहो रहे हैं ३ अपने ४ प्रकृतीके ५ सदृश ६ ज्ञानवान् ७ भी ८ चेष्टा करताहै ९ सि० जो अज्ञानी जीव अपने स्वभावके अनुसार वरते, तो इसमें क्या कहनाहै, फिर मेरा वा किसीका ❋ निग्रह १० क्या ११ करेगा १२ तात्पर्य पूर्वकर्मोंके संस्कारोंसे जो स्वभाव जीवोंका होरहा है. (रजोगुणी वा तमोगुणी वा सतोगुणी) उसीस्वभावकू सब प्राप्त होरहे हैं, वैसे ही वैसे कर्म करते हैं. जो पुरुष अपने स्वभावके अनुसार कुमार्गमें प्राप्त होरहा है उसकू किसीका उपदेश क्या फल देगा? क्यों कि स्वभाव बलवान् है. इसहेतुसे मेरा उपदेश भी नहीं मानते हैं. ॥ ३३ ॥

मू० इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थेरागद्वेषौव्यवस्थितौ ॥
तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

इन्द्रियस्य १ इन्द्रियस्य २ अर्थे ३ रागद्वेषौ ४ व्यवस्थितौ ५ तयोः ६ वशम् ७ न ८ आगच्छेत् ९ तौ १० हि ११ अस्य १२ परिपंथिनौ १३॥३४॥अ० उ० जबकि आप स्वभावकू ही बलवान कहते हो, तो वेदादिकोंका विधिनिषेध वृथा ही है. यह शंका करके कहते हैं. इन्द्रियइन्द्रियका १।२ सि० अर्थात् सबइन्द्रियोंका अपने अपने ❋ अर्थमें ३ अर्थात् शब्दादिपदार्थोंमें ३ रागद्वेष ४ स्थित है ५ अर्थात् सबइन्द्रियोंके विषयोंमें राग भी है, और द्वेषभी है. ५ तिनके ६ अर्थात् रागद्वेषके ६ वशकू ७ नहीं ८ प्राप्तहो ९ अर्थात् रागद्वेषके वश न होजावे ९ सि० क्योंकि ❋ वे १० ही ११ अर्थात् रा

गद्वेषही ११ इसके १२ अर्थात् मुमुक्षूके मोक्षमार्गमें १२ चोर हैं १३ सि० लूटनेवाले हैं ❋ तात्पर्य सवइन्द्रियोंके अनुकूलपदार्थमें तो राग है, और प्रतिकूलमें द्वेष है. यह बात ज्ञानीकी भी होती है, और अज्ञानीकी भी होती है. यहांतक तो स्वभाव बलवान् है. और रागद्वेषके वश होजाना, यह अज्ञानीका काम है. और वशमें न होना, यह ज्ञानीका काम है. जैसे निर्मल और गम्भीर ऐसे जलमें एक माणे पडाहै, उसकू देखकर ज्ञानीका भी मन चला, और अज्ञानीका भी मन चला. यहांतक तो स्वभावकी प्रबलता है. क्योंकि रजोगुणके प्रभावसे माणिमें दोनोंका रागहोगया. याने इच्छा उत्पन्न होगई. परन्तु ज्ञानीने तो यह समझा कि जल बहुत है, जो मैं इसमें कूदा तो डूब जाऊंगा अज्ञानीकू यह समझ न थी, कि बहुत जलमें डूब जाते हैं. वो रजोगुणके वशसे तृष्णारागादिका दबाया हुवा कूद कर डूब गया. इसजगे ज्ञानी और अज्ञानी इन दोशब्दोंका तात्पर्य समझवाले और बेसमझवाले इन दोशब्दोमें है. ब्रह्मज्ञानीका प्रसंग नहीं. इसीप्रकार स्त्र्यादिपदार्थोंमें सबका रागद्वेष है, परन्तु जिन्होंनें शास्त्रद्वारा उससे भी गुरुद्वारा यह निश्चय कर रक्खा है, कि कांचनकान्तादिपदार्थ मोक्षमार्गके बैरी हैं. वे तो रागादि हुवे सन्ते भी प्रवृत्त नहीं होते. और जिन्होंनें शास्त्र नहीं श्रवण किया वे धोका (धक्के) खाते हैं. इसहेतुसे और शास्त्रकी बिधिनिषेध स्वभावसे बलवान् है. इसवास्ते शास्त्रका श्रवण करना. तात्पर्य अनुष्ठान करनेसे है. नहीं तो दिनमें हजारों लोग श्रवण करते हैं. रात्रीकू भूलकर फिर वोही खोटा काम करते हैं. तात्पर्य यह है कि पदार्थोंमें रागद्वेषहोना, यह तो स्वभाकी प्रबलता है. शास्त्रदृष्टीकरके उसमें प्रवृत्त होना, वा न होना; यह शास्त्र करता है. शीतादिके सहनेमें प्रवृत्ति, स्त्रीधन इत्यादि पदार्थोंसे निवृत्ति, शास्त्र करता है. ॥ ३४ ॥

मू० श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मेनिधनंश्रेयःपरधर्मोभयावहः॥ ३५॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वधर्मे ६ निधनम् ७ श्रेयः ८ परधर्मः ९ भयावहः १० ॥ ३५॥ अ० उ० स्वभावकेही वश होकर जो मनुष्य डूबता है, तो पहिले स्वभावकू जीतना ही योग्य है. और स्वभावतो वेदोक्तकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे ही जीता जाता है. सोई कहते हैं. सद्गुणोंकरके युक्त ऐसे पराये धर्मसे १। २ अपनाधर्म ३ किसी गुण करके रहित ४ सि० भी होवे, तो भी * श्रेष्ठ ५ सि० है * अपने धर्ममें ६ मरना ७ श्रेष्ठ ८ सि० है * परायाधर्म ९ भयकू प्राप्त करनेवाला है. १० तात्पर्य जो अपना निवृत्तिधर्म है वा प्रवृत्ति, वोही श्रेष्ठ है. निवृत्तिधर्मवालेकू तो, प्रवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये. और प्रवृत्तिधर्मवालेकू निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये. जोजो आपनेवर्णका या आश्रमका धर्म है, वोही वर्तना योग्य है. अपनेसे धर्मका अनुष्ठान करनेसे स्वभाव जीता जाता है.अथवा अपना धर्म जो सच्चिदानन्दरूप निर्विकार विगुणभी है. अर्थात् सत्त्व तम ये गुण उसमें नहीं,वो निर्गुणभी है, तो भी गुणोंवाले परधर्मसे,अर्थात् सत्त्वादिगुणोंके धर्म इन्द्रियशब्दादिविषयोंसे श्रेष्ठ है. इन्द्रियादिकोंका जो धर्म है वो आत्माका धर्म नहीं. परधर्म कहलाता है. उस परधर्ममें मरना, अर्थात् कर्ता होकर इंद्रियादिकोंकेसाथ मिलकर जो देहका त्याग करना है, वो संसारकू प्राप्त करनेवाला है. भय यह नाम संसारकाहीहै और अपने धर्ममें मरना, अर्थात् ज्ञाननिष्ठाब्रह्माकारवृत्तिस्वरूपमें जो देहका त्याग है, वो श्रेष्ठ है. क्योंके मुक्तीका हेतु है. यहां श्रुति प्रमाण है. ॥काश्यांमरणान्मुक्तिः॥ काशः ब्रह्मतत्वप्रकाशः यस्यां अवस्थायां साकाशी, काशी उसअवस्थाका नाम है,

कि जिसमें ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश होता है. उसकाशीमें मरनेसे मुक्ति होती है. ॥ ३५ ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ अथकेनप्रयुक्तोयंपापंचरतिपूरुषः ॥ अनिच्छन्नपिवार्ष्णेयबलादिवनियोजितः॥३६॥

अथ १ वार्ष्णेय २ अनिच्छन् ३ अपि ४ अयम् ५ पूरुषः६केन ७प्रयुक्तः८पापम्९ चरति १० बलात् ११ इव १२ नियोजितः १३ ॥३६॥अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि रागद्वेषके वश नहीं होना, पाप नहीं करना, अर्थात् परधर्मका अनुष्ठान नहीं करना, अपने ही धर्मका करना. वेदोक्तमार्गपर चलना यह सब सत्य कहते हैं, परन्तु जीव तो परतंत्र प्रतीत होता है जो स्वतंत्र हो, तो सबकुछ करसक्ता है. कोई ऐसा प्रबल प्रतीत होता है कि जीवसे बलकरके याने जबरदस्तीसे पाप कराता है. यह विचार करके अर्जुन श्रीमहाराजको प्रश्न करता है, कि हे महाराज,वो कौन है,की जिसके वश होकर जीव पाप करता है. अथ यह शब्द प्रश्नमें आता है१हे कृष्णचन्द्र२ नहीं इच्छा करता हुवा ३ भी ४ यह ५ जीव ६ किसकरके ७ प्रेरा-हुवा ८ पापकू ९ करता है, १० सि० ऐसा प्रतीत होता है, कि किसीनें ❋बलसे ११ जैसे १२ सि० पापमें ❋जोडदिया है. १३सि० जैसे बैलकू जबरदस्तीसे गाडीमें जोडदेते हैं, तैसेही जीवसे कोई जबरदस्तीसे पाप कराता है, ऐसा प्रतीत होता है❋तात्पर्य पाप करनेमें क्या हेतु है, यह अर्जुनका प्रश्नहै. ॥ ३६ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ कामएषक्रोधएषरजोगुणसमुद्भवः॥महाशनोमहापाप्माविद्ध्येनमिहवैरिणम्॥३७

एषः १ कामः २ एषः ३ क्रोधः ४ रजोगुणसमुद्भवः ५ महाशनः ६ महापाप्मा ७ एनम् ८ इह ९ वैरिणम् १० विद्धि ११ ॥ ३७ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि हे अर्जुन तूंने जोबूझा, कि पाप

करनेमें क्या हेतु है, सो सुन. यह १ काम २ सि० और ❀ यह ३ क्रोध ४ सि० दोनों येही पाप करनेमें हेतु हैं. येही जबरदस्तीसे जीवसे पाप कराते हैं. इसलोकके और परलोकके पदार्थोंकी जो कामना है, यही पापकी जड है. यही काम क्रोधाकार होजाताहै. कैसाहै यह काम ❀ रजोगुणसे उत्पत्ति है जिसकी ५ अर्थात् कामकीभी जड रजोगुण है. इसविशेषणका यह तात्पर्य है, की रजोगुणके जीतनेसे कामभी जीताजाता है, और कामके जीतनेसे क्रोध जीता जाता है. सत्वगुण बढ़ानेसे रजोगुण कम होता है. फिर कैसा है वो काम. बडा भोजन है जिसका ३ अर्थात् कितनाही भोग भोगो, कभी इच्छा पूर्ण न होवेगी. प्रत्युत दूनी आग लगे. इस हेतूसे वो काम ६ महापापी ७ सि० है. काम करकेही, यह जीव पाप करता है और सदा यह पापी पाप करता है ❀ इसकू ८ अर्थात् कामकू ८ मोक्षमार्गमें ९ वैरी १० जानतूं. ११तात्पर्य कामनाकू वैरी (विषसे भी सिवाय) समझकर इस लोक परलोकके कामनाका त्याग करना यही मोक्षका हेतु है ॥ ३७ ॥

मू० धूमेनाव्रियतेवह्निर्यथादर्शोमलेनच॥
यथोल्बेनावृतोगर्भस्तथातेनेदमावृतम् ॥ ३८॥

यथा १ धूमेन २ वह्निः ३ आव्रियते४ यथा ५ च ६ आदर्शः७मलेन ८ उल्बेन ९ गर्भः १० आवृतः ११ तथा १२ तेन१३इदम्१४ आवृतम् १५ ॥ ३८॥ अ० उ० कामका वैरीपना यह है. जैसे १धूमकरके २ अग्नि ३ ढका है ४ और जैसे ५।६ शीशा (ऐना) ७मलकरके ८ सि० मैला हो रहा है, और जैसे ❀जेरकरके ९ गर्भ १० ढका रहता है. ११ तैसेही १२ तिसकरके १३ अर्थात् कामकरके १३ यह १४ अर्थात् विवेक ज्ञान या आत्मा १४ ढका हुवा है. १५ तात्पर्य जैसे धूमादिने अग्नि आदिकू ढक रक्खा है, तैसे ही कामने

विचार विवेक और ज्ञानकू ढक रक्खा है. ये तीन दृष्टान्त उत्तम,मध्यम, और कनिष्ठ, इन तीन अधिकारियोंकेवास्ते हैं. जेरकेभीतर जो बच्चा होता है, उसका नाम गर्भ है.बच्चेके ऊपरसे जेर दूर करनेमें थोडा ही यत्न चाहता है, यह दृष्टान्त उत्तमकेवास्ते है. बीचका मध्यमकेवास्ते और शेष कनिष्ठके वास्ते है. ॥ ३८ ॥

मू० आवृतंज्ञानमेतेनज्ञानिनोनित्यवैरिणा ॥
कामरूपेणकौन्तेयदुष्पूरेणानलेनच ॥ ३९ ॥

कौन्तेय १ एतेन २ कामरूपेण ३ ज्ञानम् ४ आवृतम् ५ज्ञानिनः ६ नित्यवैरिणा ७ दुष्पूरेण ८ अनलेन ९ च १० ॥३९॥ अ० उ० हेअर्जुन १ इसकामरूपने २।३ ज्ञान ४ ढक रखाहै ५ सि० अर्थात् इसलोकके या परलोकके पदार्थोंकी कामना ज्ञानको नहीं होनेदेती है कैसा है यह काम अज्ञानियोंकू तो फक्त भोगोंके प्राप्तिके प्रयत्न करनेमें, और प्राप्त हुवे ऐसे भोगोंके नाश होनेमें मात्र यह वैरीसा प्रतीत होता है अर्थात् भोग भोगनेके समय तो जीवसेभी प्याराहै.और ज्ञानीकू तो भोग समयभी वैरी प्रतीत होताहै.इसहेतूसे ज्ञानीका६नित्यवैरी है.७सि०ज्ञानी यह समझता है कि इन भोगोंनेही परमानन्दस्वरूपपरमात्मासे विमुख कर रक्खा है. इसवास्ते सबकालमें ज्ञानीकू भोग वैरी प्रतीत होते हैं. फिर कैसा है यह काम * भोगों करके कभी पूर्ण नहीं होता है ८ और अग्नीके सदृश स्वभाव है जिसका ९।१० सि० जैसे अग्नीमें जितना घी और इंधन डालाजावे उतनाही सिवाय प्रचण्ड होता है. यही कामकी गति है. जितनी जितनी प्राप्ति भोगोंकी होवे, उतनी उतनी तृष्णा और कामना बढती जावे * सातवां आठवां और नवां ये तीनों पद कामरूपेण इसपदके विशेषण हैं. ३९ ॥

मू० इन्द्रियाणिमनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येषज्ञानमावृत्यदेहिनम् ॥ ४० ॥

अस्य १ अधिष्ठानम् २ इन्द्रियाणि ३ मनः ४ बुद्धिः ५ उच्यते ६ एषः ७ ज्ञानम् ८ आवृत्य ९ एतैः १० देहिनम् ११ विमोहयति १२ ॥ ४० ॥ अ० उ० कामके जीतनेकेवास्ते कामका अधिष्ठान बताते हैं. अर्थात् काम जहां रहता है, उनस्थानोंकू बताते हैं. क्यों कि, जबतक वैरीका घर न जाना जावे, तबतक कैसे जीता जावे. इसका १ अर्थात् कामका अधिष्ठान रहनेकी जगे २ इन्द्रिय ३ मन ४ बुद्धि ५ कहते हैं, ६ अर्थात् महात्मा यह कहते हैं. कि इन्द्रियमनबुद्धि कामके रहनेकी जगे हैं. कुतः कि प्रथम विषयोंकू देखा, सुना, फिर यह संकल्पविकल्प किया, कि इसपदार्थकू भोगना योग्य है वा नहीं. फिर यह निश्चय कर लिया, कि अवश्य इसपदार्थकू प्राप्त करके भोगेंगे ६ सो यह ७ सि० काम ❋ ज्ञानकू ८ ढककर ९ इनकरके १० अर्थात् इन्द्रियादिकरके १० जीवकू ११ भ्रान्तकर देताहै. १२ अर्थात् कामकरके जीव अन्धासा हो जाताहै. कामनाके वश होकर बुरेभलेकी सुध नहीं रहती है. १२ ॥ ४० ॥

मू० तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

तस्मात् १ भरतर्षभ २ आदौ ३ इन्द्रियाणि ४ नियम्य ५ एनम् ६ पाप्मानम् ७ त्वम् ८ प्रजहि ९ हि १० ज्ञानविज्ञाननाशनम् ११ ॥ ४१ ॥ अ० उ० जबकि यह काम इन्द्रियादिकोंमें रहता है, तिसकारणसे १ हे अर्जुन २ सि० मोहहोनेसे ❋ प्रथम (आदिमें) ३ सि० ही ❋ इन्द्रियोंकू ४ रोककर ५ इसपापीकू ६ । ७ अर्थात् कामकू ७ तूं ८ मार (दूरकर) ९ क्यों कि १० सि० यही ❋ ज्ञानविज्ञानका नाश करनेवाला है. ११ टी० शास्त्र आचार्योंसे जो सुन समझ रक्खा है, उसकू इसजगे ज्ञान कहते हैं. और विशेष युक्तियों करके जो उसी ज्ञानकू निश्चय किया है, उसकू इसजगे

कहते हैं. ब्रह्म है. इतनाही समझना इसको ज्ञान, और उसका प्रत्यक्ष अनुभव होना इसको विज्ञान, यह नाम हैं, परंतु यहां उस ज्ञान विज्ञानका ग्रहण नहीं. क्यों कि उनकू कोई नाश नहीं कर सक्ता, तात्पर्य ज्ञानविज्ञानके पीछे कामादिका उदय विद्वानके अन्तःकरणमें होता ही नहीं. और जो अज्ञानीकू प्रतीत होताहो. तो उसकू कामाभास समझना योग्य है.॥रागोलिंगमबोधस्य संतुरागादयोवुधे॥ तात्पर्य रागाभास विद्वानमें रहो, ज्ञानविज्ञानको उससे कुछ क्षती नहीं. रागादिकू अज्ञानके चिन्ह हैं, रागादि ज्ञानविज्ञानके उदय और परिपाक नहीं होने देते हैं, यह अभिप्राय है. आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें ज्ञानविज्ञानका लक्षण भले प्रकार निरूपण किया है ११ जबतक इन्द्रिय और विषयका संबंध नहीं हुवा है, उससे पहलेही विचार करके इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये, जब विषयका सम्बंध होजाता है तब फिर इन्द्रिय नहीं रुकसक्ती हैं. और इन्द्रियोंके रोकनेसेही मनबुद्धीमेंसे काम जाता रहता है.॥४१॥

मू०इन्द्रियाणिपराण्याहुरिन्द्रियेभ्यःपरंमनः॥
मनसस्तुपराबुद्धियोबुद्धेःपरतस्तुसः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियाणि १ पराणि २ आहुः ३ इन्द्रियेभ्यः ४ मनः ५ परम् ६ बुद्धिः ७ मनसः ८ तु ९ परा १० यः ११ बुद्धेः १२ तु १३ परतः १४ सः १५ ॥ ४२ ॥ अ० उ० कुछ आश्राभी चाहिये कि जिसकरके इन्द्रियोंकू विषयोंसे रोका जावे, कामकू जीता जावे, इसअपेक्षामें श्रीमहाराज आश्रा बताते हैं. (स्थूलदेहसे) इन्द्रियोंकू १ श्रेष्ठ २ कहते हैं ३ सि०विद्वान्. क्यों कि सूक्ष्म हैं और प्रकाशक हैं. और ❋ इन्द्रियोंसे ४ मनकू ५ श्रेष्ठ ६ सि० कहते हैं. क्योंकि इन्द्रियोंका प्रेरक है. और ❋ बुद्धि ७ मनसे ८ भी ९ श्रेष्ठ १० सि० है. क्यों कि मनकी मालिक है. बुद्धीकू मनीषा कहते हैं ❋

जो ११ बुद्धीसे १२ भी १३ श्रेष्ठ १४ सि० है. अर्थात् सबका जो परमप्रकाशक है ❋ सो १५ सि० आश्रा रक्षक आत्मा है. इसीकू परमपुरुष, उत्तमपुरुष, पूर्णब्रह्म, परमगति, परमधाम, राम, ऐसा कहते हैं. इससे परे पृथक् श्रेष्ठ पदार्थ कुछ नहीं ❋ पुरुषान्नपरं किंचित्साकाष्ठासापरागतिः ॥ यह श्रुति है, सबकर परमप्रकाशक जोई ॥ राम अनादिअवधपति सोई ॥ ४२ ॥

मू० एवंबुद्धेःपरंबुद्ध्वासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहिशत्रुंमहाबाहोकामरूपंदुरासदम् ॥ ४३ ॥

महाबाहो १ एवम् २ बुद्धेः ३ परम् ४ बुद्ध्वा ५ आत्मना ६ आत्मानम् ७ संस्तभ्य ८ कामरूपम् ९ शत्रुम् १० जहि ११ दुरासदम् १२ ॥ ४३ ॥ अ० सि० आत्मा बुद्धि आदिकोंका साक्षी, प्रेरक, और वास्तव अक्रिय, निर्विकार, बुद्धिआदिपदार्थोंसे विलक्षण है ❋ हेअर्जुन १ इसप्रकार २ बुद्धीसे ३ परमश्रेष्ठ ४ सि० परमानन्दस्वरूप परमात्माकू ❋ जानकर ५ सि० और फिर उसी ❋ बुद्धीसे ६ मनकू ७ सि० आत्मामें ❋ निश्चलकरके ८ कामरूपवैरीकू ९ । १० मार, त्यागकर, दूरकर. ११ सि० कैसा है यह काम ❋ दुःखकरके प्राप्ति है जिसकी. १२ अर्थात् बडे बडे दुःखोंकरके काम (भोग) प्राप्त होते हैं. ॥ ४३ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथे अध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ इमंविवस्वतेयोगंप्रोक्तवानहमव्ययम् ॥ विवस्वान्मनवेप्राहमनुरिक्ष्वाकवेब्रवीत् ॥ १ ॥

इमम् १ अव्ययम् २ योगम् ३ विवस्वते ४ अहम् ५ प्रोक्तवान् ६ विवस्वान् ७ मनवे ८ आह ९ मनुः १० इक्ष्वाकवे ११ अब्रवीत् १२ ॥ १ ॥ अ० उ० पीछे दोअध्यायोंमें जो निरूपण किया कर्म संन्यासयोग, अर्थात् ज्ञानयोग ज्ञाननिष्ठा और उसका साधन (उपाय) कर्मयोग इसीमें सब वेदोंका अर्थ होगया. प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण यही दोप्रकारका धर्म, समस्त वेदार्थ है. सोई श्रीभगवाननें गीतामें कहा है येदोनों धर्म अनादि हैं. सोई श्रीभगवान् कहते हैं. इस अव्यययोगकू १ । २ । ३ सि० प्रथम सृष्टीके आदिमें ❋ आदित्यके अर्थ ४ मै ५ कहता भया. ६ अर्थात् यह ज्ञानयोग साधनसहित पहले मैनें आदित्यसे कहा ६ आदित्य ७ मनूके अर्थ ८ कहते भये. ९ अर्थात् आदित्यनें मनूसे कहा ९ मनू १० इक्ष्वाकूके अर्थ ११ कहते भये. १२ अर्थात् मनूनें इक्ष्वाकूसे कहा. कर्मयोग और ज्ञानयोगकू पृथक् पृथक् स्वतंत्र मोक्षके साधन दोयोग नहीं समझना. किन्तु केवल एक ज्ञानयोगही मोक्षका साधन है. कर्मयोगसाधन उसका अंग है. इसीवास्ते श्रीभगवाननें योगशब्दके विषय एकवचन कहा. द्विवचनवाला प्रयोग नहीं.क्योंकि मोक्षमार्ग दो नहीं. इसज्ञानयोगका अव्यय अविनाशी फल है इसवास्ते योगकूभी अव्यय कहा. नवें और बारवें पदमे एकवचनका प्रयोग है, अर्थमें बहुवचन आदरार्थ है. १२ ॥ १ ॥

मू० एवंपरंपराप्राप्तमिमंराजर्षयोविदुः ॥
सकालेनेहमहतायोगोनष्टःपरन्तप ॥ २ ॥

एवम् १ परंपराप्राप्तम् २ इमम् ३ राजर्षयः ४ विदुः ५ परंतप ६ महता ७ कालेन ८ इह ९ सः १० योगः ११ नष्टः १२ ॥ २॥ अ० उ० पीछले मंत्रमें जैसे कहा. इसप्रकार १ परम्परासे प्राप्त है २ सि० यह ज्ञानयोग ❋ इसकूं ३ सि० पहलेसेही बडे बडे ❋ राजऋषि ४ जा-

नते हैं. ५ तात्पर्य तूं भी क्षत्री है, तुझकूभी यह ज्ञानयोग उपायस: मीत जानकर अनुष्ठान करना योग्य है इसज्ञानयोगका. हे अर्जुन ६ बहुत ७ कालकरके ८ बहुतकालसे ७।८ इसलोकमें ९ सो १०योग ११ अर्थात् ज्ञानयोग ११ छिप गयाहै. १२ तात्पर्य भेदवादियोंका राजबल होजानेसे और भेदवादीपंडितोंके अनर्थ करनेसे यह वेदोक्त ज्ञानयोग साक्षात् मोक्षका साधन लोप होगया है.कुछ जाता नहीं रहा, नष्ट नहीं हुवा,क्यों कि उसका उपदेश करनेवाला अविनाशी अच्युत मैं विद्यमान हूं. इसीहेतूसे वो ज्ञानयोगभी अव्यय नित्यहै. ॥ २ ॥

मू० सएवायंमयातेद्ययोगःप्रोक्तःपुरातनः ॥
भक्तोसिमेसखाचेतिरहस्यंह्यतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

सः १ एव २ पुरातनः ३ अयम् ४ योगः ५ मया ६ ते ७ अद्य८ प्रोक्तः ९ मे १० भक्तः ११ सखा १२ च १३ असि १४ इति १५ हि १६ एतत् १७ उत्तमम् १८ रहस्यम् १९ ॥ ३ ॥ अ० उ०जो ज्ञान मैनें आदित्यसे कहा,सोई १।२ पहला अनादि ३ यह ४योग ५ मैनें ६ तेरेअर्थ ७ तुझसे ७ अब ८ कहाहै. ९ मेरा १० भक्त११ और सखा १२।१३ हैतूं १४ यह १५ निश्चय १६ सि० रख. इसी वास्ते ❋ यह १७उत्तम १८ रहस्य १९ अर्थात् ज्ञानयोग मैनें तुझसे कहा अथवा यह ज्ञानयोगही श्रेष्ठ निश्चित श्रेयहै,इसीवास्ते मैनें तुझसे कहा. तूनें द्वितीय अध्यायमें मुझसें कहाथा कि जो निश्चितश्रेय हो सो मुझसे कहो ॥ ३ ॥

मू०अर्जुनउवाच॥अपरंभवतोजन्मपरंजन्मविवस्वतः॥कथमेतद्विजानीयांत्वमादौप्रोक्तवानिति४॥

भवतः १ जन्म २ अपरम् ३ विवस्वतः ४ जन्म ५ परम् ६ एतत् ७ कथम् ८ विजानीयाम् ९ त्वम् १० आदौ ११ प्रोक्तवान् १२ इति १३ ॥ ४ ॥ अ० उ० श्रीभगवान्के कहनेकू असंभव

मानता हुवा अर्जुन कहता है कि हे महाराज, आपका १ जन्म २ पीछे ३ सि० द्वापरके अन्तमें अब हुवा ❋ आदित्यका ४ जन्म५ पहले ६ सि० द्वापरके अन्तमें हुवा ❋ यह ७ कैसे ८ जानूमैं. ९आप १० सि० सृष्टीके ❋ आदीमें ११ सि० आदित्यसे ❋ कहतेभये १२ अर्थात् पहले आपने आदित्यसे किसप्रकार कहा १२यह १३ सि० मेरा प्रश्नहै. अर्जुनके इसप्रश्नसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अर्जुनकू ब्रह्मका ज्ञान नहीं. क्यों कि पूर्णब्रह्म अनादि, अज, अमरकू अबतक वसुदेवजीका पुत्रही समझता है ❋ ॥ ४ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ बहूनिमेव्यतीतानिजन्मानि तवचार्जुन॥तान्यहंवेदसर्वाणिनत्वंवेत्थपरंतप॥५॥

अर्जुन १ मे २ बहूनि ३ जन्मानि ४ व्यतीतानि ५ तव ६ च ७ तानि ८ सर्वाणि ९ अहम् १० वेद ११ परंतप १२ त्वम् १३ न १४ वेत्थ १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० अर्जुनके प्रश्नका अभिप्राय समझकर श्रीभगवान् कहते हैं, हेअर्जुन १ मेरे २ बहुत ३ जन्म ४ व्यतीत हुवे हैं. ५ सि० और ❋ तेरे ६ भी ७ तिन सबकू ८।९मैं १० जानता हूं ११ शुद्धसत्त्वप्रधानमायोपहित होनेसे हे अर्जुन १२ तूं १३ नहीं १४ जानता है. १५ सि० मलिनसत्त्वप्रधानअविद्योपहित होनेसे ❋ तात्पर्य आदित्यकू मैनें और रूपकरके उपदेश किया है पहले जन्ममें यह समझ तूं. ॥ ५ ॥

मू० अजोपिसन्नव्ययात्माभूतानामीश्वरोपिसन् ॥ प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्ममायया॥ ६॥

अव्ययात्मा १ अजः २ अपि ३ सन् ४ भूतानाम् ५ ईश्वरः ६ अपि ७ सन् ८ स्वाम् ९ प्रकृतिम् १० अधिष्ठाय ११ आत्ममायया १२ संभवामि १३ ॥ ६ ॥ अ० उ० जबकि ईश्वर निर्विकार जन्मादिरहित है, उसका वारंवार जन्म कैसे हो सका है यह शंकाकरके कह-

ते हैं. निर्विकार है आत्मा जिसका अर्थात् मेरा १सि० सो मैं निर्विकार *जन्मरहित २ भी ३हुवा ४ भूतोंका ५ ईश्वर ६ भी ७ हुवा. ८ अपने ९ मायाका १० आश्रय करके ११अपनी शक्ति सामर्थ्य करके १२प्रकट होताहूं१३टी०त्रिगुणात्मक त्रिगुणवाली शुद्धसत्त्वप्रधानमायाकू अपने आधीन करके मायाके सम्बन्धसे मायोपहित होकर अवतार लेता हूं. ९।१०।११ ज्ञानबलवीर्य आदि अलौकिक अचिंत्यशक्तीकरके अपने इच्छापूर्वक अवतार लेताहूं. वास्तव जीववत् मैं देहधारी नहीं. यद्यपि जन्मरहित निर्विकार ईश्वरभी मैं हूं, तो भी मायामात्र मेरे जन्म हैं. वास्तव मैं अज हूं ॥ ६ ॥

मू०यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

भारत १यदा २यदा ३ धर्मस्य ४ग्लानिः ५ भवति ६ अधर्मस्य ७ अभ्युत्थानम् ८ तदा ९ हि १० आत्मानम् ११ सृजामि १२ अहम् १३ ॥ ७ ॥ अ०उ० किसकालमें आपका जन्म होता है, इसअपेक्षामें कहते हैं. हेअर्जुन १ जिसजिसकालमें २ ३ धर्मकी ४ हानि ५ होती है; ६ सि० और* अधर्मकी ७ अधिकता ८ सि० होती है* तिसकालमें ९ ही १० आत्माकू ११ प्रकट करताहूं १२ मैं. १३ अर्थात् अवतार लेता हूं मैं. १२।१३ टि० ज्ञानयोग साधनके सहित जब कम होता है, तबही मैं अवतार लेता हूं. मेरे अवतार दोप्रकारके हैं. एक नित्य अवतार, और दूसरा निमित्त अवतार. ज्ञानी विरक्त महात्मा साधु मेरे नित्य अवतार हैं. और रामकृष्णादि निमित्त अवतार हैं ४ मनुष्योंके कल्पित पाषंड पंथसम्प्रदायोंकी जब वृद्धि होती है तबही नित्य वा निमित्त अवतार लेता हूं॥७॥

मू०परित्राणाय साधूनांविनाशायचदुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थायसंभवामियुगेयुगे ॥ ८ ॥

साधूनाम् १ परित्राणाय २ दुष्कृताम् ३ च ४ विनाशाय ५ धर्मसंस्थापनार्थाय ६ युगेयुगे ७।८ संभवामि ९ ॥ ८ ॥ अ० उ० आप अवतार क्यों लेते हो, इस अपेक्षामें कहते हैं. साधु महात्माओंकी १ रक्षा (सहाय) के लिये २ और दुष्टोंका ३ ।४ नाश करनेके वास्ते ५ सि० इसप्रकार ❀ धर्मके स्थिर करनेकेवास्ते ६ अथवा ज्ञानयोगकू साधनोंके सहित स्थिर करनेके वास्ते ६ युगयुगमें ७।८ अर्थात् सत्ययुगादि हरएकयुगमें जबजब दुष्टलोग साधुलोगोंसे वैर (विरोध) करते हैं, तब मैं उसी कालमें ८ अवतारलेता हूं ९ तात्पर्य साधुजनोंकी रक्षा करनेसे धर्मकी रक्षा होती है. धर्मके स्थिर रहनेसे अर्थकाममोक्षकी प्राप्ती होती है. दुष्टोंकू जो दंड देना है यहभी नारायणकी उनपर कृपा है. क्यों कि जैसे मातापिता जबतक बालककू ताडना नहीं करते, तबतक वो नहीं सुधरता. जैसे मातापिताकी ताडना निर्दयाकरके नहीं, ऐसेही महेश्वरकी ताडना दया करकेही होती है. जो लोग लोकवासनादिकू त्यागकर केवल ब्रह्म परायण हैं. सिवाय परमेश्वरके और किसी राजा मित्र पुत्र धनादिका आश्रा नहीं रखते, ऐसे साधू महात्माओंके वास्ते अवतार होता है. ॥ ८ ॥

मू० जन्मकर्मचमेदिव्यमेवंयोवेत्तितत्त्वतः ॥
त्यक्त्वादेहंपुनर्जन्मनैतिमामेतिसोऽर्जुन ॥ ९ ॥

दिव्यम् १ मे २ जन्म ३ कर्म ४ च ५ एवं ६ यः ७ तत्वतः ८ वेत्ति ९ अर्जुन १० सः ११ देहम् १२ त्यक्त्वा १३ पुनः १४ जन्म १५ न १६ एति १९ ॥ ९ ॥ अ० उ० परमेश्वरके जन्मकर्मोंकू जो यथार्थ जानता है, वो परमपद ऐसे मोक्षकू प्राप्त होता है, सोई कहते हैं मायामात्र अलौकिक १ मेरे २ जन्म ३ और कर्मकू ४।५ इसप्रकार ६ अर्थात् जब धर्मका नाश होने लगता है, तब और धर्म प्रचारक साधुलोगोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंके नाश करनेके

लिये अवतार लेता हूं इसप्रकार ६ जो ७ यथार्थ परमार्थदृष्टीसे ८ जानता है. ९हेअर्जुन १० सो ११ देहकू १२ त्यागकर १३ फिर १४ जन्मकू १५नहीं १६ प्राप्त होता है. १७सि० वो ❋मुझ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माकू १८ प्राप्त होता है. १९ तात्पर्य वास्तव न उनमें कर्मका करना बनसक्ताहै. क्यों कि परमेश्वर निर्विकार है. अध्यारोपमें व्यवहारमात्रदृष्टीकरके तत्त्वज्ञानके प्राप्तीके लिये भगवतके जन्मकर्म विद्वानोंनें निरूपण किये हैं. और जो सिद्धान्तमेंभी यह कहते हैं, कि भगवतके जन्मकर्म वास्तव सत्य हैं. ईश्वर अपने अचिन्त्यशक्तियों करके अपने अधीन हुवा अपने इच्छासेही जन्म लेता है, और कर्म करता है, औरोंके भलेके लिये. वो आप्तकाम है. प्रथम तो इसअर्थमें यह शंका है कि ईश्वर नित्य निर्विकार न रहा, ऐसा प्रतीत होता है. किसीकालमें (प्रलयादिकालमें) ईश्वर निर्विकार कहा जाता होगा. सो ईश्वर अबतो विकारवान् स्पष्ट प्रतीत होता है, रक्षादि कर्मकरनेसे. और प्रलय समयमें तो जीवभी निर्विकार होता है. इसप्रकार जीवकूभी निर्विकार कहना चाहिये. दूसरी शंका यह है कि यह कौन नहीं जानता है, कि ईश्वरके जन्मकर्म अपने वास्ते नहीं परायेवास्ते हैं. ईश्वर आप्तकाम अचिन्त्यशक्तिमान् स्वतंत्र स्वाधीन है, यह बात सब जानते हैं, परन्तु केवल इतने जाननेसे कोई परमेश्वरकू प्राप्त नहीं होता. क्यों कि यह ज्ञान ऐसा है कि बालकोंकूभी है. सबही मुक्त होजाना चाहिये. श्रीमहाराजके कहनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि भगवतकी प्राप्ती केवल ईश्वरके ज्ञानसेंही होती है. तात्पर्य जिसज्ञानसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, वो ईश्वरका ज्ञान यह है, कि परमेश्वरकू नित्य, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द ऐसे आत्मासे अभिन्न जानना योग्य है. और जन्मकर्म परमेश्वरको वास्तव नहीं. मायामात्र, तत्त्वज्ञानके प्राप्तीके लिये अध्यारोपमें कहे जाते हैं. यही तात्पर्य वेदोंका, और विद्वानोंका अनुभव भी है. ॥ ९ ॥

मू० वीतरागभयक्रोधामन्मयामामुपाश्रिताः॥
बहवोज्ञानतपसापूतामद्भावमागताः॥ १० ॥

ज्ञानतपसा १ पूताः २ माम् ३ उपाश्रिताः ४ मन्मयाः ५ वीतराग-भयक्रोधाः ६ बहवः ७ मद्भावम् ८ आगताः ९ ॥ १० ॥ अ० उ० ब्रह्मज्ञानसे पृथक् किसी साधनकीभी अपेक्षा न रखकर, केवल ब्रह्मज्ञानसे ही असंख्यात जीव मुक्त होगए. ब्रह्मज्ञानही सनातनसे मोक्षमार्ग है. सोई कहते हैं. ज्ञानरूप तपकरके १ अर्थात् ब्रह्मज्ञानकरके १ पवित्र हुवे २ मुझ ३ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्द स्वरूप आत्माकू ३ आश्राकिये हुवे ४ अर्थात् केवल ज्ञाननिष्ठ हुवे ४ ब्रह्मस्वरूप हुवे ५ दूर होगये हैं रागभयक्रोध जिनसे ६ सि- ऐसे ब्रह्मज्ञानी *बहुत ७ मोक्षकू ८ प्राप्त हुवे ९ टि० तप नाम विचारका है, तप विमर्शने, इति धातुपाठे द्रष्टव्यम्. ब्रह्मज्ञान और ब्रह्म विचार येदोनों एक ही बात है, ज्ञान और तप शब्दाका अर्थ एककरनेसे. अभिप्राय यह है, कि ज्ञान स्वतंत्र मोक्षका हेतु है, किसी और साधनकी इच्छा नहीं रखता. शास्त्रमें जो यह सुना जाता है, कि तप करके ज्ञान होता है. तात्पर्यार्थ इसका यही है, कि ब्रह्मविचार करके ज्ञान होता है. विचारका स्वरूप यह है. ऐसे विचार करके कि वो ब्रह्म निर्गुण है, वा निर्विकार है, मुझसे भिन्न है, वा अभिन्न है, साकार है, वा निराकार इसप्रकार मनन करनेका नाम विचारहै, इस विचारसे निराकार निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मासे अभिन्न जानकर, पवित्र होकर, ब्रह्मकू प्राप्त हुवे. ज्ञानके बराबर कोई साधन पवित्र नहीं. पवित्रसेही पवित्र होसक्ता है इसहेतूसे ज्ञानही मोक्षका हेतु है. पढना सुनना साधन हैं, कर्मउपासना अन्य प्रकार है. ॥ १० ॥

मू० येयथामांप्रपद्यन्तेतांस्तथैवभजाम्यहम्॥
ममवर्त्मानुवर्तन्तेमनुष्याःपार्थसर्वशः ॥ ११ ॥

ये १ माम् २ यथा ३ प्रपद्यन्ते ४ तान् ५ तथा ६ एव ७ भजामि ८ अहम् ९ पार्थ १० सर्वशः ११ मनुष्याः १२ मम १३ वर्त्म १४ अनुवर्तन्ते १५॥११॥अ०उ० अष्टांगयोग, सांख्य, कर्म, भेदभक्ति, अभेदभक्ति, ब्रह्मज्ञानपर्यन्त ये सब क्रमसे मोक्षमार्ग हैं. परंतु साक्षात् स्वतंत्रमुक्ति ब्रह्मज्ञानीयोंकू ही प्राप्त होती है, और लोक पीछे क्रमसे ज्ञानद्वारा मुक्त होते हैं, सोई कहते हैं. जो १ मुझशुद्धसच्चिदानन्दकू २ जैसे ३ भजते हैं ४तिनकू ५ तैसेही ६।७ भजता हूं. ८ मैं. ९ अर्थात् जैसे फलकी मनमें भावना करके मेरी उपासना करते हैं, उनकू मैं वैसाही फल देताहूं. अर्थात् मुक्ति चाहते हैं उनकू मैं मुक्त करताहूं और जो बृन्दावनके वृक्ष गीदड बना चाहते हैं, मुक्ति नहीं चाहते, उनकू मैं वोही फल देता हूं ९ सि०परंतु ❋ हे अर्जुन १० सब प्रकारकरके ११ मनुष्य १२ मेरे १३ सि० ही ❋ मार्गमें १४ अर्थात् ज्ञानमार्गमें १४ पीछे वर्तते हैं, १५ सि० तब मुक्त होते हैं ❋ अर्थात् योगकर्मभक्तितपादि सब साधनोंका अनुष्ठान करके पीछे सब ज्ञाननिष्ठाका अनुष्ठान करते हैं,तव मुक्त होते हैं.

मू० कांक्षंतःकर्मणांसिद्धिंयजन्तइहदेवताः॥
क्षिप्रंहिमानुषेलोकेसिद्धिर्भवतिकर्मजा॥ १२ ॥

कर्मणाम् १ सिद्धिम् २ कांक्षंतः ३ इह ४ देवताः ५ यजन्ते ६मानुषे ७ लोके ८ क्षिप्रम् ९ हि १० सिद्धिः ११ भवति १२ कर्मजा१३ ॥ १२ ॥ अ० उ० मोक्षकेवास्ते जो सब भजन नहीं करते उसमें यह कारण है. अर्थात् ज्ञानमें निष्ठा और श्रद्धा, लोगोंकू जिसवास्ते नहीं होती, और जिसहेतूसे ज्ञानकू थोथा और तुषोंका कूटना कहते हैं, वो हेतु यह है. कर्मोंके सिद्धीकू १ । २ चाहनेवाले ३ अर्थात् शब्दादिभोग और स्त्रीपुत्रादिके चाहनेवाले ३ इसलोकमें ४ साकारदेवतोंका ५ पूजन करते हैं ६

भासे० साक्षात् पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानन्द ऐसे आत्माकी उपासना नहीं करते जिससे साक्षात् परमपदकी प्राप्ती होती है ❋ मनुष्यलोकमें ७। ८ शीघ्र ९ ही १० सिद्धि ११ होती है. १२ कर्मजा अर्थात् कर्मोंसे उत्पत्ति है जिससिद्धिकी १३ अर्थात् कर्मोंका फल मनुष्यलोकमेंही शीघ्र प्राप्त होजाता है. स्त्रीपुत्रधनादि १३ तात्पर्य कर्मोंके करनेसे धनपुत्रादि फलकी प्राप्ति शीघ्र होजाती है, ज्ञानका फल परम पद. तितिक्षा वैराग्य त्याग चाहता है. अर्थात् परमपदकी प्राप्ति शब्दादिभोगोंके त्यागनेसे होती है. इसहेतूसे उनकी ज्ञानमें निष्ठा नहीं होती, और ज्ञानकू थोथा भूसेका कूटना बताते हैं. सिवाय इसके ब्रह्मज्ञान विनाविद्याके मूर्खोंकी समझमें नहीं भी आता. उसका अनुष्ठान करना तो दूर रहा. तात्पर्य मूर्ख आलसी विषयी ज्ञानमें श्रद्धा नहीं रखते अनित्यपदार्थोंमें निष्ठाकरके अनित्यफलकूही प्राप्त होते हैं. और ज्ञाननिष्ठावाले परमपद मोक्षकू प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

मू० चातुर्वर्ण्यंमयासृष्टंगुणकर्मविभागशः॥
तस्यकर्तारमपिमांविद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३॥

गुणकर्मविभागशः१ चातुर्वर्ण्यम् २ मया ३ सृष्टम् ४ तस्य ५ कर्तारम् ६ अपि ७ माम् ८ विद्धि ९ अकर्तारम् १० अव्ययम् ११ ॥१३॥ अ० उ० जो निष्कामवेदोक्त अनुष्ठान करते हैं, और जो सकाम भजन करते हैं, ये सब चारोंवर्ण आपके ही रचे हुवे है. ये चारोंवर्णमें जो विषमता आपनें करदीई है, इसी हेतूसे कोई सकाम है, कोई निष्काम है. और इसदोषके कारण आपही है. मनुष्योंका कुछ दोष नहीं, यह शंका करके कहते हैं. सत्वादिगुणोंके विभागसे कर्मोंका विभाग करके १ टी० गुणविभागेन कर्मविभागः तेन इति समासः. अर्थात् जिसमें जैसा गुण देखा उसीके अनुसार उसके कर्मोंका विभाग करदिया. जैसे एकजीवकू सतोगुणप्रधान देखा तो उसी सतोगुणके

अनुसार शमदमादि उसके कर्मोंका विभाग कर दिया, और एक नाम ब्राह्मण उसका प्रसिद्ध करदिया. इसीप्रकार. १ चारोंवर्ण २ मैंनें ३ रचे हैं. ४ अध्यारोपमें मायामात्र तिनका ५ कर्ता ६ भी ७ मुझकू ८ जान तूं ९ सि० और वास्तव परमार्थमें ❋ अकर्ता १० निर्विकार ११ सि० मुझकूं जान तूं पीछे भी इसी अध्यायमें परमेश्वरकू निर्विकार सिद्धकर चुके, और आगे पंचमादि अध्यायोंमें भलेप्रकार सिद्ध किया है. और चारोंवर्णोंका भेद अठारवें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है ❋ ॥

मू०नमांकर्माणिलिम्पन्तिनमेकर्मफलेस्पृहा ॥
इतिमांयोभिजानातिकर्मभिर्नसबध्यते ॥ १४ ॥

कर्माणि १ माम् २ न ३ लिम्पंति ४ न ५ मे ६ कर्मफले ७ स्पृहा ८ यः ९ माम् १० इति ११ अभिजानाति १२ सः १३ कर्मभिः १४ न १५ बध्यते १६ ॥ १४ ॥ अ० उ० वास्तव अकर्ता होनेसे ही. कर्म १ मुझकू २ नहीं ३ स्पर्श करते ४ सि० और ❋ न मुझकू ६ कर्मोंकेफलमें ७ चाह ८ सि० है ❋ जो ९ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माकू १० ऐसे ११ जानता है १२ सो १३ कर्मों करके १४ नहीं १५ बन्धनकू प्राप्त होता है. १६ टी० जैसे ईश्वर वास्तव अकर्ता हैं ऐसेही जीवात्माकू समझना चाहिये. नहीं तो ईश्वरकू तो कोईभी विकारवान् नहीं जानता. ईश्वरकू, अकर्ता निर्विकार जाननेसे जीव मोक्षकू नहीं प्राप्त होता, आत्माकू वास्तव अकर्ता निर्विकार जाननेसे मोक्ष होता है. ॥ १४ ॥

मू०एवंज्ञात्वाकृतंकर्मपूर्वैरपिमुमुक्षुभिः ॥
कुरुकर्मैवतस्मात्त्वंपूर्वैःपूर्वतरंकृतम् ॥ १५ ॥

एवम् १ ज्ञात्वा २ पूर्वैः ३ मुमुक्षुभिः ४ अपि ५ कर्म ६ कृतम् ७ पूर्वैः ८ पूर्वतरम् ९ कृतम् १० तस्मात् ११ त्वम् १२ एव १३ कर्म १४ कुरु १५ ॥ १५ अ० उ० अहंकारादि रहित होकर किया

हुवा कर्म बन्धका हेतु नहीं. आत्मा वास्तव अकर्ता है. इसप्रकार १ जानकर २ पहले जनकादि मुक्तीके इच्छावालोंनें ३।४ भी ५ कर्म ६ किया है. ७ सि० अन्तःकरणके शुद्धिके लिये कुछ अभी नया यह कर्मयोग तुझकू मैं उपदेश नहिं करता हुं. जब कि ❋ पहले जनकादिने ८ पहले त्रेतादियुगोंमें ९ किया है. १० तिसकारणसे ११ तूं १२ भी १३ कर्मकू १४ कर १५ टी० पहलोंनें अर्थात् प्रथम सत्यादि युगोंमें जो मुक्तीके इच्छावाले हुवे हैं, उन्होंनें भी किया है. जो तुझकू ब्रह्मज्ञान है तो लोकसंग्रहके लिये कर्म कर. और जो ज्ञान नहीं है, तो अन्तःकरणके शुद्धीके लिये कर्म कर. यह तात्पर्य श्रीमहाराजका है. ॥ १५ ॥

मू० किंकर्मकिमकर्मेतिकवयोप्यत्रमोहिताः॥
तत्तेकर्मप्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेशुभात्॥१६॥

कर्म १ किम् २ अकर्म ३ किम् ४ इति ५ अत्र ६ कवयः ७ अपि ८ मोहिताः ९ तत् १० कर्म ११ ते १२ प्रवक्ष्यामि १३ यत् १४ ज्ञात्वा १५ अशुभात् १६ मोक्ष्यसे १७॥ १६ ॥ अ० उ० स्नानं, संध्या, पाठ, पूजा, जप, साधुसेवाइत्यादि कर्म कहलाते हैं. जिसविधीसे इनकू पूर्वमीमांसावाले करते हैं, उसीविधीसे मैं भी करताहूं. कर्म करनेमें और क्या विचित्रता (विशेषता) है, कि जो वारम्वार आप मुझसे कहतेहो, कि जैसे पहले लोग कर्म करते आए हैं. उसप्रकार तूं कर्म कर. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं, कि लोकप्रसिद्ध परम्परामात्रकरके कर्म मुक्तीके हेतु नहीं. विद्वान् ज्ञानी जैसे उपदेश करें, उसप्रकार कर्म करनेसे वें कर्म मुक्तीके हेतु हैं. कर्मका स्वरूप समझना कठिन है. में तुझकू समझाऊंगा. कर्म १ क्या २ सि० है. और ❋ अकर्म ३ क्या सि० है ❋ यह ५ सि० जो ज्ञात है ❋ इसमें ६ कविपंडित ७ भी भ्रान्त होगये हैं ९ तिसकर्मकू

१०। ११ तुझसे १२ कहूंगा मैं १३ जिसकू १४ जानकरके १५ संसारसे १६ मुक्त होजायगा तूं. १७ तात्पर्य क्या कर्म करना चाहिये, और किसप्रकार करना चाहिये, कौनसा कर्म न करना चाहिये, इसबातके समझनेमें पंडितभी सन्देह और विपर्ययकू प्राप्त होजाते हैं. दृष्टांतसे इसबातकू स्पष्ट करते हैं. जैसे एक औषधी गरमीकू दूर करती है, तब भी उसके खानेकी रीति तोल समय बुद्धिमान् वैद्यसे बूझना योग्यहै. क्यों कि बुद्धिमान् वैद्य देशकालवस्तूका विचारकर कहेगा. प्रसिद्ध है कि एकही दवा किसीदेशमें फल करती है, किसीमे नहीं. वा दूसरे देशमें उलटा फलभी कर देती है. इसीप्रकार कालवस्तूमें समझ लेना. दवाके साथ जलादि मिलजानेसे औरका और फल होजाता है. इसी प्रकार कर्मोंकी व्यवस्था है. शास्त्रमें जो यह बारम्बार उपदेश है, कि गुरुकीविना सर्व धर्म निष्फल हैं, यह सत्य है. क्यों कि देशकालवस्तूका विचार करना ऐसीऐसी बहुत बातों केवल शास्त्रके पढने सुननेसे नहीं मिलती हैं. सद्गुरूमहापुरुषोंसे एकान्तमें मिलती हैं. और सत्पुरुषोंका यह नियम है, कि वे अपने अनन्य भक्तकू बताते हैं. नहीं तो संसारमें यह कहानी सच्ची है, कि " जैसे जिसका गाना, वैसाही दूसरेका बजाना " अर्थात् जैसे दुनियांके लोक चतुर है, उन्होंसे सिवाय विद्वान् हैं. ॥ १६ ॥

मू० कर्मणोह्यपिबोद्धव्यंबोद्धव्यंचविकर्मणः॥
अकर्मणश्चबोद्धव्यंगहनाकर्मणोगतिः॥ १७॥

कर्मणः १ अपि २ बोद्धव्यम् ३ विकर्मणः ४ च ५ बोद्धव्यम् ६ अकर्मणः ७ च ८ बोद्धव्यम् ९ हि १० कर्मणः ११ गतिः १२ गहना १३ ॥ १७ ॥ अ० उ० कर्मका स्वरूप यथार्थ जानकर कर्म करना चाहिये, भेडकेसी चाल अच्छी नहीं. यह समझाते है

श्रीमहाराज. कर्मका १ सि० तत्त्व ❋ भी २ जानना योग्य है. ३ और विकर्मका ४।५ सि० तत्वभी ❋ जानना योग्य है. ६ और अकर्मका ७।८ सि० तत्वभी जानना योग्य है. ९ क्यों कि १० कर्मकी ११ गति १२ गहना १३ अर्थात् कर्म अकर्म और विकर्म इन तीनोंकी व्यवस्था गम्भीर (कठिन विपम) है. टी० वेदोक्तविधीकू कर्म कहते हैं. १ वेदोक्तनिषेधको विकर्म कहते हैं. ४ कुछ न करनेंकू अकर्म कहते हैं. ७ तात्पर्य भलेप्रकार समझकर कर्मोंकू करना योग्य है.

मू० कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

यः १ कर्मणि २ अकर्म ३ पश्येत् ४ यः ५ च ६ अकर्मणि ७ कर्म ८ सः ९ मनुष्येषु १० बुद्धिमान् ११ सः १२ कृत्स्नकर्मकृत् १३ युक्तः १४ ॥ १८ ॥ अ० उ० जिस कर्मकू जानकर संसारसे मुक्त होजायगा तूं, वो कर्म तुझसे कहूंगा मैं. श्रीभगवाननें पीछे यह प्रतिज्ञा करीथी सो अब कहते हैं. अर्थात् ज्ञानीका लक्षण भी निरूपण करते हैं. जो १ कर्ममें २ अकर्म ३ देखता है, ४ और जो ५।६ अकर्ममें ७ कर्म ८ सि० देखता है, ❋ सो ९ मनुष्योंमें १० ज्ञानी ११ सि० है. क्योंकि ❋ सो १२ समस्त कर्म करता हुवा. १३ सि० भी ❋ युक्त १४ रहाता है ❋ अर्थात् समाहित सावधान रहता है, आत्माकू अकरता जानता हुवा समाधिनिष्ठ रहता है. टी० शरीरप्राणेन्द्रियांतःकरणके व्यापारकर्ममें २ आत्माकू कर्मरहित अकर्ता अकर्म ३ जो जानता है, और अकर्मरूप ब्रह्ममें संसारकर्मकू कल्पित जो जानता है, सोई ज्ञानी है, सोई समस्तकर्मोंका करताहै, सोई सावधान है स्वरूपमें. अथवा निष्कामकर्ममें जो अकर्म देखता है अन्तःकरणशुद्धिद्वारा और ज्ञानद्वारा मुक्तिका

हेतु होनेसे, और अकर्ममें अर्थात् विना ज्ञान कर्म न करनेमें जो कर्मकू अर्थात् संसारकू देखता है. अन्तःकरणशुद्ध न होनेसे और ब्रह्मज्ञान न होनेसे कर्मोंका न करना संसार बन्धनका हेतु है. ऐसे जो समझता है, सो मनुष्योंमें चतुर है. सो समस्तकर्म करता हुवा-भी युक्तयोगी है. तात्पर्य ज्ञानावस्थामें आत्माकू अकर्ता समझना इसमें तो कुछ सन्देह है नहीं. परन्तु अज्ञानावस्थामें भी आत्माकू अकर्ता समझना योग्य है. अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी आत्मा अकर्ता निर्विकार है, यह समझना चाहिये. और जब-तक ज्ञान नहो तबतक निष्काम असंग होकर आसक्तिरहित कर्मोंका अनुष्ठान करना योग्य है. और ज्ञानकालमें ज्ञानीके दृष्टीमें कर्म अकर्म और विकर्म ये सब सम हैं, यह अभिप्राय है इसमंत्रका. और इसी अर्थकू अगले पांचश्लोकोंमें और दूसरे प्रकारकरके स्पष्ट निरूपण करेंगे. ॥ १८ ॥

मू० यस्यसर्वेसमारम्भाःकामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणंतमाहुःपंडितंबुधाः ॥१९॥

यस्य १ सर्वे २ समारम्भाः ३ कामसंकल्पवर्जिताः ४ तम् ५ बुधाः ६ पंडितम् ७ आहुः ८ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् ९ ॥ १९ ॥

अ० जिसके १ समस्त २ कर्म ३ कामसंकल्प करके वर्जित ४ अर्थात् विनाकामना और संकल्पके ४ सि० आभासमात्र होते हैं. अर्थात् ज्ञानी जो कर्म करता है, वो कर्म न कुछ दृढइच्छाकरके करता है, और न कुछ संकल्पकरके किसीफल भोगकी कामना कल्पनाकरके करता है. स्वाभाविक जिसके सब कर्म होते हैं ❋ तिसकू ५ विद्वान् ६ विद्वान् ७ कहते हैं. ८ सि० कैसा है सो विद्वान् ❋ ज्ञानरूपअग्निकरके भस्म करादिये हैं कर्म जिसनें ९ अर्थात् ज्ञानीके कर्मभी अकर्म हैं. टी० जिनका प्रारम्भ कियाजावे

तिनकूही कर्म कहते हैं ३ इच्छा और उसइच्छाका कारण संकल्प इनदोनोंकरके रहित विद्वानके कर्म हैं. इसीहेतूसे वे कर्म अकर्म हैं. ४ ॥ १९ ॥

मू० त्यक्त्वाकर्मफलासंगंनित्यतृप्तोनिराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपिनैवकिंचित्करोतिसः ॥ २० ॥

कर्मफलासंगम् १ त्यक्त्वा २ नित्यतृप्तः ३ निराश्रयः ४ सः ५ कर्मणि ६ अभिप्रवृत्तः ७ अपि ८ किंचित् ९ एव १० न ११ करोति १२ ॥ २० ॥ अ० उ० समस्तकर्मोंका त्याग स्वरूपसे होना असम्भव है, उसमें आसक्ति और फलका त्यागकरदेना, यही कर्म-त्याग कहलाता है. और इसप्रकार कर्मकरनेवाले त्यागी संन्यासी कहलाते हैं. सोई कहते हैं. कर्मोंमें और कर्मोंके फलमें आसक्तीकू १ त्यागकरके २ नित्यस्वरूपकरके तृप्त ३ अर्थात् नित्य जो आत्मा है उस नित्य निजानन्दकरके तृप्त ३ आश्रयरहित ४ अर्थात् सिवाय आत्मानन्दके और किसी विषयका नहीं है आलम्बन आश्रा जिसको. ४ सो ५ कर्ममें ६ सबतरफसे भलेप्रकार प्रवृत्त ७ भी ८ सि० है ❋ अर्थात् दिनरातकर्मोंका कर्ताभी है ७ । ८ सि० तोभी वो ❋ कुछ ९ भी १० नहीं ११ करता. १२ टी० लोक-बासनादिकरके रहित ४ शरीरप्राणेन्द्रियांतःकरणसे यथायोग्य क-र्मोंकू करताभीहै ७ आत्माके साथ उनकर्मोंका लेशमात्रभी संबंध नहीं. विद्वान् यह समझता है. इसहेतूसे ऐसे कर्म करनेवाले महात्माकू ज्ञानी कहते हैं ॥ २० ॥

मू० निराशीर्यतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरंकेवलंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ २१ ॥

निराशीः १ यतचित्तात्मा २ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ३ केवलम् ४ शारीरम् ५ कर्म ६ कुर्वन् ७ किल्बिषम् ८ न ९ आप्नोति १०

॥ २१ ॥ अ० आशारहित १ जीत लिया है अन्तःकरण और शरीर जिसनें २ त्यागदिया है सब परिग्रह जिसनें ३ सि० सो ❋ केवल ४ शरीरके निर्वाहमात्र ५ कर्मकूं ६ करता हुवा ७ पापकूं ८ नहीं ९ प्राप्त होता. १० टी० इसलोकपरलोकके पदार्थोंकी कोई आशा नहीं है जिसको, क्यों कि उसनें इन्द्रियादिकूं वशकर लिया. देहयात्रासे सिवाय सब बखेडा है. फटापुराना वस्त्र, रूखासूखा अन्न, इसकेबिना तो निर्वाह निर्विक्षेप होना कठिन है, अन्नवस्त्रका ग्रहणभी विक्षेप दूरकरनेके लिये है. क्यों कि जो शीतकालमें शीतनिवारणवस्त्र न हो, वा अन्न न खावे, तो अतिविक्षेप होता है, विचार नहीं होसक्ता. देहयात्रामात्र अन्नवस्त्र विक्षेपके हेतु नहीं. इससे सिवाय सब परिग्रह कहलाता है. वो त्याग दिया है जिसनें, सो पदार्थोंमें इष्ट अनिष्ट बुद्धिरहित होकर केवल शरीरका निर्वाह करता हुवा कर्माकर्मविकर्मकरके बन्धनकूं नहीं प्राप्त होता. वेदके विधीकाभी तात्पर्य निवृत्तीमें है. सो निवृत्ति विद्वानका बाना है. वेदकी विधीनिषेध कामीओंके वास्ते है. निष्काम पुरुषोंपर किसीकी विधिनिषेध नहीं. ॥ २१ ॥

मू० यदृच्छालाभसन्तुष्टोद्वंद्वातीतोविमत्सरः ॥
समःसिद्धावसिद्धौचकृत्वापिननिबध्यते ॥ २२ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टः १ द्वंद्वातीतः २ विमत्सरः ३ सिद्धौ ४ असिद्धौ ५ च ६ समः ७ कृत्वा ८ अपि ९ न १० निबध्यते ११॥२२॥
अ० उ० विनाइच्छा किये, विनासंकल्प, विनामांगे, जो पदार्थ प्राप्त हो, उसकूं यदृच्छालाभ कहते हैं. यदृच्छालाभकरके तृप्त १ द्वन्द्वरहित २ निर्वैर ३ सि० कर्मोंके ❋ सिद्धि और असिद्धीमें ४।५.६ सम ७ सि० जो है. ऐसा महापुरुष कर्माकर्मविकर्म ❋ करके ८ भी ९ नहीं १० बन्धनकूं प्राप्त होता है. ११ टि० हर्षविषाद, शीतोष्ण, मानापमान, सुखदुःख, इत्यादि जोडोंकूं द्वन्द्व कहते हैं. २ ॥ २२ ॥

मू० गतसंगस्यमुक्तस्यज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतःकर्मसमग्रंप्रविलीयते ॥ २३ ॥

गतसंगस्य १ मुक्तस्य २ ज्ञानावस्थितचेतसः ३ यज्ञाय ४ आचरतः ५ कर्म ६ समग्रम् ७ प्रविलीयते ८ ॥ २३ ॥ अ० उ० दूर होगई है, सब पदार्थोंमें आसक्ति जिसकी १ अर्थात् न इसलोकके पदार्थोंमें जिसका मन आसक्त है, और न परलोकके पदार्थोंमें १ सि० धर्माधर्मसे * छूटा हुवा २ ब्रह्मज्ञानमेंही स्थित है चित्त जिसका ३ परमेश्वरार्थ वा लोकसंग्रह (धर्मकी रक्षा) के लिये ४ सि० जो * कर्म करता है ५ उसका ६ समस्त ७ सि० कर्माकर्मविकर्म ब्रह्ममें * लय होजाता है. ८ अर्थात् जिसमहात्माके ऊपर चार विशेषण हैं उसविद्वानके कर्मविकर्म सब नाश होजाते हैं. तात्पर्य ऐसे महात्मा जीवन्मुक्त हैं. ॥ २३ ॥

मू० ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् ॥
ब्रह्मैवतेनगंतव्यंब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

अर्पणम् १ ब्रह्म २ हविः ३ ब्रह्म ४ अग्नौ ५ ब्रह्मणा ६ हुतम् ७ ब्रह्म ८ तेन ९ ब्रह्म १० एव ११ गतव्यम् १२ ब्रह्मकर्मसमाधिना १३ ॥ २४ ॥ अ० उ० अठारवें श्लोकमें तो ज्ञानीका लक्षण संक्षेपकरके कहा. और उन्नीससे लेकर तेईसवें श्लोकतक उसीअर्थकू स्पष्ट करनेके लिये विस्तार पूर्वक निरूपण किया. अब यह कहते हैं कि जिसकारणसे ज्ञानी कर्म करता हुवाभी ब्रह्महीकू प्राप्त होताहै, सो समझ यह है. अर्पण कियाजावे जिसकरके १ सि० सो स्रुवादि पदार्थ करण * ब्रह्म २ सि० हीहै * घृतादि ३ सि० भी * ब्रह्म ४ सि० हीहै * अग्नीमें ५ ब्रह्मनें ६ अर्थात् कर्तानें ६ होम ७ सि० जो किया है सोभी * ब्रह्म ८ सि० हीहै * तात्पर्य क्रिया, कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण. यह सब ब्रह्म है. ऐसे जो समझता है. तिस-

कू ९ ब्रह्म १० ही ११ प्राप्त होनेकू योग्य है. १२ अर्थात् उसकू ब्रह्म प्राप्त होगा. १२ सि० क्योंकि ❀ ब्रह्मरूपकर्ममें समाधान है चित्त जिसका १३ अर्थात् क्रियाकारकादि सब पदार्थोंकू ब्रह्मरूप जानता है. इसकारणसे वो ब्रह्महीकू प्राप्त होगा. नरकस्वर्गादिफल (कर्म अकर्म विकर्मोंके) उसकू स्पर्श नहीं करेंगे. टी० करण १ कर्म ३ कर्ता ६ अधिकरण ५ क्रिया ७ अर्पणादिशब्दोंका करणादिशब्दोंमें तात्पर्य है. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है. कर्ताकर्मकरणाधिकरणादिकू कारक कहते हैं. हवनादिकू क्रिया कहते हैं. क्रियाकरणादिपदार्थ सब ब्रह्म है. इसज्ञानसे जीव ब्रह्मकू प्राप्त होता है इत्यभिप्रायः॥ २४॥

मू०दैवमेवापरेयज्ञंयोगिनःपर्युपासते॥
ब्रह्माग्नावपरेयज्ञंयज्ञेनैवोपजुह्वति॥ २५॥

अपरे १ ब्रह्माग्नौ २ यज्ञम् ३ यज्ञेन ४ उपजुह्वति ५ अपरे ६ योगिनः ७ दैवम् ८ यज्ञम् ९ एव १० पर्युपासते ११॥ २५॥ अ० उ० सर्वत्र ब्रह्मदर्शनकू यज्ञका रूपक बांधकर यज्ञरूप वर्णन किया. अब इसज्ञानयज्ञकी स्तुति करनेके लिये, और ज्ञानयज्ञकी महिमा प्रसिद्ध करनेके लिये, ज्ञानयज्ञके सहित बारह यज्ञवर्णन करते हैं. अर्थात् ग्यारहयज्ञ सिवाय ज्ञानयज्ञके जोवर्णन करेंगे वे ज्ञानयज्ञके प्राप्तीका उपाय हैं. ज्ञानयज्ञ उपेय है. साक्षात् मोक्षके देनेमें ज्ञानयज्ञही समर्थ है. सोई प्रथम कहते हैं. इसमंत्रमें दोयज्ञोंका निरूपण है. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है, इसहेतुसे प्रथम ज्ञानयज्ञका अर्थ लिखते हैं. ब्रह्मज्ञानी महात्मा १ ब्रह्मरूप ऐसे अग्निमें २ आत्माकू ३ ब्रह्मयज्ञकरके ४ अर्थात् ब्रह्मज्ञान करके ४ हवन करते हैं. ५ तात्पर्य आत्माकू शुद्ध, सच्चिदानन्द, पूर्ण, निर्विकार ऐसा ब्रह्म जो समझते हैं, वे ज्ञानी हैं. उनके ज्ञानकू ज्ञानयज्ञ वर्णन करते हैं. एक ज्ञानयज्ञ

तो निरूपण हो चुका, अब दूसरायज्ञ निरूपण करते हैं. कोई ६ योगी ७ अर्थात् कोई कर्मयोगी ७ दैव ८ यज्ञकर्ता ९ ही १० उपासना करते हैं. ११ तात्पर्य साकाररामादिदेवतोंका आराधन किया जाता है जिसयज्ञमें, उसकू दैवयज्ञ कहते हैं. साकारदेवतोंकी उपासनाका नाम दैवयज्ञ है. एवशब्दका यह तात्पर्य है, कि भेदवादी रामादिदेवतोंकू वास्तव मूर्तिमान् देवता समझते हैं. नित्य निराकार निर्विकार नहीं समझते हैं. नहीं तो ज्ञानी और उपासकोंमें भेद क्या हुवा. और ज्ञानयज्ञसे दैवयज्ञकू पृथक् क्यों निरूपण करते श्रीमहाराज. रामादिदेवतोंकू ज्ञानी नित्य निराकार जानते हैं. उपासक उनकू वास्तव मूर्तिमान् समझते हैं मूर्तियोंको कल्पित मायिक नहीं समझते. यही भेद है उपासक और ज्ञानियोंमें. ॥ २५ ॥

मू० श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

अन्ये १ श्रोत्रादीनि २ इन्द्रियाणि ३ संयमाग्निषु ४ जुह्वति ५ अन्ये ६ शब्दादीन् ७ विषयान् ८ इन्द्रियाग्निषु ९ जुह्वति १० ॥ २६ ॥ अ० उ० इसमंत्रमें दोयज्ञ निरूपण करेंगे. तीसरा यज्ञ कहते हैं. और कोई १ श्रोत्रादि इन्द्रियोंकू २।३ संयमरूप ऐसे अग्नीमें ४ हवन करते हैं ५ तात्पर्य इन्द्रियोंका संयम करना, यही यज्ञ है. कोई यही यज्ञ करते हैं. अर्थात् इन्द्रियोंकू विषयोंसे निरोध करते हैं. चौथा यज्ञ यह है, जो अब कहते हैं. कोई एक ६ शब्दादि ७ विषयोंकू ८ इन्द्रियरूप अग्नीमें ९ हवन करते. हैं १० तात्पर्य वेदोक्तविषयोंकू भोगनाभी यज्ञहै. जैसा शास्त्रमें भोजनादि निरूपण किया है. (नियम करके) जो उसीप्रकार वर्तते हैं, वो यज्ञतात्पर्य इसकाभी इन्द्रियोंके दमनमें ही है॥ २६ ॥

मू० सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अपरे १ सर्वाणि २ इन्द्रियकर्माणि ३ प्राणकर्माणि ४ च ५ आत्म-संयमयोगाग्नौ ६ जुह्वति ७ ज्ञानदीपिते ८ ॥ २७ ॥ अ० उ० पांचवां एक यज्ञ इसश्लोकमें निरूपण करेंगे. और कोई १ सबइन्द्रि-योंके कर्मोंकू २।३ और प्राणापानादिके कर्मोंकू ४।५ आत्मसंयम योगाग्निमें ६ हवन करते हैं. ७ अर्थात् इन्द्रिय और प्राणादिके गती-का जो आत्मामें संयम (निरोध या उपराम)करना,यही हूवीयोगरू-पअग्नि उसमें उपराम (शान्त)करते हैं७तात्पर्य आत्मध्यानमें स्थिर होकर प्राणादिकी गतीकू निरोध करते हैं.सि०कैसी है वो आत्मसं-यमयोगाग्नि ❋ ज्ञानकरके प्रज्वलित है. ८ तात्पर्य इन्द्रियोंकी वृत्तियोंकू रोककर और कर्मेन्द्रियोंके और प्राणापानादिके कर्मोंकू रोककर आत्म स्वरूप (सच्चिदानन्द) में जो तत्पर होना, यह एक यज्ञ है. इन्द्रियप्राणादिके कर्म आनन्दामृतवर्षिणीके द्विती-याध्यायमें लिखे हैं. ॥ २७ ॥

मू० द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञायोगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्चयतयःसंशितव्रताः॥२८॥

द्रव्ययज्ञाः १ तपोयज्ञाः २ योगयज्ञाः ३ तथा ४ अपरे ५ स्वा-ध्यायज्ञानयज्ञाः ६ च ७ यतयः ८ संशितव्रताः ९ ॥ २८ ॥ अ० उ० पांचयज्ञ इसमंत्रमें कहेंगे सि० तीर्थयात्रासाधुसेवादिशुभक-र्मोंमें द्रव्यव्यय (खर्च)करना यही ❋ द्रव्ययज्ञ है जिनका १ सि० यह एक छठा यज्ञ हुवा. व्रतनियममौनादिकू तप कहते हैं ❋ तपयज्ञ है जिनका २ सि० यह एक सातवां यज्ञ हुवा ❋ अष्टांग योगयज्ञ है जिनका ३ सि० यह एक आठवां यज्ञ हुवा ❋ और तैसेंही ४।५ सि० कोईऐसे हैं कि ❋ स्वाध्याय और ज्ञान ये यज्ञ हैं जिनके ६ अर्थात् स्वाध्याययज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं, और ज्ञानयज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं ६ सि० वेदशास्त्रोंका पठना पाठ

करना, इसकू स्वाध्याय कहते हैं. यह एक ९ वां यज्ञ है. और वेदशास्त्रके अर्थ समझनेकू भी ज्ञानयज्ञ कहते हैं, यह एक दशवां यज्ञ हुवा ❋ प्रथम यज्ञका नामभी ज्ञानयज्ञ है, ७ सि० उसका तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें है कैसे हैं यह यज्ञके करनेवाले ❋ यत्नशीलवाले ८ सि० हैं ❋ अर्थात् यज्ञकरनेमें प्रयत्न करनेवाले हैं, ८ तीक्ष्णव्रत हैं, जिनके ९ अर्थात् तलवारके धारपर चलना जैसा वडा तीक्ष्णकाम है, ऐसेही इनयज्ञोंका अनुष्ठान करना है, ९ ॥ २८ ॥

मू० अपानेजुह्वतिप्राणंप्राणेपानंतथापरे ॥
प्राणापानगतीरुद्ध्वाप्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

तथा १ अपरे २ अपाने ३ प्राणम् ४ प्राणे ५ अपानम् ६ जुह्वति ७ प्राणापानगती ८ रुद्ध्वा ९ प्राणायामपरायणाः १० ॥ २९ ॥ अ० उ० एक ग्यारहवां यज्ञ इसमंत्रमें निरूपण करते हैं और कोई १।२ अपानमें ३ प्राणकू ४ सि० और ❋ प्राणमें ५ अपानकू ६ हवन करते हैं, वा लय करते हैं, अर्थात् मिलाते हैं ७ तात्पर्य प्राण और अपानके गतीकू एक करते हैं. प्राण और अपानके गतीकू ८ निरोधकरके ९ प्राणायाममें परायण १० सि० हैं. यह भीएक यज्ञ है ❋ अर्थात् प्राणोंका जो निरोध यही परम आश्रा है जिनको ऐसे हैं कोई १० तात्पर्य प्राणकी गति रोकनेसे मन उसके साथही रुकता है, इसवास्ते प्राणायाममें तत्पर रहते हैं. ॥ २९ ॥

मू० अपरेनियताहाराःप्राणान्प्राणेषुजुह्वति ॥
सर्वेप्येतेयज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

अपरे १ नियताहाराः २ प्राणान् ३ प्राणेषु ४ जुह्वति ५ एते ६ सर्वे ७ अपि ८ यज्ञविदः ९ यज्ञक्षपितकल्मषाः १० ॥ ३० ॥ अ० उ० आधेमंत्रमें बारहवां एक यज्ञ निरूपण करते हैं. फिर आधे मंत्रमें सब यज्ञकरनेवालोंका माहात्म्य कहते हैं. और कोई १ निय-

ताहारी २ अर्थात् थोडा भोजन करनेवाले २ प्राणोंकू ३ प्राणमें ४ सि० ही ❋ लय करते हैं. ५ तात्पर्य भोजनका संकोच करनेसे प्राणकी गती भी संकुचित होजाती है. और प्राणकी गती कम होनेसे मनकी गतीका निरोध होता है. यह समझकर कोई एक आहार करनेमें संकोच करते हैं. यह एक बारहवां यज्ञ है. ये ६ सब ७ ही ८ सि० बारह ❋ यज्ञोंके जाननेवाले ९ अर्थात् यज्ञोंके करने वाले ९ यज्ञोंकरके नाशकरदिये हैं पाप जिन्होंनें १० तात्पर्य वे सब सनातन ब्रह्मकू प्राप्त होंगे. अगले मंत्रके साथ इसआधे मंत्रका अन्वय है ब्रह्मज्ञानी साक्षात् प्राप्त होंगे. और कर्मकांडी (उपासकयोगी) ब्रह्मज्ञानद्वारा ब्रह्मकू प्राप्त होंगे ॥ ३० ॥

मू० यज्ञशिष्टामृतभुजोयांतिब्रह्मसनातनं ॥
नायंलोकोस्तियज्ञस्यकुतोन्यःकुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजः १ सनातनम् २ ब्रह्म ३ यान्ति ४ कुरुसत्तम ५ अयज्ञस्य ६ अयम् ७ लोकः ८ न ९ अस्ति १० अन्यः ११ कुतः १२ ॥ ३१ ॥ अ॰ उ० आधेमंत्रमें यज्ञकरनेवालोंका माहात्म्य कहते हैं, और आधेमंत्रमें जो बारहयज्ञोंमेंसे एकभी यज्ञ नहीं करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं श्रीमहाराज. अर्थात् जो अयज्ञोंकू फल होगा सो कहते हैं. यज्ञ शिष्टामृतका भोजन करनेवाले १ सनातन २ ब्रह्मकू ३ प्राप्त होते हैं. ४ हे अर्जुन ५ यज्ञ न करनेवालोंकू ६ अर्थात् जो यज्ञ नहीं करते हैं उसकू ६ यह ७ लोक ८ सि० भी ❋ नहीं ९ है १० सि० फिर ❋ परलोक ११ सि० तो ❋ कहांसे १२ सि० होगा ❋ तात्पर्य जो एकभी यज्ञ नहीं करता है, उसकू जबकि इसलोकमेंही सुख नहीं, तो परलोकमें कैसे होसक्ता है. न उसकू इसलोकका सुख है, न परलोकमें मिलेगा. वो पशुवत् संसारमें उत्पन्न हुवा. ॥ ३१ ॥

मू० एवंबहुविधायज्ञाविततात्रह्मणोमुखे ॥
कर्मजान्विद्धितान्सर्वानेवंज्ञात्वाविमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

एवम् १ ब्रह्मणः २ मुखे ३ बहुविधाः ४ यज्ञाः ५ वितताः ६ तान् ७ सर्वान् ८ कर्मजान् ९ विद्धि १० एवम् ११ ज्ञात्वा १२ विमोक्ष्यसे १३ ॥ ३२ ॥ अ० उ० जिसप्रकार बारह यज्ञ पीछे कहे. इसीप्रकार १ वेदके २ मुखमें ३ सि० अर्थात् वेदोंमें ❋ बहुतप्रकारके यज्ञ ४ । ५ विस्तर ६ अर्थात् बहुतप्रकारके यज्ञों-का वेदोंमें विस्तार है, ६ तिन सबकू ७।८ अर्थात् उक्तानुक्तोंकू शरीर मनवाणीके८ कर्मोंसे उत्पन्न हुवा ९ जान तूं. १० तात्पर्य आ-त्मस्वरूपसे स्पर्शरहित जान. इसप्रकार ११ सि० आत्माकू ❋ जान कर १२ सि० ज्ञाननिष्ठ होकर संसारसे ❋ छूट जायगा तूं. १३ अर्थात् परमानन्दस्वरूपमुक्तीकू प्राप्त होगा. टी० ये सबयज्ञ कायिक वाचिक मानसिक हैं. आत्मा इनका विषयभी नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ ३२ ॥

मू० श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरंतप ॥
सर्वंकर्माखिलंपार्थज्ञानेपरिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

परंतप १ द्रव्यमयात् २ यज्ञात् ३ ज्ञानयज्ञः ४ श्रेयान् ५ पार्थ ६ सर्वम् ७ कर्म ८ अखिलम् ९ ज्ञाने १० परिसमाप्यते ११ ॥ ३३ ॥ अ० उ० सबयज्ञोंसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठहै. अर्थात् कर्म, भक्ति, उपासना, और योगादिसे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठहै. क्योंकि साक्षात्मुक्तीका हेतु है, सोई कहते हैं. हे अर्जुन १ दैवादियज्ञोंसे २।३ ज्ञानयज्ञ ४ श्रेष्ठ ५ सि० है, जो सबयज्ञोंसे प्रथम निरूपण किया है. क्योंकि ❋ हे अर्जुन ६ सबकर्म ७।८ फलसहित ९ ब्रह्मज्ञानमें १० समाप्त होते हैं. ११ अर्थात् ब्रह्मज्ञा-नसे ही दुःखरूपकर्म नाश होते हैं, और कोई उपाय कर्मोंके जडका नाशकरनेवाला नहीं. ॥ ३३ ॥

मू० तद्विद्धिप्रणिपातेनपरिप्रश्नेनसेवया ॥
उपदेक्ष्यन्तितेज्ञानंज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तत् १ विद्धि २ प्रणिपातेन ३ परिप्रश्नेन ४ सेवया ५ ज्ञानिनः ६ तत्त्वदर्शिनः ७ ते ८ ज्ञानम् ९ उपदेक्ष्यन्ति १० ॥ ३४ ॥ अ० उ० ज्ञान प्राप्त होनेके मुख्यसाधन कहते हैं. ब्रह्मज्ञानप्राप्तीका सम्प्रदाय (पन्थ या मार्ग) यही है, जो श्रीभगवान् इसश्लोकमें कहते हैं. जो ब्रह्मज्ञान साक्षात् मुक्तीका हेतु है, और सब कर्म उपासना योगादिसे श्रेष्ठ है. तिसकू १ जानतूं. २ अर्थात् तिसब्रह्मकू प्राप्त हो, जो परमानन्दकी इच्छा रखता है तूं. २ सि० उसब्रह्मानन्दके प्राप्तीका उपाय यह है, कि यह ज्ञान श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठपुरुषोंसे प्राप्त होसक्ता है. जो त्रिकांडवेदोंके तात्पर्यकू जानते हैं, और जिनकू ब्रह्मभी साक्षात् (अनुभव अपरोक्ष) प्रत्यक्ष है, उनकू श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं. तात्पर्य ऐसे पंडित विरक्त संन्यासी परमहंस हैं, वे ब्रह्मज्ञानका उपदेश करसक्ते हैं. और जो केवल श्रोत्रिय, शास्त्रार्थके जाननेवाले हैं, ब्रह्मनिष्ठ नहीं, ब्रह्मज्ञानरहित हैं, वे ब्रह्मज्ञानका अनुभवसहित उपदेश नहीं करसक्ते, साक्षात् ब्रह्मकू अपरोक्ष नहीं बतासक्ते. और जो केवल ब्रह्मनिष्ठही हैं, शास्त्र नहीं पढे वे दृष्टान्तयुक्तिअनुमानशंकासमाधानपूर्वक नहीं उपदेश करसक्ते. इसहेतुसे ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करनेके योग्य अर्थात् ब्रह्मतत्त्वोपदेश करनेमें समर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ही हैं. अर्थात् श्रोत्रियभी हों, और ब्रह्मनिष्ठभी हों, श्रीभगवान् कहते हैं, कि ऐसे ब्रह्मनिष्ठोंके पास जाकर प्रथम उनकू ❋ दंडवत् नमस्कार करके ३ सि० और फिर ❋ प्रश्नकरके ४ सि० बहुतकाल ❋ सेवाकरके ५ सि० ज्ञान सीख. अर्थात् प्रथम साधुमहात्माके पास जाकर उनकू आदरके सहित प्रणाम कर, फिर उन्होंसे यह प्रश्नकर, कि हे भगवन् मुझकू कृपा करके ब्रह्मज्ञानका उपदेश

कीजिये, और बहुतादिनों उनकी सेवाकर, तन धन मन वाणी करके. तब ❀ज्ञानी ६ तत्त्वदर्शी ७ अर्थात् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ७ तुझकू ८ ज्ञान उपदेश करेंगे १० तात्पर्य यह तीनों साधन अवश्य चाहते हैं. जो इनमें एकभी नहोगा, तो भी ज्ञान प्राप्त होना कठिन है. प्रथम तो साधनरहितपुरुषकू महात्मा उपदेश ही न करेंगे. और जो वे दयाकरके साधनरहितकू उपदेशभी करदेंगे, तो उसकू कभी बोध न होगा. क्योंकि यह बात स्पष्ट प्रसिद्ध है, कि लोग बहुत बरसों वेदान्तशास्त्र पढते सुनते हैं, और ब्रह्मवार्तामें बहुत चतुर होजाते हैं. परन्तु छोकरे, लुगाई, और कुपात्रधनवालोंके दासही बने रहते हैं. (उनमें ही ममता रखते हैं.) केवल नमस्कारमात्र करके ही विनाप्रश्न और सेवाके महात्मा उपदेश नहीं करेंगे. क्यों कि दंडवत सब करसक्ते हैं. प्रश्न करनेसे जिज्ञासूका तात्पर्य प्रतीत होताहै, न जानिये कैसा अधिकारी है. सिवाय इसके धर्मशास्त्रमें निषेध है, और बहुतलोग ब्रह्मवार्तामें जो कुशल होते हैं, वे प्रश्नभी भले भले किया करते हैं. परंतु महात्मा विनाचिरकालसेवाके उपदेश नहीं करते हैं. क्यों कि मंत्रका उपदेश करना विनाएकवर्षकी परीक्षाकिये निषेध है. और यह तो साक्षात् ब्रह्मविद्या है, इसवास्ते बहुत चिरकाल सेवा करके, और प्रश्न करके और दंडवत् नमस्कार करके ही, ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है. इत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥

मू० यज्ज्ञात्वानपुनर्मोहमेवंयास्यसिपांडव ॥
येनभूतान्यशेषेणद्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ॥ ३५ ॥

पांडव १ यत् २ ज्ञात्वा ३ एवम् ४ पुनः ५ मोहम् ६ न ७ यास्यसि ८ येन ९ अशेषेण १० भूतानि ११ आत्मनि १२ द्रक्ष्यसि १३ अथो १४ मयि १५ ॥ ३५ ॥ अ० उ० ज्ञानका फल और महिमा कहते हैं चारश्लोकोंमें. हे अर्जुन १ जिसकू २ जानकर ३ अ-

र्थात् ज्ञानकू प्राप्त होकर ३ इसप्रकार ४ फिर ५ मोहकू ६ नहीं ७ प्राप्त होगा. ८ सि० जैसा अब मोह तुझकू प्राप्त होरहा है, और ❋ जिसकरके ९ अर्थात् उसी ज्ञानकरके ९ समस्त १० भूतोंकू ११ सि० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❋ आत्मामें १२ देखेगा तू. १३ अर्थात् यह समझेगा, कि यह समस्त संसार मुझ सच्चिदानन्दमेंही नामरूप करके कल्पित है. १३ पीछे उसके १४ मुझ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपमें १५ सि० आत्माकी एकता जानेगा तूं. अर्थात् आत्माकू नित्य, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द, ऐसा जानेगा. केवल आत्माही करके बुद्ध्यादिकरके नहीं. क्यों कि शुद्धबुद्धमें जडबुद्धिकी गति नहीं ❋ ॥ ३५ ॥

मू० अपिचेदसिपापेभ्यःसर्वेभ्यःपापकृत्तमः ॥
सर्वंज्ञानप्लवेनैवृजिनंसंतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

चेत् १ सर्वेभ्यः २ पापेभ्यः ३ अपि ४ पापकृत्तमः ५ असि ६ ज्ञानप्लवेन ७ एव ८ सर्वं ९ वृजिनम् १० संतरिष्यसि ११ ॥३६॥ अ० जो १ सब पापियोंसे २।३ भी ४ वढका पापकरनेवाला ५ है तूं. ६ सि० तोभी ❋ ज्ञानरूप जहाज करके ७ निश्चयसे ८ सब पापकू ९।१० तर जायगा तूं. ११ तात्पर्य यह संसार, समुद्रवत् अथाह पापरूप है. इसके पार होजायगा. अर्थात् ज्ञानकरके तेरे पाप सब नाश होजावेंगे. ॥ ३६ ॥

मू० यथैधांसिसमिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरुतेर्जुन ॥
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेतथा ॥३७॥

यथा १ एधांसि २ समिद्धः ३ अग्निः ४ भस्मसात् ५ कुरुते ६ अर्जुन ७ तथा ८ ज्ञानाग्निः ९ सर्वकर्माणि १० भस्मसात् ११ कुरुते १२ ॥ ३७ ॥ अ० जैसे १ सि० सूखे ❋ लकडियोंकू २ प्रज्वलित ३ अग्निः ४ राख करदेती है, ६ हे अर्जुन ७ तैसेही ८ ज्ञानरूपअग्नि ९ सबकर्मोंकू १० नाश ११ करदेती है. १२ ॥ ३७ ॥

मू० नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमिहविद्यते ॥
तत्स्वयंयोगसंसिद्धःकालेनात्मनिविन्दति ॥ ३८ ॥

इह १ ज्ञानेन २ सदृशम् ३ पवित्रम् ४ हि ५ न ६ विद्यते ७ तत् ८ योगसंसिद्धः ९ कालेन १० आत्मनि ११ स्वयम् १२ विन्दति १३ ॥३८॥ अ० सि० कर्मभेदभक्तियोगादिसाधनोंके बीचमें अर्थात् ❋मोक्षमार्गमें १ ब्रह्मज्ञानके सदृश २।३ पवित्र ४ ही ५ नहीं ६ हैं. ७ सि० दूसरा मोक्षका साधन ❋ तिसब्रह्मज्ञानकू ८ समाधियोगकरके सिद्ध हुवा ९ कालकरके १० आत्माके विषय ११ अपने आप १२ प्राप्त होजाता है. १३ तात्पर्य आत्माका ध्यान करते करते साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान अपनेआप प्राप्त होजाता है कुछ थोडेही कालमें. इसवास्ते सदा आत्माका ध्यान करना योग्य है. ॥ ३८ ॥

मू० श्रद्धावाँल्लभतेज्ञानंतत्परःसंयतेन्द्रियः ॥ ज्ञानंलब्ध्वापरांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

श्रद्धावान् १ तत्परः २ संयतेन्द्रियः ३ ज्ञानम् ४ लभते ५ ज्ञानम् ६ लब्ध्वा ७ पराम् ८ शान्तिम् ९ अचिरेण १० अधिगच्छति ११ ॥३९॥ अ० उ० ज्ञानके प्राप्तीके साधन बहिरंग तो चौवीसवें मंत्रमें नमस्कार, प्रश्न, सेवा ये तीन कहे. इन तीनोंको तो मायावीभी करसक्ता है. यह शंका करके इसमंत्रमें तीन अंतरंगज्ञानके साधन कहते हैं. ये साधन जिसमें होंगे वो अवश्यही बेसन्देह ज्ञानकू प्राप्त होकर, मुक्त होगा यह कहते हैं. श्रद्धावाला १ सि० ब्रह्मज्ञानमें ❋ तत्पर (परायण) २ भलेप्रकार जीती हैं इन्द्रिय जिसने ३ सि० सो इनतीन साधनोंकरके संपन्न ❋ ज्ञानकू ४ सि० अवश्यही ❋ प्राप्त होता है. ५ ज्ञानकू ६ प्राप्त होकर ७ परमशान्तीकू ८।९ जल्दी १० प्राप्त होता है. ११ तात्पर्य ये तीनों साधन परस्पर सापेक्ष हैं, तीनोंहासे ज्ञान होता है. एकसाधनसे वा दोसाधनोंसे कचाई रहजाती है. ॥ ३९ ॥

मू०अज्ञश्चाश्रद्दधानश्चसंशयात्माविनश्यति ॥
नायंलोकोस्तिनपरोनसुखंसंशयात्मनः॥ ४० ॥

अज्ञः १ च २ अश्रद्दधानः ३ च ४ संशयात्मा ५ विनश्यति ६ संशयात्मनः ७ न ८ अयम् ९ लोकः १० न ११ परः १२ न १३ सुखम् १४ अस्ति १५ ॥ ४०॥ अ० उ० वेदोंके महावाक्य सुनकर और ब्रह्मविद्यावेदान्तशास्त्रको सुनकरभी जिसकू यह संशय है, कि मैं पूर्णब्रह्म, शुद्ध, सच्चिदानन्दघन हूं, वा नहीं. उसकू न इसलोकमें सुख होगा,न परलोकमें.क्यों कि जिसकू स्वयम्प्रकाशआत्मामें संशय रहा, उसकू परोक्षवाक्योंमें कैसे विश्वास होगा.इसहेतुसे वो संशयात्मा सदा दुःखी रहेगा. यद्यपि मन्दबुद्धि और श्रद्धारहितपुरुषों-कूभी ज्ञान नहीं होता, परंतु वहां यह आशा रहती है, कि कभी न कभी मन्दबुद्धि तो बुद्धिमान् होजायगा. और श्रद्धारहित श्रद्धावान् होजायगा. केवल संशयात्माही भ्रष्ट होगा. तात्पर्य मंदबुद्धि और श्रद्धारहित और संशयात्मा ये तीनो ज्ञानको अनधि-कारी हैं, और इनतीनोंमें भी संशयात्मा सबसे निकम्मा है. सोई इसमंत्रमें कहते हैं श्रीभगवान्. मन्दबुद्धि १ और २ श्रद्धारहित ३ और ४ संशयात्मा ५ नष्ट होता है. ६ अर्थात् आनन्दसे भ्रष्ट होजा-ता है. ये तीनों ब्रह्मानन्दके लेखे मुरदेके बराबर हैं. और इनतीनोंमें-सेभी संशयात्मा तो अवश्यही भ्रष्ट है ६ संशयात्माकू ७ न ८ यह ९ लोक १० न ११ परलोक १२ न १३ सुख १४ है. १५ तात्पर्य जो पुरुष अज्ञ होता है, तो उसका गुरुशास्त्रमें तो विश्वास होता है. कालपाकर सुधर सक्ता है. और अज्ञभी हो, और श्रद्धारहित भी हो, वो भी किसीकालमें श्रद्धावान् और बुद्धिमान् होकर सुधर जाता है, और जो जान बूझकर तर्क करता है, और अपने विपर्ययपक्षमें दु-राग्रह करता है, उसकू तर्की दुराग्रहीकू कभी सुख न होगा. जब कि संशयात्मा, कुतर्की, दुराग्रही, इसकू इसीलोकमें सुख नहीं, तो पर-

लोकका सुख कहां होगा. सदा उसके विपयतर्क, दुराग्रह, संशय, बनेही रहेंगे.महात्माने ऐसे दुष्टोंकू कभी एकबातभी ज्ञानकी सुनाना न चाहिये. क्यों कि वो कुछ न कुछ उसमें झूंठा कुतर्क करेगा.संश-यात्मा उसकूभी कहते हैं, कि जिसकू यह संशय है, कि मैं कर्मोंका अनुष्ठान करूं, वा न करूं, अकर्म ज्ञानमें निष्ठा करूं, वा न करूं. संशयात्मा इसपदका अक्षरार्थ यह है, कि संशय है अन्तःकरणमें जिसके, सो संशयात्मा. सो संशय दोप्रकारका है. प्रमाणगत, और प्रमेयगत. सो ऊपर लिखा गया. तात्पर्य श्रीमहाराजके उपदेशमें जो संशय करेगा उसका नाश हो जायगा, यह शाप है भगवान्का. बेसन्देह आत्माकू शुद्धसच्चिदान्दस्वरूप जानना योग्य है. ॥ ४० ॥

मू०योगसंन्यस्तकर्माणंज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवन्तंनकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥ ४१ ॥

धनंजय १ योगसंन्यस्तकर्माणम्२ज्ञानसंछिन्नसंशयम्३आत्मव-न्तम् ४ कर्माणि ५ न ६निबध्नन्ति ७ ॥४१॥ अ० उ० इसअध्या-यमें जो अर्थ पीछे विस्तारपूर्वक निरूपण किया, उसीकू इसमंत्रमें संक्षेपकरके कहते हैं,समस्तअध्यायका तात्पर्यार्थ समझनेके लिये. हे अर्जुन १ ज्ञानयोगकरके संन्यास किये हैं, कर्म जिसने. २ सि० और ❋ ब्रह्मज्ञानकरने छेदन किये है संशय जिसने.३ सि० ऐसे ❋अप्रमत्तआत्मनिष्ठकू ४ कर्म ५ नहीं ६ बन्धन करते हैं ॥ ४१ ॥

मू०तस्मादज्ञानसम्भूतंहृत्स्थंज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनंसंशयंयोगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ॥ ४२ ॥

भारत १तस्मात्२अज्ञानसंभूतम्३ हृत्स्थम् ४ आत्मनः ५ ए-नम् ६ संशयम् ७ ज्ञानासिना ८ छित्त्वा ९ योगम् १० आतिष्ठ ११ उत्तिष्ठ १२ ॥ ४२ ॥ अ० उ० जब कि संशयात्माकू न इसलोक-में सुख होता है, न परलोकमें. हे अर्जुन १ तिसकारणसे २ अज्ञान

करके उत्पन्न हुवा ३ अन्तःकरणमें स्थित ४ सि० जो यह संशय कि मैं युद्ध करूं वा न करूं और मैं सदानिर्विकार हूं वा नहीं ❋ अपने ५ इस ६ संशयकू ७ ब्रह्मज्ञानरूप तलवारसे ८ छेदन करके ९ कर्मयोगका १० अनुष्ठानकर. ११ खडाहो. १२ सि० युद्धकरनेकेलिये ❋ तात्पर्य आत्माकू शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्य, निर्विकार, पूर्ण, ब्रह्म, ऐसा समझकर युद्ध कर. इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४ ॥

पांचवे अध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ सन्यासंकर्म्मणांकृष्णपुनर्योगंचशंससि ॥ यच्छ्रेयएतयोरेकंतन्मेब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

कृष्ण १ कर्मणाम् २ संन्यासम् ३ पुनः ४ योगम् ५ च ६ शंससि ७ एतयोः ८ एकम् ९ यत् १० सुनिश्चितम् ११ श्रेयः १२ तत् . १३ मे १४ ब्रूहि १५ ॥ १ ॥ अ० उ० चतुर्थाध्यायमें अर्जुनकू समुच्चय प्रतीत हुवा, इसवास्ते प्रश्न करताहै. हेकृष्णचन्द्र १ कर्मोंका २ त्याग ३ सि० भी आप कहते हो और ❋ फिर ४ योग ५ भी ६ आप कहतेहो ७ सि० इन दोनोंका स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध है. एकपुरुषसे एकसमय इनदोनोंका अनुष्ठान कैसे होसक्ता है ❋ इनदोनोंमें ८ एक ९ जो १० भलेप्रकार निश्चय किया हुवा ११ श्रेष्ठ है, १२ सो १३ मुझकू १४ कहो. १५ ॥ तात्पर्य कर्मयोग और कर्मसंन्यास इनदोनोंमें मेरेवास्ते श्रेष्ठ क्या है, यह मेरा तात्पर्य है. यह तो मैं तृतीय अध्यायमें समझगयाहूं, कि अधिकारीप्रति दोनों श्रेष्ठ हैं. मैं किसनिष्ठाका अधिकारी हूं. इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासःकर्मयोगश्चनिःश्रेयसकरावुभौ ॥ तयोस्तुकर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥ २ ॥

संन्यासः१कर्मयोगः२च ३ उभौ ४ निःश्रेयसकरौ ५ तयोः ६ तु ७ कर्मसंन्यासात् ८ कर्मयोगः ९ विशिष्यते १० ॥ २ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि पीछे जो हमनें कर्मोंका अनुष्ठान करना, और त्याग करना, ऐसा कहा है, उसमें कुछ विरोध नहीं कहा. क्यों कि सम समुच्चय मैनें नहीं कहा अधिकारीप्रति क्रमसमुच्चय कहा है. शोकमोहरहितज्ञाननिष्ठावाले पुरुषोंकू तो ज्ञाननिष्ठापरिपाक होनेके वास्ते कर्मोंका त्याग करना श्रेष्ठ है. और तमोगुणी रजोगुणी पुरुषोंकू ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तिकेलिये कर्मोंका अनुष्ठान करना श्रेष्ठ हैं. सि० इसप्रकार कर्मोंका ❋ त्याग १ और कर्मयोग २।३ सि० ये क्रमसे ❋ दोनों ४ मोक्षकू प्राप्त करनेवाले हैं, ५ सि० यथायोग्य अधिकारीयोंकू. और तूं जो यह बूझता है, कि इनदोनोंमेंसे मेरेवास्ते क्या श्रेष्ठ है, सोसुन. तुझकू ❋ तिनके ६ सि० वीचमें ❋ तो ७ अर्थात् कर्मयोग और कर्मसंन्यास इनदोनोंके वीचमें ६ । ७ कर्मसंन्याससे ८ कर्मयोग ९ विशेष है. १० अर्थात् क्षत्रियोंका धर्म जो युद्ध करना है, अभी उसका अनुष्ठान करनाही तुझकू श्रेष्ठ है. कदाचित् इसमंत्रका कोई यह अर्थ करे, कि कर्मसंन्याससे कर्मयोग सबके वास्ते विशेष है, तो इसअर्थमें वदतोव्याघात दोष आता है. क्यों कि पुनः पुनः वारंवार पीछे श्रीभगवानने कर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा कि प्रशंसा कीई और आगेकरेंगे. जिसकी प्रथम आप स्तुति करें. फिर उसीकू आप निकृष्ट बतावें, इसीकू वदतोव्याघातदोष कहते हैं. अर्थात् अपने कहेहुवेकू आपही खंडन करना, यह बडादोष है. श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरंतप ॥ नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमि

हविद्यते ॥ इत्यादि. ऐसे वाक्य और भी बहुत हैं. इसजगे तात्पर्य श्रीभगवानका यही है, कि रजोगुणी तमोगुणी ऐसे पुरुषोंकेवास्ते कर्मोंका अनुष्ठान करनाही श्रेष्ठ है. क्यों कि तमोगुणी रजोगुणी-पुरुषोंकू कर्मोंका अनुष्ठान करना अन्तःकरणके शुद्धीका हेतु है. और सतोगुणीपुरुषोंके लिये तो कर्मोंका त्याग करनाही श्रेष्ठ है. क्यों कि उनकू अब कर्मोंका अनुष्ठान करना विक्षेपका हेतू है. और ज्ञाननिष्ठाके परिपाक होनेमें प्रतिबंध है. और दोनोंका अनुष्ठान एककालमें एकपुरुषसे नहीं होसक्ता.कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध है. प्रथम अन्तःकरणके शुद्धीके लिये तुझकू कर्मयोगविशेष है. इत्याभिप्रायः ॥ २ ॥

मू०ज्ञेयःसनित्यसंन्यासीयोनद्वेष्टिनकांक्षति ॥
निर्द्वन्द्वोहिमहाबाहोसुखंबन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः १ न २ द्वेष्टि ३ न ४ कांक्षति ५ सः ६ नित्यसंन्यासी ७ ज्ञेयः ८ महाबाहो ९ निर्द्वन्द्वः १० हि ११ सुखम् १२ बन्धात् १३ प्रमुच्यते १४ ॥ ३ ॥ अ० उ० रागद्वेषरहितनिष्काम जो कर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसकू संन्यासीवत् समझना चाहिये. इसप्रकार श्रीभगवान् अब कर्मयोगकी स्तुति करते हैं, कर्मयोगीकेवास्ते. सि० प्रतिकूलपदार्थोंमें ❋ जो १ नहीं २ द्वेष करता है, ३ सि० अनुकूलपदार्थोंकी ❋ नहीं ४ इच्छा करता है, ५ सो ६ सि० कर्मयोगी ❋ नित्यसंन्यासी ७ सि० निष्कामकर्मयोगी ऐसा ❋ जानना तूनें. ८ हे अर्जुन ९ द्वन्द्वरहित १० ही ११ सुखपूर्वक १२ बन्धसे १३ छूटता है. १४ तात्पर्य रागद्वेषादिद्वंद्वरहित ऐसा होकर कर्मोंका अनुष्ठान कर तूं. ॥ ३ ॥

मू०सांख्ययोगौपृथग्बालाःप्रवदन्तिनपंडिताः ॥
एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विंदतेफलम् ॥ ४ ॥

सांख्ययोगौ १ पृथक् २ बालाः ३ प्रवदन्ति ४ पंडिताः ५ न ६ सम्यक् ७ एकम् ८ अपि ९ आस्थितः १० उभयोः ११ फलम् १२ विन्दते १३ ॥ ४ ॥ अ० उ० अवस्थाभेदकरके कर्मयोग और ज्ञानयोग इनदोनोंका क्रमसमुच्चय है. अर्थात् प्रथम निष्कामकर्मोंका अनुष्ठान करना. अन्तःकरण शुद्ध हुवे पीछे कर्मोंकू त्यागदेना, यही सिद्धान्त है, सवशास्त्र और महात्मापुरुषोंका. और जो यह प्रश्न करता है, कि इन दोनोंमेंसे एक स्वतंत्रमुक्तीका देनेवाला बताओ. यह प्रश्न कमसमझवालोंका है. कर्मयोग और ज्ञानयोग इनदोनोंका तात्पर्य एक परमानन्दमें ही है. इसहेतूसे इनदोनोंकू फलमें पृथक् समझना न चाहिये. सोई कहते हैं. ज्ञानयोगकू और कर्मयोगकू १ पृथक् २ सि० एक स्वतंत्र निरपेक्षमोक्षका देनेवाला ❋ कमसमझवाले ३ कहते हैं. ४ सि० पूर्वापरशास्त्रका तात्पर्य समझे हुवे ❋ विद्वान् ५ नहीं ६ सि० पृथक् स्वतंत्र कहते. क्यों कि ❋ भलेप्रकार ७ एककू ८ भी ९ आश्रय किया हुवा १० अर्थात् सांगोपांग एककाभी अनुष्ठान कियाहुवा १० दोनोंके ११ फलकू १२ प्राप्तकरता. १३ अर्थात् दोनोंका फल परमानन्द है सोई दोनोंकू प्राप्त होजाता है. तात्पर्य जो कर्मोंका अनुष्ठान निष्काम करेगा, उसका अवश्य ही अन्तःकरण शुद्ध होकर, उसको ज्ञान प्राप्त होगा. और पीछे उसके मोक्षपरमानन्दकी प्राप्ति होगी. यही दोनोंका फल है. और ज्ञानका अनुष्ठान जो भलेप्रकार करेगा, वेसन्देह पहले उसने इस जन्ममें वा जन्मांतरमें, कर्मयोगकरके अन्तःकरण शुद्ध करलिया है. उसकूभी मोक्षपरमानन्दकी प्राप्ति होगी, यही दोनोंका फल है. एक ज्ञानयोग साक्षात् सच्चिदानन्दकू प्राप्त करता है, और एक कर्मयोग अन्तःकरण शुद्धकर ज्ञानद्वारा सच्चिदानन्दकू प्राप्त करता है इसप्रकार ये दोनोंफलमें एक हैं. स्वरूप इनका एक नहीं. ॥ ४ ॥

मू० यत्सांख्यैःप्राप्यतेस्थानंतद्योगैरपिगम्यते ॥
एकंसांख्यंचयोगंचयःपश्यतिसपश्यति ॥ ५ ॥

सांख्यैः १ यत् २ स्थानम् ३ प्राप्यते ४ तत् ५ अपि ६ योगैः ७ गम्यते ८ सांख्यम् ९ च १० योगम् ११ च १२ एकम् १३ यः १४ पश्यति १५ सः १६ पश्यति १७ ॥ ५ ॥ अ० उ० पीछलेमंत्रमें जो कहा, उसीकू फिर भलेप्रकार स्पष्ट करते हैं. ज्ञानी १ जिसस्थानकू २।३ सि० साक्षात् याने व्यवधानरहित ❀ प्राप्त होते हैं, ४ तिसकू ५ ही ६ कर्मयोगी ७ सि० ज्ञानद्वारा ❀ प्राप्त होते हैं. ८ ज्ञानयोगकू ९ भी १० और कर्मयोगकूभी ११।१२ सि० फलमें ❀ एक १३ जो १४ देखता है, १५ सो १६ देखताहै १७ सि० शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपआत्माकू ❀ तात्पर्य जो यह समझता है, कि दोनोंका फल एक (अद्वैतशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्मआत्मा) है. सो महात्मा यथार्थ आत्माकू, और परमात्माकू जानता है. जैसे दो पुरुष जगन्नाथजीकू जाते हैं, उनमें एक काशीजीमें है, और एक प्रयागराजमें है. कहनेवाले दोनोंकू यही कहते हैं, कि ये दोनों जगन्नाथजीकू जाते हैं, पहुंचेंगे. और जानेवाला भी सब ठिकाने दिन प्रतिदिन यही कहता है, कि मैं जगन्नाथजीकू जाताहूं. एक मजलवालाभी यही कहता है, और जादा मजलवालाभी यही कहता है. और यह बात यथार्थ है, कि दोनों एकजगे पहुंचेंगे. परन्तु इसमें भेदभी है. जो सब मजल करचुका है, एकही मजल जिसकी रही है, वो उसीमजलमें, उसीदिन, साक्षात् व्यवधानरहित जगन्नाथजीमें पहुंचेगा. इसप्रकार तो ज्ञानीकी गति है. और जिसकू दोमजल रही हैं, वो प्रथम बीचकी मजलपहुंचकर. फिर जगन्नाथजीमें पहुंचेगा. इसप्रकार कर्मयोगीकी गति है. शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्मआत्माकू दोनों प्राप्त होंगे, यही दोनोंका स्थान परमपद है. विनाब्रह्मज्ञानके कर्मयोगी स्वतंत्र मुक्त नहीं होसक्ता. और जो कहते हैं, यातो उनकू पूर्वापर अर्थ-

की समझ नहीं, वा हठकरके, वा रुचि बढनेके लिये, कहते हैं. अर्थ सच्चा वोही है जिसमें पूर्वापरसे विरोध न आवे. नहीं तो एकश्लोकका अर्थ तो बालकभी कहसक्ता है. ॥ ५ ॥

मू०संन्यासस्तुमहबाहोदुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्मनचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

महाबाहो १ सन्यासः २ तु ३ अयोगतः ४ दुःखम् ५ आप्तुम् ६ योगयुक्तः ७ मुनिः ८ ब्रह्म ९ न १० चिरेण ११ अधिगच्छति १२ ॥ ६ ॥ अ०उ० कर्मयोग तो ज्ञानद्वारा परमानन्द ऐसे मुक्तपदकू प्राप्त करता है. और कर्मोंका संन्यास, ज्ञान (साक्षात् मुक्तपद) देता हैं. तो कर्मयोग क्यों करना चाहिये संन्यासही करे. अर्थात् ज्ञानकाही अनुष्ठान करना, यह शंका करके श्रीमहाराजकहते हैं. हे अर्जुन १ सि० विनारागद्वेषादि दूर होवे प्रथमही कर्मोंका ❋ संन्यास २ तो ३ सि० अर्थात् प्रथम ❋ विनाकर्मयोगका अनुष्ठान किये ४ दुःखपूर्वक ५ प्राप्त होनेकू ६ सि० शक्य है ❋ तात्पर्य विनाकर्मयोगकिये ज्ञान प्राप्त होना कठिन है. कर्मोंके अनुष्ठान करनेमें बहुत देर लगती है, इसहेतूसे ब्रह्मकी प्राप्ति बहुतकालसे होगी, यह शंका करके कहते हैं. योगयुक्त ७ मुमुक्षु ८ ब्रह्मकू ९ नहीं १० देरकरके ११ प्राप्त होगा. १२ तात्पर्य कर्मयोगीमुमुक्षु, संन्यासी, ज्ञाननिष्ठ, ऐसा होकर ब्रह्मकू शीघ्रही प्राप्त होगा. अथवा इसजगे ब्रह्म, संन्यासका नाम है. योगयुक्तमुनि संन्यासकू शीघ्र और सुखपूर्वक प्राप्त होगा.

मू०योगयुक्तोविशुद्धात्माविजितात्माजितेन्द्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्माकुर्वन्नपिनालिप्यते ॥ ७ ॥

योगयुक्तः १ विशुद्धात्मा २ विजितात्मा ३ जितेन्द्रियः ४ सर्वभूतात्मभूतात्मा ५ कुर्वन् ६ अपि ७ न ८ लिप्यते ९ ॥ ७ ॥ अ०

उ० कर्मयोगी बन्धनकू प्राप्त होताहै, यह शंका करके कहते हैं, कि योगी अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ज्ञानी होजाताहै. इसहेतूसे बन्धनकू नहीं प्राप्त होता. योगयुक्त १ विशेषकरके शुद्ध है, अन्तःकरण जिसका २ विशेषकरके जीता है शरीर जिसनें ३ जीते हैं इन्द्रिय जिसनें ४ सब भूतोंका आत्मभूत है आत्मा जिसका ५ अर्थात् ब्रह्माजीसे लेकर चीटीपर्यन्त सब भूतोंका आत्मा उसीका आत्मा है५सि० सो लोकरक्षाकेलिये अथवा स्वभावसेही कर्म * कर्ता हुवा ६ भी७नहीं ८ बन्धनकू प्राप्त होता. ९ ॥ ७ ॥

मू०नैवकिंचित्करोमीतियुक्तोमन्येततत्त्ववित् ॥
पश्यन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्व
सन्॥८॥प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इन्द्रियाणींद्रियार्थेषुवर्त्तन्तइतिधारयन् ॥ ९ ॥

किंचित् १ एव २ न ३ करोमि ४ इति ५ युक्तः ६ तत्ववित् ७ मन्येत ८ इन्द्रियाणि ९ इन्द्रियार्थेषु १० वर्तन्ते ११ इति १२ धारयन् १३ पश्यन् १४ शृण्वन् १५ स्पृशन् १६ जिघ्रन् १७ अश्नन् १८ गच्छन् १९ स्वपन् २० श्वसन् २१ प्रलपन् २२ विसृजन् २३ गृह्णन् २४ उन्मिषन् २५ निमिषन् २६ अपि२७॥८॥ ॥ ९ अ०उ० जिससमझसे कर्मोंकेसाथ बन्धन नहीं होता, सो कहते हैं दोश्लोकोंमें. दोश्लोकोंका अन्वय एक है. कुछ १ भी २ नहीं ३ करताहूं मैं, ४ यह ५ समाहित याने सावधान ६ ज्ञानी ७ मानता है. ८इन्द्रिय९ इन्द्रियोंके अर्थोंमें १० वर्तते हैं. ११ अर्थात् शब्दादिविषयोंको भोगना इन्द्रियोंका धर्म है. आत्मा असंग निर्विकार और शुद्ध ऐसा है.९।१०।११ यह १२धारणकरता हुवा१३ अर्थात् पूर्वोक्त निश्चय करके. १३ कौनसे वे कर्म हैं कि जिनकू करताहुवा यह मानता है, कि मैं असंगहूं. सो कहते हैं. देखताहुवा

१४ सुनताहुवा १५ स्पर्शकर्ताहुवा १६ सूंघताहुवा १७ खाताहुवा १८ चलताहुवा १९ सोताहुवा २० श्वासलेताहुवा २१ बोलताहुवा २२ त्यागताहुवा २३ ग्रहणकरताहुवा २४ नेत्रोंकूखोलताहुवा २५ मीचताहुवा २६ अपिशब्दकरके अनुक्तोंकू भी जानलेना. २७ तात्पर्य जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इनतीनों अवस्थामें जितनी क्रिया होतीं हैं, इससंघातके विषय सब अनात्म धर्म है. किसप्रकार इस-अपेक्षामें कहते हैं. सुनो. दर्शनादि चक्षुरादिइन्द्रियोंका धर्म है, आमाका नहीं. चलना पैरोंका धर्म है. सोना बुद्धीका, श्वासलेना प्राणका, बोलना वाणीका. त्यागना गुद और उपस्थ इनका, ग्रहण-करना हाथोंका, खोलना और मीचना; नेत्रोंका. येसब कर्म प्राण-का धर्म है. आत्मा सदा अकर्ता है, ज्ञानी यही समझते है, इसीस-मझसे निर्बंध होजाते हैं. ॥ ८।९ ॥

मू० ब्रह्मण्याधायकर्माणिसंगंत्यक्त्वाकरोतियः॥
लिप्यतेनसपापेनपद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

यः १ कर्माणि २ ब्रह्मणि ३ आधाय ४ संगम् ५ त्यक्त्वा६ करो-ति ७ सः८पापेन९न १०लिप्यते११पद्मपत्रम् १२इव १३ अम्भसा १४॥ १० ॥अ० उ० जिसको यह अभिमान है, कि मैं कर्ता हूं, अर्थात् जो आत्माकू अकर्ता नहीं जानता ब्रह्मज्ञान रहित है. उस-कू तो कर्म, बन्धन करेगा. और मैलाअन्तःकरणहोनेसे, उसको कर्मोंके संन्यासमें और ज्ञाननिष्ठामें अधिकार नहीं. वो तो बडे संक-टमें फँसा. यह शंका करके श्रीभगवान् उसके वास्ते यह कहते हैं. जो १कर्मोंकू २ परमेश्वरमें ३ अर्पणकरके ४ सि० और कर्मोंके फलके ❀संगकू याने आसक्तीकू ५ त्यागकर ६ करता है, ७ सो ८ पापसे ९ नहीं १० स्पर्शित होता है. ११ अर्थात् पापपुण्य दोनों उसकू छूतेंभी नहीं ११ कमलका पत्र १२ जैसे १३ जलसें १४ सि० नहीं भींगता. ॥ १० ॥

मू० कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनःकर्मकुर्वन्तिसंगंत्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११ ॥

कायेन १ मनसा२ बुद्ध्या३इन्द्रियैः४ केवलैः ५ अपि ६ योगिनः ७ कर्म ८ कुर्वन्ति ९ संगम् १० त्यक्त्वा ११ आत्मशुद्धये १२ ॥ ११ ॥ अ० उ०अन्तःकरणके शुद्धीकेलिये जो कर्म करते हैं वे बंधनकू नहीं प्राप्त होते. यह कहते हैं श्रीमहाराज. शरीरकरके १ मनकरके २ बुद्धीकरके ३ इन्द्रियोंकरके ४ ममतावर्जितकरके ५।६ अर्थात् केवल ब्रह्मार्पण करताहूं मैं, यह समझकरके ५।६ कर्मयोगी ७ कर्मकू ८ करते हैं. ९ सि० कर्मोंके फलके ❋आसक्तीकू १०त्यागकर ११ अन्तःकरणशुद्धीकेलिये.१२ सि० अपिपद पूरणार्थ ❋ टी०स्नानादि १ ध्यानादि २तत्वका निश्चय करना इत्यादि ३ श्रवणादि ये कर्म केवल अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रता होनेकेलिये करते हैं.सिवाय इसके और कुछ फल चाहना वन्धका हेतु है, तात्पर्य इनकर्मोंमें अभिनिवेशरहित होकर कर्मकरना,यही इसपांचवें पदका तात्पर्यार्थ है. ११ ॥

मू०युक्तःकर्मफलंत्यक्त्वाशान्तिमाप्नोतिनैष्ठिकीम्॥
अयुक्तःकामकारेणफलेसक्तोनिबध्यते ॥ १२ ॥

युक्तः १ कर्मफलम् २ त्यक्त्वा ३ नैष्ठिकीम् ४ शान्तिम् ५ आप्नोति ६ अयुक्तः ७ कामकारेण ८ फले ९ सक्तः १० निबध्यते ११ ॥ १२ ॥ अ० उ० कर्म एक है, कोई तो उसकू करके मुक्त होता है, और कोई उसकू करके बद्ध होता है. यह कैसी व्यवस्था है, ऐसी शंका करके श्रीभगवान् यह कहते हैं. समाहित याने सावधान १ सि० ऐसा भगवद्भक्त ❋ कर्मोंके फलकू २ त्यागकर ३ मोक्षरूपशान्तीकू ४ । ५ सि० ज्ञानद्वारा ❋ प्राप्त होता है. ६ बहिर्मुख याने विषयी अर्थात् कामी ७ कामके प्रेरणा

करके ८ फलमें ९ आसक्त १० सदा बन्धनकू प्राप्त होरहता है. ११ तात्पर्य निष्कामकर्म ज्ञानद्वारा मुक्त करदेता है. उसीकर्ममें जो इसलोकके वा परलोकके पदार्थोंकी चाहना होवेगी, तो सो कर्म बन्धनकू प्राप्त करदेता है. ॥ १२ ॥

मू० सर्वकर्माणिमनसासंन्यस्यास्तेसुखंवशी ॥
नवद्वारेपुरेदेहीनैवकुर्वन्नकारयन् ॥ १३ ॥

वशी १ देही २ सर्वकर्माणि ३ मनसा ४ संन्यस्य ५ सुखम् ६ नवद्वारे ७ पुरे ८ आस्ते ९ न १० एव ११ कुर्वन् १२ न १३ कारयन् १४ ॥ १३ ॥ अ० उ० जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं उसकू कर्मसंन्याससे कर्मयोग विशेष है, यह विस्तारपूर्वक निरूपण किया. अब यह कहते हैं, कि जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, उसकू कर्मसंन्यास श्रेष्ठ है शुद्धान्तःकरणवाला १ देहका स्वामी जीव २ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दरूप ऐसा ज्ञानी २ सब कर्मोंकू ३ मनसे ४ त्याग कर ५ सुखपूर्वक ६ नवद्वारपुरमें ७ । ८ अर्थात् नव दरवाजे हैं जिसमें ऐसे पुरमें याने देहमें ८ बैठा है ९ सि० किसप्रकार बैठा है, और क्या करता है इसअपेक्षामें कहते हैं ❋ न १० तो ११ सि० कुछ ❋ करताहुवा, १२ न १३ कराताहुवा, १४ सि० बैठा है ❋ अर्थात् ज्ञानी इसदेहमें न कुछ करता है, न कुछ कराता है. १४ तात्पर्य न कर्ता है, न प्रेरक है, अपने स्वरूपमें जीवतेहुवे ही मग्न है. न आपकू कर्ता मानता है, और न शरीरादिकेसाथ ममता करता है. यही उसका न करना, और न कराना है. टी० दो कानमें, दो नाकमें, दो नेत्रोंमें, और एक मुखमें, ये सात द्वार तो शिरमें हैं, और दो नीचे हैं. इसप्रकार नवद्वार हैं. ॥ १३ ॥

मू० नकर्तृत्वंनकर्माणिलोकस्यसृजतिप्रभुः ॥
नकर्मफलसंयोगंस्वभावस्तुप्रवर्तते ॥ १४ ॥

प्रभुः १ लोकस्य २ कर्तृत्वम् ३ न ४ सृजति ५ न ६ कर्माणि ७ न ८ कर्मफलसंयोगम् ९ स्वभावः १० तु ११ प्रवर्तते १२ ॥ १४ ॥ अ० उ० त्वंपदार्थजीवकू तो निर्विकार निरूपण किया, अब तत्पदार्थ ईश्वरकू भी निर्विकार निरूपण करते हैं. अर्थात् परमार्थमें ये दोनों निर्विकार हैं. क्यों कि नाममात्रही दो हैं, वास्तव दोनों एक हैं. यह दोश्लोकोंमें कहते हैं. ईश्वर १ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार,१ सि० यह ❀जीवके २ कर्तृत्वकू३सि० वास्तव ❀ नहीं ४ रचता है, ५ सि० और ❀न ६ कर्मोंकू ७सि० और ❀ न ८ कर्मोंके फलसंयोगकू ९ सि० रचता है. यह जो कुछ देखासुनाजाता है. वो सब ❀ अविद्या १० ही ११ प्रवृत्त होरही है, १२ तात्पर्य क्रियाकारकफलादि सब अविद्याकरके कल्पित हैं, न किसीने ये रचे हैं, और न वास्तव हैं. यह सब जीवका अज्ञान अध्यारोपमें विस्तार हो रहा है, वास्तव जीव भी शुद्ध है. जगत्का कर्ता ईश्वर है ऐसा जो कहते हैं सो अध्यारोपमें कहते हैं. वास्तव ईश्वर निर्विकार है, जगत् है नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

मू० नादत्तेकस्यचित्पापंनचैवसुकृतंविभुः ॥
अज्ञानेनावृतंज्ञानंतेनमुह्यन्तिजन्तवः ॥ १५ ॥

विभुः १ कस्यचित् २ पापम् ३ एव ४ न ५ आदत्ते ६ न ७ च ८ सुकृतम् ९ अज्ञानेन १० ज्ञानम् ११ आवृतम् १२ तेन १३ जंतवः १४ मुह्यन्ति १५ ॥ ५५ ॥ अ० ईश्वर १ किसीके २ पापकू ३ भी ४ नहीं ५ ग्रहणकरता ६ और न ७।८ पुण्यकू ९ अनादि अनिर्वाच्य ऐसे मूलाज्ञानकरके १० सि० जीवका ❀ ज्ञान ११ ढकगया है, १२ तिसकरके १३ अर्थात् तिसअज्ञानकरके १३ जीव १४ भ्रान्तीकू प्राप्त होरहे हैं. १५ अर्थात् ईश्वरकू भी कर्ता विकारवान् ऐसा मानते हैं, और अपनेकू भी. ॥ १५ ॥

मू॰ ज्ञानेनतुतदज्ञानंयेषांनाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानंप्रकाशयतितत्परम् ॥१६॥

ज्ञानेन १ तु २ तत् ३ अज्ञानम् ४ येषाम् ५ नाशितम् ६ तेषाम् ७ आत्मनः ८ तत्परम् ९ ज्ञानम् १० आदित्यवत् ११ प्रकाशयति १२ ॥ १६ ॥ अ॰ उ॰ ज्ञानीकूं भ्रांति नहीं होती, यह कहते हैं. सि॰ और ❋ ब्रह्मज्ञानकरके १।२ सो ३ अज्ञान ४ सि॰ पूर्वमंत्रोक्त ❋ जिनका ५ नाश होगया है, ६ तिनकू ७ आत्माका ८ परमार्थतत्व ९ ज्ञान १० सूर्यवत् ११ सि॰ प्रकाशकरके परमार्थतत्वरूप आत्माकू ❋ प्रकाशित करदेता है. १२ तात्पर्य जैसा सूर्य अंधकारका नाशकरके दृश्यपदार्थोंकू प्रकाशित करदेता है तैसा॥१६॥

मू॰ तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिंज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

तद्बुद्धयः १ तदात्मानः २ तन्निष्ठाः ३ तत्परायणाः ४ ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ५ अपुनरावृत्तिम् ६ गच्छन्ति ७ ॥ १७॥ अ॰ उ॰ जिनपुरुषोंकू आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है, उनका लक्षण कहते हैं, और ज्ञानका फल निरूपण करते हैं. तिसमेंही है बुद्धि जिनकी १ अर्थात् सिवाय आत्माके और किसी पदार्थमें नहीं जाती है बुद्धि जिनकी. याने आत्मासे सिवाय और किसी पदार्थकू सत्य त्रिकालाबाध्य निश्चित नहीं करते सि॰ और ❋ तिसमेंही है मन जिनका २ अर्थात् सिवायआत्माका और किसीपदार्थमें जिनका मन नहीं जाता २ सि॰ और ❋ तिसमेंही है निष्ठा जिनकी ३ अर्थात् सिवायआत्माके दूसरीजगे निष्ठा नहीं करते. याने सदा आत्माहीमें तत्पर रहते हैं ३ सि॰ और ❋ सोई आत्मा परम आश्रा है जिनका ४ सि॰ ऐसे महात्मा ❋ ज्ञानकरके नाश करदिये हैं पाप जिन्होंने ५ सि॰ वे ❋ मुक्तीकू ६ प्राप्त होते हैं. ७ ॥ १७ ॥

मू० विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणेगविहस्तिनि ॥
शुनिचैवश्वपाकेचपंडिताःसमदर्शिनः ॥ १८ ॥

विद्याविनयसंपन्ने १ ब्राह्मणे २ श्वपाके ३ च ४ गवि ५ हस्तिनि ६ शुनि ७ च ८ एव ९ समदर्शिनः १० पंडिताः ११ ॥ १८ ॥ अ० उ० पंडितनामभी ज्ञानियोंकाही है. अर्थात् पंडित ज्ञानीकू कहते हैं. इसमंत्रमें पंडित शब्दके अर्थका लक्षण कहते हैं. विद्या और नम्रताकरके युक्त ऐसे ब्राह्मणमें १।२ और चंडालमें ३।४ गौमें ५ हाथीमें ६ और कूकरमें ७।८ भी ९ सि० आत्माकू ❋ सम देखनेका स्वभाव है जिनका. १० सि० वे ❋ पंडित ११ सि० है मूर्खोंके कहनेसे और पंडितनाम रखवालेनेसे पंडित नहीं होसक्ता ❋ टी० ब्राह्मण और चांडालमें तो कर्मकी विषमता है, और गौ हाथी और कूकर इनमें जातीकी विषमता है. तात्पर्य सबमें आत्माकू समदेखते हैं. इसवास्ते उनकूभी समदर्शी कहाजाता है. व्यवहारमें ब्राह्मण और चांडालादिकू एक देखना या समझनां, भ्रष्ट और मूर्खोंका काम है. ॥ १८ ॥

मू० इहैवतैर्जितःसर्गोयेषांसाम्येस्थितंमनः ॥
निर्दोषंहिसमंब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः ॥ १९ ॥

येषाम् १ मनः २ साम्ये ३ स्थितम् ४ तैः ५ इह ६ एव ७ सर्गः ८ जितः ९ ब्रह्म १० निर्दोषम् ११ समम् १२ तस्मात् १३ हि १४ ब्रह्मणि १५ ते १६ स्थिताः १७ ॥ १९ ॥ अ० उ० समदर्शियोंका माहात्म्य कहते हैं. जिनका १ मन २ समताकेविषय ३ स्थित है. ४ अर्थात् सबभूतोंमें जिनकी ब्रह्मभावना है, ४ तिन्होंने ५ जीवतहुवे ६ ही ७ संसार ८ जीता है. ९ सि० क्योंकि ❋ ब्रह्म १० निर्दोष ११ सि० और ❋ सम १२ सि० है ❋ तिसकारणसे १३ ही १४ ब्रह्मम १५ वे १६ सि० पंडित (पूर्वमंत्रोक्त) ❋

स्थित हैं. १७ अर्थात् ब्रह्मभावकू प्राप्त हैं. १७ ॥ तात्पर्य संसार, दोषोंकेसहित विषमरूप है, और ब्रह्म, समरूप निर्दोष है. ब्रह्मभावकू प्राप्त होकरही संसारजय होसक्ता है, जीताजाता है, नाश होसक्ता है. अथवा इसप्रकार अन्वय करदेना, कि जिसकारणसे ब्रह्म, सम, और निर्दोषी, ऐसा है, तिसकारणसेही वे ब्रह्ममें स्थित हैं. और जब कि ब्रह्ममें उनकी स्थित हुई, तिसकारणसेही उन्होंने संसारकू जीता. सिवाय शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपपूर्णब्रह्म ऐसे आत्माके सब पदार्थ सदोष हैं. यह समझकर निर्दोषब्रह्ममें स्थित होकर, संसार जीता जाता है. १९ ॥

मू०नप्रहृष्येत्प्रियंप्राप्यनोद्विजेत्प्राप्यचाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढोब्रह्मविद्ब्रह्मणिस्थितः ॥२०॥

असंमूढः १ स्थिरबुद्धिः २ ब्रह्मवित् ३ ब्रह्मणि ४ स्थितः ५ प्रियम् ६ प्राप्य ७ न ८ प्रहृष्येत् ९ अप्रियम् १० च ११ प्राप्य १२ न १३ उद्विजेत् १४ ॥ २० ॥ अ० मोहवर्जित १ संदेहरहित२ब्रह्मवित् ३ ब्रह्ममें ४ स्थित हुवा ५ प्रियको ६ प्राप्त होकर ७ नहीं ८ आनंदी होता है. ९ और अप्रियको१०।११ प्राप्त होकर१२ नहीं१३ उद्वेग करता है. १४ ॥ २० ॥

मू०बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्माविन्दत्यात्मनियत्सुखम् ॥
सब्रह्मयोगयुक्तात्मासुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

बाह्यस्पर्शेषु१असक्तात्मा२ब्रह्मयोगयुक्तात्मा३सः ४आत्मनि५यत् ६सुखम्७विन्दति८अक्षयम्९सुखम्१० अश्नुते११॥२१॥अ०उ० जिसहेतूसे शब्दादिपदार्थोंमें रागद्वेष नहीं है ज्ञानीका वो हेतु कहते हैं. शब्दादिइन्द्रियोंके अर्थोंमें १ नहीं आसक्त अंतःकरण जिसका २ सि० और ❀ब्रह्ममें समाधिकरके युक्त है अंतःकरण जिसका ३ सो ४ अंतःकरणमें ५ जो ६ सि० सत्वगुणी उपशमात्मक ऐसे ❀सु

खकू ७ सि॰ प्रथम ❀ प्राप्त होता है, ८ सि॰ फिर ❀ अक्षयसुखकू ९।१० प्राप्त होता है. ११ टी॰ बाहर जिनका स्पर्श होता है इन्द्रियोंके वृत्तीकरके, वे शब्दादिपंचेन्द्रियोंके अर्थ हैं. तिनमें जिनका मन आसक्त नहीं. उसमें यह हेतु है, कि उन्होंने आत्मामें अंतःकरणकू समाधान करके, जीवकू ब्रह्मरूप समझलिया है.और आत्मा पूर्णानंद नित्य और एकरस है, इसवास्ते उनकू अक्षयसुख प्राप्त होता है. अर्थात् वे सच्चिदानंदस्वरूप एकरस ऐसे हैं. पूर्णानन्दके सामने विषयानंद तुच्छ है, प्रथम तो सत्वगुणी [सुखके सामने विपयानन्द तुच्छ है. फिर परमानन्दके सामने तुच्छ हो, तो इसमें क्या कहना है. अथवा इसश्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि शब्दादिविषयोंमें नहीं है आसक्त अन्तःकरण जिसका, सो महात्मा, सात्विकसुखकू प्राप्त होता है. फिर समाधि करके ब्रह्मात्मामें अंतःकरण लगाया है जिसने, सो महात्मा पुरुष अक्षय सुखकू प्राप्त होताहै. २१॥

मू॰ येहिसंस्पर्शजाभोगादुःखयोनयएवते ॥
आद्यन्तवन्तःकौन्तेयनतेषुरमतेबुधः ॥ २२ ॥

संस्पर्शजाः १ ये २ भोगाः ३ ते ४ एव ५ हि ६ दुःखयोनयः ७ कौंतेय ८ आद्यन्तवन्तः ९ तेषु १० बुधः ११ न १२ रमते १३॥२२॥

अ॰ उ॰ शब्दादिविषयोंमें इन्द्रादिदेवता आनंदमानते हैं, और बडेबडे समझवाले चतुरलोग वैकुंठलोकादिपरलोकपदार्थोंके प्राप्तीकेलिये नानाप्रकारके प्रयत्न करते हैं. वहां जाकर नानाप्रकारके शब्दादिविषयोंकू भोक्ते हैं. पुराणादिमेंभी उनका माहात्म्य सुना जाता है. ऐसे प्रत्यक्ष सुन्दर शब्दादिविषयोंकू छोड जो ब्रह्मात्मामें परमानंद मानते हैं, वे तो कुछ कमसमझ प्रतीत होते हैं, यह शंकाकरके श्रीमहाराज कहते हैं. शब्दादिविषयोंसे उत्पन्न होते हैं. १ जो २ भोग३ अर्थात् विषयजन्य जो सुख याने आनंद ३ वे ४ निश्चयसे ५ ही ६ दुःखके कारण हैं. ७ अर्थात् वेसंदेह समझना कि शब्दादिपदार्थोंमें

जो सुख है वो दुःखोंका मूल है. ७ सि० जो कोई मूर्ख यह समझे कि आपके समझमें विषयानन्द दुःखोंका मूल है, हमारे समझमें श्रेष्ठ है. यह शंका करके प्रत्यक्ष और भी दोष दिखाते हैं. हेअर्जुन८सि० फिर कैसे हैं. येभोग ❋ आद्यन्तवाले हैं. ९ अर्थात् आगमापायी याने आनेजानेवाले हैं. सदा नहीं बनेरहते. ९ तिनकेविषय १० विद्वान् ११ नहीं १२ रमता है. १३ तात्पर्य जो स्त्रीधनादिपदार्थोंमें रमते हैं. शब्दादिविषयोंकू प्रिय समझकर भोक्ते हैं; और उनके प्राप्तीकेलिये लौकिक वैदिक कर्म करते हैं; वे कुछ बडे समझवाले चतुर नहीं, उनकू महामूर्ख समझना. उक्तंच ॥ रमन्तिमूर्खाविरमन्तिपंडिताः ॥ हि यह शब्द कहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि विषय इसलोकके और परलोकके सब सम हैं. उनके प्रयत्न करनेमें और नाश होनेमें जो जो दुःख हैं. वे तो प्रसिद्धही हैं.परंतु भोगकालमें भी वे दुःखके हेतु हैं. चोर, राजा, इत्यादिका सदा भय बना रहता है. तात्पर्य जो विषयोंमें कुछएक सुख प्रतीत होता है, तो सहस्रों प्रकारका उनमें दुःख है. और वो सुखभी अनित्य है. श्रेष्ठ आत्मानंदही है. आत्मानंदके भोगनेवाले, आत्मानंदके प्रयत्न करनेवाले चतुर बुद्धिमान, और सबसे श्रेष्ठ, ऐसे हैं. इत्यभिप्रायः ॥ २२ ॥

मू०शक्नोतीहैवयःसोढुंप्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवंवेगंसयुक्तःससुखीनरः ॥ २३ ॥

यः १ कामक्रोधोद्भवम् २वेगम्३प्राक्शरीरविमोक्षणात् ४ इह ५ एव ६ सोढुम् ७ शक्नोति ८ सः ९ युक्तः १० सः ११ सुखी १२ नरः १३ ॥ २३ ॥ अ० उ० परमपुरुषार्थ मोक्ष है. उसके ये दो (काम और क्रोध) वैरी हैं. जो इनकू सहेगा, याने त्यागेगा, वो मोक्षका भागी होगा. यह कहते है. जो १ सि० महापुरुष ❋ काम और क्रोधसे प्रकट होता है जो वेग उसकू २।३ पहले शरीरके छूट-

नेके ४ जीवते ५ ही ६ सहनेकू ७ समर्थ है, ८ सोई ९ योगी १० सि० और ❋ सोई ११ सुखी, १२ महापुरुष १३ सि० है ❋ तात्पर्य कामना सबपदार्थोंकी (शुभ वा अशुभ इसलोकके. वा परलोकके पदार्थोंकी) अनर्थका हेतु है. और स्त्रीकी कामना तो मोक्षमें बडाही प्रतिबन्ध है. जिससमय देखनेसे, सुननेसे और स्मरण करनेसे, मनमें विकार प्रतीत हो उसीसमय दोषोंका स्मरण करे जिसगुणका स्मरण करनेसे कामना होतीहै, उसका कभी चिंतवन न करे. जितने उसपदार्थमें अवगुण हैं, उनसबकू स्मरणकरे. मनोराज्यका अंकुर जमने न दे. दूसरे आध्यायके मंत्रोंका विचारकरे. नारायणकी यादकरे, जैसे बने वैसे वो समय टलावे. और इससेभी उत्तम उपाय यह है, कि उससमय विरक्तसाधूके पास जा बैठे. वेसंदेह उसीसमय चित्त शान्त होजायगा. और यह प्रयत्न, सुषुप्तिमरणपर्यन्त चाहिये. कामनासे ही क्रोध होता है. ऐसेही क्रोधलोभादिका जब उद्वेग हो, उसीसमय समझकर निरोध करे. इसीप्रकार सहज, सहज, सहते सहते, फिर आपही स्वभाव ऐसा पडजायगा. प्रथम तो कामादिका उदयही न होगा. कामादि जो कुसंगसे उदितभी होवे तो उनकाविचार करनेसे वह कामका उदय नष्ट हो जावेगा ॥ २३ ॥

मू०योन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेवयः ॥
सयोगीब्रह्मनिर्वाणंब्रह्मभूतोधिगच्छति ॥ २४ ॥

अंतःसुखः १ यः २ अंतरारामः ३ तथा ४ एव ५ अंतर्ज्योतिः ६ यः ७ सः ८ योगी ९ ब्रह्मभूतः १० ब्रह्मनिर्वाणम् ११ अधिगच्छति १२ ॥ २४ ॥ अ० उ० कामनादीके त्यागनेसे अन्तःसुखकी प्राप्ति होती है, कैसाहै वो सुख, कि स्वतंत्र नित्य पूर्ण अर्थात् अखंड है. उसमें विहार करताहुवा पूर्ण ब्रह्मपरमानन्द स्वरूप आत्माकू सदाकेवास्ते प्राप्त होजाताहै, सोई कहते हैं अंतःकरणमें है सुखजिसकू १ अर्थात् आत्मामें ही जिसकू सुख है १ सि०

इसीहेतूसे वो विषयोंमें सुख नहीं मानता ❀ जो २ सि॰ महात्मा और ❀ आत्मामेंही है विहार जिसका ३ सि॰ इसीहेतूसे बाहरके पदार्थोंमें नहीं विहार करता, और जैसे अंतःसुख मानता है, अंदर ही विहार करता है ❀ तैसे ४ ही ५ भीतर है दृष्टि जिसकी ६ सि॰ इसीहेतूसे गीतनृत्यादिमें दृष्टि नहीं करता, ऐसा ❀ जो ७ सि॰ महापुरुष योगी ❀ सो ८ योगी ९ ब्रह्मस्वरूप हुवा १० सि॰ ब्रह्ममें लय होकर, ब्रह्मकू अर्थात् ❀ निर्वाणब्रह्म ऐसे मोक्षकू, ११ प्राप्त होता है. १२ तात्पर्य फिर उसको जन्ममरण नहीं होता, पूर्णपरमानन्दस्वरूप आत्माकू प्राप्त होता है. ॥ २४ ॥

मू॰ लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयःक्षीणकल्मषाः॥
छिन्नद्वैधायतात्मानःसर्वभूतहितेरताः॥ २५॥

ऋषयः१ क्षीणकल्मषाः २ छिन्नद्वैधाः ३ यतात्मानः ४ सर्वभूतहितेरताः ५ ब्रह्मनिर्वाणम् ६ लभन्ते ७ ॥ २५ ॥ अ॰ उ॰ जो ब्रह्मकू प्राप्त होते हैं, उनका लक्षण कहते हैं. ज्ञाननिष्ठावाले साधु महात्मा १ नाश होगये हैं पाप जिनके २ सि॰ और ❀ छिन्न छिन्न दो दो टूके होगये हैं संशयके जिनके ३ अर्थात् किसी प्रकारका संशय जिनकू नहीं ३ जीता हुवा है अंतःकरण जिनका ४ सबभूतोंके हितमें प्रीति है जिनकी ५ सि॰ ऐसे कृपालु महात्मा ❀ ब्रह्मनिर्वाणकू ६ प्राप्त होंगे ७ सि॰ पहले बहुत होगये, वर्तमानकालमें बहुत जीवन्मुक्त विद्यमान हैं ❀ टी॰ साधन चतुष्टयसंपन्न श्रवणादिसाधनों करके युक्त १ तिरोभाव होगये हैं रजोगुण तमोगुण जिनके, ज्ञानके प्रतापसे सब पाप नाश होगये हैं जिनके २ प्रमाणगत वा प्रमेयगत किसी जगे उनकू संशय नहीं. ३ सदासमाधिनिष्ठ रहते हैं ४ नगरग्राममें जो उनका आना, याने गृहस्थोंके घर जाना, गृहस्थोंसे बात करना इह उनकी केवल कृपाही समझना.

क्यों कि वे पूर्णकाम हैं. ऐसे दयालु महापुरुषोंका दर्शन भी बडे भागसे होता है ५ ॥ उक्तंच महद्विचलनंनृणांगृहिणांदीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसायभगवन्कल्प्यतेनान्यथाक्वचित् ॥ तात्पर्यार्थ इसश्लोकका यह है, कि गृहस्थोंके घरमें महात्मापुरुषोंका जो जाना है वो केवल उनके भलेकेलिये है.सिवाय उसके उनका और कुछ प्रयोजन नहीं. कभी कुछ और प्रकारकी कल्पना नहीं करना. क्यों कि गृहस्थ आपही दीन होते हैं, उनकेपास है क्या, कि जो किसीकामनाकी कल्पना कीईजावे. ॥ २५ ॥

मू०कामक्रोधवियुक्तानांयतीनांयतचेतसाम् ॥
अभितोब्रह्मनिर्वाणंवर्ततेविदितात्मनाम् ॥२६॥

यतीनाम् १ अभितः २ ब्रह्मनिर्वाणम् ३ वर्तते ४ कामक्रोधवियुक्तानाम् ५ यतचेतसाम् ६ विदितात्मनाम् ७ ॥ २६ ॥ अ० उ० कामादिरहित सज्जन जीवतेही मुक्त हैं. फिर उनके विदेहमुक्तीमें तो क्या बात कहना है. संन्यासीके १ सब अवस्थामें २ मोक्षपरमानंदकू ३ वर्तता हैं ४ अर्थात् जीवतेहुवे भी जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तीमें परमानंदकू भोक्ते हैं ४ तात्पर्य अज्ञानियोंके दृष्टीमें ज्ञानियोंकेविषय, ये तीन अवस्था प्रतीत होती हैं. वास्तव ज्ञानियोंकी एक तुर्यातीत अवस्था रहती है. और पीछे देहकेभी परमानंदकू भोक्ते हैं. सि०कैसे हैं वे संन्यासी ज्ञानी ❋ कामक्रोधकरके रहित हैं ५ जीत रक्खाहै अंतःकरण जिह्नोंने ६ जाना है आत्मतत्त्व जिन्होंने ७ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदनित्यमुक्त ऐसे आत्माकू जानते हैं. और कामादिरहित ऐसे हैं. ॥ ७ ॥ २६ ॥

मू०स्पर्शान्कृत्वाबहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरेभ्रुवोः ॥
प्राणापानौसमौकृत्वानासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७॥

बाह्यान् १ स्पर्शान् २ बहिः ३ एव ४ कृत्वा ५ चक्षुः ६ च ७

भ्रुवोः ८ अंतरे ९ प्राणापानौ १० नासाभ्यन्तरचारिणौ ११ समौ १२ कृत्वा १३ ॥ २७ ॥ अ० उ० जिसयोगकरके संन्यासी महात्मा जीवतेहुवे, और देहके पीछे भी सदा परमानंद भोक्ते हैं, उसयोगका लक्षण दोमंत्रोंमें संक्षेपसे तो अब कहते हैं और अगले छठे अध्यायमें विस्तार पूर्वक कहेंगे. बहिः पदार्थोंकू १ रूपरसादिकूं २ बाहर ३ ही ४ करके ५ अर्थात् रूपरसादि जो पदार्थ हैं ये सब बाहर हैं, उनका चितवन करनेसे वे भीतर प्रवेश करते हैं. इसवास्ते विषयोंका चितवन दर्शनादिका त्याग करके ५ और नेत्रोंकू ६।७ दोनोंभ्रूके ८ बीचमें सि० करके ❋ तात्पर्य नेत्रोंकू बहुत न खोलना, न मीचना. बहुत खोलनेसे रूपके साथ संबंध होजाता है. बहुत मीचनेसे निद्रा आजाती है. इसवास्ते दोनों भ्रूके मध्यमें दृष्टि रखना. और प्राण अपान इनकू १० नासाभ्यंतरचारी ११ समान १२ करके १३ सि० मुक्त होजाताहै ❋ तात्पर्य ऐसे महात्मा सदा मुक्तहैं. अगले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. टी० नासिकाके भीतर ही प्राण चले, शीघ्रगति न होने पावे ११ नीचेकी ऊपरकी ये दोनों गति सम करना योग्य है. जिसकू कुम्भक कहते हैं, यह अर्थ, साक्षात् गुरूके बतलानेसे समझमें आता है, केवल शास्त्रके श्रवणसे और विचारसे नहीं आता. ॥ २७ ॥

मू० यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधोयःसदामुक्तएवसः ॥ २८ ॥

यतेंद्रियमनोबुद्धिः १ मोक्षपरायणः २ विगतेच्छाभयक्रोधः ३ यः ४ मुनिः ५ सः ६ सदा ७ मुक्तः ८ एव ९ ॥ २८ ॥ अ० उ० जीते हैं इन्द्रिय (मन और बुद्धि) जिसने १ मोक्षही है परमागति जिसकी २ दूर होगये हैं इच्छा भय और क्रोध जिससे ३ सि० ऐसे ❋ जो ४ मुनि (संन्यासी) ५ सि० हैं ❋ वे ६ सदा ७ सि० जीतेहुवे

भी और देहके पीछे भी ❋ मुक्त ८ ही ९ सि॰ हैं. इससे पृथक् कोई मुक्तिपदार्थ नहीं. सलोकतादि (अनित्य होनेसे) नाममात्र कहलाती है ❋ तात्पर्य सबदुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दस्वरूपआत्माकी प्राप्ति यह मुक्तीका लक्षण है. टी॰ जिसका मन आत्मामेंही रहता है, उसकू मुनि कहते हैं. ५ ॥ २८ ॥

मू॰ भोक्तारंयज्ञतपसांसर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदंसर्वभूतानांज्ञात्वामांशांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

यज्ञतपसाम् १ भोक्तारम् २ सर्वभूतानाम् ३ सुहृदम् ४ सर्वलोकमहेश्वरम् ५ माम् ६ ज्ञात्वा ७ शान्तिम् ८ ऋच्छति ९ ॥ २९ ॥ अ॰ उ॰ जैसा पीछे निरूपण किया, इसप्रकार इन्द्रिय और अन्तःकरणादिका निरोध करके ब्रह्मज्ञानद्वारा मुक्त होता है, इसवास्ते अब ज्ञानका स्वरूप कहकर शान्तिफल सबका निरूपण करते हैं. यज्ञतपका १ भोक्ता २ सि॰ अविद्योपाहित त्वम्पदका वाच्यार्थ है, और ❋ सबभूतोंका ३ वेप्रयोजन हित करनेवाला ४ सि॰ अन्तर्यामी अतएव ईश्वर यह सबकर्मोंके फलका देनेवाला, तत्पदका वाच्यार्थ, सच्चिदानन्द है, और ❋ सबलोकोंका महेश्वर ५ सि॰ परमात्मा शुद्ध, सच्चिदानन्द, निर्विकार, नित्य, मुक्त, तत्त्वम्पदोंका लक्ष्यार्थ, ऐसाही एक अद्वैतहै. इस प्रकार ❋ मुझकू ६ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्म एसे आत्माकू ६ जानकर ७ शान्तीकू ८ अर्थात् मुक्तीकू ८ प्राप्त होता है. ९ नसपुनरावर्ततेइत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठे अध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

उ० इसछठे अध्यायमें श्रीभगवान् यह कहेंगे, कि जो अग्निहोत्रादि कर्म करता है, और कर्मोंके फलमें आसक्त नहीं उसकू संन्यासी समझना, यह कर्मयोगीकी स्तुतिहै. इसकू शास्त्रमें अर्थवाद कहते हैं. इसकहनेसे यह नहीं समझना, कि गृहस्थाश्रममेंही सदा बनेरहना. चतुर्थाश्रमसंन्याससे क्या प्रयोजन है. ये जैसे संन्यासी वैसे ही गृहस्थकर्मयोगी हैं. यह अधिकारप्रति श्रीमहाराजका कहनाहै. नहीं तो पुनःपुनः पांचवें, बारवें, दूसरे, अठारवें इत्यादिअध्यायोंमें चतुर्थाश्रमसंन्यासके जो लक्षण और माहात्म्य गृहस्थाश्रमसे विशेष अपने मुखसे श्रीमहाराजनें कहा है, वो कहना भगवानका निरर्थक हो जायगा. तात्पर्य सर्वज्ञोंके वाणीका यह नियम है,कि जिससमय जिससाधनका प्रसंग होता है,उससमय उसीसाधनकू सबसे अच्छा कहाकरतेहैं. उनका आशय यथार्थ जब प्रतीत होता है, कि अगलेपीछले कहेहुवे उनके सबअर्थकू विचारे. फिर अधिकार, गौण, मुख्य, देश, वस्तु, और कालादिका विचार करे. युक्तियोंकरके सब श्रुतिस्मृतियोंकेसाथ उस अर्थका एकजगे समन्वय करे. अगले पीछले वाक्योंमें विरोध न आवे. सबका एकअर्थमें समन्वय होजाय, तब समझना कि इसश्लोकका वा ग्रंथका यह यथार्थ जैसेका तैसा अर्थ है. और लक्षणा और व्यंजना इनशक्तियोंको भी देखना योग्य है. पूर्वपक्षकू और सिद्धान्तकू पृथक् पृथक् समझना. साधनफलका भेद देखना, साधनोंमें भी तारतम्यता अधिकारी प्रति है. इसप्रकार शास्त्रका तात्पर्य जाना जाताहै. और भी शास्त्रके तात्पर्य जाननेमें मुख्य छः बातों ये हैं. प्रथमतो उपक्रम और उपसंहार १ अर्थात् ग्रंथका आदिअन्त देखना, कि दोनोंकी

संगति मिलती है वा नहीं. सर्वज्ञोंका कहाहुवा जो ग्रंथ होता है, उसके प्रारंभमें जो अर्थ होगा, वोही अन्तमें होगा. जैसे श्रीभगवद्गीताका आदिपद अशोच्य है, और माशुचः यह पीछला पद है. इन दोनों पदोंसे प्रथम पीछे जो कहा है, वो संगतीकेलिये उपोद्घात है. इस प्रकार गीताका उपक्रम और उपसंहार एक मिलता है. शोचका न होना, और अर्थात् परमानंदकी प्राप्ति, यही गीताशास्त्रका तात्पर्य है. १ इसीबातको सिद्ध करनेकेलिये बीचमें पांचबातों ये हैं. अपूर्वता २ अर्थात् आत्माकू ही सच्चिदानंद नित्यमुक्त जानना, जिसके जाननेसे ही बेशोच होजाता है. यह बात अपूर्व अलौकिक है २ अनुवाद ३ अर्थात् उसी एकबातकू नानाप्रकारके रीति और शैलीकरके पुनःपुनः कथन करना. ३ अर्थवाद ४ अर्थात् उसीपदार्थके सिद्धीके जो साधन हैं, उनकूही (रुचि बढाने केलिये) परात्पर, श्रेष्ठ इत्यादि कहना. जैसे कर्म, भक्ति, योग और तीर्थ इत्यादि, इनका माहात्म्य कहा है. ४ उपपत्ति ५ अर्थात् फिर युक्तियों करके साधनकू साधन कहकर, सिद्धान्तपक्षकू सिद्ध करना. ५ फल ६ अर्थात् सिद्धान्तकू कथन करना, याने उसका लक्षण करना, कि वो परमानंदस्वरूप ऐसा है. ६ इसप्रकार ग्रंथका तात्पर्य प्रतीत होता है. ग्रंथके एकएकदेशसे अर्थात् एकश्लोक वा एक अध्यायसे ग्रंथका तात्पर्य नहीं जानाजाता. ये भी छः बातों (उपक्रम उपसंहारादि) गीताशास्त्रमें हैं. लक्षणा व्यंजनादि भी हैं. इन छःबातोंका एकपदार्थमें जब समन्वय होगा, तब जानना, कि इसग्रंथका यह तात्पर्य है. अर्थवादसाधनोंकू सिद्धान्त समझलेना. यह मूर्खोंका काम है. ॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ अनाश्रितःकर्मफलंकार्यंकर्मकरोतियः॥ससंन्यासीचयोगीचननिरग्निर्नचाक्रियः१॥

कर्मफलम् १ अनाश्रितः २ कार्यम् ३ कर्म ४ यः ५ करोति६सः७ संन्यासी ८ च ९ योगी १० च ११ न १२ निरग्निः १३ न१४च१५ अक्रियः १६ ॥१॥ अ० उ० अन्तःकरण शुद्ध होनेकेलिये कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं श्रीभगवान्. कर्मोंके फलका नहीं आश्रा किया है जिसने ११२ अर्थात् कर्मफलकी तृष्णा और कामना नहीं है जिसकू ११२ करनेके योग्य कर्मकू ३१४ जो ५ करता है, ६ अर्थात् नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तकर्म, और भगवद्भक्तिसंबंधि,ज्ञानसंबन्धि जो कर्म, और तीर्थयात्रा, साधुसेवादि, साधारण जो कर्म, और दानलेना इत्यादि जो असाधारण कर्म हैं, इन सबकर्मोंकू यथाअधिकार यथाशक्ति जो करता है. ६ सो ७ संन्यासी ८ और ९ योगी १० भी११ सि० समझनाचाहिये ❋तात्पर्य कर्मफलका संन्यास करनेसे एकदेशमेंतो उसकू संन्यासी समझना, और कर्मयोग करनेसे, एकदेशमें उसकू योगी समझना. इस अर्थमें समसमुच्चयकी गंधमात्रभी नहीं कल्पना करना. कर्मयोग और कर्मसंन्यासका दिनरात्रिवत् विरोध है. कर्मयोगीकू ही संन्यासी कहना यह उपमा है. जैसे स्त्रीके मुखकू चंद्रमा कहना, इसउपमाका तात्पर्य एकदेशमें होता है. नहींतो अगलेपीछलेवाक्योंमें विरोध आता है. पीछे श्रीभगवानने बहुत जगे कर्मसंन्यास, फलकेसहित निरूपण किया, और आगे बहुत करेंगे. इसजगे कर्मयोगकाही प्रसंगहै. इसीवास्ते श्रीमहाराज कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं. सि० कैसा है वो कर्मयोगी❋न १२ निरग्निः १३ और १४ न १५ अक्रिय१६सि०है.जैसे चतुर्थाश्रमी संन्यासी,अग्निहोत्रादि कर्म नहीं करते, निरग्नि होते हैं, ऐसा कर्मयोगी नहीं. और चतुर्थाश्रमी संन्यासी ऐसे ज्ञानीवत् अक्रियभी नहीं. क्योंकि ज्ञानी आत्माकू अक्रिय (क्रियारहित) मानते हैं. आत्माका जब देहकेसाथ संबन्ध माना,तब आत्मा अक्रिय कहाँरहा.यह बात श्रीमहाराज सत्य कहते हैं, कि कर्मयोगी अक्रिय नहीं. अथवा केवलअग्नीके न छूनेसे

कर्मोंके नकरनेसे, विनाज्ञाननिष्ठा, परमार्थमें संन्यासी नहीं होसक्ता, व्यवहारमें उसकू नाममात्र संन्यासी कहेंगे ❋ तात्पर्य जवतक अन्तःकरण शुद्ध नहो, तबतक ज्ञाननिष्ठा और संन्यासका माहात्म्य सुनकर, कर्मोंका त्याग न करे. और जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो, उनकेवास्ते कर्मोंका संन्यास करना, चतुर्थाश्रमधारणकरना, निषेध नहीं. अवश्य चतुर्थाश्रम धारण करना. उसकेविना ज्ञाननिष्ठा कभी परिपाक न होगी. यह नियम याने विधि है. ॥ १ ॥

मू०यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपाण्डव ॥
नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगीभवतिकश्चन ॥ २ ॥

पांडव १ यम् २ संन्यासम् ३ प्राहुः ४ तम् ५ हि ६ योगम् ७ इति ८ विद्धि ९ असंन्यस्तसंकल्पः १० कश्चन ११ योगी १२ न १३ भवति १४ ॥ २ ॥ अ० उ० कच्चेकर्मयोगीका संन्यासमें अधिकार नहीं यह कहते हैं. हे अर्जुन १ जिसकू २ संन्यास ३ कहते हैं, ४ तिसकू ५ ही ६ योग ७ सि० कहते हैं ❋ यह ८ जानतूं, ९ सि० क्योंकि संन्यास योगकाही फलहै ❋ नहीं संन्यास किये हैं संकल्प जिसने १० सि० ऐसा ❋ अर्थात् शुभाशुभसंकल्पोंकू जिसने नहीं त्यागा है सो ऐसा १० कोई ११ योगी १२ नहीं १३ होताहै. १४ तात्पर्य जबतक शुभ वा अशुभ संकल्प मनमें बने रहें तबतक अपनेकू सिद्धयोगी समझना न चाहिये. अर्थात् यह समझे कि मेरा भक्तियोग अभी सिद्ध नहीं हुवा, जब अन्तःकरणका निरोध होजाय, संकल्पविकल्प सूक्ष्म (कम) होजावें, तब संन्यासका अधिकारी होता है. ॥ २ ॥

मू०आरुरुक्षोर्मुनेर्योगंकर्मकारणमुच्यते ॥
योगारूढस्यतस्यैवशमःकारणमुच्यते ॥ ३ ॥

योगम् १ आरुरुक्षोः २ मुनेः ३ कर्म ४ कारणम् ५ उच्यते ६ यो-

गारूढस्य ७ तस्य ८ एव ९ शमः १० कारणम् ११ उच्यते १२ ॥ ३॥ अ० उ० हेअर्जुन पीछे जो मैनें कर्मयोगीकी स्तुति कीई, उसकहनेसे यह नहीं समझना कि सदा कर्मही करता रहे. अधिकारी प्रति मैनें वहाँ कहा है. तात्पर्य सिद्धान्त मेरा यह है, कि जो मैं अब कहता हूं. सि० ऊपरके पदपर ❋ ज्ञानपर १ चढनेकी इच्छा है जिसको २ सि० ध्यानयोगमें समर्थ नहीं, ऐसा अर्थात् सच्चिदानन्द निराकारका ध्यान नहीं करसक्ता ऐसा ज्ञानयोगका जिज्ञासु ऐसा ❋ मननशीलकू ३ अर्थात् मनमें तो यह मनन करता है,कि सच्चिदानंदनिराकारका ध्यान करना चाहिये. परंतु अंतःकरण मैला होनेसे ध्यान नहीं होसक्ता. ऐसे जिज्ञासुमुनीकू ३ कर्म ४ अर्थात् वहिरंग भगवदाराधनादि ४ सि० परमानन्दस्वरूपआत्माके प्राप्तीमें ❋ हेतु ५ कहा है. ६ सि० और ❋ योगारूढकू ७ अर्थात् शुद्धांतःकरणवालेकू तात्पर्य जो ज्ञानयोगपरचढगया है, वोही कर्मयोगी साधनचतुष्टयसंपन्न होकर ज्ञाननिष्ट हुवा है.७ तिसकू ८ ही ९ उपशम १० हेतु ११ कहा है.१२ तात्पर्य परमांनदस्वरूपआत्माके प्राप्तीमें उपशम हेतु है.अर्थात् लौकिक और वैदिककर्मोंसे उपराम होकर सच्चिदानन्दनिराकारका ध्यान करना कहा है. फिर उसकू वहिरंगकर्मोंमें प्रवृत्त होना न चाहिये. क्यों कि वे विक्षेपके हेतु है, याने ऊपरचढेहुवेको नीचे उतारते हैं. टी० तिसकूही. अर्थात् उसीकू कि जो पहले कर्मयोगीथा; याने साकारमूर्तियोंका ध्यान करताथा, और वहिरंगकर्मोंमें प्रवृत्त था उसी वहिर्मुखकू अन्तर्मुख होना कहते हैं श्रीभगवान्. यह नहीं समझना कि कर्मयोगीकू सदा वहिर्मुख रहनाही कहते हैं, वा ज्ञानमार्ग दूसरा है, उसके अधिकारी दूसरे हैं. जैसे कोईकोई कमसमझवाले यह कहाकरते हैं कि मकान एक है, उसके रस्ते अनेक हैं, यह वात नहीं, तो मोक्षमार्ग एकही है. मजला अनेक हैं, रस्ते अनेक नहीं. रस्ता एकही है. अर्थात्

मोक्षके मार्ग अनेक नहीं, अधिकारीप्रति भूमिका दरजे याने सीढी अनेक हैं. ॥ ३ ॥

मू०यदाहिनेंद्रियार्थेषुनकर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासीयोगारुढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

यदा १ हि २ न ३ इंद्रियार्थेषु ४ न ५ कर्मसु ६ अनुषज्जते ७ सर्वसंकल्पसंन्यासी ८ तदा ९ योगारूढः १० उच्यते ११ ॥ ४ ॥

अ० उ० यह कैसे प्रतीत हो कि योगारूढ अब मैं हुवा. इसअपेक्षामें योगारूढका लक्षण कहते हैं. जिसकालमें १ ही २ सि० जोमहापुरुष * न ३ विषयोंमें ४ न ५ कर्मोंमें ६ आसक्ति करता है. ७ अर्थात् इसलोकमें जो देखे या सुने हैं रूपशब्दादि और परलोकके जो अर्थवाद सुने हैं उनमेंसे किसीमें तृष्णा नहीं करता क्यों कि अंतःपरमानंदस्वतंत्रके सामने बहिःसुख, परिछिन्न परतंत्रविषयजन्य ऐसे सुखकू तुच्छ समझता है. और बहिर्मुखके जो साधन कर्म उनकू करभी सक्ता है, परंतु अपना उनसे कुछ प्रयोजन नहीं, यह समझकर उनकर्मोंमें भी प्रीति नहीं करता ७ सि० और * सर्वसंकल्पोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका ८ अर्थात् इसलोकके या परलोकके निमित्त, जो जो संकल्प उत्पन्न होते हैं, उन सबकू त्याग देता है. ८ सि० तात्पर्य सिवायसच्चिदानंदआत्माके और किसीपदार्थके प्राप्तीका संकल्पमात्रभी नहीं करता, जिसकालमें * तिस्कालमें ९ सि० वो पुरुष * योगारूढ १० कहा जाता है. ११ तात्पर्य सो महात्मा सोई साधु, सोई भगवद्भक्त, जो विषयादिमें प्रीति नहीं करता. ॥ ४ ॥

मू०उद्धरेदात्मनात्मानंनात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैवह्यात्मनोबंधुरात्मैवरिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

आत्मना १ आत्मानम् २ उद्धरेत् ३ आत्मानम् ४ न ५ अवसादयेत् ६ आत्मनः ७ आत्मा ८ हि ९ एव १० बंधुः ११ अत्मनः १२

आत्मा १३ एव १४ रिपुः १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० अब यह कहते हैं, कि ज्ञानपर आरूढ होना चाहिये. चढना योग्य है, नीचेकर्मोंमें ही गिरना न चाहिये. विवेकयुक्तमन करके १ जीवकू २ सि० ज्ञानयोगपर *चढावे ३ सि० यही जीवका संसारसे उद्धार करना है. * अर्थात् ज्ञाननिष्ठ होना योग्य है. ३ जीवकू ४ नीचे न गिरावे ५।६ अर्थात् सदा कर्मोंमें ही न लगारहे ६ जीवका ७ विवेकयुक्तमन ८ ही ९ तो १० बंधु ११ सि० है *अर्थात् संसारसे मुक्त करनेवाला है. ११ सि० और *जीवका १२ रागद्वेषादियुक्तमन १३ ही १४ वैरी १५ सि०. है *अर्थात् नरकादिकू प्राप्तकरनेवालाहै. १५ टि० विवेकयुक्तरागद्वेषादिरहितमनकू शुद्ध मन कहते हैं. ८ विवेकरहितरागद्वेषादिसहितमनकू मलिनमन कहते हैं. १३ दोएवकारशब्दोंसे यह तात्पर्य है, कि जो मैंकहता हूं, इसकू धारणकरना योग्य है.कहानीवत् सुननेसे प्रयोजन सिद्ध न होगा.१०।१४ तात्पर्य बंधमोक्षमें कारण मनुष्योंका मनही है.विषयोंमें आसक्त हुवा बंधका हेतु और स्वरूपनिष्ठ हुवा मोक्षका हेतु है.उक्तंच ॥ मनएवमनुष्याणां कारणंबंधमोक्षयोः ॥ मुक्तिमिच्छसिचेत्तातविषयान्विषवत्त्यज ॥ क्षमार्जवदयातोषसत्यंपीयूषवद्भज॥अष्टावक्रजीनें कहा है, कि हेतात तू जो मुक्तीकी इच्छा करता है, तो विषयोंकू विषवत् त्याग. और क्षमा, आर्जव, दया, संतोष, और सत्य इनका अनुष्ठान कर, यही तात्पर्य इसमंत्रका है. ॥ ५ ॥

मू०बन्धुरात्मात्मनस्तस्ययेनात्मैवात्मनाजितः ॥
अनात्मनस्तुशत्रुत्वेवर्तेतात्मैवशत्रुवत् ॥ ६ ॥

तस्य १ एव २ आत्मनः ३ आत्मा ४ बंधुः ५ येन ६ आत्मना ७ आत्मा ८ जितः ९ अनात्मनः १० तु ११ आत्मा १२ एव १३ शत्रुवत् १४ शत्रुत्वे १५ वर्तेत १६ ॥६॥ अ० उ० पीछले अर्थकू इस-

मंत्रमें स्पष्ट करते हैं. तिसही जीवका १।२।३ मन ४ बंधु ५ सि०
है, कि ❋ जिस जीवने ६।७ शरीर, इन्द्रिय, प्राण, और अन्तःकरण ८
वशमें किया है. ९ और जिसने अंतःकरणादि नहीं वश किये, तिस-
का १०।११ मन १२ ही १३ वैरीवत् १४ वैरभावमें १५ वर्तता है.
१६ तात्पर्य विषयासक्तमन मोक्षमें प्रतिबंध है, इसहेतुसे उसकू वैरी
कहा. और रागद्वेषादिरहित मन मोक्षमें सहाय कहा है, इसहेतुसे उ-
सकू बंधु कहा. ॥ ६ ॥

मू० जितात्मनःप्रशांतस्यपरमात्मासमाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुतथामानापमानयोः ॥ ७ ॥

जितात्मनः १ प्रशान्तस्य २ परमात्मा ३ समाहितः ४ शीतोष्ण
सुखदुःखेषु ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ ॥ ७ ॥ अ० उ० अन्तः-
करणादिके वश करनेका फल कहते हैं. जीते हैं अन्तःकरणादि जि-
सने १ सि० इसीहेतुसे जो ❋ भलेप्रकार शांत है. २ अर्थात् विक्षेप
रहित है जो. तिसकू २ परमात्मा ३ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म ३
साक्षात् अपरोक्ष आत्मभावकरके वर्तता है. ४ अर्थात् आत्मा सच्चि-
दानंद अखंड नित्यमुक्त साक्षात् अपरोक्ष जीते हुवे ही अनुभव करता
है. ४ सि० और कोई उसकू प्रतिबन्ध (बाधा याने विक्षेप) नहीं क-
रसक्ते यह आधे श्लोकमें अब कहते हैं ❋ शीत, गरमी, सुख और दुः-
ख इनमें ५ सि० और ❋ तैसेही ६ मान और अपमानमें ७ सि०
आत्मा अखंड अपरोक्ष रहता है ❋ तात्पर्य पांचवीं छठी जो ज्ञानकी
भूमिका हैं; उनमें वर्तता है. अर्थात् सदा जीवन्मुक्तीका आनंद भो-
क्ता है. इसीहेतुसे उस आनंदके सामने मानापमानादिभी नहीं प्रतीत
होते, और कभी रजोगुणके आविर्भाव होनेसे, बहिर्मुखवृत्ति होनेमें
अपमानादिभी प्रतीत हों, तोभी उनकू गुणोंका कार्य समझकर औ-
अपनेकू असंग जानकर, विक्षेपकू नहीं प्राप्त होता है. ॥ ७ ॥

मू०ज्ञानविज्ञानतृप्तात्माकूटस्थोविजितेंद्रियः ॥
युक्तइत्युच्यतेयोगीसमलोष्टाश्मकांचनः ॥८॥

युक्तः १ योगी २ इति ३ उच्यते ४ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा ५ कूटस्थः ६ विजितेन्द्रियः ७ समलोष्टाश्मकांचनः ८ ॥ ८ ॥ अ० उ० जिसयोगारूढकू अखंडात्मा अपरोक्ष है, उसका लक्षण यह है. योगारूढ १ योगी २ ऐसा ३ कहा है. ४ सि० उसका लक्षण यह है ❋ ज्ञानविज्ञानकरके तृप्त है अन्तःकरण जिसका ५ निर्विकार ६ भलेप्रकार जीती हैं इन्द्रिय जिसने ७ समान है लोहा, पाषाण और सोना जिसको ८ सि० उसकू योगारूढ योगी कहते हैं ❋ टी० महावाक्य श्रवण करके यह जानना, कि मैं ब्रह्महूं. क्यों कि वेदवाक्यमें विश्वास (श्रद्धा) करना अवश्य योग्य है, वेदोंके कहनेसे यह जानना, कि मैं सच्चिदानंदपूर्ण ब्रह्म हूं, इसकू ज्ञान कहते हैं. अर्थात् यह तो परोक्षज्ञान है. और युक्तिसमन्वयादिकरके साक्षात् करामलकवत् अनुभव करना. इसकू विज्ञान कहते हैं. अर्थात् यह अपरोक्षज्ञान है. इनदोनों ज्ञानविज्ञानकरके संतुष्ट है अन्तःकरण जिसका, उसकू ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कहते हैं. ५ रागद्वेषादिविकारों करके जो रहित है उसकू कूटस्थ कहते हैं. ६ ॥ ८ ॥

मू०सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपिचपापेषुसमबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सुहृत् १ मित्र २ अरि ३ उदासीन ४ मध्यस्थ ५ द्वेष्य ६ बंधुषु ७ ॥ १ सि० यहांतक एक पद है❋ साधुषु २ च ३ पापेषु ४ अपि ५ समबुद्धिः ६ विशिष्यते ७ ॥ ९ ॥ अ० उ० सातवें अंकतक एकपद है. पापीसाधुआदिजनोंमें समानबुद्धि है जिसकी, सो पूर्वोक्तसे भी विशेष है यह कहते हैं. वेप्रयोजन जो दूसरेका भला चाहे, और करे. और जो ममता और सनेह करके वर्जित हो, उसकू

सुहृद् कहते हैं. १ ममतास्नेहके वश होकर जो भला करे उसकू मित्र कहते हैं. २ जो अपना सदा अनिष्टचिन्तवन करता है. और प्रत्यक्ष भी करता है, उसकू अपना शत्रु समझना, ३ किसीका न बुरा चाहना नभला चाहना, इसको उदासीन कहते हैं. दोके झगडेमें यथार्थ ज्यूंका त्यूं कहनेवाला मध्यस्थ है. ५ आत्माका अप्रिय अर्थात् आपसे जो प्यार न करे याने अपनेको लाभ हुवा देखकर जिस दूसरेको वह सहन न हो उसकू द्वेष्य कहते हैं. ६ संबधि ७ इनसबमें ७। १ और साधुजनोंमें २।३ सि० और ❀ पापीपुरुषोंमेंभी ४।५समबुद्धिवाला ६ विशेष है. ७ तात्पर्य शत्रुमित्रादिमें जो न राग करता है, न द्वेष करता है, सो पूर्वोक्तयोगीसे भी विशेष है. ॥ ९ ॥

मू० योगीयुंजीतसततमात्मानंरहसिस्थितः ॥
एकाकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः॥ १० ॥

योगी १ सततम् २ आत्मानम् ३ युंजीत ४ रहसि ५ स्थितः ६ एकाकी ७ यतचित्तात्मा ८ निराशीः ९ अपरिग्रहः १० ॥ १० ॥
अ० उ० योगारूढका लक्षण कहा, अब योगकू अंगोंके सहित, कहते हैं. योगारूढ १ निरन्तर २ अन्तःकरणकू ३ समाधान करे, ४ एकान्तमें ५ बैठकर ६ अकेला ७ जीता है अन्तःकरण शरीर जिसने ८ आशारहित ९ परिग्रहरहित १० सि० ऐसा होवे ❀ टी० योगारूढ बहिरंगसाधनोंमें, अर्थात् तीर्थयात्रादिमें मुख्यता करके प्रवृत्त न हो. निरंतर दिनरात्रि अन्तःकरणका निरोध करे, क्षणमात्र बहिर्मुखवृत्ति न होने पावे, २ जिसजगे सिंह, सर्प, और चोर इत्यादिका अतिभय न हो, स्त्री, बालक, या प्राकृतजन इन्होंका समुदाय न हो, शुद्धचित्तके प्रसन्नकरनेवाले स्थलमें अर्थात् उत्तराखंडभागीरथीनर्मदाजीके तीर इत्यादि स्थलोंमें चिरकाल निवास करे. ५ एकांतमेंभी अकेलाही रहे, दोचार इकट्ठे

होकर नहीं रहना ७ एकान्तजगेभी हो और अकेलाभी हो तो वहां रहकर शिष्यसेवकोंकू उपदेश करना इत्यादि क्रिया, अथवा मंदिरकुटीके पास फूल फुलवारी लगाना इत्यादि क्रिया न करे, कि जिससे वृत्ति बहिर्मुख हो, ८ एकांतमें अकेला जब निवास करे, तब किसीसे यह आशा न रक्खे कि हमकू कोई इसीजगे बैठे हुवे भिक्षा देजाया करे. और बन्धान्नभी न बाँधे,बन्धान्नकी आशाभी नरक्खे तात्पर्य भिक्षान्नभोजन करना योग्यहै. ९ एकान्तमें अकेला जो मनके समाधान करनेकू बैठे, तो भोजनवस्त्रादि सिवाय शरीरयात्राके संचय न करे, ऊपर कहेअनुसार जब चलेगा, तब अभ्यास होसक्ता है. १० निरन्तर, एकान्त, अकेला, जितेन्द्रिय, आशारहित, परिग्रहरहित, ये सब अंग अन्तःकरणसमाधान करनेके हैं. विना गृहस्थाश्रमके छोडे, विनाविरक्त हुवे, इनसब अंगोंका अनुष्ठान भले प्रकार नहीं होसक्ता जो सब न होसके,तो जितना होसके,उतना अवश्य करना योग्यहै. विना अभ्यासके बहिरंगसाधन निष्फल हैं, ईश्वराराधनादिकर्मोंका फल यही है, कि अंतःकरण शान्त होना १०॥

मू०शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यस्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितंनातिनीचंचैलाजिनकुशोत्तरम्॥११॥

शुचौ १ देशे २ आत्मनः ३ आसनम् ४ स्थिरम् ५ प्रतिष्ठाप्य ६ न ७ अति ८ उच्छ्रितम् ९ न १० अति ११ नीचम् १२ चैलाजिनकुशोत्तरम् १३॥११॥अ०उ०आसनकी विधि दोश्लोकोंमें कहते हैं.आसन, योगका बहिरंग साधन है. अंतरंग अभ्यासका सहायक है. पवित्रभूमिमें १।२ अपना३ आसन ४ अचल ५ बिछाकर ६ सि० अभ्यास करे. कैसाहै वो आसन कि*न ७ बहुत ८ ऊंचा ९ न १० बहुत ११ नीचा १२ सि०हो. फिर कैसा इसअपेक्षामें कहते हैं कि*कुश, मृगचर्म,और वस्त्र, ये ऊपर हों भूमिके १३ अर्थात्

पृथिवीके ऊपर प्रथम कुशाका आसन, उसकेऊपर मृगचर्मादि, उसके ऊपर सूतवस्त्र १२ सि० बिछावे ❀ टी० कोई भूमि तो स्वभावसेही पवित्र होती है. जैसी श्रीगंगाजीकी रेती. ॥वसुधा सर्वत्र शुद्धा न लेपा यत्र विस्मृता ॥ पृथिवी सबजगे पवित्र है.परन्तु जहां लीपगई हो तो वहाँफिर उसकूं लीपलेना योग्यहै. अथवा उत्तराखंडादिकू पवित्रदेश समझना योग्य है. १।२ दूसरेके आसनपर बैठना, शास्त्रमें निषिद्धहै. इसवास्ते अपना आसन कहा ३।४ स्थिर शब्दसे तात्पर्य यह है,कि यह काम दोचारघडीका,वा दोचारमहीनेका नहीं. वरसोका यह काम है. अर्थात् जबतक जीवे तबतक यही अभ्यासकरता रहे. यह अभ्यास अज्ञानीकू ज्ञानका प्राप्त करनेवाला और ज्ञानीकू तो जीवन्मुक्ति देनेवाला है. सिवाय इसके और क्या काम श्रेष्ठतरहै, कि इसकू छोडकर दूसरा करनाचाहिये ५रुईभरे बिछौनेपर वा वस्त्र बिछाकर उसपर न बैठना. चौकी छतकी मुंडेरी उसपर भी बैठकर योगाभ्यास नहींकरना ७।८।९ विनाआसनपृथिवी पर बैठकर,वा गढेमें, बैठकर, यह योगाभ्यास नहीं होसक्ता. इत्यभिप्रायः १०।११।१२॥ ११ ॥

मू०तत्रैकाग्रंमनःकृत्वायतचित्तेंद्रियक्रियः॥
उपविश्यासनेयुंज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥१२॥

यतचित्तेन्द्रियक्रियः १ तत्र २ आसने ३ उपविश्य ४ मनः ५ एकाग्रम् ६ कृत्वा ७ आत्मविशुद्धये ८ योगम् ९युंज्यात् १० ॥ १२ अ० जीती है चित्तकी और इन्द्रियोंकी क्रिया जिसने १ सि० सो योगी ❀ तिसआसनपर २।३ बैठकर ४ मनकू ५ एकाग्र करके ६।७ अंतःकरणकी शुद्धीकेलिये८सि० इस ❀ योगका अभ्यास करे ९।१० टी० आगले पीछले वातोंकू याद करना,यह चित्तकी क्रिया है, देखना, श्रवण करना, इत्यादि इन्द्रियोंकी क्रिया हैं. १ मनकू सबविषयों-

से हटाकर आत्माके सन्मुख करके, पीछले मंत्रमें जिसप्रकारका आसन कहा है,उसपर बैठकर अभ्यास करे.२।३।४।५।६।७।१०॥१२॥

मू०समंकायशिरोग्रीवंधारयन्नचलंस्थिरः॥
संप्रेक्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन्॥ १३ ॥

कायशिरोग्रीवम् १समम्२अचलम् ३धारयन् ४ स्थिरः ५ स्वम् ६ नासिकाग्रम् ७ संप्रेक्ष्य ८ दिशः ९ च १० अनवलोकयन् ११ ॥ १३ ॥ अ० उ० चित्तके एकाग्र करनेमें देहकी धारणाभी बहिरंगसाधनमें उपयोगी है,उसकूभी दोमंत्रोंमें कहते हैं. देहका मध्यभाग, शिर, और ग्रीवा इनकू १ सम २ अचल ३ धारण करता हुवा ४ दृढ प्रयत्नवान् होकर ५ अपने ६ नासिकाके अग्रकू ७ देखकर ८ सि० पूर्वादि ❋ दिशाकू ९ भी १० नहीं देखता हुवा ११ सि० आत्मपरायण होकर बैठे ❋ टी० मूलाधारसे लेकर मूर्द्धातक सीधा निश्चल बैठे १।२।३।४। दुःख समझकर प्रयत्नमें कचाई न होने पावे. सावधान होकर धीरजके सहित दृढ होकर बैठे. जो शरीरपात हो जाय तो होजावे परन्तु बिनामनके शान्त हुवे वहांसे हटना नहीं ५ नासाग्रदृष्टीसे, तात्पर्य यह नहीं, कि नासिकाके अग्रभागकू ही देखते रहना. किंतु यह तात्पर्य है, कि ऐसे बेठे जैसे नासाग्रदृष्टि होकर बैठते हैं दृष्टि और वृत्ति आत्मामें लगाना योग्य है. नेत्रोंकू न बहुत खोलना न मीचना ।६।७।८। इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

मू०प्रशांतात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः॥
मनःसंयम्यमच्चित्तोयुक्तआसीतमत्परः॥ १४ ॥

प्रशांतात्मा १ विगतभीः २ ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ३ मनः ४ संयम्य ५ मच्चित्तः ६ युक्तः ७ मत्परः ८ आसीत ९ ॥ १४ ॥अ० भले प्रकार शान्त हुवा है अन्तःकरण जिसका १ दूर होगया है भय जिसका २ ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित ३ मनकू ४ रोककर ५ मुझ सच्चि-

दानन्दस्वरूपमें चित्त है जिसका ६ सि० सो ❋समाहित हुवा ७ मैं सच्चिदानन्दस्वरूपही हुं, परमपुरुषार्थ जिसका. ८सि० ऐसा समझकर ❋बैठे ९ टी० अष्टांगमैथुनकरके वर्जित; ज्ञानका उपदेश करनेवाले गुरुकी टहलमें तत्पर, भिक्षान्नकाही सदा भोजन करनेवाला ३ अन्तःकरणकी वृत्तियोंकू उपसंहार करके ४।५ समाधान, अप्रमत्त, और अनालस्य हुवा ७ परब्रह्मके प्राप्तीकू ही परमपुरुषार्थ समझ कर. ८ पूर्वोक्त आसनपर बैठकर अभ्यास करे. ॥ १४ ॥

मू० युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीनियतमानसः॥
शान्तिंनिर्वाणपरमांमत्संस्थामधिगच्छति॥ १५॥

योगी १ सदा २ एवम् ३ आत्मानम् ४ युंजन् ५ नियतमानसः ६ शान्तिम् ७ अधिगच्छंति ८ निर्वाणपरमाम् ९॥ १० ॥ १५ ॥ अ० उ० इसप्रकार अभ्यास करनेसे जो होता है सोसुन, अर्जुन. योगीविरक्त १ सदा २ इसप्रकार ३ शरीरेन्द्रियप्राणांतःकरणकू ४समाधान करता हुवा ५ निरुद्ध हुवा है मन जिसका ६सि०सो ❋शान्तीकू ७ प्राप्त होता है ८ सि०कैसी है वो शान्ति ❋ मोक्षमें निष्ठा है जिसकी ९ अर्थात् मोक्षमें तात्पर्य है जिसका ९ सि० और वो शान्ति ❋सच्चिदानन्दरूप है १० सि० इसकू प्राप्त होता है ❋तात्पर्य परमगतीकू (मोक्षकू) प्राप्त होता है. ॥ १५ ॥

मू०नात्यश्नतस्तुयोगोस्तिनचैकान्तमनश्नतः॥
नचातिस्वप्नशीलस्यजाग्रतोनैवचार्जुन॥१६॥

अर्जुन १ अति २ अश्नतः ३ तु ४ योगः ५ न ६ अस्ति ७ एकान्तम् ८ अनश्नतः ९ च १० न ११ अति १२ स्वप्नशीलस्य १३ च १४ न १५ जाग्रतः १६ च १७ न १८ एव १९ ॥ १६ ॥ अ० उ० ध्याननिष्ठयोगीकू अब आहारादीका नियम कहते हैं, दोमंत्रोंमें. यह भी बहिरंग साधन, उपयोगी है. हे अर्जुन १ बहुतरभोजन

करनेवालेकू २ भी ४ योग ५ नहीं ६ होता, ७ अर्थात् योगसिद्ध नहीं होता अत्यन्त. ८ नहीं खानेवालेकू ९ भी १० नहीं, ११ बहुत १२ सोनेवालेकू १३ भी १४ नहीं, १५ जागने वालेकू १६ भी १७ नहीं १८ सि० योग सिद्ध होता ❋ निश्चयसे १९ सि० यही बातहै ❋ १६

मू० युक्ताहारविहारस्ययुक्तचेष्टस्यकर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्ययोगोभवतिदुःखहा ॥१७॥

कर्मसु १ युक्तचेष्टस्य २ युक्ताहारविहारस्य ३ युक्तस्वप्नावबोधस्य ४ दुःखहा ५ योगः ६ भवति ७ ॥ १७ ॥ अ० उ० ऐसे पुरुषकू योग सिद्ध होता है. कर्मोंमें १ प्रमित याने मपीहुई है, क्रिया जिसकी २ युक्तका खाना और चलना है जिसका ३ युक्तका सोना और जागना है जिसका ४ सि० उसकू ❋ दुःखोंका नाशकरनेवाला ५ योग ६ सि० सिद्ध ❋ होता है. ७ टी० चारभागमेंसे दो भाग तो अन्नसे पूर्णकरे. एकभाग जलसे पूर्ण करे, और एक भाग पवन आनेजानेके लिये खाली रक्खे. तात्पर्य यह कि एकवख्त कुछ क्षुधा रखकर भोजन करना. ॥ द्वौभागौपूरयेदन्नैस्तोयेनैकंप्रपूरयेत् ॥ मारुतस्यप्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ॥ सिवाय शौचस्नानभिक्षाके वृथा डोलना या फिरना वे जोग है. क्रियाका प्रमाणबांधना योग्य है. अर्थात् इतना दूर जंगल जाना, इतने देरमें स्नान करना, अमुक समय उसमें भी इतने देरमें भोजन करना, ये सब विधि मानवादिधर्मशास्त्रमेंसे श्रवण करना योग्य है. ३ रात्रीके बीचमें डेढपहर सोना, सिवाय उसके सदा जागना योग्य है. ॥ १७ ॥

मू० यदाविनियतंचित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निस्पृहःसर्वकामेभ्योयुक्तइत्युच्यतेतदा ॥१८॥

यदा १ विनियतम् २ चित्तम् ३ आत्मनि ४ एव ५ अवतिष्ठते ६ सर्वकामेभ्यः ७ निस्पृहः ८ तदा ९ युक्तः १० उच्यते ११ इति १२

॥ १८ ॥ अ० उ० किसकालमें योग सिद्ध होता है, इसअपेक्षामें कहते हैं. जिसकालमें १ भलेप्रकार निरुद्ध हुवा याने जीता हुवा २ चित्त ३ आत्मामें ४ ही ५ ठहरता है, ६ सबकामोंसे ७ दूर होगई है तृष्णा जिसकी ८ सि० सो ❋ तिसकालमें ९ सिद्धयोगी १० कहा है ११ यह १२ सि० जानना योग्य है ❋ अर्थात् जिसकालमें इस लोककी या परलोककी सबकामना दूर होजावें, और चित्त भलेप्रकार एकाग्र होकर आत्मामें स्थित होवे, जिसका सो महात्मा तिसकालमें सिद्धयोगी कहा जाता है. तात्पर्य जब ऐसा होजाय, कि जैसा इसमंत्रमें कहाहै. तब समझना कि मुझकू अब योग सिद्ध हुवा ॥ १८ ॥

मू० यथादीपोनिवातस्थोनेंगतेसोपमास्मृता ॥
योगिनोयतचित्तस्ययुंजतोयोगमात्मनः ॥ १९ ॥

यथा १ दीपः २ निवातस्थः ३ न ४ इंगते ५ सा ६ उपमा ७ स्मृता ८ योगिनः ९ यतचित्तस्य १० आत्मनः ११ योगम् १२ युंजतः १३ ॥ १९ ॥ अ० उ० एकाग्रचित्तकी उपमा यह है. जैसे १ दीपक २ पवनरहित ऐसेजगे जलता हुवा ३ नहीं ४ हलता. ५ सो ६ उपमा ७ कहीहै, ८ योगीके ९ जीते हुवे चित्तको १० तात्पर्य जिसयोगीका भले प्रकार अन्तःकरण निरोध है, उस अन्तःकरणको यह उपमा है कि जैसे पवनरहितजगे जलता हुवा दिवा नहीं हलता. ऐसेही उसयोगीका चित्त स्थिर रहता है. सि० फिर कैसा है, वो योगी, कि जिसका चित्त स्थिर रहताहै. सो कहते हैं ❋ आत्माके ११ सि० प्राप्तीके लिये ❋ आत्मध्यानयोगका १२ अनुष्ठान करनेवालेका १३ सि० चित्त स्थिर रहता है ❋ ॥ १९ ॥

मू० यत्रोपरमतेचित्तंनिरुद्धंयोगसेवया ॥
यत्रचैवात्मनात्मानंपश्यन्नात्मनितुष्यति ॥ २० ॥

यत्र १ योगसेवया २ निरुद्धम् ३ चित्तम् ४ उपरमते ५ यत्र ६

च ७ आत्मना ८ आत्मानम् ९ एव १० पश्यन् ११ आत्मनि १२ तुष्यति १३ ॥ २० ॥ अ० जिसकालमें १ समाधियोगका अनुष्ठान करके २ निरुद्ध हुवा ३ चित्त ४ सि० संसारसे ❋ उपराम होता है. ५ और जिसकालमें ६।७ सि० समाधीकरके शुद्ध किया हुवा जो अंतःकरण, तिस ❋ अन्तःकरणकरके ८ परमचैतन्यज्योतिःस्वरूपआत्माकू ९ ही १० देखता हुवा ११ अर्थात् आत्माकू प्राप्तहुवा ११ सच्चिदानन्दस्वरूप एसे आत्मामें १२ सन्तुष्ट होता है. १३ तात्पर्य तिसकालमें योगकी सिद्धि होती है. ॥ २० ॥

मू० सुखमात्यन्तिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
वेत्तियत्रनचैवायंस्थितश्चलतितत्त्वतः ॥ २१ ॥

यत् १ आत्यंतिकम् २ सुखम् ३ अतीन्द्रियम् ४ बुद्धिग्राह्यम् ५ यत्र ६ च ७ अयम् ८ स्थितः ९ तत् १० वेत्ति ११ तत्त्वतः १२ एव १३ न १४ चलति १५ ॥ २१ ॥ अ० जो १ अत्यंत २ सुख ३ इंद्रियोंका विषय नहीं ४ अपने अनुभव करके ग्रहण होता है ५ और जिसकालमें ६।७ यह ८ सि० विद्वान् आत्मस्वरूपमें ❋ स्थित हुवा ९ तिसकू १० अर्थात् तिससुखका १० अनुभव करता है, ११ सि० आत्म ❋ तत्त्वसे १२ भी १३ नहीं १४ चलता. १५ सि० तिसकालमें योगकी सिद्धि होती है ❋ ॥ २१ ॥

मू० यंलब्ध्वाचापरंलाभंमन्यतेनाधिकंततः ॥
यस्मिन्स्थितोनदुःखेनगुरुणापिविचाल्यते ॥ २२ ॥

यम् १ लब्ध्वा २ अपरम् ३ अधिकम् ४ लाभम् ५ न ६ मन्यते ७ ततः ८ यस्मिन् ९ च १० स्थितः ११ गुरुणा १२ दुःखेन १३ अपि १४ न १५ विचाल्यते १६ ॥ २२ ॥ अ० सि० जिसकू अर्थात् ❋ आत्माकू १ प्राप्त होकर २ दूसरा ३ अधिक ४ लाभ ५ नहीं ६ मानता है. ७ तिससे ८ अर्थात् आत्माके लाभसे ८ और जिसमें

९।१० अर्थात् आत्मामें ९।१० स्थित हुवा ११ बडे १२ दुःखक-
रके १३ भी १४ नहीं १५ विचलता है. १६ ॥ २२॥

मू० तंविद्याद्दुःखसंयोगवियोगंयोगसंज्ञितं ॥
सनिश्चयेनयोक्तव्योयोगोनिर्विण्णचेतसा॥ २३ ॥

तम् १ योगसंज्ञितम् २ विद्यात् ३ दुःखसंयोगवियोगम् ४ सः ५
योगः ६ अनिर्विण्णचेतसा ७ निश्चयेन ८ योक्तव्यः ९ ॥ २३ ॥ अ०
सि० पीछलेतीनमंत्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही ❋ तिस-
कू १ योगसंज्ञित २ जानतूं ३ अर्थात् योग है संज्ञा जिसकी याने
जिसअवस्थाविशेषका योग नाम है, उसीकू तूं योग जान १।२।३
सि० पीछले तीनमंत्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही उसीका
नाम योग है. कैसाहै वो योग ❋ दुःखके संयोगका वियोग है, जिसमें ४
अर्थात् दुःख और विषयसम्बन्धी सुख जहां कोई नहीं. केवल निरति-
शय आनंद है विषयसंबंधसुखभी विद्वानके दृष्टीमें दुःखोंका मूल है.
क्योंकि अतिशयवाला सुख दुःखरूप है. उसजगे योगशब्दका विपरी-
तलक्षण समझना. क्योंकि इसजगे वियोगका नाम जो योगसंज्ञित है,
यह विपरीत अलंकार कहलाता है. जैसे सुंदर कू बे सुंदर कहना ४ सो ५
योग ६ अनिर्विण्णचित्तकरके ७ सि० शास्त्र और आचार्योंसे ❋ नि-
श्चय करके ८ अनुष्ठान करना योग्य है. ९ तात्पर्य आत्मामें तत्पर
होना योग्य है. टि० दुःखबुद्धीकरके प्रयत्नकी जो शिथिलता उसकू
छोडकर अर्थात् चित्तमें यह नहीं चितवन करना, कि इसमें तो दुः-
ख प्रतीत होता है. पीछेका आनंदफल किसने देखाहै. ऐसा समझ-
कर चित्तकू कच्चा न करे. धैर्यसे बारंबार उत्साहित करे. ॥ २३ ॥

मू० संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वासर्वानशेषतः॥
मनसैवेंद्रियग्रामंविनियम्यसमन्ततः ॥ २४ ॥
शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्याधृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थंमनःकृत्वानकिंचिदपिचिन्तयेत्॥२५॥

संकल्पप्रभवान् १ कामान् २ सर्वान् ३ अशेषतः ४ त्यक्त्वा ५ मनसा ६ एव ७ समंततः ८ इन्द्रियग्रामम् ९ नियम्य १० ॥ २४ ॥ शनैः १ शनैः २ उपरमेत् ३ धृतिगृहीतया ४ बुद्ध्या ५ मनः ६ आत्मसंस्थम् ७ कृत्वा ८ किंचित् ९ अपि १० न ११ चिन्तयेत् १२ ॥ २५ ॥ अ० संकल्पसे उत्पन्न होती हैं १ सि० योगकी वैरी जो ❋ कामना २ सि० तिन ❋ सबकू ३ समूल ४ त्याग कर ५ सि० विवेकयुक्त ❋ मनकरके ६ निश्चयसे ७ सबतरफसे ८ इन्द्रियोंके समूहकू ९ रोककरे १० ॥ २४ ॥ सहज १ सहज २ अर्थात् अभ्यासक्रम करके १।२ सि० संसारसे ❋ उपराम हो ३ अर्थात् देखना सुनना बोलना खाना सोना इत्यादिक्रियाओंमे मनकू शनैःहटाकर आत्मामें दिनादिनप्रति विशेष लगाना योग्य है. ३ धीरजकेसहित ४ बुद्धीकरके ५ अर्थात् धीरज करके वशकीई हुई जो बुद्धि, तिसकरके ५ मनकू ६ आत्मामें भलेप्रकार स्थित ७करके ८अर्थात् यह सब आत्माहीहै आत्मासे पृथक् कुछभी नहीं. इसप्रकार मनकू आत्माकार करके८कुछ ९ भी १० न ११ चितवनकरे १२ तात्पर्य यही योगकी परमावधि हैं. टी० चौवीसवेंमंत्रकी. चित्तसे किंचिन्मात्रभी चितवन किया, और उससे मनमें कामना उत्पन्न हुई तो वह विषयोंका चितवन करना ही अनर्थक हेतु है. १ सर्वान् अशेषतः इनदोनोंपदोंके अर्थमें कुछ भेद नहीं प्रतीत होता, दोपदकहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि इसलोकके, वा परलोकके कामनाका गंधमात्रभी न रहने पावे. कामनासे अंतःकरणकू निर्लेपकर देना योग्य है. ३।४ शब्दादिविषयोंसे ८ सबइंद्रियोंका ९ निरोधकरके १० सि० पूर्वोक्तयोगका अनुष्ठान करना योग्य है ❋ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मू० यतोयतोनिश्चरतिमनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येववशंनयेत् ॥ २६ ॥

अस्थिरम् १ चंचलम् २ मनः ३ यतः ४ यतः ५ निश्चरति ६

ततः७ततः ८ नियम्य९एतत्१०आत्मनि११एव१२वशम्१३नयेत् १४ अ० उ० विचारसेभी जो कदाचित् रजोगुणकें वससे मन न ठहरे आत्मामें, तो फिर प्रत्याहार करके ठहराना योग्य है. सोई कहते हैं. अस्थिर १ चंचल २ मन ३ जिस ४ जिस ५ सि० विषयमें ❀जावे, ६ तहांतहांसे ७।८ रोककर, ९ इसकू अर्थात् मनकू १० आत्मामें ११ हीं १२ वश १३ करे १४ अर्थात् आत्मामेंही स्थिर करे. १४ टी० मनका स्वभावही यह है, कि एकजगे नहीं ठहरता, सदाका चंचल है. १।२ इसप्रकार अभ्यासकरनेसे यह मन अस्थिर स्थिर होजाता है आत्मामें. इसवास्ते मनपर सदा दृष्टि रखना योग्य है. ॥ २६ ॥

मू०प्रशांतमनसंह्येनंयोगिनंसुखमुत्तमम् ॥
उपैतिशान्तरजसंब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

एनम् १ योगिनम्२हि ३ उत्तमम् ४ सुखम् ५उपैति ६ शान्तरजसम् ७ प्रशान्तमनसम् ८ ब्रह्मभूतम् ९ अकल्मषम् ॥१० ॥२७॥ अ०उ० इसप्रकार अभ्यास करनेसे रजोगुणका नाश होता है.रजोगुणका नाश होनेसे योगका जो फल आत्मसुख, वो प्राप्त होता है. यह कहते हैं.इसयोगीकू १।२ ही ३ उत्तम ४ सुख ५ प्राप्त होताहै. ६ सि० कैसा है यहयोगी ❀ शान्त होगया है रजोगुण जिसका ७ भलेप्रकार शान्त होगया है मन जिसका ८जीवन्मुक्त९ निष्पाप१० अर्थात् धर्मअधर्मकरके वर्जित १० तात्पर्य ऐसे योगीकू निरतिशय सुख प्राप्त होता है. ॥ २७ ॥

मू०युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीविगतकल्मषः॥
सुखेनब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतंसुखमश्नुते ॥ २८ ॥

एवम् १ योगी २ सदा ३ आत्मानम्४युंजन्५ अत्यन्तम् ६ सुखम् ७ अश्नुते ८ विगतकल्मषः सुखेन १० ब्रह्मसंस्पर्शम्११॥२८॥

अ० इसप्रकार १ योगी २ सदा ३ मनकू ४ बस करता हुवा ५ अत्यन्त ६ सुखकू ७ अर्थात् निरतिशयसुखकू ७ प्राप्त होता है. ८ सि० कैसाहै वो योगी ❋ दूर होगये हैं पाप जिसके ९ सि० सो वो फिर किसप्रकारके सुखकू प्राप्त होता है, अर्थात् कैसाहै वो सुख ❋ अनायासकरके १० ब्रह्मका स्पर्श है जिसमें ११ अर्थात् जीवब्रह्मसे एकताकू प्राप्त होता है. और जिसकू अखंडानन्दसाक्षात्कार ऐसाभी कहते हैं. तात्पर्य जीवन्मुक्त होजाताहै. याने जीवते हुवे ही उस नित्य अखंडानन्दका अनुभव करता है. ११ ॥ २८ ॥

मू०सर्वभूतस्थमात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि ॥
ईक्षतेयोगयुक्तात्मासर्वत्रसमदर्शनः ॥ २९ ॥

योगयुक्तात्मा १ सर्वत्र २ समदर्शनः ३ आत्मानम् ४ सर्वभूतस्थम् ५ सर्वभूतानि ६ च ७ आत्मनि ८ ईक्षते ९ ॥ २९ ॥ अ० उ० अब उसयोगका फल जीवब्रह्मके एकताकू दिखाते हैं. योगकरके युक्त है अन्तःकरण जिसका १ अर्थात् समाहित अन्तःकरणवाला १ सबजगे २ समदेखनेवाला ३ सि० अपने ❋ आत्माकू ४ सबभूतोंमें स्थित ५ और सबभूतोंकू ६।७ सि० अपने ❋ आत्मामें ८ देखता है. ९ टी० ब्रह्माजीसे लेकर चीटीपर्यंत आत्माकी एकता देखता है. ६ समविषमभूतोंमें ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यंत निर्विशेष ब्रह्म और आत्माके एकताका ज्ञान है जिसको सो सर्वत्र समदेखनेवाला है. ॥ २९ ॥

मू०योमांपश्यतिसर्वत्रसर्वंचमयिपश्यति ॥
तस्याहंनप्रणश्यामिसचमेनप्रणश्यति ॥ ३० ॥

यः १ माम् २ सर्वत्र ३ पश्यति ४ सर्वम् ५ च ६ मयि ७ पश्यति ८ तस्य ९ अहम् १० न ११ प्रणश्यामि १२ सः १३ च १४ मे १५ न १६ प्रणश्यति १७ ॥ ३० ॥ अ० उ० जीवब्रह्मकी एकता

देखनेका फल कहते हैं, यही मुख्य उपासना परमेश्वरकी है. जो १ मुझ सच्चिदानन्दपरमेश्वरकू २ सर्वत्र ३ देखता है. ४और सबकूं ५।६ मुझमें ७ देखता है. ८ अर्थात् मुझ आत्माकू सबभूतोंमें, और सबभूतोंकू मुझ सबभूतोंके आत्मामें, जो देखता है. तिसकू ९मैं १०नहीं ११ परोक्षहूं. १२ अर्थात् जो ऐसे समझता है. उसीकू मैं साक्षात् हूं, वोही मेरा दर्शन करता है. आत्मासे पृथक् मैं नहीं. १२ और सो १३।१४ अर्थात् विद्वान् १४ मुझकू १५ नहीं १६ परोक्ष है. १७ तात्पर्य वो मेरा आत्मा है. वो मुझकू सदा अपरोक्ष है. इसीहेतूसे ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्म कहलाता है. मुझमें और ज्ञानीमें किंचित् भी भेद नहीं ॥ ३० ॥

मू०सर्वभूतस्थितंयोमांभजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथावर्तमानोपिसयोगीमयिवर्तते ॥ ३१ ॥

एकत्वम् १ आस्थितः २ यः ३ माम् ४ सर्वभूतस्थितम् ५ भजति ६ सः ७ योगी ८ सर्वथा ९ वर्तमानः १० अपि ११ मयि १२ वर्तते १३ ॥ ३१ ॥ अ० उ० पूर्वमंत्रोक्तज्ञानी विधिनिषेधका दास नहीं. अर्थात् परतंत्र नहीं, स्वतंत्र है. यह कहते हैं. सि० ब्रह्मकेसाथ ❋ एकताकू १ प्राप्त हुवा २ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप अपने प्रत्यगात्माकू पूर्णब्रह्म जानता हुवा २ जो ३ मुझ सच्चिदानन्द सबभूतोंमें स्थित ४।५ सि० ऐसेकू ❋भजता है, ६ अर्थात् यह सब वासुदेव है ऐसे जो समझता है ६ सो ७ योगी याने ज्ञानी ८ सर्वथा ९ वर्तमान १० भी ११ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपमें १२ वर्तता है. १३ टी० विधिनिषेधकू उलंघ करभी जो विद्वानका व्यवहार किसीकू प्रतीत होता हो तोभी विद्वान् वेदोंके साक्षीसे ब्रह्ममेंही विहार करता है. विधिनिषेध अज्ञानियोंके वास्ते हैं. विद्वानोंका व्यवहार विदेहमुक्तीमें क्षती करनेवाला नहीं. यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तृतीयाध्यायसे भलेप्रकार स्पष्ट कीइंगई है, तत्रद्रष्टव्यम् ३१॥

मू०आत्मौपम्येनसर्वत्रसमंपश्यतियोऽर्जुन ॥
सुखंवायदिवादुःखंसयोगीपरमोमतः ॥ ३२ ॥

अर्जुन १ यः २ आत्मौपम्येन ३ सर्वत्र ४ समम् ५ पश्यति ६ सुखम् ७ वा ८ यदि ९ वा १० दुःखम् ११ सः १२ योगी १३ परमः १४ मतः १५ ॥ ३२ ॥ अ० उ० ज्ञानियोंमें ऐसा ज्ञानी श्रेष्ट है. हे अर्जुन १ जो २ अर्थात् विद्वान् २ आत्माके उपमाकरके ३ सर्वत्र ४ सम ५ देखता है. ६ सुखकू ७ भी ८ और ९ दुःखकूभी १० ११ सो १२ विद्वान् १३ श्रेष्ठ १४ माना है, १५ सि० महात्मापुरुषोंने. अर्थात् महात्मा ऐसे विद्वान्कू उत्तम मानते हैं ❀टी० जैसे इष्टके और अनिष्टके प्राप्तीमें मुझकू दुःखसुख होता है, ऐसेही सबकू होता है. इसवास्ते जहांतक होसके किसीकू शरीरसे मनसे या वाणीसे दुःख नहीं देना सुख देना, योग्य है. आप अपनेकू तो शूकरकूकरभी सुख चाहते हुवे प्रयत्न करते हैं. दूसरेकू सुख देना, परोपकारकरना, यह सज्जनोंका काम है. नहीं तो पशुपक्षी और मनुष्य इनमें क्या विशेषता हुई. अथवा ऐसेही सब जीव हैं. अपनेसे दूसरेकू नीच समझना नीचोंका काम है. आत्मदृष्टीकरके और देहदृष्टीकरकेभी सम देखना योग्य है. क्योंकि देह सबके अनित्य हैं, और आत्मा सबका नित्य है. यह विचार परमार्थका है व्यवहारमें परमार्थ नहीं मिलसक्ता. ॥ ३२ ॥

मू०अर्जुनउवाच॥योऽयंयोगस्त्वयाप्रोक्तसाम्येनमधुसूदन ॥ एतस्याहंनपश्यामिचंचलत्वात् स्थितिंस्थिराम् ॥ ३३ ॥

मधुसूदन १ अयम् २ यः ३ योगः ४ साम्येन ५ त्वया ६ प्रोक्तः ७ एतस्य ८स्थिराम्९ स्थितिम् १०अहम् ११न १२ पश्यामि१३ चंचलत्वात् १४ ॥ ३३ ॥ अ० उ० श्रीभगवानका यह उपदेश

सुनकर, अर्जुननें विचार कियाकि श्रीमहाराज जो कहते हैं, वो ते सब सत्य है. परन्तु मन, लयविक्षेपरहित होकर आत्माकार होकर दीर्घकाल स्थित रहे, यह मेरे कम समझसे मुझकू असम्भव प्रतीत होता है. इसीहेतूसे कहे हुवे श्रीमहाराजके लक्षणोंमें असंभवदोष मानताहुवा अर्जुन प्रश्नकरता है जिज्ञासाकरके दोश्लोकोंमें. हेकृष्ण-चन्द्र १ यह २ जो ३ योग ४ समता करके ५ आपने ६ कहा, ७ इसकी ८ दीर्घकाल ९ स्थिति १० मैं ११ नहीं १२ देखता हूं १३ अर्थात् क्षणदोक्षण या घडीदोघडी मन लयविक्षेपरहित होकर स-मताकू प्राप्त होजायगा यह तो संभव होसक्ता है. परन्तु सदा अथ-वा दिनरात्रीमें पांचचारपहर मन सम याने आत्माकार रहे यह मेरे कम समझसे मुझको असंभव मालुम होता है. १३ सि० क्योंकि मन * चंचल होनेसे. १४ अर्थात् मन तो चंचल है, वो कैसे ठहरसक्ता है. १४ ॥ ३३ ॥

मू०चंचलंहिमनःकृष्णप्रमाथिबलवद्दृढम् ॥
तस्याहंनिग्रहंमन्येवायोरिवसुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

कृष्ण १ मनः २ चंचलम् ३ हि ४ प्रमाथि ५ बलवत् ६ दृढं ७ तस्य ८ निग्रहम् ९ वायोः १० इव ११ सुदुष्करम् १२ अहम् १३ मन्ये १४ ॥३४॥ अ०उ० सिवाय चंचल होनेके जो मनमें औरभी दोष है, उनकू भी प्रकट करता है अर्जुन. हेभगवन् १ मन २ चंचल ३ सि० है, यह-तो * प्रसिद्धही है. ४ सि० सिवाय इसके जो इसमें और भी दोष है, उनकू सुनिये प्रथमतो चंचल, दूसरा * प्रमथनस्वभाववाला, ५ अर्था-त् शरीरइन्द्रियोंकू विक्षेप करनेवाला और परवस करनेवाला है सि० तीसरे यह कि * बलवाला ६ सि० ऐसाहै. तात्पर्य विवेकीजनोंके वस-मेंभी नहीं रहता * अर्थात् जो भले प्रकार सोचते समझतेभी हैं, कि इसकामकरनेमें यह यह दोष और यह यह दुःख हैं. तोभी मनके वस

होकर, उसीकाममें प्रवृत्त होते हैं. ६ सि० चौथे यह कि अनादि काल शब्दादि विषयोंके वासनामें ऐसा ❋ दृढ ७ सि० बँधा हुवा है, कि अनेककर्म उपासनादि करतेभी हैं, तो भी विषयोंसे पृथक् नहीं होता है. परमेश्वर आपके कृपासे जो हो जायगा वो तो सब सत्य है, परन्तु मैं तो मनका निरोध पवनवत् अति कठिन समझता हूं. यह अभिप्राय है, इसीकू अक्षरोंमें योजना करते हैं ❋ तिसका ८ अर्थात् मनका ८ निग्रह ९ वायुवत् १०। ११ अतिकठिन १२ मैं १३ मानता हूं, १४ सि० जैसे पवनका रोकना विषयोंसे कठिन प्रतीत होता है. ❋ ॥ ३४॥

मू० श्रीभगवानुवाच॥ असंशयंमहाबाहोमनोदुर्निग्रहंचलं॥ अभ्यासेनतुकौन्तेयवैराग्येणचगृह्यते॥ ३५॥

महाबाहो १ असंशयम् २ मनः ३ दुर्निग्रहम् ४ चलम् ५ कौन्तेय ६ अभ्यासेन ७ तु ८ वैराग्येण ९ च १० गृह्यते ११ ॥ ३५ ॥ अ० उ० अर्जुनने जो मनकी गति कही उसका अंगीकार करके श्रीभगवान् मनका निरोध जिसउपायसे होता है, वह उपाय बताते हैं. हेअर्जुन १ सि० पीछे दोमंत्रोंमें जो तूनें मनकी गति कही, सो सत्य है ❋ नहीं है संशय उसमें. २ मन ३ दुर्निग्रह ४ सि० है ❋ अर्थात् मनका रोकना कठिन है ४ सि० और कैसा है यह मनकि ❋ चलताही रहता है, ५ अर्थात् कभी स्थिर नहीं होता ५ सि० परन्तु ❋ हे अर्जुन ६ अभ्यासकरके ७ तो ८ और वैराग्यकरके ९। १० वसमें होसक्ता है. टी० मनकी दोगति हैं, लय और विक्षेप. अभ्यासकरके लय और वैराग्यकरके विक्षेप दूर होता है. ३ विजातीयका तिरस्कार करके, सजातीयका प्रवाह करना, अर्थात् वृत्तीकू आत्माकार करना इसकू अभ्यास कहते हैं, और विषयोंमें दोषदृष्टि करना, इसकू वैराग्य कहते हैं ९ और भी वैराग्यके लक्षण जहांतहां मोक्षशास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं ९ वसकरनेके मुख्य ये, दोई उपाय हैं. इनकू छोड जो पृ-

थक् यत्न करतेहैं, वे वृथा मृगतृष्णावत् भ्रमते हैं. यह अभ्यास और वैराग्य तो हो नहीं सक्ता, वृथा साधुमहात्मामहापुरुषोंसे वाक्यवादी माथा मारते हैं. अर्थात् वारम्वार यही बूझते हैं, कि महाराज मनका निरोध जैसा हो सके ऐसी कोई रीती कहो. हजारों वेर मनके निरोधके उपाय वैराग्यकू सुन्ते हैं, तोभी माथा मारतेही रहते हैं. कभी क्षणमात्र अनुष्ठान करनेका उनको क्या प्रसंग है. अनुष्ठान करनेवालेकू यह याद रहे कि वैराग्य और अभ्यासमें, वैराग्य प्रथम, पीछे अभ्यास. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है. ॥ ३५ ॥

मू०असंयतात्मनायोगोदुष्प्रापइतिमेमतिः ॥
वश्यात्मनातुयततोशक्योवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

असंयतात्मना १ योगः २ दुष्प्रापः ३ इति४ मे५मतिः ६ वश्यात्मना ७ यतता ८ तु ९ उपायतः १० अवाप्तुम् ११ शक्यः१२ ॥ ३६ ॥ अ० नहीं भले प्रकार जीताहै मन जिसने १ सि० उसकू *योग २ प्राप्त होना कठिनहै. ३ यह ४ मेरी ५ समझ ६ सि० है *अर्थात् यह मेरा निश्चय किया हुवा है. ६ सि० और *वसवर्ति हैं, मन जिसका ७ अर्थात् मन जिसके वसमें है उस ७ यत्नकरनेवालेकू ८ तो ९ सि० वैराग्य और अभ्यास इनही दोनों *उपायोंसे १० सि०योग* प्राप्त होनेकू ११ शक्य है. १२ अर्थात् प्राप्त होसक्ता है. १२ टि० जीवब्रह्मके एकताका नाम योग है. २ तात्पर्य वैराग्य और अभ्यास करके जिसने मन वस किया है. उसकू नित्य अखंडानन्दकी प्राप्ती होती है. विनावैराग्यके और विनाअभ्यासके कोई आशा आनन्दछायाकीभी न रक्खे. ॥ ३६ ॥

मू०अर्जुनउवाच॥ अयतिः श्रद्धयोपेतोयोगाच्चलितमानसः ॥ अप्राप्ययोगसंसिद्धिंकांगतिंकृष्णगच्छति॥ ३७ ॥

श्रद्धया १ उपेतः२योगात् ३चलितमानसः४अयतिः५ योगसंसिद्धिम् ६ अप्राप्य ७ काम्८गतिम्९कृष्ण१०गच्छति११॥३७॥अ० शास्त्रके विधीकू सुनसमझकर बहिरंगनित्यादिकर्मोंकू त्यागकर, श्रद्धापूर्वक जो कोईमुमुक्षु ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त हो,अर्थात् वेदांतशास्त्रके श्रवणादिमें तत्परहो, और प्रारब्धवशात् वा किसी प्रतिवन्धसे ज्ञान प्राप्त नहो, और वैराग्याभ्यासमें भी शिथिल होजाय,और मन विषयोंके तरफ लगजाय, ऐसे पुरुषकी क्या गति होगी. क्योंकि कर्मोंको त्याग देनेसे तो उसकू स्वर्गादिकी प्राप्ति न होगी, और ज्ञान न होनेसे वो मुक्त न होगा, और श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होनेसे उसको दुर्गति होना न चाहिये क्योंकि ब्रह्मविद्याके क्षणमात्र श्रवण करनेका अत्यन्त माहात्म्य है. यह संशय करके अर्जुन प्रश्न करता है. सि० ज्ञानयोगमें ❋श्रद्धा करके १ युक्त २ अर्थात् ज्ञानयोगमें श्रद्धावान् २ सि० और किसी प्रतिवन्ध करके अर्थात् किसीहेतुकरके❋ज्ञानयोगसे ३ चलित होगया है, मन जिसका ४ अर्थात् श्रवणादिसे हटकर विषयोंमें लग गया है, मन जिसका ४ नहीं यत्न किया है ५ सि० भले प्रकार वैराग्यके अभ्यासमें जिसने ❋अर्थात् मन्द वैराग्यसे अभ्यास शिथिल है, जिसका सो मुमुक्षु ५ योगके सिद्धीकू ६ अर्थात् जीवब्रह्मके एकताके ज्ञानकू ६ नहीं प्राप्त होकर ७ किस ८ गतीकू ९ प्राप्त होता है, १० हे कृष्णचन्द्रमहाराज. ११ ॥ ३७ ॥

मू०कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिवनश्यति ॥
अप्रतिष्ठोमहाबाहोविमूढोब्रह्मणःपथि ॥ ३८॥

उभयविभ्रष्टः १ छिन्नाभ्रम् २ इव ३ कच्चित् ४ नश्यति ५ न ६ महाबाहो ७ ब्रह्मणः ८ पथि ९ विमूढः १० अप्रतिष्ठः ११ ॥ ३८ अ० सि० कर्ममार्ग और ज्ञानमार्गसे ❋ उभय भ्रष्ट

हुवा १ छिन्नाभ्रवत् २।३ अर्थात् बादलके टूकेके सरीखा ३ क्या ४ नाश होजाता है. ५ सि० या ❋ नहीं. ६ हे कृष्णचन्द्र ७ सि० कैसाहै वो अयति ❋ ब्रह्मके ८ मार्गमें ९ विमूढ हुवा १० सि० इस हेतूसे निराश्रय ११ सि० है ❋ अर्थात् उसकू न कर्मयोगका आश्रा रहा, न ज्ञानयोगका ११ टी० जैसे बादलका टूका एकबादलमेंसे पृथक् होकर, पवनके बलसे दूसरे बादलके तरफ जाता हुवा, बीचमेंही नाश होजाता है. २ ब्रह्मके प्राप्तीका उपाय जो वैराग्यका अभ्यास उसमें ८।९ शिथिल हुवा अर्थात् मन्दबुद्धि हुवा १० ॥३८॥

मू० एतन्मेसंशयंकृष्णछेत्तुमर्हस्यशेषतः॥
त्वदन्यः संशयस्यास्यच्छेत्तानह्युपपद्यते॥३९॥

कृष्ण १ अशेषतः २ एतत् ३ मे ४ संशयम् ५ छेत्तुम् ६ हि ७ अर्हसि ८ त्वदन्यः ९ अस्य १० संशयस्य ११ छेत्ता १२ न १३ उपपद्यते १४ ॥ ३९ ॥ अ० हे कृष्णचन्द्र १ समस्त २ इस ३ मेरे ४ संशयकू ५ छेदन करनेकेवास्ते ६ सि० आप ❋ ही ७ योग्यहो. ८ आपसे पृथक् ८ इस १० संशयका ११ दूर करनेवाला १२ अर्थात् नाश करनेवाला या छेदन करनेवाला १२ नहीं १३ प्रतीत होता है १४ सि० कोई मुझकू ❋ तात्पर्य आप सर्वज्ञहैं, यह संशय आपही नाश कर सक्ते हैं. ॥ ३९ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थनैवेहनामुत्रविनाशस्तस्य विद्यते ॥ नहिकल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिंतातगच्छति ४०

पार्थ १ तस्य २ विनाशः ३ न ४ एव ५ इह ६ अमुत्र ८ विद्यते ९ कल्याणकृत् १० कश्चित् ११ हि १२ दुर्गतिम् १३ न १४ गच्छति १५ तात १६ ॥ ४० ॥ अ० उ० हे अर्जुन १ तिसका २ अर्थात् ज्ञाननिष्ठमुमुक्षूका २ नाश ३ न ४ तो ५ इसलोकमें ६ न ७ परलोकमें. ८ होता है. ९ अर्थात् पूर्वजन्मसे नीचजन्मकी प्राप्ति उसकू न-

हीं होती. ९ तात्पर्य उसकी हानि (क्षति) न इसलोकमें न परलोकमें. सि० क्योंकि ❀शुभकर्म करनेवाला १० कोई ११ भी १२ दुर्गतीकू १३ नहीं १४ प्राप्त होता १५ हे तात. १६ सि० यह तो बहुत उत्तम शुभकर्म करनेवाला है, क्योंकि श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होता है, और किसी प्रतिबंधसे जो उसकू ज्ञान प्राप्त न हो, अथवा मुमुक्षूही मन्दप्रयत्न रहे, अर्थात् आत्मप्राप्तीकेलिये भलेप्रकार प्रयत्न नकरे, और विनाज्ञानके उसका देहपात होजाय, तो उसकू विद्वानलोक बुरा नहीं कहते. न परलोकमें उसकू नरककी प्राप्ती होती है, न पूर्वजन्मसे हीन जन्मकी प्राप्ति होती है. जो उसकी गति होती है, सो अगले मंत्रोंमें कहते हैं. इसी हेतूसे इसमंत्रमें यह कहा कि उसका इसलोकमें या परलोकमें नाश नहीं होता. ॥ ४० ॥

मू० प्राप्यपुण्यकृतांल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः॥
शुचीनांश्रीमतांगेहेयोगभ्रष्टोभिजायते॥ ४१ ॥

पुण्यकृतान् १ लोकान् २ प्राप्य ३ शाश्वतीः ४ समाः ५ उषित्वा ६ शुचीनाम् ७ श्रीमताम् ८ गेहे ९ योगभ्रष्टः १० अभिजायते ११ ॥ ४१ ॥ अ० उ० जो योगभ्रष्ट दुर्गतीकू नहीं प्राप्त होता, तो फिर किस गतीकू प्राप्त होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं. पुण्यकारी पुरुषोंके १ लोकोंकू २ अर्थात् अश्वमेधादियज्ञोंके करनेवाले जिन लोकोंमें जाते हैं उनलोकोंकू १।२ प्राप्तहोकर ३ सि० वहां ❀लाखोंवर्ष ४।५ वसकर ६ पवित्र ७ धनवालोंके ८ घरमें ९ योगभ्रष्ट १० जन्म लेता है, ११ तात्पर्य वेदोक्त मार्गमें चलनेवाले जो श्रीमान् उनके कुलमें योगभ्रष्ट उत्पन्न होता है कुमार्गियोंके कुलमें कुपात्र उत्पन्न होते हैं. ॥ ४१ ॥

मू० अथवायोगिनामेवकुलेभवतिधीमताम्॥

एतद्धिदुर्लभतरंलोकेजन्मयदीदृशम् ॥ ४२ ॥

अथवा १ धीमताम् २ योगिनाम् ३ एव ४ कुले ५ भवति ६ लोके ७ यत् ८ ईदृशम् ९ जन्म १० एतत् ११ हि १२ दुर्लभतरम् १३ ॥ ४२॥ अ० उ०ब्रह्मकू परोक्ष समझकर जिसने थोडाही कभी कभी ब्रह्मविचार कियाथा, उसकी गति तो पीछले मंत्रमें कही. अब पक्षान्तरसे उसकी गति कहते हैं. अथवा यह शब्द पक्षान्तरमें भी आता है. १ तात्पर्य अब इस मंत्रमें उसकी गति कहते हैं. कि जिसने वहुत ब्रह्मविचार कियाथा और अपरोक्ष ज्ञान होनेमें कुछ थोडाही काल रहा था. सि० ऐसा सो योगभ्रष्ट*ज्ञानवान् २ योगियोंके ३ ही ४ कुलमें ५ उत्पन्न होता है. ६ सि० इस*लोकमें ७ जो ८ ऐसा ९ जन्म १० सि० है*यह ११ ही १२ वहुत दुर्लभ है. १३ सि० क्योंकि ज्ञानियोंके कुलमें जन्म होना मोक्षका हेतू है. कर्मकांडी धनवालोंके कुलमें नानाप्रकारका विक्षेप होनेसे उसी जन्ममें मोक्ष होना कठिन प्रतीत होता है. ॥ नास्य कुलेब्रह्मविद्भवति इतिश्रुतिः ॥ यहां वेद प्रमाण है, कि ज्ञानीके कुलमें अज्ञानी नहीं उत्पन्न होता, अर्थात् ज्ञानीही होता है उत्पन्नहोकर*तात्पर्य इस लोकमें आत्मतत्वका विचार करना यही दुर्लभ है, भोग तो सब लोकोंमें वरावर हैं. अर्थात् पशु, पक्षी, आदमी और देवता इनके भी भोग दुःखके देनेमें सब सम हे. केवल आकृतीका भेद है. जो राजाके रानीमें आनन्द, वोहि कङ्गालको अपने स्त्रीमें और कूकरको कूकरीमें. खाना, सोना, मैथुन, और भय इत्यादि सव जीवनमें सम हैं. मनुष्यदेहमें एक ब्रह्मज्ञानही, विशेष है. जिसको ब्रह्मज्ञान नहीं सो पशुपक्षियोंसे भी नीच है. क्योंकि पशुपक्षियोंका तो अज्ञान एक धर्म है, उनको बुरा कहना नहीं बनता. इस मनुष्यनिभांगने मनुष्यदेह पाकर जो ब्रह्मज्ञान न सम्पादन किया, तो

फिर क्या अलौकिक पदार्थ सम्पादन किया. ॥ आहारनिद्राभय-मैथुनंचसामान्यमेतत्पशुमानवानाम् ॥ ज्ञानंनराणामधिकोविशेषो ज्ञानेन हीनःपशुभिःसमानः॥ ४२ ॥

मू०तत्रतंबुद्धिसंयोगंलभतेपौर्वदेहिकम्॥
यततेचततोभूयःसंसिद्धौकुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

तम् १ बुद्धियोगम् २ पौर्वदेहिकम् ३ तत्र ४ लभते ५ कुरुनंदन ६ ततः ७ भूयः ८ संसिद्धौ ९ च १० यतते ११ ॥ ४३ ॥ अ० तिस १ ज्ञानयोगको २ पूर्वदेहमें जिसके जाननेकी इच्छा करके अभ्यास करता था उसीको ३ वहां ४ अर्थात् श्रीमान् ऐसे कर्मकांडियोंके कुलमें, अथवा ज्ञानियोंके कुलमें ४ प्राप्त होता है ५ हे अर्जुन ६ फिर ७ अधिक ८ मोक्षमें ९ ही १० अर्थात् मुक्तीके वास्ते ही ९ । १० यत्न करता है. ११ ॥ ४३ ॥

मू०पूर्वाभ्यासेनतेनैवह्रियतेह्यवशोपिसः ॥
जिज्ञासुरपियोगस्यशब्दब्रह्माऽतिवर्त्तते ॥४४॥

सः १ अवशः २ अपि ३ हि ४ तेन ५ एव ६ पूर्वाभ्यासेन ७ ह्रियते ८ योगस्य ९ जिज्ञासुः १० अपि ११ शब्दब्रह्म १२ अतिवर्तते १३ ॥ ४४ ॥ अ० उ० फिर अधिक यत्न करनेमें कारण यह है. सो १ सि० योगभ्रष्ट कर्मकांडियोंके कुलमें अथवा ज्ञानियोंके कुलमें जन्म लेकर दैवयोगसे ❋ परवश २ भी ३ सि० होजावे अर्थात् माता पिता पुत्र मित्र धनादिमें आसक्त होजावे अथवा, भेदवादियोंके पंजेमें आजावे ❋ तोभी ४ सोई ५ । ६ पूर्वाभ्यास ७ सि० किजो अभ्यास करताकरता योगभ्रष्ट हुवाथा वोही ❋ विषयोंसे विमुख करके ब्रह्मविचारके सन्मुख कर देता है८ सि० योगभ्रष्टकू हे अर्जुन ब्रह्मविचारका ऐसाही माहात्म्य है, सो सुन ❋ ज्ञानयोगका ९ जिज्ञासु १० भी ११ शब्दब्रह्मकू १२

उलंघकर वर्तता है. १३ अर्थात् कर्मकांडकू छोड ब्रह्मनिष्ठ होजाता है. ब्रह्मविचार करनेवाला ब्रह्मनिष्ठ होजाय, तो इसमें क्या कहना है. जो अज्ञानअवस्थामें क्षणमात्रभी यह चितवन करता है, कि मैं ब्रह्म हूं, सो विचार महापातकोंकू दूरकर देता है. जैसे सूर्य तमकू. और जो समझकर वरसों चितवन करते हैं. उनका तो क्या कहना है. अर्थात् उनके सद्गतीमोक्षमें किंचित् भी सन्देह नहीं. ॥ क्षणंब्रह्माहमस्मीतियःकुर्यादात्मचिन्तनम् ॥ तन्महापातकंहन्तितमःसूर्योदयोयथा ॥ ४४ ॥

मू० प्रयत्नाद्यतमानस्तुयोगीसंशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् ॥ ४५ ॥

यतमानः १ योगी २ तु ३ प्रयत्नात् ४ अनेकजन्मसंसिद्धः ५ ततः ६ पराम् ७ गतिम् ८ याति ९ ॥ ४५ ॥ अ० उ० योगभ्रष्ट तीसरे जन्ममें तो अवश्यही होगा, इसमें सन्देह नहीं, यह कहते हैं. अर्थात् पीछले कहेहुवे अर्थकू फिर कैमुतिकन्याय करके दृढ करते हैं. सि० जब कि जिज्ञासु परमपदकू प्राप्त होता है, तो फिर ❋ प्रयत्न करनेवाला १ योगी २ जो ३ प्रयत्नसे ४ सि० निष्पाप होकर ❋ अनेकजन्मोंमें भलेप्रकार सिद्ध होकर ५ अर्थात् ब्रह्मवित् होकर ५ फिर ६ परम ७ गतीकू ८ प्राप्त होता है, ९ सि० इसमें क्या कहना है. ❋ तात्पर्य ब्रह्मका जिज्ञासूभी योगभ्रष्ट, मन्दवैराग्य, दूसरेही जन्ममें सद्गतीकू प्राप्त होता है. और प्रयत्न करनेवाला विद्वान् ज्ञानवान् होकर दूसरे जन्ममें अथवा उसीजन्ममें मोक्षकू प्राप्त हो, तो फिर इसमें क्या कहना है. प्रथम तो योगभ्रष्ट दूसरेही जन्ममें मुक्त होगा, और अनेकजन्ममें अर्थात् तीसरे जन्ममें मुक्त होतो इसमें क्या कहना है. न एक अनेक इसप्रकार अनेक शब्दका अर्थ दो या तीन होसक्ता है. और अनेकजन्मका यह भी

अर्थ है कि असंख्यात जन्मोंसे पुण्य करता जो चला आतां है. वो उन पुण्योंके प्रतापसे निष्पाप, ज्ञानवान्, ऐसा होकर पीछले जन्ममें ब्रह्मनिष्ठ होकर वोही योगभ्रष्ट सद्गतीकू प्राप्त हो, तो इसमें क्या कहना है. ॥ ४५ ॥

मू०तपस्विभ्योऽधिकोयोगीज्ञानिभ्योपिमतोधिकः॥
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगीतस्माद्योगीभवार्जुन ॥ ४६ ॥

योगी १ तपस्विभ्यः २ अधिकः ३ ज्ञानिभ्यः ४ अपि ५ अधिकः ६ मतः ७ कर्मिभ्यः ८ च ९ योगी १० अधिकः ११ अर्जुन १२ तस्मात् १३ योगी १४ भव १५ ॥ ४६ ॥ अ०उ० ब्रह्मज्ञानका साधन अष्टांगयोग, तप, पंडिताई, ये सब कर्मसे श्रेष्ठ हैं, यह कहते हैं. योगी १ तपस्वी पुरुषोंसे २ श्रेष्ठ ३ सि० हैं क्योंकि चान्द्रायणादि व्रतोंका करना, पंचाग्नि तपना, शीतकालमें प्रातःकाल स्नान करना, इत्यादि तप कहलाता है. यह बहिरंग साधन है. ❋ पंडितोंसे ४ भी ५ सि० योगी ❋ श्रेष्ठ ६ माना है. ७ सि०इसजगह ज्ञानीका अर्थ जो पंडित किया उसका तात्पर्य यह है, कि विनाअनुष्ठान करनेवाले जो केवल विद्यावानही हैं. अर्थात् केवल श्रोत्रिय हैं. उनको ब्रह्मनिष्ठ नहीं समझना.क्योंकि अष्टांग, योग ज्ञानका अन्तरङ्गसाधन है. जैसे विद्या तप विचार इत्यादि साधन है ❋ अग्निहोत्रादि कर्म करनेवालोंसे ८ भी ९ योगी १० श्रेष्ठ ११ सि० है. क्योंकि यह भी ज्ञानका बहिरंग साधन है ❋ हे अर्जुन १२ तिसकारणसे १३ योगी १४ हो तूं १५ अर्थात् धारणाध्यानादिमें तत्पर हो. क्यों कि यह ज्ञानका अन्तरंग साधन है. ॥ ४६ ॥

मू०योगिनामपिसर्वेषांमद्गतेनान्तरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजतेयोमांसमेयुक्ततमोमतः ॥ ४७॥

सर्वेषाम् १ योगिनाम् २ अपि ३ मद्गतेन ४ अन्तरात्मना ५ यः

६ श्रद्धावान् ७ माम् ८ भजते ९ सः १० मे ११ युक्ततमः १२मतः १३ ॥ ४७॥ अ० उ० ज्ञानका उत्तम साधन अतरंग भगवद्भक्ति है. सब कर्मयोगियोंमें भगवद्भक्त श्रेष्ठ है, सोई कहते हैं. सब १ योगियोंके २ मध्यमें भी ३ मद्गत अन्तःकरण समाहित करके, ४।५ जो अर्थात् मुझ वासुदेवमें अन्तःकरण समाहित करके, ४।५जो ६ श्रद्धावान् ७ सि० ब्रह्मका जिज्ञासु❋ मुझको ८ भजता है, ९अर्थात् अभेद ऐसी उपासना करता है ९ सो१० मुझको११ युक्ततम१२ सम्मत है. १३ अर्थात् वह सब योगियोंसे श्रेष्ठ है. १३ ॥ ४७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवें अध्यायका प्रारम्भ हुवा

उ०बीचके छअध्यायोंमें सातसे बारहतक उपासना करनेके योग्य भगवतका स्वरूपविशेष निरूपण किया गया है. उपासना करनेकेलिये जिस परमेश्वरकी भक्ति करना उसका स्वरूप भी तो पहले समझलेना उचित है. जो अपना स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजने समस्त गीताशास्त्रमें और विशेष बीचके छअध्यायोंमें निरूपण किया है, वह स्वरूप परमेश्वरका समझना. तात्पर्य यह कि पहले परमेश्वरका स्वरूप समझकर फिर उनकी भक्ति करना योग्य है. वारंवार परमेश्वर यह कहते हैं. कि मुझमें मन लगाय मेरा भजन कर. माम्, मम, अहम्, इत्यादिप्रयोग अस्मच्छब्दके हैं. जिसजगे यह प्रयोग हैं वहां तात्पर्य अस्मत्शब्दसे है. अस्मत् आत्माकू कहते हैं. त्वम्, त्वां, ते, इत्यादियुष्मच्छब्दके प्रयोग हैं. अस्मत्शब्दके प्रयोग भगवद्विषय जो गीताशास्त्रमें हैं, उनका तात्पर्य किसीजगे तो मायोपहितचैतन्यमें है किसीजगे अविद्योपहित-

चैतन्यमें, किसीजगे शुद्धचैतन्यमें किसीजगे लीलाविग्रहमूर्तीमें, किसीजगे सगुणब्रह्ममें है. सबजगे लीलाविग्रहमूर्त्तीमें, अर्थ नहीं समझना, बहुतजगे तो सोपाधिकका और निरुपाधिकका भेद हमने दिखादियाहै. किसीकिसीजगे स्पष्ट समझकर छोडदिया, वहां विचार करलेना कि इसजगे तात्पर्य निरुपाधिकब्रह्ममें है, अथवा सोपाधिकब्रह्ममें और यहभी विचार लेना कि इसजगे जो अस्मच्छब्दका प्रयोग है. इसका तात्पर्य तत्पदार्थमें है. अथवा त्वंपदार्थमें है. अथवा दोनोंके एकतामें है. तब भगवतका स्वरूप समझमें आवेगा. नहीं तो यह अनर्थ नहीं समझ लेना कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज श्यामसुंदरस्वरूपसे सिवाय, श्रीसदाशिवशक्तिइत्यादिदेवताजीव हैं, श्रीकृष्णचंद्रमहाराजने मूर्तीकूही परब्रह्म कहा है. किन्तु यह समझना कि श्रीकृष्णचंद्रमहाराज शुद्धसच्चिदानन्दनिराकार अखंड पूर्णब्रह्म है. विष्णुशिवसूर्यशक्तिगणेशादिवासुदेवदाशरथिइत्यादि उनकी लीलाविग्रहमूर्त्ति हैं. जो रामकृष्णादीके एकतामें प्रमाण है, वोही विष्णुशिवादीके एकतामें प्रमाण है.

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यासक्तमनाःपार्थयोगंयुंजन्मदाश्रयः ॥ असंशयंसमग्रंमांयथाज्ञास्यसितच्छृणु १

पार्थ १ मयि २ आसक्तमनाः ३ मदाश्रयः ४ योगम् ५ युंजन् ६ यथा ७ समग्रम् ८ असंशयम् ९ माम् १० ज्ञास्यसि ११ तत् १२ शृणु १३ ॥ १ ॥ अ० उ० पीछले अध्यायमें श्रीभगवानने कहा कि जो मुझमें मन लगाकर मुझको भजता है, वो कर्मयोगियोंमें श्रेष्ठ है. इसवास्ते अब अपना वोही स्वरूप कहते हैं, कि जिसकी भक्ति करना योग्य है. हेअर्जुन १ मुझमें २ आसक्त है मन जिसका ३ सि० और ॐमेराही आश्रा लेरक्खा है जिसने ४ सि० और ॐ

अर्थात् जो योग मैंनें छठेअध्यायमें निरूपण　　४

हुवा६जैसा७संपूर्ण८अर्थात् मैं सोपाधिक और निरुपाधिक हूं वैसाही ८ सन्देहरहित ९ मुझको १० अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दनिराकारनिर्विकारका और लीलाविग्रहश्यामसुन्दरादिस्वरूपको. १० जानेगा तूं ११ सोई १२ सि० आगे कहूंगा सावधान होकर ❋ सुन १३ ॥ १ ॥

मू० ज्ञानंतेहंसविज्ञानमिदंवक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वानेहभूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ ते ३ अहम् ४ वक्ष्यामि ५ सविज्ञानम् ६ अशेषतः ७ यत् ८ ज्ञात्वा ९ इह १० भूयः ११ अन्यत् १२ ज्ञातव्यम् १३ न १४ अवशिष्यते १५ ॥ २ ॥ अ० उ० आगे जो ज्ञान कहना है प्रथम उसकी इसश्लोकमें स्तुति करते हैं. यह १ सि० जो आगे ❋ ज्ञान २ तेरे अर्थ ३ मैं ४ कहूंगा ५ सि० सो ❋ विज्ञानके सहित ६ सि० समस्त कहूंगा. ❋ जिसको ८ जानकर ९ अर्थात् जिसज्ञानसे मुझको जानकर ९ मोक्षमार्गमें १० फिर ११ अन्यपदार्थ १२ जाननेके योग्य १३ नहीं १४ शेष रहेगा. १५ तात्पर्य उसीसे कृतार्थ होजायगा परोक्ष (शास्त्रद्वारा) जो परमेश्वरका ज्ञान है, उसको ज्ञान कहते हैं. और अनुभव युक्तिपूर्वक साक्षात् अपरोक्ष जो परमेश्वरका सन्देहरहित ज्ञान है, उसको विज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥

मू० मनुष्याणांसहस्रेषुकश्चिद्यततिसिद्धये ॥
यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ॥ ३ ॥

मनुष्याणाम् १ सहस्रेषु २ कश्चित् ३ सिद्धये ४ यतति ५ यतताम् ६ अपि ७ सिद्धानाम् ८ माम् ९ तत्त्वतः १० कश्चित् ११ वेत्ति १२ ३ ॥ अ० उ० विशेषकरके कमसमझलोग यह कहाकरतेहैं, कि ईश्वरका ज्ञान सबको है. जो इसप्रजाका कर्ता और पालक है, वोही परमेश्वर है. उसकू समस्तगुणोंकी खान समझना, रूप रंग उसमें

नहीं, इसहेतूसे कोई उसको देख नहींसक्ता. अब विचारो कि यह तो समझ और निश्चय और स्नेह ऐसेऐसे तुच्छपदार्थोंमें कि जिनके स्मरण करनेसे समझवालोंको ग्लानि आजाय. वे ये, स्त्री, छोकरे, धनान्ध, नीच, इत्यादि. यह बड़े आश्चर्यकी बात है, कि सद्गुणाकरको छोड़ तुच्छपदार्थ जो धनान्धादि नीचपुरुष उनमें मन जावे. तात्पर्य यह है, कि पूर्वोक्तबोली मन्दमति, आलसी, विषयी, बहिर्मुख इन्होंकि है. परमेश्वरके ज्ञानका गन्ध उनके पास होकर नहीं निकला, तस्मात् यह सब उनका वाचक ज्ञान है. क्योंकि उनके मुखमें परमेश्वरही धूल डालकर, भगवतके स्वरूपका ज्ञान अति दुर्लभ निरूपण करते हैं. परमेश्वरका ज्ञान किसी अन्तर्मुख विरले महात्माकोही है. बहिर्मुख विषयी, परमेश्वरको कभी नहीं जानसक्ते. सोई इस श्लोकमें कहते हैं. हजारों मनुष्योंमें १।२ कोई ३ सच्चिदानन्दके प्राप्तिकेलिये ४ प्रयत्न करता है. ५ प्रयत्न करनेवालोंमें ६ भी ७ सि० कोई देहसे पृथक् सूक्ष्मरूप सच्चिदानंदको जानजाता है ऐसे ❀ सिद्धोंमेंसे व्यतिरिक्तजीवोंकी तो मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति लेशमात्रभी नहीं. और मनुष्योंमें भी भरतखंडसे अन्यद्वीपोंमें रहते हैं. वा श्रुतिस्मृतींके जो द्वेषी हैं, वे आत्मविद्याकोभी नहीं जानते. आत्मज्ञान तो बहुत कठिन है. और भरतखंडनिवासीवर्णाश्रमवालोंमेंभी प्रायशः द्वैतवादी हैं. प्रत्युत द्वैतवादीभी कम हैं. विशेषकरके तो अज्ञानीही बहुत है. किंचित् परलोकका उनको विचार नहीं. और जो कोई परलोकके विचारमें प्रवृत्तभी होता है, तो उसको नवीनपंथसम्प्रदायोंने ऐसा भुला रक्खाहै, कि उस व्यवस्थाको लिखनेकेलिये पृथक् ग्रन्थ चाहिये.तात्पर्य इनपूर्वोक्त सब उपाधियोंसे बचकर कोई महात्मा आत्माके प्राप्तिकेलिये प्रयत्न करताहै, और उनमेंसे कोई ईश्वरसे अभिन्न ऐसे यथार्थसच्चिदानन्दआत्माको परमात्मा जानता है. जिनको ब्रह्मविद्या प्राप्तहुई, और ब्रह्मवित्पुरुष जिसे मिले, उसके भाग्यकी

बड़ाई जितनी कीई जावे वो कमसेकम है. और जिन्होंने आत्मतत्वको जाना, वेतो मन और वाणीसे परे पहुंचे. उनका क्या कहनाहै३॥

मू०भूमिरापोनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच ॥
अहंकारइतीयंमेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

भूमिः १ आपः २ अनलः ३ वायुः ४ खम् ५ मनः ६ बुद्धिः ७ च ८ अहंकारः ९ एव १० इति ११ इयम् १२ मे १३ प्रकृतिः १४ अष्टधा १५ भिन्ना १६ ॥ ४ ॥ अ० उ० जिसप्रकार परमेश्वरका स्वरूप यथार्थ जाना जाता है, सोई कहते हैं. प्रथम इस श्लोकमें अपरा प्रकृतीका स्वरूप निरूपण करते हैं. क्योंकि प्रकृतिद्वारा भगवतका ज्ञान होता है. पृथिवी, जल, तेज, वायु, और आकाश. १।२।३।४।५ सि० इनका अर्थ गंधादि पंचतन्मात्रा समझना. इसजगे पंचीकृतपंचस्थूलभूत नहीं समझना और ❋ मन ६ बुद्धि ७ अहंकार ८।९ भी १० इसप्रकार ११ यह १२ मेरी १३ प्रकृति १४ आठप्रकारके १५ भेदको प्राप्त हुई है. १६ सि० एकप्रकृति अपरा यही अष्टप्रकारकी है, और तेरवें अध्यायमें इसीके चौवीस भेद मैं निरूपण करूंगा ❋ टी० गंध १ रस २ रूप ३ स्पर्श ४ शब्द ५ अहंकार ६ महत्तत्त्व ७ अविद्या ८ सबका कारण अविद्या है अविद्यासे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे शब्दादि उत्पन्न हुवे हैं. जैसे विष मिलेहुवे अन्नकू विष कहते हैं. इसीप्रकार अविद्योपहितचैतन्यको अविद्या कहागया. तात्पर्य जगतका कारण मायोपहित अव्यक्त है. विनाचैतन्य रचनादि क्रियाका असम्भव है. अविद्याका अर्थ इसजगे मूलाज्ञान अर्थात् प्रकृति समझना. आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें इनसबका अर्थ विस्तारपूर्वक और क्रमसे लिखा है. ॥ ४ ॥

मू०अपरेयमितस्त्वन्यांप्रकृतिंविद्धिमेपराम् ॥
जीवभूतांमहाबाहोययेदंधार्यतेजगत् ॥ ५ ॥

इयम् १ अपरा २ इतः ३ तु ४ अन्याम् ५ जीवभूताम् ६ मे ७ पराम् ८ प्रकृतिम् ९ विद्धि १० महाबाहो ११ ॥ यया १२ इदम् १३ जगत् १४ धार्यते १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० इसश्लोकमें पराप्रकृति निरूपण करते हैं, पीछे जिसके आठभेद कहे. यह १ सि० प्रकृति ❀ अपरा २ अर्थात् निकृष्ट, अशुद्ध, जड, अनर्थ करनेवाली, संसारबन्धको प्राप्तकरनेवाली, ऐसी है. २ इससे तौ जूदी ३।४।५ जीवरूपको ६ मेरी ७ परा ८ प्रकृति ९ जान तूं १० हे अर्जुन ११ जिसने १२ यह १३ जगत् १४ धारण कररक्खा है. १५ टी० शुद्ध प्रकृष्ट, श्रेष्ठ, मेरा आत्मरूप ऐसी जान ८ इसजगतको रचकर इसकेभीतर जीवरूप होकर मैं ही प्रविष्ट हुवा हूं. १३।१४।१५ ॥ ॥ तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत् इतिश्रुतिः ॥ ५ ॥

मू० एतद्योनीनिभूतानिसर्वाणीत्युपधारय ॥
अहंकृत्स्नस्यजगतःप्रभवःप्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ भूतानि २ एतद्योनीनि ३ इति ४ उपधारय ५ अहम् ६ कृत्स्नस्य ७ जगतः ८ प्रभवः ९ तथा १० प्रलयः ११ ॥६॥ अ० सब १ भूतोंकी २ यह योनी है ३ यह ४ जान तूं. ५ अर्थात् अपरा और परा यही दोनोंप्रकृती सब जगतका कारण हैं ५ सि० और ❀ मैं ६ समस्त ७ जगतका ८ उत्पत्ति करनेवाला ९ और नाश करनेवाला १०।११ सि० हूं. ❀ तात्पर्य उपादानकारण प्रकृति है, और निमित्तकारण चैतन्य. अर्थात् ईश्वर है. इसवास्ते अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ईश्वर है जगतका. यह अर्थ आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें स्पष्ट दृष्टान्तसहित लिखा है; ॥ ६ ॥

मू० मत्तःपरतरंनान्यत्किंचिदस्तिधनंजय ॥
मयिसर्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥ ७ ॥

धनंजय १ मत्तः २ परतरम् ३ अन्यत् ४ किंचित् ५ न ६ अस्ति ७

७ इदम् ८ सर्वम् ९ मयि १० प्रोतम् ११ सूत्रे १२ मणिगणाः १३ इव १४ ॥ ७ ॥ अ० उ० जैसे पीछे कहा, इसीहेतूसे मुझसे जूदा कोई पदार्थ नहीं, यह कहते हैं. हेअर्जुन १ मुझसे २ श्रेष्ठ ३ जूदा ४ सृष्टिसंहारका स्वतंत्र कारण ४ कुछ ५ नहीं ६ है. ७ यह ८ सब ९ सि० जगत् ❀ मुझमें १० अर्थात् सच्चिदानन्द परमेश्वरमें १० गूंदाहूवा है. ११ सूत्रमें १२ सि० सूत्रकेही बनेहूवे ❀ मणीके दाने १३ जैसे १४ सि० तैसा. ❀ ॥ ७ ॥

मू० रसोहमप्सुकौन्तेयप्रभास्मिशशिसूर्य्य-
योः॥प्रणवःसर्ववेदेषु शब्दःखेपौरुषंनृषु ॥ ८ ॥

कौन्तेय १ अप्सु २ रसः ३ अहम् ४ शशिसूर्ययोः ५ प्रभा ६ अस्मि ७ सर्ववेदेषु ८ प्रणवः ९ खे १० शब्दः ११ नृषु १२ पौरुषम् ॥१३॥८॥ अ० उ० श्रीभगवान् अपने पूर्णताको विस्तारपूर्वक कहते हैं, पांचमंत्रोंमें. हेअर्जुन १ जलमें २ रस ३ मैं हूं, ४ चन्द्रसूर्यमें ५ प्रभा ६ सि० जिसके दीप्ति, चमक, या रोशनी ये नाम हैं सो ❀ मैं हूं ७ सबवेदोंमें ८ ओंकार ९ सि० मैं हूं ❀ आकाशमें १० शब्द ११ सि० मैं हूं ❀ पुरुषोंमें १२ उद्यम १३ सि० मैं हूं ❀ तात्पर्य जलादिपदार्थ रसादिपदार्थोंके बिना कुछ नहीं ॥ ८ ॥

मू० पुण्योगंधःपृथिव्यांचतेजश्चास्मिविभा-
वसौ॥जीवनंसर्वभूतेषुतपश्चास्मितपस्विषु॥९॥

पृथिव्याम् १ च २ पुण्यः ३ गन्धः ४ विभावसौ ५ तेजः ६ च ७ अस्मि ८ सर्वभूतेषु ९ जीवनम् १० तपस्विषु ११ तपः १२ च १३ अस्मि १४ ॥९॥ अ० पृथिवीमें १।२ पवित्र ३ गंध ४ सि० मैं हूं ❀ अर्थात् सुगन्ध. ४ अग्नीमें ५ तेज मैं हूं ६।७।८ सबभूतोंमें ९ जीव १० सि० मैं हूं ❀ तपस्विपुरुषोंमें ११ तप मैं हूं १२।१३।१४ टी०

तप दोप्रकारका है, बिचारकोभी तप कहते हैं, और द्वन्द्वके सहनेको भी तप कहते हैं. ॥ ९ ॥

मू० बीजंमांसर्वभूतानांविद्धिपार्थसनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ॥१० ॥

पार्थ १ सर्वभूतानाम् २ सनातनम् ३ बीजम् ४ माम् ५ विद्धि ६ बुद्धिमताम् ७ बुद्धिः ८ अस्मि ९ तेजस्विनाम् १० तेजः ११ अहम् १२ ॥ १० ॥ अ० हे अर्जुन १ सबभूतोंका २ सनातन ३ बीज ४ मुझको ५ जान तूं ६ बुद्धिमानोंमें ७ बुद्धि ८ मैंहूं. ९ तेजस्वीपुरुषोंमें. १० तेज ११ मैं १२ सि० हूं. ❋ ॥ १० ॥

मू० बलंबलवतांचाहंकामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धोभूतेषुकामोस्मिभरतर्षभ ॥ ११ ॥

कामरागविवर्जितम् १ बलवताम् २ च ३ बलम् ४ भरतर्षभ ५ धर्माविरुद्धः ६ भूतेषु ७ कामः ८ अस्मि ९ ॥ ११ ॥ अ० कामरागकरकेवर्जित १ बलवानोंमें २।३ बल ४ सि० मैं हूं और ❋ हे अर्जुन ५ धर्मसे अविरुद्ध ६ भूतोंमें ७ काम ८ मैं हूं. ९ ॥ ११ ॥

मू० येचैवसात्विका भावाराजसास्तामसाश्चये ॥
मत्तएवेतितान्विद्धिनत्वहंतेषुतेमयि ॥ १२ ॥

ये १ च २ एव ३ सात्विकाः ४ भावाः ५ राजसाः ६ ये ७ च ८ तामसाः ९ तान् १० मत्तः ११ एव १२ इति १३ विद्धि १४ तेषु १५ अहम् १६ न १७ तु १८ ते १९ मयि २० ॥ १२ ॥ अ० जो १।२।३ सतोगुणी ४ भाव ५ सि० शमदमादि ❋ रजोगुणी ६ सि० हर्षदर्पादि ❋ और जो ७।८ तमोगुणी ९ सि० भाव शोकमोहादि ❋ तिनको १० मुझसे ११ ही १२।१३ जान तूं. १४ सि० क्यों कि मेरे प्रकृतीके गुणोंका कार्य हैं शमहर्षशोकादि ❋ तिनमें १५ मैं १६ नहीं १७। १८ सि० वर्तताहूं ❋ अर्थात् जीववत्

तिनके आधीन मैं नहीं १७।१८ सि० परन्तु ❋ वे १९ मुझमें २० सि० मेरे आधीन हुवे वर्तते हैं ❋ ॥ १२ ॥

मू०त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिःसर्वमिदंजगत् ॥
मोहितंनाभिजानातिमामेभ्यःपरमव्ययम्॥१३॥

एभिः १ त्रिभिः २ गुणमयैः ३ भावैः ४ इदम् ५ सर्वम् ६ जगत् ७ मोहितम् ८ एभ्यः ९ परम् १० माम् ११ अव्ययम् १२ न १३ अभिजानाति १४ ॥१३॥ अ० इन १ तीन २ गुणमय ३ पदार्थोंकरके ४ यह ६ सब ६ जगत् ७ मोहित ८ सि० होरहा है ❋ इनसे ९ परे १० मुझ ११ अव्ययको १२ नहीं १३ जानता है. १४ तात्पर्य कोई सत्वगुणमें कोई रजोगुणमें, और कोई तमोगुणमें मोहित हैं इनसे परे विलक्षण, निर्गुण, शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, निर्विकार, ऐसे परमेश्वरको नही जानते. परमेश्वरकोभी सगुणही समझते हैं ॥ १३ ॥

मू०दैवीह्येषागुणमयीममामायादुरत्यया ॥
मामेवयेप्रपद्यन्तेमायामेतांतरन्तिते ॥ १४ ॥

एषा १ मम २ माया ३ गुणमयी ४ दैवी ५ हि ६ दुरत्यया ७ ये ८ माम् ९ एव १० प्रपद्यन्ते ११ एताम् १२ मायाम् १३ ते १४ तरन्ति १५ ॥ १४ ॥ अ० उ० अनादि ऐसी अविद्या विनाशुद्धसच्चिदानन्दभगवद्भजनके दूर न होगी यह कहते हैं. यह १ मेरी २ माया ३ त्रिगुणवाली ४ अलौकिक ५ अर्थात् अद्भुत ऐसी ५ ही ६ सि० है ❋ (हि इसशब्दका तात्पर्य यह है, कि यह माया ऐसी है कि जो बात समझनेके योग्य है, उसकोभी दिखासक्ती है. और जो न समझमें आवे, उसकोभी वो दिखासक्ती है. यह बात संसारमें प्रसिद्ध है. इसी हेतुसे जगत् भ्रान्त होरहा है. विनापरमेश्वरकी कृपां हुवे यह माया) दुस्तर. ७ सि० विद्वानोंने ऐसा

निश्चय किया है, कि ❋जो ८अर्थात् ब्रह्मतत्त्वके जिज्ञासु ८ मुझको ९ ही १० भजते हैं, ११ इस १२ मायाको १३ वे १४ तरेंगे. १५ अर्थात् मायाको माया समझकर मुझ त्रिगुणरहित ऐसे शुद्धसच्चिदानंदको प्राप्त होंगे १५ टी० दैवी देवसम्बंधी अर्थात् ब्रह्मा विष्णु रामकृष्ण इत्यादि और वैकुंठादि जिसका परिणामहैं. उसको दैवी माया कहते हैं. यह विनाज्ञाननिष्ठाके दूर नहीं होती. मुझ निर्गुणशुद्ध सच्चिदानन्दकाही जो चिंतवन करेंगे, सगुणपदार्थमें प्रीति नहीं करेंगे, वेही निर्गुणको प्राप्त होंगे. और जो सगुणपदार्थोंमें प्रीति करेंगे, उनकी त्रिगुणवाली माया दूर न होगी. क्योंकि जिसपदार्थको त्यागनाथा, उसमें प्रीति कीई फिर कैसे यह तीन गुण दूर होसक्ते हैं. एवशब्दसे स्पष्ट प्रतीत होताहै, कि मायाशब्दका अर्थ इसजगे शुद्ध ब्रह्म है. मायोपहित, वा लीलाविग्रह ऐसा सगुण नहीं. मायोपहित ईश्वर सगुणब्रह्मका जो आराधनकरते हैं, तो अवश्यही मायाका भी आराधन उसकेसाथ होता है. जिसका विशेष चिंतवन रहेगा वो पदार्थ कैसे दूर होगा. और जो सगुणब्रह्मकाही आराधन करना है, तो निष्काम होकर शुद्धब्रह्मकी जिज्ञासाकरके आराधन करे, तो भी वो मार्ग कर्ममुक्तीका है. और जिनको शुद्धब्रह्मकी जिज्ञासा ही नहीं, उनकी अविद्या कभी दूरन होगी. ॥ १४ ॥

मू०नमांदुष्कृतिनोमूढाःप्रपद्यन्तेनराधमाः ॥
माययापहृतज्ञानाआसुरंभावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

नराधमाः १ माम् २ न ३ प्रपद्यन्ते ४ मूढाः ५ दुष्कृतिनः ६ मायया ७ अपहृतज्ञानाः ८ आसुरम् ९ भावम् १० आश्रिताः ११ ॥ १५॥ अ० उ० जो निर्भाग न निर्गुणब्रह्मका आराधन करते हैं, और न सगुणब्रह्मका उसमें यह कारण है. नरोंमें अधम१ मुझको २ नहीं ३ भजते हैं. ४ सि० हेतु इसमें यह है कि ❋विवेकरहित हैं ५ सि० इसमें क्या हेतु है कि ❋दुष्ट अर्थात् खोटे ऐसे कर्मोंकू कर-

नेवाले हैं ६ अर्थात् शास्त्रोक्तमार्गमें नहीं चलते. श्रुति स्मृति और परमेश्वर इनके आज्ञाको छोड नानाप्रकारके कल्पित पन्थोंमें सिर-मारते हैं. ६ सि० इसमें जो हेतु है सो सुन ❋ मायाकरके ७ दूर होगया है, ज्ञान जिनका ८ अर्थात् तमोगुणमें और रजोगुणमें सत्वगुण उनका तिरोभाव हो रहता है. ८ सि० इसमें यह हेतु है कि ❋ असुरभावका ९।१० आश्रयकर रक्खा है उन्होंने. ११ सि० सोलवे अध्यायमें काम क्रोध दंभ दर्पादि असुरोंका स्वभाव कहेंगे ❋ अर्थात् भगवतसे विमुख सदा कामादि अनर्थोंमें फँसेरहते हैं. जो पूर्वसंस्कारसे उनमें किसी समय सत्वगुणका आविर्भाव होता है, फिर कुसंगके दोषसे भगवतके सन्मुख नहीं होते हैं, और न शुभकर्म करते हैं ११ सि० इसीहेतुसे उनको विवेक नहीं होता, और इसी हेतुसे वे लोग सबसे अधम हैं ❋ ॥ १५ ॥

मू०चतुर्विधाभजंतेमांजनाःसुकृतिनोर्जुन ॥
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्षभ ॥ १६ ॥

अर्जुन १ चतुर्विधाः २ सुकृतिनः ३ जनाः ४ माम् ५ भजन्ते ६ भरतर्षभ ७ आर्तः ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासुः १० ज्ञानी ११ च १२ ॥ १६ ॥ अ० उ० जो निष्कामसगुणब्रह्मकाभी आराधन न होसके, तो सकामही परमेश्वरका आराधन करना योग्य है. जो न निष्काम-भजन करे और न सकाम. उन्होंसे सकामपुरुषही भगवतका आराधन करनेवाले श्रेष्ठ हैं. इसीवास्ते चारोंप्रकारके मेरे भक्त सुकृती कहे-जाते हैं. वे चारप्रकारके भक्त तारतम्यताकेसाथ उत्तरोत्तर ये हैं. हेअर्जुन १ चारप्रकारके २ सुकृतीजन ३।४ मुझको ५ भजते हैं ६ हेअर्जुन ७ सि० वे यह हैं. ❋ आर्त. ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासु १० और ज्ञानी ११।१२ टी० विपत्समयमें परमेश्वरका स्मरण करना उसको आर्तभक्त कहतेहैं. जैसे द्रौपदीगजेन्द्रादि. ८ पुत्र और राज्यादिकी कामना करके जो परमेश्वरका आराधन करते हैं. वे अर्थार्थी. जैसे

ध्रुवादि ९ ब्रह्म तत्वकी जिज्ञासा करके निष्काम जो नारायणका पूजन और भजन करते हैं वे जिज्ञासु. जैसे उद्धव सुदामादि १० शुद्ध सच्चिदानंद निराकार निर्विकार नित्यमुक्त परमात्माको आपसे अभिन्न अपरोक्ष जो जानते है वे ज्ञानी. जैसे शुकदेव, वामदेव, जनक, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ और सनकादि ११ चारोंप्रकारके भक्तोंको उत्तरोत्तर श्रेष्ठ समझना. ॥ १६ ॥

मू० तेषांज्ञानीनित्ययुक्तएकभक्तिर्विशिष्यते॥
प्रियोहिज्ञानिनोत्यर्थमहंसचममप्रियः॥ १७॥

तेषाम् १ ज्ञानी २ विशिष्यते ३ नित्ययुक्तः ४ एकभक्तिः ५ अहम् ६ ज्ञानिनः ७ अत्यर्थम् ८ प्रियः ९ हि १० सः ११ च १२ मम १३ प्रियः १४ अ० उ० पूर्वोक्तभक्तोंमें ब्रह्मज्ञानी चारहेतू करके सबसे श्रेष्ठ है, यह कहते हैं. तिनके १ सि० मध्यमें ❋ ज्ञानी २ विशेषहै. ३ सि० प्रथमतो तीनों अवस्थामें सच्चिदानन्दस्वरूपसे च्युत नहीं होता, इसवास्ते ज्ञानीको ❋ नित्ययुक्त ४ सि० कहते हैं. अर्थात् सदा आनन्दस्वरूप ब्रह्मका उसको स्मरण रहता है, दूसरे यह कि एकअद्वैतमेंही है भक्ति जिसकी. अर्थात् सिवाय सच्चिदानंदपदार्थके और कोई पदार्थ दृश्य अर्थात् जड उसके दृष्टीमें नहीं जिसके दृष्टिमें दूसरा पदार्थ है, बुरा वा भला. वेसन्देह उसमें कभी नकभी मन जायंगा. इसीवास्ते ज्ञानीको ❋ एकभक्ति ५. सि० कहते हैं. ❋ अर्थात् ज्ञानी परमानंदकाही उपासक है, परमानंदरूपभगवानही उसके साधन हैं,५और परमानंदही फल हैं. सि० औरोंके फलमें और साधनोंमें भेद है. तीसरा यह कि ❋ मैं ६ ज्ञानीको ७ अत्यंतवहुत ८ ही ९ प्यारा १० सि० हूं क्योंकी परमानंद बहुत प्यारा होता है, यह लोकमेभी प्रसिद्ध है. ज्ञानी मुझको परमानन्दस्वरूप जानता है. आनंदजनक जड दृश्यरूपवाला मुझको नहीं जानता. चौथे यह कि

सो ज्ञानी ११।१२ मुझको १३सि० भी अत्यन्त *प्यारा १४ सि० है. क्योंकि परात्पर पूर्णब्रह्म, अखंड, अद्वैत ऐसा मुझको समझता है. सिवाय सच्चिदानन्दके और पदार्थका अत्यन्त अभाव जानता है.इसी हेतुसे वो मुझको प्रिय है. एकपदार्थ तो आनंदजनक और एक पदार्थ निजानंदरूप है. विचारो दोनोंमेंसे कौनसा श्रेष्ठ है. ॥ १७ ॥

मू० उदाराःसर्वएवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतम् ॥
आस्थितःसहियुक्तात्मामामेवानुत्तमांगतिम् १८॥

एते १ सर्वे २ एव ३ उदाराः ४ ज्ञानी ५ तु ६ मे ७आत्मा ८ एव ९ मतम् १० हि ११ सः १२ युक्तात्मा १३ माम् १४ एव १५ आस्थितः १६ अनुत्तमाम् १७ गतिम् १८ ॥ १८ ॥ अ० उ० भगवद्विमुखोंसे सबभक्त सकाम और निष्काम श्रेष्ठ हैं, और ज्ञानी तो साक्षात् नारायण स्वरूप है, यह कहते हैं. आगे बारवें अध्यायमेंभी श्रीमहाराज कहेंगे, कि निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको प्राप्तही हैं. जो मेरा स्वरूप है, सोई उनका है. वे १ सि० पूर्वोक्त आर्तादितीनों भक्त *सब २ ही ३ श्रेष्ठ ४ सि० है. परन्तु *ज्ञानी ५ तो ६ मेरा ७ आत्मा ही ८।९ सि० है. *अर्थात् ज्ञानी मुझसे दासवत् जूदा नहीं, स्वामीसेवकवत् पृथक् नहीं, वो वनवृक्षवत् मेराही स्वरूप है ८।९ सि० यह मेरा *निश्चय १० सि० हैं *क्योंकि ११ सि० वो यह समझता है, कि मैं पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद नित्यमुक्त हूं. इसवास्ते *सो ज्ञानी १२ युक्तात्मा याने समाहित १३ सि० है. और *मुझको १४ ही १५ आश्रयकर रक्खा है. १६ सि० कैसा हूं मैं कि, नहीं है सिवाय मुझसे उत्तमगति कोई सावयवपदार्थ. सो मैंही अनुत्तमगति हूं. यह समझकर मुझ *अनुत्तमगतीको १७।१८ सि० आश्रयकर रक्खा है, अर्थात् मुझसे पृथक् कुछ और फल नहीं मानता. परात्परफल मैंही सच्चिदानंद हूं * ॥ १८॥

मू०बहूनांजन्मनामंतेज्ञानवान्मांप्रपद्यते ॥
वासुदेवःसर्वमितिसमहात्मासुदुर्लभः ॥ १९ ॥

बहूनाम् १ जन्मनाम् २ अन्ते ३ इति ४ सर्वम् ५ वासुदेवः ६ ज्ञानवान् ७ माम् ८ प्रपद्यते ९ सः १० महात्मा ११ सुदुर्लभः १२ ॥ १९ ॥ अ० उ० फिर भी ज्ञानीकी स्तुति करते हुवे यह कहते हैं, कि ऐसा ज्ञानी भक्त दुर्लभ है,बहुत जन्मोंके १।२ अन्तमें३सि० सकामनिष्काम उपासना करते करते पिछले जन्ममें,कि जिसशरीरमें मोक्ष होना है, उस जन्ममें मुझको जो मेरा भक्त ऐसा समझताहै कि ❋ यह ४ सब ५ सि० जगत् चराचर अस्तिभातिप्रियरूप ❋ वासुदेव ६ सि० है, इसप्रकार ❋ ज्ञानवान् ७ हुवा ❋ मुझको ८ भजता है ९ सि० जो भक्त ❋ सो १० महात्मा ११ बहुत दुर्लभ है. १२ अपरिच्छिन्नदृष्टि है. प्रायशः सब आत्माको और परमात्माको परिच्छिन्नसमझते हैं. प्रत्युत कोईकोई निर्भाग ज्ञानियोंकी प्रत्यक्ष वा किसी बहानेसे या मिसकरके असूया (बुराई) करते हैं. इसश्रीमहाराजके वाक्यका आदर नहीं करते. अपनेआप अपनी जिह्वासे वारंवार यह कहैं, कि मैं पापी पापात्मा, पाप करताहूं, जो दूसरा कहे कि तुम पापी गुलाम हो, तो उसीसमय लडनेको उद्यत होजावें. ऐसे लोगोंकी जो गति होगी. सो दृष्टान्तसे स्पष्ट कियेदेते हैं. ❋ "इतिहास" एकराजा भेदवादी भगवत्का उपासक सबसे यह प्रश्नकिया करताथा कि महाराज जो पापी भगवत्से विमुख है, उनका तो उद्धार श्रीनारायण अपने आप करेंगे. क्योंकि उनकानाम पतितपावन अधमोद्धरण, करुणाकर ऐसा है. और जो भगवद्भक्त, कर्मकांडी ज्ञानी योगीसे हैं, वे भक्ति ज्ञान कर्मयोगादिके आश्रयसे कृतार्थ होंगे. तो अब नरकमें कौन जावेंगे. चौरासी लाखयोनियोंमे कौन भ्रमेंगे. इसप्रश्नका उत्तर बहुत पंडितोंको न आया. एक ज्ञानीमहात्मा राजाकेपास पहुंचे,

राजाने उनका बहुत सन्मानकरके यही प्रश्न उनसेभी किया. प्रथम महात्माने यह कहा, कि हे राजन् तुम बडे सुकृती धर्मात्मा समझवाले भगवद्भक्त ऐसे हो, राजाने कहा कि महाराज ऐसे तो आपही हैं मैंतो अधम पापात्मा हूं. महात्मा उसीसमय वहां खडे होगये. और राजाके तरफसे कहने लगे. कि आज कैसे अधम पापात्मासे सम्भाषण हुवा. राजाको इनशब्दोंके सुनतेही क्रोध आगया, और कहने लगा, कि तूं कैसा ज्ञानी है, जो लोगोंको गालियां देता है. महात्माने कहाकि बच्चा गालियां नहीं देता, तेरे प्रश्नका उत्तर देताहूं, तात्पर्य मेरे कहनेका समझ कि तुझसरीखे लोग नरकमें जावेंगे. आपतो अपने मुखसे सहस्रवार अपनेको पापी कहता है. ॥ पापोहंपापकर्माहं पापात्मापापसम्भवः ॥ जो हमने एकवार कहा तो उसका इतना बुरा मानता है. क्यों कि अभी तो तूं हमको सुकृती धर्मात्मा भगवद्भक्त कहता था, अभी तूं तडाक करने लगा. अब तूं यह अपने आपहीको विचार, कि मैं पतित हूं जो तूं पतित है, तो औरोंके कहनेका क्यों बुरा मानता है. और जो धर्मात्माहै, तो शुद्धात्माको पापात्मा क्यों कहता है. अपनेको शुद्धात्माही समझ राजाका अज्ञान इतनेही स्वल्प उपदेशसे जातारहा और जाना कि दास और पतित जो अपनेको कहते हैं, यह उपरहीकी बोलचाल है, दास पतित बनना कठिन है. मुखसे तो यह कहे कि " सियाराममय सब जग जानी । करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी " और ज्ञानियोंकी बुराईकरें, धन्य है ऐसी समझ की, भला अर्थ समझा पूर्णताका. यह इतिहास भलेप्रकार विचारनेके योग्य है.॥१९॥

मू०कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाःप्रपद्यन्तेन्यदेवताः ॥
तंतंनियममास्थायप्रकृत्यानियताःस्वया॥२०॥

अन्यदेवताः १ प्रपद्यन्ते २ तैः ३ तैः ४ कामैः ५ हृतज्ञानाः ६ स्वया ७ प्रकृत्या ८ नियताः ९ तम् १० तम् ११ नियमम् १२

आस्थाय ॥ १३ ॥ अ० उ० सबभक्त निर्गुणब्रह्मकी निष्काम उपासना क्यों नहीं करते, अपनेसे अन्यदेवताका क्यों आराधन करते हैं. इस अपेक्षामें यह कहते हैं. चारमंत्रोंमें. परमेश्वरका भजनकरके वैकुंठादिमें जावेंगे. वहांके दिव्यशब्दादिविषयोंका और स्त्र्यादिपदार्थोंका. भलेप्रकार भोग करेंगे. अथवा इसीलोकमें स्त्रीपुत्रधनादिकी प्राप्ति होगी. और प्रायशः वर्तमानकालमेंभी देवतोंके उपासनामें शब्दादिविषयोंको त्यागना नहीं पडता. प्रत्युत फूल बंगला हिंडोरा रासलीला नृत्यगानादिको उत्तमकर्म समझते हैं. सि० इन इन कामनाकरके जो आत्मासे भिन्न ❋ अन्यमूर्तिमान देवताका १ भजन करते हैं २ सि० इसमें हेतु यह है कि ❋ तिन ३ तिन ४ कामना करके ५ हरागया है आत्मज्ञान जिनका ६ सि० वे ❋ अपने ७ प्रकृतीकरके ८ प्रेरेहुवे ९ तिस १० तिस ११ नियमको १२ आश्रयकरके १३ सि० अन्यदेवताका भजन करते हैं. ❋ तात्पर्य रजोगुण और तमोगुणके वशहोकर जोजो नियम और भेद उपासनामें हैं, सबका अंगीकार करके आत्मासे अन्यदेवताकोही पूजते हैं. जैसे कहते हैं. कि "घरका जोगी जोगना ॥ आनगांवका सिद्ध" ऐसेही वे उपासना हैं. शास्त्रकाभी प्रमाण सुनो ॥ वासुदेवंपरित्यज्ययेन्यदेवमुपासते ॥ तृषितोजाह्नवीतीरेकूपंखनतिदुर्मतिः ॥ जो देव सबमें बसरहा है, और साक्षात् चैतन्यानन्दअनुभव होता है, उसको छोड अन्यदेवकी जो उपासना करते हैं वे ऐसे हैं. कि जैसे प्यासा मूर्ख श्रीगंगाजीका जल छोड, गंगातीरे कूप खोदता है ऐसेही परमानंदस्वरूपचैतन्यदेवआत्माको छोड तुच्छ विषयानंदके लिये प्रयत्न करते हैं. ॥ २० ॥

मू० योयोयांयांतनुंभक्तःश्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्यतस्याचलांश्रद्धांतामेवविदधा

यः १ यः २ भक्तः ३ श्रद्धया ४ याम् ५ याम् ६ तनुम् ७ अ-र्चितुम् ८ इच्छति ९ तस्य १० तस्य ११ अचलाम् १२ श्रद्धाम् १३ ताम् १४ अहम् १५ एव १६ विदधामि १७॥२१॥अ० उ० सकाम आत्मासे अन्यदेवतोंके भक्तोंको पीछले मंत्रमें परतंत्र (प्रकृतीके और कामनाके वस) कहा. अब अपने आधीन कहते हैं जो कोई यह शंका करे कि जब परमेश्वर अन्तर्यामी सबके प्रेरक हैं, तो फिर अन्यदेवतोंके भक्तोंको भी वासुदेव, भगवान् पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद, ऐसे आत्माके सन्मुख क्यों नहीं करदेते. इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहेंगे, कि जैसे जिसकी इच्छा होती है, उसके अनुसार उसकी श्रद्धा दृढ करदेता हूं. निष्काम जो मेरा आराधनकरते हैं, उनको सन्मार्गमें लगादेता हूं. मुझको चिंतामणिवत् समझना. प्रसिद्धवाक्यहै " जैसेको हर तैसे " सोई कहते हैं, इसमंत्रमें. जो१जो२सि०विष्णु शिव राम कृष्ण इंद्रादीका ❋ भक्त३श्रद्धाकरके ४ जिस ५ जिस ६ मूर्तीकी ७ पूजाकरनेकी ८ इच्छा करता है, ९ तिसतिसके विषय १०।११ दृढ १२ श्रद्धा १३ सि० जो है ❋ तिसको १४ मैं १५ ही १६ स्थिरकरताहूं १७ सि० अन्तर्यामीरूप होकर वेदशास्त्राचार्यद्वारा. ❋ तात्पर्य जो जिस मूर्तिमान् देवतामें प्रीति करता है, परमेश्वरभी आचार्यरूप होकर उसीको दृढ करदेते हैं. निष्कामभक्तोंको परमेश्वर सुधारते हैं. सुखमानकर बहिर्मुख हुवे बहिःसुखकी इच्छा करते हैं, वे कामीविषयी कहे जाते हैं २१॥

मू० सतयाश्रद्धयायुक्तस्तस्याराधनमीहते॥
लभतेचततःकामान्मयैवविहितान्हितान् ॥ २२॥

सः १ तया २ श्रद्धया ३ युक्तः ४ तस्य ५ आराधनम् ६ ईहते ७ ततः ८ च ९ कामान् १० लभते ११ तान् १२ मया १३ एव १४ विहितान् १५ हि १६. अ० उ० पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतिकोही सिद्धान्त

समझकर, उनमें श्रद्धा करके सकाम परमेश्वरका आराधन करनेसे, जो कभी किसीकिसीको फल भी प्रत्यक्ष होजाताहै, अर्थात् मूर्तिमान् परमेश्वरका दर्शन होजाना अथवा स्त्री पुत्र, राज्य, स्वर्ग, और वैकुंठादिकी प्राप्ति होजाना यह सब फल उसके कामनाके अनुसार मैं ही देता हूं. क्यों कि कामियोंको रूपरसादिविषयही प्रिय होते हैं. जो यह फल प्रत्यक्ष किसीको भी न होय, तो फिर वेदशास्त्रादिमें उनका विश्वास नरहेगा जो उनका विश्वास वेदशास्त्रादिमें बनारहेगा, तो कभी न कभी सिद्धान्तके श्रुतिस्मृतियोंमें भी उनका विश्वास होजायगा. फिर मेरा निष्काम आराधन करके कृतार्थ होजावेंगे. उनको प्रत्यक्ष फल दिखानेमें यह मेरा तात्पर्य है. इसवास्ते उनकी वोही श्रद्धा स्थिरकरताहूं. सो १ तिस २ श्रद्धाकरके ३ युक्त ४ ति सका ५ सि० ही. ❋ आराधन ६ करताहै.७तिससे ८ ही ९ कामनाको १० प्राप्त होताहै. ११ सि० कैसी हैं वे कामना, कि ❋ तिनको १२ मैंने १३ ही १४ रचीहैं १५ निश्चयसे १६ तात्पर्य सकामभक्त पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतियोंमें श्रद्धाकरके जिस भक्तकी जिसदेवतामें प्रीति है, उसकाही आराधन करता है. उससेही मनवांछित फलको प्राप्त होता है. वास्तव वे कामना रचीहुई परमेश्वरकी हैं. परमेश्वरने ही वो फल उनको दिया है परंतु वे उस मूर्तीका दियाहुवा समझते हैं उसीको परात्पर समझलेते हैं इसी वास्ते वे जन्ममरणसे नहीं छूटते. इसबातको अगले श्लोकमें भले प्रकार स्पष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

मू० अन्तवत्तुफलंतेषांतद्भवत्यल्पमेधसाम्॥
देवान्देवयजोयान्तिमद्भक्तायान्तिमामपि ॥ २३ ॥

अल्पमेधसाम् १ तेषाम् २ तत् ३ फलम् ४ अन्तवत् ५ तु ६ भवति ७ देवयजः ८ देवान् ९ यान्ति १० मद्भक्ताः ११ माम् १२ अपि १३ यांति १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० सच्चिदानंदआत्मासे अ-

न्य मूर्तिमान् परमेश्वरको परमेश्वर मानकर जो उनका आराधन करता है उससे निर्गुणनिराकारसच्चिदानन्दकी उपासना करनेवाले कौनसे अधिक फलको प्राप्त होते हैं, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं. कि हां बेसन्देह फलमें बडा अंतर है. वो अंतर यह है. परिच्छिन्न है दृष्टि जिनकी १ अर्थात् वे कमसमझवाले जो परमेश्वरको एकदेशी समझते हैं १ तिनको २ सि० जो फल होता है. मूर्तिमानपरमेश्वरदर्शनादि, वैकुंठादिकी प्राप्ति, स्त्रीपुत्रराज्यादिकी प्राप्ति ❋ सो ३ सि० यह सब ❋ फल ४ अन्तवालाही ५।६ है. ७ तात्पर्य अनित्यहै.७ सि० क्यों कि ❋ देवतोंके पूजनेवाले ८ देवतोंको९ प्राप्त होते हैं.१० सि० और ❋ मुझ सच्चिदानंदनिराकारआत्माके भक्त ११ मुझसच्चिदानंदनिराकारको १२ही १३ प्राप्त होते हैं. १४ तात्पर्य विचार करो फलमें कितना बडा अन्तर है. जो यह शंका करे, कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज नित्य है, उन्होंसे अन्य देवता अनित्य हैं. तो फिर यह विचारना चाहिये, कि देवतोंकी मूर्ति अनित्य है, वा उनका स्वरूप जो सच्चिदानंद सो अनित्य है. और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी मूर्ति श्यामसुंदरस्वरूप नित्य है, वा उनका स्वरूप सच्चिदानंद नित्य है. दोनोंके मूर्तियोंको जो नित्य कहे, तो भी नहीं बन सक्ता, और दोनोंके सच्चिदानंदस्वरूपको जो अनित्य कहे, तो भी नहीं बन सक्ता. क्योंकि वेदशास्त्रोंका यह सिद्धान्त है ॥ यद्दृश्यं तदनित्यम्॥ जो दृश्य है सो सब अनित्य है. तदुक्तं" गोगोचरजहँलगमनजाई ॥ सो सब माया जानों भाई" और माशब्दकी देवशब्दसे विलक्षणता है. तात्पर्य यह बात स्पष्ट है कि, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद निराकार है, सो नित्य है. मूर्ति परमेश्वरकी मायिक होती है. पद्मपुराणमें लक्ष्मीजीसे श्रीनारायण गीतामाहात्म्य कहते हैं. ॥ मायामयमिदंदेविवपुर्मेनतुतात्त्विकम्॥ अ० हे देवी मेरा यह शरीर मायामय है, वास्तव नहीं. देव-

शब्दका तात्पर्य मूर्तियोंमें है माशब्दका तात्पर्य सच्चिदानंद निराकारमें है. ॥ २३ ॥

मू० अव्यक्तंव्यक्तिमापन्नंमन्यन्तेमामबुद्धयः॥
परंभावमजानन्तोममाव्ययमनुत्तमम्॥ २४ ॥

अबुद्धयः १ माम् २ अव्यक्तम् ३ व्यक्तिम् ४ आपन्नम् ५ मन्यन्ते ६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानन्तः १० अव्ययम् ११ अनुत्तमम् १२ ॥ २४ ॥ अ० उ० निर्गुणब्रह्मके उपासनामें और सगुण ब्रह्मलीलाविग्रहमूर्तिआदिके उपासनामें यत्न तो सम प्रतीत होता है, और फल निर्गुणउपासनाका आप विशेष और नित्य कहते हो. फिर लीलाविग्रहमूर्तियोंके उपासक भी आपके निरुपाधिकशुद्धस्वरूपसच्चिदानंदनिराकारब्रह्मात्माकी उपासना क्यों नहीं करते हैं, यह शंकाकरके इसमंत्रमें श्रीमहाराज यह कहेंगे कि कमसमझहोनेसे मुझ परात्परनिर्विकारशुद्धसच्चिदानंदको नहीं जानते. मूर्तिमान्ही मुझको समझते हैं. हे अर्जुन यह बडेकष्टकी बात है, इसप्रकार विचार करते हुवे श्रीभगवान् यह कहते हैं. अविवेकी यानें विचाररहित १ मुझ २ निराकारको ३ मूर्तिमान् ४।५ मानते हैं. ६ मेरे ७ परऐसे ८ प्रभावको ९ नहीं जानते. १० सि० कैसा है मेरा परप्रभाव कि प्रथम तो ❋ निर्विकार ११ सि० और फिर ❋ अनुत्तम १२ अर्थात् उससे सिवाय और कोई पदार्थ उत्तम नहीं १२ टी० मूर्तिको ४ प्राप्त हुवा ५ ॥ २४ ॥

मू० नाहंप्रकाशःसर्वस्ययोगमायासमावृतः॥
मूढोयंनाभिजानातिलोकोमामजमव्ययम्॥ २५ ॥

सर्वस्य १ अहम् २ प्रकाशः ३ न ४ योगमायासमावृतः ५ अयम् ६ मूढः ७ लोकः ८ माम् ९ अजम् १० अव्ययम् ११ न १२ अभिजानाति ३ ॥ २५ ॥ अ० सबको १ मैं २ प्रकट ३ नहीं ४ अर्थात् सब मु-

झको नहीं जानसक्ते मेरे भक्तही मुझको जान सक्ते हैं. ४ सि० क्यों कि ❋ योगमायाकरके ढकाहुवा हूं ५ अर्थात् मेरी योगमाया अचिंत्य है. उसमायाके सम्बन्धसे अभक्त अर्थात् अश्रद्धावान् मुझको नहीं पहचानसक्ते ५ सि० इसीहेतूसे ❋ यह ६ मूढ ७ जन ८ मुझ ९ अज १० अव्ययको ११ नहीं १२ जानता है. १३ ॥ २५ ॥

मू० वेदाहंसमतीतानिवर्त्तमानानिचार्जुन ॥
भविष्याणिचभूतानिमांतुवेदनकश्चन ॥ २६ ॥

अर्जुन १ समतीतानि २ वर्तमानानि ३ च ४ भविष्याणि ५ च ६ भूतानि ७ अहम् ८ वेद ९ माम् १० तु ११ कश्चन १२ न १३ वेद १४ ॥ २६ ॥ अ० उ० पीछे यह कहा, कि मैं योगमायाकरके ढका हुवा हूं. सो वो योगमाया मुझको ज्ञानमें प्रतिबंध नहीं, जीवकोही मोहनेवाली है. जैसी बाजीगरकी माया बाजीगरको नहीं मोहती है, औरोंकोही मोहती है. यह कहते हैं. हे अर्जुन १ पीछले २ और वर्तमान ३ । ४ और अगले ५ । ६ भूतोंको ७ मैं ८ जानता हूं, ९ और मुझको १० । ११ कोई १२ नहीं १३ जानता. १४ अर्थात् सच्चिदानंदसे पृथक् प्रथमतो कोई पदार्थ नहीं है, और जो भ्रान्तिजन्य हैं भी, तो वे जड हैं, वे कैसे चैतन्यको जानसक्ते हैं. १२ तात्पर्य आत्मासे पृथक् जो ईश्वरको कोई जाना चाहे, वो मूर्खतम है. क्यों कि स्पष्ट श्रीमहाराज कहते हैं कि मुझको कोई नहीं जानता. इसवाक्यका यही अभिप्राय है कि आत्मासे भिन्न मुझको कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥

मू० इच्छाद्वेषसमुत्थेनद्वंद्वमोहेनभारत ॥
सर्वभूतानिसंमोहंसर्गेयांतिपरंतप ॥ २७ ॥

परंतप १ सर्गे २ इच्छाद्वेषसमुत्थेन ३ द्वन्द्वमोहेन ४ भारत ५ सर्वभूतानि ६ संमोहम् ७ यांति ८ ॥ २७ ॥ अ० उ० जीवोंका जो अज्ञान दृढ होरहा है, और उनको विवेक नहीं होता उसमें कारण

यह है, कि स्थूलशरीरकी उत्पत्ति होतेही, अनुकूलपदार्थोंमें याने प्रियपदार्थोंमें तो इच्छा होती है और प्रतिकूल पदार्थोंमें द्वेष उत्पन्न होजाता है. इच्छा और द्वेष क्यों उत्पन्न होते हैं. इसमे हेतु यह है, कि शीतोष्णादिद्वन्द्वके निमित्त जो भ्रांति है, अर्थात् विवेक नहीं. इसवास्ते इच्छा द्वेष उत्पन्न होते हैं. तात्पर्य शीतोष्णादिके दूर करनेकेलिये जो प्रयत्न करना है, सोई भ्रांति है. क्यों कि शीतोष्णादिकी प्राप्ति और उनका दूरहोना, प्रारब्धवशात् अवश्यंभावि है. जैसे दुःखके लिये कोई यत्न नहींकरता, सुखकेरक्षामें सुखके प्राप्तिके लिये दिनरात तत्पर रहते हैं, परंतु दिनरातकेतरह दुःख सुख बनाही रहता है. जिनको यह विचार नहीं, वे अविवेकी अपने अविवेकसे अज्ञानी बनरहे हैं. यही बात इसमंत्रमें कहते हैं. हे अर्जुन १ स्थूलशरीरकी उत्पत्ति हुवेसन्ते २ अर्थात् स्थूलशरीरके उत्पत्तीके पछि २ इच्छा द्वेषकरके उत्पन्न हुवा द्वन्द्वके निमित्त जो मोह ३।४ अर्थात् विवेक न होनेसे ३।४ हेअर्जुन ५ सबजीव ६ अज्ञानको ७ प्राप्तहैं. ८तात्पर्य द्वन्द्वके निमित्त जो प्रयत्न करना, यह अविवेक है. विनाइसका त्यागकीये परमेश्वरका ज्ञान और अपना ज्ञान नहोगा. इच्छा और द्वेष यही दोनो संसारकी जड हैं. इनका त्याग अवश्य करना चाहिये.॥२७॥

मू०एषांत्वन्तगतंपापंजनानांपुण्यकर्मणाम्॥
तेद्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताभजंतेमांदृढव्रताः ॥२८॥

एषाम् १ तु २ पुण्यकर्मणाम् ३ जनानाम् ४पापम् ५अंतगतम् ६ ते ७ द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः ८ दृढव्रताः ९ माम् १० भजंते ११ ॥२८॥

अ० उ० शुभकर्म करनेसे रजोगुण और तमोगुण कम होगया है जिनका, उनको द्वंद्वके निमित्तभी मोह कम होता है. वे मेरा भजन करसक्ते हैं, और उनको मेरे स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है. यह कहते हैं. जिन १।२ पुण्यकारी ३ जनोंका ४ पाप ५ नष्ट होगया है ६ वे ७ द्वंद्वकेनिमित्त जोमोह उससे छूटे हुवे ८ और दृढ हैं व्रतानि-

यम जिनके ९ सि० वे ❋मुझको १० भजते हैं. ११ टी०निष्काम शास्त्रोक्त सद्गुरूने उपदेश कीया उसमें दृढ विश्वास रखना उसीके अनुसार अनुष्ठान करना, यह दृढव्रत है. जिनका ॥ २८ ॥

मू०जरामरणमोक्षायमामाश्रित्ययतन्तिये ॥
तेब्रह्मतद्विदुःकृत्स्नमध्यात्मंकर्मचाखिलम् २९॥

ये १ माम् २ आश्रित्य ३ जरामरणमोक्षाय ४ यतंति५ते६तत्७ ब्रह्म ८ विदुः ९ कृत्स्नम् १० अध्यात्मम् ११ अखिलम् १२कर्म१३ च १४ ॥ २९ ॥ अ० उ० जिसवास्ते भजन करते हैं सो कहते हैं. और भगवतका भजन करनेवाले जाननेके योग्य जो पदार्थ है, उन सबको जानकर कृतार्थ होजाते हैं. यह भी कहते हैं दोश्लोकोंमें.जो १ सि० परमानंदके जिज्ञासु ❋ मुझपरमेश्वरको २ आश्रयकर ३ जरामरण छूटनेकेवास्ते ४ अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, इनका नाश होनेके लिये ४ प्रयत्न करते हैं, ५ वे६ तिस ७ ब्रह्मको ८ जानते हैं, ९ सि० अथवा जानेंगे कि जिसब्रह्मके जाननेसे मुक्ति होतीहै और ❋समस्त १० अध्यात्मको ११ समस्त १२ कर्मको भी १३।१४सि०जानते हैं❋तात्पर्य भलेप्रकार कर्म और अध्यात्मब्रह्मको जानते हैं. इनशब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे. ॥ २९ ॥

मू०साधिभूताधिदैवंमांसाधियज्ञंचयेविदुः ॥
प्रयाणकालेपिचमांतेविदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

युक्तचेतसः १ ये २ माम् ३ साधिभूताधिदैवम् ४ साधियज्ञम् ५ च ६ विदुः ७ ते ८ प्रयाणकाले ९ अपि १० च ११ माम् १२विदुः १३ ॥ ३० ॥ अ० उ० भगवद्भक्त अन्तकालमेंभी वेसन्देह भगवतका चिंतवन करके परमेश्वरको प्राप्त होंगे. भगवद्भक्तोंमें योगभ्रष्टकी भी शंका न करना क्योंकि उनके अंतःकरणका प्रेरक, अं-

तर्यामी, और उनका. स्वामी, अपनेमें मन आप लगालेगा. सिवाय इसके वे आपपरमेश्वरके कृपासे समाहितचित्त होते हैं, सोई कहते हैं. समाहितहै चित्त जिनका १ ऐसेजो २ मुझको ३ सहित अधिभूत और अधिदैवके ४ और सहितअधियज्ञके ५। ६ जानते हैं ७ वे ८ अन्तकालमेंभी ९।१०।११ मुझको १२ जानेंगे. १३ तात्पर्य मेरेस्मरणका ज्ञान अन्तकालमें उनको बना रहेगा. क्यों कि उनका चित्त सावधन. है. अधिभूतादिशब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आपही आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे ॥ ३० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवें अध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

अर्जुनउवाच ॥ किंतद्ब्रह्मकिमध्यात्मंकिंकर्म पुरुषोत्तम॥अधिभूतंचकिंप्रोक्तमधिदैवंकिमुच्यते १ ॥

पुरुषोत्तम १ तत् २ ब्रह्म ३ किम् ४ अध्यात्मम् ५ किम् ६ कर्म ७ किम् ८ अधिभूतम् ९ च १० किम् ११ प्रोक्तम् १२ अधिदैवम् १३ किम् १४ उच्यते १५ ॥ १ ॥ अ० उ० पीछलेअध्यायमें श्रीभगवानने कहा, कि जो मुझपरमेश्वरका आश्रालेकर मुक्तीकेलिये यत्न करते हैं, वे ब्रह्मादिसप्तपदार्थोंको मुझसहित अन्तकालमें भी जानेंगे. क्यों कि मुक्ति विनाब्रह्मज्ञानके नहीं होती, यह वेदोंमें कहा है. ॥ ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः इति श्रुतिः ॥ इसवास्ते अर्जुन ब्रह्मादिसप्तपदार्थोंके जाननेकी इच्छाकरके प्रश्न करता है, हे पुरुषोत्तम १ सो २ ब्रह्म ३ क्याहै, ४ अर्थात् जिसके जाननेसे मुक्ति होती है, वो सोपाधिक ब्रह्महै, वा निरुपाधिक शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, ऐसा है. जो सच्चिदानंदके जाननेसेही मुक्ति होती है, तो उसका अर्थ कृपाकरके मुझको समझाना

चाहिये. मैं तो अबतक इसी श्यामसुंदरमूर्त्तीको परात्परपरब्रह्म समझताथा. और आप ही हैं पूर्णब्रह्म. परंतु सोपाधिक और निरुपाधिकका भेद मैं जानाचाहताहूं. कि किसप्रकार तो आप सोपाधिक हैं, और किसप्रकार निरुपाधिक हैं यह, मेरा तात्पर्य है. अर्थात् शुद्धरूप आपका क्याहै ४ सि० और इसप्रकार ❋ अध्यात्म५ क्या है ६ कर्म ७ क्या है ८ और अधिभूत ९।१० किसको ११ कहते हैं १२ अधिदेव १३ किसको १४ कहते हैं.१५ तात्पर्य अर्जुनका प्रश्न यह है, कि इनशब्दोंके अर्थ शास्त्रमें कैकैप्रकारके अर्थात् बहुत हैं. जैसे ब्रह्म शुद्धकोभी कहते हैं, और मायोपहितको और सगुणनिर्गुणकोभी ब्रह्म कहते हैं. अब मैं यह जानाचाहताहूं कि वो ब्रह्मपदार्थ क्या है जिसके जाननेसे मुक्त होताहै. इसप्रकार कर्म और जीवादिपदार्थोंका अर्थ है. अर्जुनका तात्पर्य यह है कि मुक्तीका हेतु जो ब्रह्मादिपदार्थोंका ज्ञान वो मैं जानाचाहता हूं. ॥ १॥

मू०अधियज्ञःकथंकोत्रदेहेऽस्मिन्मधुसूदन॥
प्रयाणकालेचकथंज्ञेयोसिनियतात्मभिः॥ २॥

मधुसूदन १ अत्र २ देहे ३ अधियज्ञः ४ कः ५ कथम् ६ अस्मिन् ७ नियतात्मभिः ८ प्रयाणकाले ९ च १० कथम् ११ ज्ञेयः १२ असि १३ ॥ २ ॥ अ० हेभगवन् १ इस २ देहमें ३ अधियज्ञ ४ कौनहै ५ अर्थात् जोजो कर्म शरीरमनवाणीसे होता है, उसका फलदाता इस शरीरमें कौन है. ५ सि० स्वरूप बूझकर उसके रहनेका प्रकार बूझता है. कि ❋ किसप्रकार ६ इसमें ७ अर्थात् इसदेहमें ७ सि० वो स्थित है, और ❋ समाधान है अन्तःकरण जिनका ऐसे पुरुषोंकरके ८ देहावसानके समय९।१० किसप्रकार ११ जाननेके योग्य १२ हो आप. १३ अर्थात् समाधान अन्तःकरणवाले अन्तकालमें आपको किसप्रकार जानते हैं, ९।१०।११।१२अ-

र्थात् अंतकालमें क्या उपाय सबसे श्रेष्ठ करना योग्य है, कि जिस-उपायकरनेसे मुक्त होजावे. तात्पर्य जिनका चित्त समाधान है. उनके उपासनामें तो संदेह है नहीं, क्योंकि चित्तका निरोध होना ही उपासनाका फल है. अर्जुनका प्रश्न है कि उसको अंतकालमें क्या करना चाहिये. इसहेतूसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि उपासनासे बढका उपाय बूझता है. इनप्रश्नोंका अर्थ इनही प्रश्नोंके उत्तरमें सब स्पष्ट होजावेगा. ॥ २ ॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरंब्रह्मपरमंस्वभावोध्यात्ममुच्यते॥भूतभावोद्भवकरोविसर्गःकर्मसंज्ञितः॥३॥

परमम् १ ब्रह्म २ अक्षरम् ३ उच्यते ४ स्वभावः ५ अध्यात्मम् ६ भूतभावोद्भवकरः ७ विसर्गः ८ कर्मसंज्ञितः ९॥ ३ ॥अ० उ०तीनप्रश्नोंका उत्तर इसश्लोकमें है. ब्रह्म अध्यात्म कर्म इनका. परम १ ब्रह्मको २ शुद्ध, सच्चिदानंद अक्षर. अखंड, नित्य, मुक्त, निराकार, परात्पर. ३ कहते हैं. ४ और जीवको ५ अध्यात्म ६ सि०कहते हैं ❋भूतोंकी उत्पत्ति और उद्भवकरनेवाला ७ सि० जो देवतोंका उद्देशकरके द्रव्यका ❋ त्याग ८ सि०सो कर्मसंज्ञित है. ९ टी० कर्म है संज्ञा जिसकी उसको कर्मसंज्ञित कहते हैं. तात्पर्य यज्ञमें है ५ चैतन्यंयदधिष्ठानंलिंगदेहश्चयःपुनः॥ चिच्छायालिंगदेहस्थातत्संघोजीवउच्यते॥अधिष्ठान जो चैतन्य, और सूक्ष्मशरीर और सूक्ष्मशरीरमें उसी चैतन्यका प्रतिबिम्ब, इन सबके संघातको जीव कहते हैं ५ ॥ ३ ॥

मू०अधिभूतंक्षरोभावःपुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोहमेवात्रदेहेदेहभृतांवर ॥ ४ ॥

क्षरः १ भावः २ अधिभूतम् ३ पुरुषः ४ च ५अधिदैवतम् ६देहभृतांवर ७अत्र ८ देहे ९ अधियज्ञः १० अहम् ११ एव १२ ॥ ४ ॥

अ०उ० तीनप्रश्नोंका उत्तर इसमंत्रमें है. नाशवान् १ पदार्थको २ अधिभूत ३ सि० कहते हैं ❋पुरुषको ४।५ अधिदैव ६ सि० कहते हैं❋हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ७ इस ८ देहमें ९ अधियज्ञ १० मैं ही ११।१२ सि० हूं ❋ टी० देहादिपदार्थ नाशवान् हैं. ।२ जिसकरके यह सब जगत् पूर्ण होरहा है, अथवा सब शरीरोंमें जो विराजमान है, उसको वैराजपुरुष या हिरण्यगर्भ भी कहते हैं. सूर्यमंडलके मध्यवर्ति और व्यष्टि सबदेवतोंका अधिपति समष्टि देवता है. ४ पीछे अर्जुनने यह भी प्रश्न कियाथा कि किस प्रकार वो अधियज्ञ इसदेहमें स्थित है, और अधियज्ञ किसको कहते हैं. श्रीभगवानने कहा कि अंतर्यामि अधियज्ञ मैं हूं. इसीकहनेसे यह जानलेना, कि ईश्वर अंतर्यामी देहमें आकाशवत् स्थित है, जो सबका साक्षी, और बुरे भले कर्मोंके फलका देनेवाला है. और वो असंग है. यह समझना चाहिये. तात्पर्य यह है कि ऐसा ईश्वरको समझनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है. ॥ ४ ॥

मू० अन्तकालेचमामेवस्मरन्मुक्त्वाकलेवरम् ॥
यःप्रयातिसमद्भावंयातिनास्त्यत्रसंशयः ॥ ५ ॥

अन्तकाले १ च २ माम् ३ एव ४ स्मरन् ५ यः ६ कलेवरम् ७ मुक्त्वा ८ प्रयाति ९ सः १० मद्भावम् ११ याति १२ अत्र १३ संशयः १४ न १५ अस्ति १६ ॥ ५ ॥ अ० उ० सातवें प्रश्नका उत्तर इसमंत्रमें हैं. अर्थात् मुक्तिका मुख्य उपाय यह है. अंतकालमें १।२ मुझ अन्तर्यामिका ३, ही ४ स्मरण करता हुवा ५ जो ६ अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ६ शरीरको ७ त्याग कर ८ सि० अर्चिरादिमार्गकरके❋जाता है, ९ सो १० कारणब्रह्मको ११ प्राप्त होता है. १२ इसमें १३ संशय १४ नहीं १५ है १६ ॥ ५ ॥

मू० यंयंवापिस्मरन्भावंत्यजत्यन्तेकलेवरम् ॥
तंतमेवैतिकौन्तेयसदातद्भावभावितः ॥ ६ ॥

यम् १ यम् २भावम् ३ स्मरन् ४ वा ५ आपि ६ अंते७कलेवरम् ८ त्यजति ९ कौन्तेय १० तम् ११ तम् १२ एव १३ एति १४सदा १५ तद्भावभावितः १६ ॥ ६ ॥ अ० उ० अन्तकालमें जिसपदार्थका चितवन करेगा, उसीको प्राप्त होगा यह कहते हैं. जिस १ जिस २ पदार्थका ३ स्मरण करता हुवा ४।५।६ अन्तकालमें ७ शरीरको ८ त्यागता है. ९ हे अर्जुन१०तिसतिसको ११।१२ ही १३ प्राप्त होता है. १४ सि० क्योंकि *सदा १५ तिसका चितवन करके वस होगया है चित्त जिसका १६ अर्थात् सदा जिसका चितवन रहेगा, वोही पदार्थ उसके मनमें वस जायगा. इसहेतूसे अन्तकालमें भी उसको वोही स्मरण होगा. १६ ॥ तात्पर्य ॥ बद्धोबद्धाभिमानी-स्यान्मुक्तामुक्ताभिमानिनः ॥किंवदन्तीहसत्येयंयामतिःसागतिर्भवेत् ॥ यह कहानी सच्ची है कि जिसको यह अभिमान है, अर्थात् यह मानता है कि मैं बद्ध हूं, परतंत्र हूं, परमेश्वरका दास हूं वो ऐसाही होगा. और जो आत्माको स्वतंत्र असंग मुक्त मानता है वो स्वतंत्र मुक्त होगा. जैसी जिसकी समझ है उसकी वोही गति होगी. इसहेतूसे परमानन्दके उपासक परमानन्दकोही प्राप्त होंगे. मूर्तियोंके उपासक मूर्तियोंको. स्त्री छोकरोंके उपासक स्त्री छोकरोंको. ॥ ६ ॥

मू०तस्मात्सर्वेषुकालेषुमामनुस्मरयुध्यच ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

तस्मात् १ सर्वेषु २ कालेषु ३ माम् ४ अनुस्मर५ युध्य ६ च ७ मयि ८ अर्पितमनोबुद्धिः ९ माम् १० एव ११ एष्यसि१२ असंशयः १३ ॥ ७ ॥ अ०उ० जबकि यह नियम है, कि सदा जिसपदार्थका चितवन रहेगा, अंतकालमें वो अवश्य यादमें आवेगा. इसवास्ते सदा परमेश्वरकाही चितवन करना चाहिये. और विनाअन्तःकरण शुद्ध हुवे परमेश्वरका स्मरण नहीं होसक्ता, इसवास्ते अन्तःकरणके

शुद्धिकेलिये स्वधर्मका अनुष्ठान करना चाहिये यह कहते हैं. तिसकारणसे १ सबकालमें २।३मुझअंतर्यामीका ४ स्मरण कर. ५ सि० जो न होसके तो *युद्ध कर ६ सि० क्यों कि युद्ध करना ही क्षत्रियोंका धर्म है.युद्ध करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है क्षत्रियोंका * और७मुझमें८अर्पित कीई है मन और बुद्धि जिसने९सि०ऐसा होकर तूं *मुझको१०ही११प्राप्त होगा१२सि०इसमें *संशय नहीं. १३ तात्पर्य प्रथम अंतःकरण शुद्ध करके और फिर मुझमें मन लगाकर, तूं मुझकोही प्राप्त होगा.इसमें संशय मत कर,कि युद्ध करनेसे अंतःकरण शुद्ध होगा वा नहीं. वेसंदेह अंतःकरण शुद्ध होगा. और फिर मेरा सदा स्मरण करके मुझको प्राप्त होगा. परमेश्वरमें जो मन नहीं लगता है, इसमें यही हेतु है, कि अंतःकरण शुद्ध नहीं. प्रथम उपाय मुक्तीका यही है, कि निष्काम होकर भलेप्रकार कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ ७ ॥

मू०अभ्यासयोगयुक्तेनचेतसानन्यगामिना ॥
परमंपुरुषंदिव्यंयातिपार्थानुचिंतयन् ॥८॥

पार्थ १ अनुचिंतयन् २ परमम् ३ पुरुषम् ४ दिव्यम् ५ याति ६ अभ्यासयोगयुक्तेन ७ चेतसा ८ अनन्यगामिना ९ ॥ ८॥ अ० उ० परमेश्वरका स्मरण करनेमें दो प्रकारके साधन हैं. एक अन्तरंग और दूसरा बहिरंग यज्ञादिनिष्कामकर्मोंका अनुष्ठान करना बहिरंग साधन है. और शमादि अंतरंग साधन है. क्रमसे दोनों प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है. इसविास्ते पहले मंत्रमें बहिरंगसाधन कहा. अब इसमंत्रमें अन्तरंगसाधन कहते हैं. हे अर्जुन १ सि० शास्त्रसे और गुरूसे जैसा स्वरूप परमेश्वरका निश्चय किया है, उसी प्रकार परमेश्वरका *चितवन करताहुवा २ परम ३ पुरुष ४ दिव्यको ५ प्राप्त होता है.६ अर्थात् कारणब्रह्मको अर्चिरादिमार्गकरके प्राप्त होता है. ६ सि० उसका अन्तरंगसाधन यह है कि

स्त्रीधनादिपदार्थोंसे मन हटाकर परमेश्वरमें लगाना योग्य है. जब जब किसीपदार्थमें मन जावे उसीसमय वहांसे हटाकर परमेश्वरमें लगाना इसको अभ्यासयोग कहते हैं. इस ❋अभ्यासयोगकरके युक्त ७ सि० जो चित्त ऐसे ❋चित्तकरके ८ सि० परमेश्वरका चितवन होसक्ता है,और दूसरा विशेषण उसचित्तका यह है कि पीछे इस-अभ्यासयोगके ❋ नहीं रहता है अन्यपदार्थमें जानेका स्वभाव जिसका. ९ तात्पर्य स्वाभाविक किसीपदार्थमें सिवाय परमेश्वरके मन नहीं जाता है. ऐसे चित्तकरके कि जिसके ये दो विशेषण कहे हैं.हे अर्जुन परमेश्वरका चितवन करताहुआ परमेश्वरको ही प्राप्त होता है. ॥ ८॥

मू० कविंपुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः सर्वस्यधातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात्

कविम् १ पुराणम् २ अनुशासितारम् ३ अणोः ४ अणीयांसम् ५ सर्वस्य ६ धातारम् ७ अचिन्त्यरूपम् ८ आदित्यवर्णम् ९ तमसः १० परस्तात् ११ यः १२ अनुस्मरेत् १३ ॥ ९ ॥ अ० उ० उसपर-मपुरुषके ये विशेषण हैं. और इसमंत्रका पीछले मंत्रकेसाथ सम्बन्ध है. सि० कैसा है वो परम पुरुष ❋सर्वज्ञ १ अनादिसिद्ध २ नियन्ता याने प्रेरक ३ सूक्ष्मसे ४ अतिसूक्ष्म ५ सबका ६ पालनेवाला ७ सि० अचिंत्यशक्तिमान् होनेसे, और अप्रमाणमहिमा और गुणप्रभावहोने-से, ❋ अचिंत्यरूप ८ आदित्यवत् स्वप्रकाशरूप अर्थात् ज्ञानस्व-रूप अग्निसूर्यवत् उसका प्रकाश नहीं समझना. केवल शुद्ध; ज्ञान, ज्ञप्ति, चित चिती, चैतन्यमात्र ९ सि० ऐसा अनुभव करना चाहिये. फिर इसीको व्यतिरेकमुखकरके कहते हैं ❋अज्ञानसे १० परे ११ सि० पूर्वोक्त ऐसे पुरुषको ❋जो १२ सि० शुद्धब्रह्मका जिज्ञासु ❋स्मरण करता है, १३ तात्पर्य सो उसीदिव्यपरमपुरुषको

प्राप्त होता है. पीछले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. फिर शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपआत्माको ज्ञानद्वारा प्राप्त होता है. ॥ ९ ॥

मू० प्रयाणकालेमनसाचलेनभक्त्यायुक्तोयोगबलेनचैव॥ भ्रुवोर्मध्येप्राणमावेश्यसम्यक्सतंपरंपुरुषमुपैतिदिव्यम् ॥ १० ॥

प्रयाणकाले १ अचलेन २ मनसा ३ योगबलेन ४ च ५ एव ६ प्राणम् ७ भ्रुवोः ८ मध्ये ९ सम्यक् १० आवेश्य ११ भक्त्या १२ युक्तः १३ सः १४ तम् १५ परम् १६ दिव्यम् १७ पुरुषम् १८ उपैति १९ ॥ १० ॥ अ० उ० इसप्रकार सच्चिदानंदपुरुषका जो स्मरण करता है, सो तिसही सच्चिदानंदको प्राप्त होता है यह कहते हैं. अंतकालमें १ अचल २ मनकरके ३ योगके बलसे ४।५।६ प्राणको ७ दोनोंभ्रूके ८ बीचमें ९ भलेप्रकार १० ठहरायकर ११ भक्तीकरके १२ युक्त १३ सि० जो पुरुष, जैसे पीछे कहा है. उसप्रकारका सच्चिदानंदका स्मरण करता है ॥ सो १४ तिस १५ पर १६ सि० ऐसे ॥ दिव्यपुरुषको १७।१८ प्राप्त होता है १९ टी० सिवायसच्चिदानंदनिराकारके किसीपदार्थमें यानेस्त्रीपुत्रधनमानापमानादिमें मन न जावे २।३ आसन प्राणायामादिके बलसे ४ सुषुम्नामार्गकरके प्राणको स्थिर करके ७।८।९।१०।११ उससमय सच्चिदानंदका ध्यान करना यही भक्ति है. ऐसी भक्ति करताहुवा १२।१३ परपुरुषसच्चिदानंदकोही प्राप्त होगा. अर्थात् सच्चिदानंदरूप हो जायगा. ॥ १० ॥

मू० यदक्षरंवेदविदोवदंतिविशंतियद्यतयोवीतरागाः॥ यदिच्छंतोब्रह्मचर्यंचरंतितत्तेपदंसंग्रहेणप्रवक्ष्ये ११॥

वेदविदः १ यत् २ अक्षरम् ३ वदन्ति ४ वीतरागाः ५ यतयः ६ यत् ७ विशन्ति ८ यत् ९ इच्छन्तः १० ब्रह्मचर्यम् ११ चरंति १२

तत् १३ पदम् १४ ते १५ संग्रहेण १६ प्रवक्ष्ये १७ ॥ ११ ॥
अ० उ० महावाक्योंका अर्थ विचारनेमें जो समर्थ हैं. अर्थात् निर्मल और तीव्रबुद्धीवाले जो अंतर्मुख हैं, वे तो उत्तम अधिकारी हैं. उनको मुक्तीकेवास्ते ब्रह्मविद्याका श्रवण करना यही उपाय मुख्य है.और जो मंदबुद्धि हैं और मंदवैराग्य हैं, गृहस्थ छोडकर जिन्होंसे ब्रह्मविज्जनोंका सेवन नहीं होसक्ता, अथवा ब्रह्मविद्याके पढानेवाले गुरू किसीकारणसे उनको प्राप्त नहीं होते, अथवा ब्रह्मविद्याके पढनेकी सामग्री (पुस्तकादि) नहीं मिलती है जिनको, ऐसे पुरुष मंद और मध्यम अधिकारी हैं मोक्षमार्गमें. उनकेलिये परम करुणाकर श्रीभगवान् ऐसा अच्छा उपाय बताते हैं, कि उसका अनुष्ठान करनेसे शीघ्र वेसंदेह ज्ञानद्वारा मुक्तीको प्राप्त होंगे. प्रथम उसमुक्तपदकी स्तुति करते हैं. फिर आगे दोश्लोकोंमें उसके प्राप्तीका उपाय कहेंगे. वेदके जाननेवाले १ जिसको २ अक्षर ३ कहते हैं ४ और दूर होगया है राग जिनका ५ सि० ऐसे * संन्यासी याने ज्ञाननिष्ठ महात्मा ६ जहाँ ७ प्रवेश करते हैं, ८ सि० और * जिसकी ९ इच्छा करतेहुवे १० सि० ब्रह्मचारी गुरुदेवजीके घर रहकर * ब्रह्मचर्यव्रत ११ करते हैं. १२ सो १३ पद १४ तेरेअर्थ १५ संक्षेपकरके १६ कहूंगा. १७ अर्थात् उसपदके प्राप्तीका उपाय तुझसे कहूंगा, कि जिसपदको वेदोंका तात्पर्य और सिद्धांत जाननेवाले अक्षरब्रह्म कहते हैं. और सब पदार्थोंमें दूर होगया है राग जिनका, याने न इसलोकके किसी पदार्थमें राग है न परलोकके किसी पदार्थमें. ऐसे विरक्त साधु महात्मा विज्ञानी महापुरुष जिस परमपदमें प्रवेश करते हैं, और जिसपदकी इच्छाकरके ब्रह्मचारी काश्यादिक्षेत्रोंमें जाकर और वहां गुरुदेवकी टहल करके सांगोपांग वेदोंका अध्ययन करते हैं.अर्थात् वेदशास्त्र भलेप्रकार पढते हैं, विचार करते हैं, ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित रहते हैं. ऐसे पदके प्राप्तीका उपाय तुझसे कहूंगा. सावधान होकर सुन. ॥ ११ ॥

मू० सर्वद्वाराणिसंयम्यमनोहृदिनिरुध्यच॥
मूर्ध्न्याधायात्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम्॥१२

सर्वद्वाराणि १ संयम्य २ मनः ३ हृदि ४ निरुध्य ५ च ६ आत्मनः ७ प्राणम् ८ मूर्ध्नि ९ आधाय १० योगधारणाम् ११ आस्थितः १२ ॥१२॥ अ० उ० उत्तमउपासना सनातनकी यह है, सोई दोमंत्रोंमें कहते हैं. सब इन्द्रियोंके; द्वारोंको १ रोककर २ मनको ३ हृदयमें ४ रोककर ५।६ अपने ७ प्राणको ८ मूर्द्धामें ९ ठहरायकर १० योगधारणाका ११; आश्रय किया हुवा १२ सि० परमगतीको प्राप्त होता है. ❋ अगले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. टी० चक्षुरादिका रूपादिकेसाथ संबंध नहीं होनेदेना, इसीको इन्द्रियोंका रोकना कहते हैं. अर्थात् देहयात्रासे सिवाय दर्शनादिक्रिया नहीं करना १।२ अन्तःकरणको] बहिर्मुख नहीं करना. अर्थात् बाहरके शब्दादिपदार्थोंका संकल्पविकल्प नहीं करना. सिवाय आत्माके किसीपदार्थ (भूतभविष्यत्) का चितवन नहीं करना. सिवायआत्माके और किसीपदार्थमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं करना.] अर्थात् आत्माही सत्य है. तात्पर्य सिवाय आत्माके और किसीको सत्य नहीं समझना. और देहादिकेसाथ तादात्म्यसंबंधकरके अहंकार नहीं करना. इसको अन्तःकरणका निरोध कहते हैं ३।४।५ प्राणायामके अभ्याससे प्राणके गतीको मस्तकमें निश्चल करना. तात्पर्य प्राणका निरोध करना चाहिये. प्राणके निरोधकरनेसे ही अंतःकरणका निरोध होता है. मनकी और प्राणकी एक गति है. ७।८।९।१० यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि ये आठयोगके अंग हैं. इसयोगका अवश्य आश्रा रखना चाहिये. अवश्य अनुष्ठान करना उचित है, जितना अपना सामर्थ्य हो. इसका अनुष्ठान कियेविना मनप्राणका निरोध कठिन है. जब कि प्राणमनका निरोध न हुवा तो आत्मानंदका; साक्षात्कार होना बहुत कठिन है.

और जीवन्मुक्तीका होना तो बहुत ही दुर्लभ है. पूर्वसंस्कारसे, ईश्वरके कृपासे, वा महात्माजनोंका अनुग्रह होनेसे आत्मानंदका साक्षात्कार होवेगा, तो यह दूसरी बात है. मार्ग तो अपरोक्ष ज्ञानका यही है. इसके पीछे विचार है, और इसका फल प्रत्यक्ष है. जिसको यह योग थोडासा भी प्राप्त हुवा है, उसको बहुत पढनेसुननेकी अपेक्षा नहीं. १२

मू० ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यःप्रयातित्यजन्देहंसयातिपरमांगतिम् ॥ १३ ॥

ओम् १ इति २ एकाक्षरम् ३ ब्रह्म ४ व्याहरन् ५ माम् ६ अनुस्मरन् ७ यः ८ देहम् ९ त्यजन् १० प्रयाति ११ सः १२ परमाम् १३ गतिम् १४ याति १५ ॥ १३ ॥ अ० उ० ओम् इस (शब्द) का उच्चारण करना वेदोंमें बहुत जगे लिखा है. और इसका बडा प्रत्यक्ष परिचय है. ओम् १ यह २ एक अक्षर ३ सि० ब्रह्मका वाचक होनेसे * ब्रह्मस्वरूप है, ४ सि० इसको दीर्घस्वरसे * उच्चारण करताहुवा ५ सि० और इसका वाच्य जो ईश्वर मैं हूं * मुझसच्चिदानन्द ईश्वरका ६ स्मरण करताहुवा ७ जो अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ८ शरीरको ९ छोडकर १० सि० अर्चिरादिमार्ग करके * जाता है ११ सो १२ परम् १३ गतीको १४ प्राप्त होता है. १५ अर्थात् ऐसे उपासकको फिर जन्म नहीं होता ब्रह्मलोकमें जाकर ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूपआत्माको प्राप्त होता है. १५ तात्पर्य जैसे घंटेका शब्द एकवेर तो बढे चलाजाताहै, फिर सहज सहज कम होकर जहांसे उठाथा वहांही समाजाता है. इसीप्रकार ओंकारका दीर्घस्वरसे उच्चारण करना चाहिये. थोडेदेर पीछे स्थितहोकर मकारमें थमजाना. यह उपासना बहुत बढकी है. ॥ ओंकारःसर्ववेदानांसारस्तत्त्वप्रकाशकः ॥ तेनचित्तसमाधानंमुमुक्षूणांप्रकाश्यते ॥ असंख्यात श्लोकोंमें ओंकारका अर्थ है, वेदशास्त्रोंमें बहुतजगे जो नामोच्चारणका

माहात्म्य लिखा है, वहां तात्पर्य इसीनामके उच्चारण करनेसे है। और तारकमंत्र यही है. चारोंवेद, षट्शास्त्र, और पुराणादि इसकी टीका हैं. इसका जपकरनेका विधि महात्माओंसे श्रवणकरके अवश्यही अनुष्ठान करना चाहिये. अन्तकालमें एकवार उच्चारणकरनेसे जो परमगतीको प्राप्त होता है, तो फिर क्या कहना है कि जो पहलेसे अभ्यासकरनेवाले परमगतीको प्राप्त हों. यह ओंकार सब वेदोंका सार महत्तत्त्वका प्रकाशकरनेवाला और चित्तका समाधानकरनेवाला ऐसा है. ॥ १३ ॥

मू० अनन्यचेताःसततंयोमांस्मरतिनित्यशः ॥
तस्याहंसुलभःपार्थनित्ययुक्तस्ययोगिनः॥ १४॥

अनन्यचेताः १ यः २ माम् ३ सततम् ४ नित्यशः ५ स्मरति ६ पार्थ ७ तस्य ८ नित्ययुक्तस्य ९ योगिनः १० अहम् ११ सुलभः १२ ॥ १४ ॥ अ० उ० इसप्रकार अन्तकालमें धारणकरके मेरा स्मरण नित्य प्रतिदिन अभ्यासकरनेवाला ही करसक्ता है. विना अभ्यासके अंतकालमें मेरा स्मरण कठिन है. यह बात पहले भी कह चुके हैं. श्रीभगवान् फिर भी उसीका स्मरण कराते हैं. नहीं है अन्यपदार्थमें मन जिसका १ अर्थात् सिवायपरमेश्वरके और किसीपदार्थ (पुत्र मित्र स्त्री धनादि) में नहीं है चित्त जिसका १ सि० ऐसा ब्रह्मका जिज्ञासु ❋ जो २ मुझको ३ निरन्तर ४ प्रतिदिन ५ स्मरता है ६ हे अर्जुन ७ तिस ८ नित्ययुक्त ९ योगीको १० मैं सुलभ ११।१२ सि० हूं औरको नहीं ❋ टी० प्रातःकालसे सायंकालपर्यंत और सायंकालसे प्रातःकालपर्यंत अंतर न पडे. अर्थात् आठोंप्रहरके बीचमें निद्रा, शौच, स्नान, और भोजनादि, प्रमितक्रियाकेविना, सिवाय नारायणके और किसी पदार्थका चितवन न हो ४ जबतक जीवे (कोईएक

दिन वा महीना, वा वर्ष, वा शतवर्ष,) तवतक उसके वीचमें सिवा-यसच्चिदानन्दके और कहीं मन मुख्य होकर न जावे. ९ ऐसे समाहितचित्तको मैं सुलभ हूं. अर्थात् अंतकालमें मेरी प्राप्ति उसको बेसन्देह सुखपूर्वक होगी. ॥ १४॥

मू० मामुपेत्यपुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवन्तिमहात्मानःसंसिद्धिंपरमांगताः ॥१५॥

महात्मानः १ माम् २ उपेत्य ३ पुनः ४जन्म ५ न ६आप्नुवन्ति ७ परमाम् ८ संसिद्धिम् ९ गताः १० दुःखालयम् ११ अशाश्वतम् १२ ॥ १५ ॥ अ० उ० आपके प्राप्तीमें क्या लाभ है, इसप्रश्नके उत्तरमें यह कहते हैं. महात्मा १ अर्थात् विरक्त, वैराग्यवान् १ मुझको २ प्राप्त होकर ३ अर्थात् सच्चिदानन्दरूपहोकर ३ फिर४जन्मको ५ नहीं ६ प्राप्त होते हैं. ७ सि० क्योंकि वे जीवते ही ❋परम८ सिद्धिको ९ अर्थात् जीवन्मुक्तीको ८।९ प्राप्त होगये हैं. १० सि० कैसा है. वो जन्म ❋दुःखोंका स्थानयाने खान है. ११सि० कैसा भी यह नहीं कि ऐसाही वना रहे, क्यों कि दूसरा विशेषण उसका यह है कि ❋ अनित्य है. १२ अर्थात् क्षणभंगुर है. दूसरेक्षणमें दुसरा जन्म होते देर नहीं लगती. १२॥ १५ ॥

मू० आब्रह्मभुवनाल्लोकाःपुनरावर्त्तिनोर्जुन ॥
मामुपेत्यतुकौन्तेयपुनर्जन्मनविद्यते ॥ १६ ॥

अर्जुन १ आब्रह्मभुवनात् २ लोकाः ३ पुनरावर्तिनः ४ कौन्तेय५ माम् ६ उपेत्य ७तु ८पुनः ९ जन्म१० न ११ विद्यते १२॥ १६॥ अ० उ० ब्रह्मलोकादिके प्राप्तीमें क्या आपकी प्राप्ती नहीं. सच्चिदानंदरूपहोनेमेंही आपकी प्राप्ति है, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज कहते हैं. कि नहीं है. सि० क्यों कि❋ हे अर्जुन १ ब्रह्मलोकसे लेकर २ सि० जितने सावयव ❋लोक ३ सि० हैं सव❋ पुनरावर्तिवाले हैं

४ अर्थात् सबलोकोंमें (वैकुंठादिमें भी) जाकर लौट आता है मनुष्यलोकमें. और जो ब्रह्मकेसाथ मुझसच्चिदानंदरूपको प्राप्त होता है, सो शुद्धसच्चिदानंदनिराकारका उपासकही प्राप्त होता है. उससे सिवाय सब लौट आते हैं. क्यों कि वे मुझ शुद्धसच्चिदानंदके उपासक नहीं अर्थात् ज्ञाननिष्ठ नहीं वे भेदवादी हैं. ४सि०और ❋हे अर्जुन५ मुझ शुद्धसच्चिदानंदके उपासक तो ❋ मुझसच्चिदानंदरूपको६प्राप्त होकर ७।८दूसरे ९ जन्मको १० नहीं ११ प्राप्त होते हैं. १२तात्पर्य ब्रह्मलोकका अर्थ यह नहीं समझना कि वो लोक ब्रह्माजीका है, उसमें केवल ब्रह्माजीके उपासक जाते हैं, और रामकृष्ण विष्णुशिवादिके उपासक गोलोक वैकुंठादिलोकोंमें जाते हैं. वे नित्य हैं. यह सब अर्थबाद है. और स्थूलबुद्धिवालोंकेलिये स्थूल अर्थात् रोचकवाक्य हैं. क्योंकि सबदेवतोंके उपासक अपने अपने स्वामीके लोकको सबसे बडा और नित्य कहते हैं. प्रत्युत यह कहते हैं. कि इससे सिवाय कोई दूसरा लोक है नहीं. सिवाय इसके गोलोकादिका बरनन वेदोंमें तो है नहीं, पुराणोंमें सुना जाता है. स्वर्गका बरनन वेदोंमें बहुतजगे है. पूर्वमीमांसावाले वेदका प्रमाण देकर स्वर्गको नित्य, अनादि, ऐसा कहते हैं. अब विचारना चाहिये कि स्वर्गको श्रीभगवाननें क्यों अनित्य कहा, जो श्रुति हैं, वे रोचक वाक्य हैं. उनको अर्थवाद समझना चाहिये. अब विचारो कि वेदके श्रुतीको तो अर्थवाद और रोचक माना, फिर पुराणोंके वाक्योंको रोचक और अर्थवाद माननेमें क्यों शंका करते हो. प्रत्युत पुराणोंका वाक्य तबतक प्रमाणके योग्य नहीं, कि जबतक उसवाक्यके अनुसार श्रुति न पावें. क्यों कि कितने पुराण सन्दिग्ध हैं. स्पष्ट यह बात हम कहते हैं, कि भागवत दो प्रसिद्ध हैं. उनमेंसे एक बेसंदेह मनुष्यकृत है. जबकि एकपंडितने एक पुराण बनाकर अठारहसहस्रश्लोकोंका प्रचार करदिया, तो क्यों न संशय पडेगा, उ-

नपुराणोंमें कि जो श्रुतीके अनुसार न होगा. तात्पर्य ब्रह्मलोक पूर्णब्रह्मनारायणका लोक है. पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदके उपासक उसलोकमें जाते हैं. जब वोही अनित्य है, तो औरोंके अनित्यतामें क्या सन्देह है. ब्रह्मलोकमें जाकर कोईतो ब्रह्माजीकेसाथ मुक्त होजाते हैं, और कोई लौट आते हैं. यह बातभी इसीअध्यायमें आगे कहेंगे.॥ १६ ॥

मू०सहस्त्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणोविदुः ॥
रात्रियुगसहस्रांतांतेहोरात्रविदोजनाः॥ १७ ॥

अहोरात्रविदः १ जनाः २ ते ३ ब्रह्मणः ४ यत् ५ अहः ६ सहस्रयुगपर्यन्तम् ७ विदुः ८ रात्रिम् ९ युगसहस्रान्ताम् १० ॥ १७॥ अ० उ० ब्रह्मलोकादि इसहेतूसे अनित्य हैं. दिनरातके जाननेवाले, अर्थात् कालकी संख्या करनेवाले १ सि० जो ❀ पुरुष २ वे ३ ब्रह्माजीका ४ जो ५ दिन ६ सि० है, उसको ❀ सहस्रयुगपर्यन्त ७ (४३२००००००) कहते हैं ८ अर्थात् सत्ययुग (१७२८०००) त्रेता (१२९६०००) द्वापर (८६४०००) कलियुग (४३२०००) इन चारों जुगोंका जोड (४३२००००)वर्ष होते हैं. (४३२००००) को (१०००) से गुणाजावे तो चार अर्ब बत्तीस करोड (४३२०००००००) वर्ष होते हैं. चार अर्ब बत्तीसकरोड वर्षका ब्रह्माजीका एक दिन होता है. ८ सि० और रात्रिभी इतनेहि वर्षोंकी होती है❀रात्रीको ९ सि० भी ❀ युगसहस्रांता १० सि० कहते हैं. इसप्रकार महीनों और वर्षोंकी कल्पना करके शतवर्षकी अवस्था (आयुष्य) ब्रह्माजीका है. जिसदिन ब्रह्माजी प्रयाण करते- हैं, उसीदिन सबलोक सावयव नाश हो जाते हैं. दिनरात ब्रह्माजीकी आठअर्ब चौसठकरोड वर्षोंकी होती है. (८६४००८००००)इससंख्याके निरूपण करनेका तात्पर्य वैराग्यमें है❀टी०हजारयुगोंपर अन्त है जिसका उसको सहस्रयुगपर्यंत कहते हैं. और हजारयुगोंका

अंत है जिसका उसको युगसहस्रान्ता कहते हैं. ७ सहस्रयुगशब्दका तात्पर्य सहस्रचौकडीमें है. ॥ १७ ॥

मू॰ अव्यक्ताद्व्यक्तयःसर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमेप्रलीयंतेतत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

अहरागमे १ सर्वाः २ व्यक्तयः ३ अव्यक्तात् ४ प्रभवन्ति ५ रात्र्यागमे ६ अव्यक्तसंज्ञके ७ तत्र ८ एव ९ प्रलीयन्ते १० ॥ १९ ॥ अ॰ उ॰ यह मनुष्यलोक और कई लोक इससे ऊपरके और नीचेके ब्रह्माजीके रातमेंही नष्ट होजाते हैं. और रातभर कारणरूप हुवे सब अविद्यामें रहते हैं. सि॰ फिर * दिनके आगममें १ अर्थात् ब्रह्माजीका दिन उदय होतेही १ सब २ व्यक्ति ३ अर्थात् सबभूत आकाशादिकार्यकेसहित ३ अव्यक्तसे ४ अर्थात् कारणरूपसे ४ प्रकट होजाते हैं. ५ और रात्रीके आगममें ६ अव्यक्त संज्ञा है. जिसकी ७ तिसमें ८ ही ९ लीन होजाते हैं. १० टी॰ स्थावर जंगम सब ब्रह्माजीके स्वप्नअवस्थामें लय होजाते हैं. और जाग्रदवस्थामें उसी स्वप्नमेंसे सब प्रकट होजाते हैं. तात्पर्य यह संसार ब्रह्मलोकादि और ब्रह्मादिकेसहित सब स्वप्न है. यह समझकर सिवाय सच्चिदानंद-आत्माके अन्य किसीपदार्थमें प्रीति न करना, क्यों कि सब अनित्य हैं. अनित्यपदार्थ वर्तमानकालमेंभी दुःखका हेतु होता है. ॥ १८

मू॰ भूतग्रामःसएवायंभूत्वाभूत्वाप्रलीयते ॥
रात्र्यागमेवशःपार्थप्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अयम् १ भूतग्रामः २ सः ३ एव ४ अवशः ५ अहरागमे ६ भूत्वा ७ पार्थ ८ रात्र्यागमे ९ प्रलीयते १० भूत्वा ११ प्रभवति १२ ॥ ॥ १८ ॥ अ॰ उ॰ यह नहीं समझना कि नूतन सृष्टीमें नये जीव उत्पन्न होते हैं. क्यों कि जीव नित्य और अनादि हैं. और संसार अनादि सांत है. इसवास्ते यह श्लोक वैराग्यके लिये कहते हैं. यह

१ भूतोंका समूह २ सि०जो पूर्वकल्पमें लय होगयाथा ❋सो ३ ही ४ परतंत्रहोकर ५ अर्थात् अविद्याके वसहोकर ५ दिनके आगममें ६ सि० प्रकट ❋ होकर ७ हे अर्जुन ८ रात्रीके आगममें ९ लय होजाता है, १० सि०और फिर दिनके आगममें स्थूलसूक्ष्म ❋होकर ११ प्रकट होता है. १२ टी० भूत्वा भूत्वा ऐसा दोवार कहनेसे यह अभिप्राय है, कि जवतक ज्ञान नहीं होता तवतक यह चक्र चलाही जाताहै. इसवास्ते अवश्य ज्ञानमेंही यत्न करना चाहिये अथवा इसश्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि हे अर्जुन यह भूतोंका समुदाय जो प्रथमकल्पमेंथा. सोई अवश हुवा रात्रीके आगममें. होकर फिर लय होकर फिर होकर लय हो जाता है. और दिनके आगममें प्रकट होजाता है. तात्पर्य इस अन्वयमेंभी वो हीहै. अक्षरोंका जोड और प्रकारका है. ॥ १९ ॥

मू०परस्तस्मात्तुभावोन्योव्यक्ताव्यक्तात्सनातनः॥
यःससर्वेषुभूतेषुनश्यत्सुनविनश्यति ॥ २० ॥

तस्मात् १ अव्यक्तात् २ तु ३ यः ४ सनातनः ५ भावः ६ अव्यक्तः ७ सः ८ परः ९ अन्यः १० सर्वेषु ११ भूतेषु १२ नश्यत्सु १३ न १४ विनश्यति १५ ॥ २० ॥ अ० उ० सावयवलोकोंको अनित्यकहकर शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपको परात्पर नित्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं. और उसीको परमगति, अपना धाम, और अपनेसे अभिन्न कहते हैं. अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूपपरमेश्वरसे जूदा कोई धाम नहीं और न कोई जूदा मुक्तिपदार्थ है. पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानंदनित्यमुक्तआत्माको जानना यही मुक्ति है, और यही परधाम है. और यही परमेश्वरका दर्शन अर्थात् प्राप्ति है. इससे भिन्न सव भ्रान्ति है, यह कहते हैं दोश्लोकोंमें. और तीसरे श्लोकमें प्रथम यह पद है कि पुरुषःसपरः वहांतक अन्वय है. सि०चराचरका कारण जो अव्यक्त७❋तिससे १

अर्थात् पूर्वोक्त १ अव्यक्तसे २ भी ३ जो ४ सनातन ५ पदार्थ ६ अव्यक्त ७ सि० है ❋ सो ८ श्रेष्ठ ९ और विलक्षण १० सि० है. कैसा है. वो कि ❋ सबभूतोंके ११ । १२ नाश हुवेपरभी १३ नहीं १४ नष्ट होता है. १५ टी० सोपाधिक याने मायोपहितब्रह्मको कारण अव्यक्त ऐसा कहते हैं. और शुद्धसच्चिदानंदाखंडनित्यमुक्ताद्वैतैकरसनिराकारको शुद्ध अव्यक्त कहते हैं. ज्ञानकालमें उपाधीका नाश होजाता है. फिर केवल अद्वैतमायारहित अखंडसच्चिदानंद रहजाता है. इसीको अव्यक्त निराकार ऐसा कहते हैं. ॥ २० ॥

मू० अव्यक्तोक्षरइत्युक्तस्तमाहुःपरमांगतिं ॥
यंप्राप्यननिवर्त्तन्तेतद्धामपरमंमम ॥ २१ ॥

अव्यक्तः १ अक्षरः २ इति ३ उक्तः ४ तम् ५ परमाम् ६ गतिम् ७ आहुः ८ तत् ९ मम १० परमम् ११ धाम १२ यम् १३ प्राप्य १४ न १५ निवर्तन्ते १६ ॥ २१ ॥ अ० उ० शुद्धअव्यक्तसच्चिदानंदको अद्वैत सिद्ध करते हैं, सच्चिदानंदसे जूदा कोई और पदार्थ नहीं. अव्यक्तको १ सि० ही ❋ अक्षर २ कहते हैं ३।४ और तिसको ५ सि० ही ❋ परमा ६ गति ७ अर्थात् मोक्ष, मुक्ति ७ कहते हैं. ८ और सोई ९ मेरा १० परम ११ धाम १२ सि० है. कैसा है. वो धाम कि ❋ जिसको १३ प्राप्तहोकर १४ नहीं १५ लौटकर आते हैं. १६ अर्थात् फिर सच्चिदानंदजीवको उपाधीका संबंध नहीं होता. क्योंकि ज्ञानसे उपाधीका अत्यंत अभाव होजाता है. १६ तात्पर्य सबदुःखोंकी निवृत्तीको और परमानंदके प्राप्तीकोही परमगति, और मुक्ति, और परमधाम, ऐसा कहते हैं. गोलोक, सत्यलोक, वैकुंठ, अयोध्या, वृन्दावन, और कैलासादि सब इसी अव्यक्त सच्चिदानंदपरमधामके नाम हैं. इसप्रकार समझकर जो वैकुंठादिको नित्य परात्पर कहे, तो उसका कहना सत्य

है. और जो उनको सावयव और सच्चिदानंदसे भिन्न कहे, अर्थात् वैकुंठादिको तो श्रेष्ठ मंदिर बतावे, और विष्णुआदिदेवतोंको उन मंदिरादिलोकोंका स्वामी भिन्न बतावे, यह अर्थवाद है, अधिकारीप्रति स्थूल रोचकवाक्य हैं. इसमंत्रमें यह अर्थ स्पष्ट है कि परमात्मासे परमात्माका धाम भिन्न नहीं. क्यों कि परमात्मा निराकार है. आश्रा साकारोंको चाहाता है. परमेश्वर अपनेको अव्यक्त, अमूर्त, अक्षर, अखंड, अविनाशी ऐसा कहते हैं ऐसा अर्थ स्पष्ट सुन देखकर भी, जो फिर परमेश्वरको और उनके धामको सावयव याने साकार ऐसा परमार्थमें बतावे, वो मूर्खतम बिनापुच्छका पशु है जिसका भगवद्वाक्यमें विश्वास नहीं. ॥ २१ ॥

मू० पुरुषःसपरःपार्थभक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यान्तःस्थानिभूतानियेनसर्वमिदंततम् ॥ २२ ॥

पार्थ १ सः २ परः ३ पुरुषः ४ भक्त्या ५ लभ्यः ६ तु ७ अनन्यया ८ यस्य ९ भूतानि १० अन्तःस्थानि ११ येन १२ इदम् १३ सर्वम् १४ ततम् १५ ॥ २२ ॥ अ० उ० परमगतीके प्राप्तीका उपाय सबसे श्रेष्ठ मुख्य ज्ञानलक्षणा अनन्यपराभक्ति है. इसीको उत्तमपुरुष और परमपुरुष परमात्मा कहते हैं. ॥ पुरुषान्नपरंकिंचित्साकाष्ठासापरागतिः॥ श्रुतीने यह कहा कि पुरुषसे परश्रेष्ठ कुच्छ नहीं. यही पुरुष परात्पर अवधि है. और यही परमगति है. हेअर्जुन १ सो २ परम ३ पुरुष ४ अर्थात् परब्रह्मपूर्णनारायण सच्चिदानंद ४ भक्तीकरके ५ प्राप्त होता है, ६ सि० यह तु शब्द विलक्षण अर्थमें आता है. इसजगे विलक्षणता यह है, कि भजन कीर्तन सेवा प्रदक्षिणा इत्यादि भक्तीका अर्थ नहीं. क्योंकि आगे उसके अनन्यया यह विशेषण है. श्रीभगवान् कहते हैं कि परमात्मा भक्तीकरके प्राप्त होता है. परन्तु कैसी भक्ति करके कि ❋

अनन्यकरकेही ७।८ तात्पर्य सिवायसच्चिदानन्दके अन्य अर्थात् दूसरा कोई और पदार्थ जिसके वृत्तीमें नहीं रहा ऐसी वृत्ति करके परमात्मा प्राप्त होता है. घंटाबजाना परिक्रमाकरना यह तो बालक और मूर्ख बहिर्मुख विषयी भी करसक्ते हैं. सुंदरपदार्थमें सबकाही मन लगजाता है, सिवाय इसके यह बात स्पष्ट है, कि श्रीभगवान् अर्जुनको उपदेश करते हैं, श्यामसुंदरस्वरूपतो अर्जुनको प्राप्त ही है,सच्चिदानंद निराकार आत्माकाही उसको ज्ञान नहीं.उसीको परम पुरुष श्रीभगवान् बताते हैं. जिसके ९ भूत १० सि० आकाशादि ❋भीतर स्थित हैं ११ अर्थात् सबजगत् सोपाधिक सच्चिदानंद ऐसे कारणईश्वरमें स्थित हैं ११ सि० और ❋जिसकरके १२ यह १३ सब १४ अर्थात् जगत् १४ व्याप्त है. १५ अर्थात् सबजगतमें सच्चिदानंद अस्ति भाति प्रिय ऐसा होकर पूर्ण होरहाहै. १५॥ २२॥

मू० यत्रकालेत्वनावृत्तिमावृत्तिंचैवयोगिनः ॥
प्रयातायांतितंकालंवक्ष्यामिभरतर्षभ ॥ २३ ॥

यत्र १ काले २ तु ३ प्रयाताः ४ योगिनः ५ अनावृत्तिम् ६ आवृत्तिम् ७ च ८ एव ९ यांति १० भरतर्षभ ११ तम् १२ कालम् १३ वक्ष्यामि १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० ज्ञानी जीतेही ब्रह्माजीसे स्वतंत्र होकर मुक्त होता है.और ब्रह्मका उपासक ब्रह्माजीके साथ परतंत्र होकर मुक्त होता है.और कर्मनिष्ठावाले, और भेदउपासनावाले, सदा परतंत्र रहते हैं. स्वर्गादिमें जाकर सालोक्यादिमुक्तीको प्राप्त होकर फिर जन्ममरणचक्रमें घूमते हैं. सो इनपरतंत्रमुक्तीवालोंका मार्ग मुझसे सुन. आगे दोश्लोकोंमें कहूंगा, विनाब्रह्मज्ञान जो इनका हाल होता है. बहिर्मुख विषयी पामर, इनका तो कुछ प्रसंगही नहीं. वे तो संसारमें डूबे रहते हैं. जिसमार्गमें १।२।३ जातेहुवे ४ योगी ५ अनावृत्ति ६ और आवृत्तीको ७।८।९ प्राप्त होते हैं. १० हे अर्जुन ११

तिस १२ मार्गको १३ कहूंगा मैं १४ सि॰ तुझसे आगे दोश्लोकोंमें. अभिप्राय मेरा उनमार्गोंके कहनेसे यह है, कि जबतक बने स्वतंत्र होना चाहिये ॥ पराधीनस्वप्नेसुखनाहीं। सोचविचारदेखमनमाहीं,, टी॰ कर्मनिष्ठ और भेदवादि आवृत्तीमार्ग होकर परतंत्र और पराधीन हुवे स्वर्गाधीन होकर स्वर्गादिमें जाते हैं. ब्रह्मके उपासक अनावृत्ति मार्ग होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं. ज्ञानी महात्मा स्वतंत्र होकर सबसे पहले मुक्त होते हैं. वे किसीके घर नहीं जाते. निजानंदको प्राप्त होते हैं. ॥ २३ ॥

मू॰अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लःषण्मासाउत्तरायणम् ॥
तत्रप्रयातागच्छन्तिब्रह्मब्रह्मविदोजनाः ॥ २४ ॥

अग्निः १ ज्योतिः २ अहः ३ शुक्लः ४षण्मासाः ५ उत्तरायणम् ६ तत्र ७ प्रयाताः ८ ब्रह्मविदः ९ जनाः १० ब्रह्म ११ गच्छन्ति १२ ॥ २४ ॥अ॰ उ॰ सच्चिदानंदब्रह्मनिराकारके उपासकोंका अनादिमार्ग कहते हैं. अर्थात् ब्रह्मपदकी ये मन्ज़िल मन्ज़िल हैं. अग्नि १ ज्योति २ दिन ३ शुक्लपक्ष ४ छह महीने उत्तरायण ५।६ इसमार्गमें ७ जाते हुवे ८ ब्रह्मके जाननेवाले ९ अर्थात् ब्रह्मोपासक ९ जन १० सि॰ क्रमक्रमसे अर्थात् उत्तरोत्तर मन्ज़िल दरमन्ज़िल ॥ ब्रह्मको ११ प्राप्तहोंगे १२ अर्थात् फिर उनको जन्म न होगा. ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूपआत्माको प्राप्त होंगे. ११ टी॰अग्नीके देवताको, फिर ज्योतीके, फिर दिनके, फिर शुक्लपक्षके, फिर उत्तरायणके देवताको प्राप्त होंगे. तात्पर्य यह है, कि पहले अग्नीके देवताके पास ब्रह्मोपासक पहुंचेंगे. फिर वो देवता ज्योतीके देवताके पास पहुंचादेगी. इसी प्रकार आगेभी कल्पना करलेना. इसीप्रकार ब्रह्मलोकमें पहुंचेंगे. फिर ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जावेंगे. अग्न्यादिशब्द, देवतोंका उपलक्षण है, तात्पर्य देवतोंसे है. यह मार्ग सनातन श्रौतोपासनाका है. इसप्र-

कारकी उपासना इनदिनोंमें बहुत कम करते हैं. प्रत्युत इसके जान नेवालेभी कम है. हेतु इसमें यह है कि रूप, रंग, नृत्य, ये हैं जिस उपासनामें उस उपासनामें आसक्तहोरहे हैं. यथार्थ उपासना और भक्ति यह है, कि जिसभक्तीकी वेदशास्त्रोंमें वडाई है. ॥ २४ ॥

मू० धूमोरात्रिस्तथाकृष्णःषण्मासादक्षिणायनम् ॥
तत्रचांद्रमसंज्योतिर्योगीप्राप्यनिवर्तते ॥ २५ ॥

तथा १ धूमः २ रात्रिः ३ कृष्णः ४ षण्मासा ५ दक्षिणायनम् ६ तत्र ७ योगी ८ चांद्रमसम् ९ ज्योतिः १० प्राप्य ११ निवर्तते १२ ॥ ॥ २५ ॥ अ० उ० कर्मनिष्ठावालोंका आवृत्तिमार्ग कहते हैं. अर्थात् वो रस्ता, कि जिसरस्ते जाकर लौटआते हैं. जैसे अनावृत्तिमार्गवाले ब्रह्मवित् अग्न्यादिदेवताओंको पहले प्राप्त होकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं फिर उनको जन्म नही प्राप्त होता. तैसे १ सि० कर्मनिष्ठ अर्थात् आवृत्तिमार्गवाले धूमादिदेवतोंको पहलेप्राप्त होकर फिर स्वर्गलोकको प्राप्त होकर लौट आते हैं. उनकी मन्‌जिल यह हैं ❋ धूम २ रात्रि ३ कृष्णपक्ष ४ छहमहिने दक्षिणायन ५।६ इनरस्तोंमें ७ सि० जाता हुवा ❋ कर्मयोगी ८ चांद्रमस ९ ज्योतीको १० अर्थात् स्वर्गको १० प्राप्त होकर ११ लौट आता है. १२ सि० मनुष्यलोकमें. ❋ टी० पहले धूमकेपास जाताहै, फिर रात्रीके फिर कृष्णपक्षके, फिर दक्षिणायनके. इसप्रकार उत्तरोत्तर क्रमक्रमसे मन्‌जिल दरमन्‌जिल स्वर्गमें पहुंचता है. तात्पर्य जो निवृत्तिमार्गमें स्थित होकर अंतरंगउपासना करते हैं, अर्थात् सच्चिदानंद, अक्षर, निराकार, ऐसे आत्माका जो आराधन करते हैं, वे क्रमक्रमसे ब्रह्मलोकमें पहुंचकर मुक्त होंगे. कर्मनिष्ठ वहांका भोग भोगकर लौट आवेंगे. निषिद्धकर्मकरनेवाले नरकमें जाकर फिर मनुष्योंमें जन्म लेंगे. और अतिनिषिद्धकर्मकरनेवाले चौरासीलक्षयोनियोंमें भ्रमेंगे. ॥ २५ ॥

मू०शुक्ककृष्णेगतीह्येतेजगतःशाश्वतेमते ॥
एकयायात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्ततेपुनः ॥ २६ ॥

शुक्ककृष्णे १ एते २ गती ३ हि ४ जगतः ५ शाश्वते ६ मते ७ एकया ८ आवृत्तिम् ९ याति १० अन्यया ११ पुनः १२ आवर्तते ॥ १३ ॥ २६ ॥ अ० शुक्क और कृष्ण १ ये २ दोगति ३।४ जगतकी ५ अनादि ६ मानी हैं. ७ सि० क्योंकि संसार अनादि है. इसवास्ते इनदोनोंमार्गोंको भी अनादी मानते हैं महात्मा. हि यह शब्द स्पष्ट करता है कि यह बात वेदशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है. ❋ एककरके ८ अर्थात् शुक्कमार्गकरके ८ अनावृत्तीको ९ प्राप्त होता है, १०अर्थात् फिर उसको जन्म नहीं होता. ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजाता है, तबतक ब्रह्मलोकमें दिव्यभोग भोगता है. और ब्रह्मज्ञान श्रवण करता है १० सि० और ❋ अन्यकरके ११ अर्थात् दूसरे कृष्णमार्गकरके ११ फिर १२जन्ममरणको प्राप्त होता है१३तात्पर्य कृष्णमार्गकरके जो स्वर्गादिमें जाता है, वो लौट आता है. और जो शुक्कमार्गकरके जाता है, वो मुक्त होता है. टी० जगत् कहनेसे सब जगत् नहीं समझना. इसजगतमें ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ जो पुरुष हैं उनकी ये दोगती हैं. सबजगतकी नहीं. भेदवादीउपासकादिका कर्मनिष्ठपुरुषोंमें अंतर्भाव है. ज्ञान प्रकाशस्वरूप है, इसवास्ते उसको शुक्क कहा. और कर्म तम जडरूप है इसवास्ते उसका मार्ग कृष्ण कहा. स्पष्ट बात है कि ज्ञानमार्ग अज्ञानको दूर करसक्ता है. तात्पर्य यह है कि ज्ञानी प्रकाशवाले रस्ते जाते हैं, और अज्ञानी (कर्मी) अंधकारके रस्ते जाते हैं. अब विचारना चाहिये कि इनदोनोंमार्गोंमेंसे श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग है, वा कर्ममार्ग है. ॥ २६ ॥

मू०नैतेसृतीपार्थजानन्योगीमुह्यतिकश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषुकालेषुयोगयुक्तोभवार्जुन ॥ २७ ॥

पार्थ १ कश्चन २ योगी ३ एते ४ सृती ५ जानन् ६ न७मुह्यति ८ अर्जुन ९तस्मात्१०सर्वेषु ११ कालेषु १२ योगयुक्तः१३भव१४ ॥ २७ ॥ अ० उ० पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदका ध्यानकरनेवाला योगी इन- दोनों मार्गोंमें प्रीति नहीं करता. तात्पर्य यह है कि ब्रह्मलोकादिमें जा- नेकी इच्छा नहीं करता. ब्रह्माजीसे पहलेही मुक्त हुवा चाहता है. हे अ- र्जुन १ कोई २ योगी ३ इनदो ४ मार्गोंको ५ जानता हुवा ६ नहीं ७मो- हको प्राप्त होता है८सि०बहिर्मुखविषयी सबपदार्थोंके भोगनेकी इच्छा करते हैं.जैसे इसलोकके भोग वैसेही परलोकके क्यों कि दोनों अनित्य दुःखदायी हैं.जो कोई ब्रह्मलोकमें जाकर मुक्त होंगे उनको क्या दुःख है, इसका उत्तर यह है कि जैसे व्यवहारमें राजकरनेमें द्रव्य, ऐश्वर्य, और ईश्वरताके प्राप्तिमें और उनके साधनोंमें भी तो सुख मानते हैं,और कह तेहैं कि राज्य करनेमें क्या दुःख है,ऐसाही यह प्रश्नहै. विचार करोकि एकके मकानमें उसके आज्ञामें रहना दुःख है, वा सुख है.जिन्होंने सदा स्त्रीधनराजादिकी सेवा टहलकीई है उनको सेवामेंही सुख प्रतीत है. इसीहेतुसे परमेश्वरकेभी दास बना चाहते हैं ❋ हेअर्जुन ९ तिसकार- णसे १० सबकालमें ११।१२ योगयुक्त १३ होतूं. १४ टी०सच्चायोगी कोईभी ब्रह्मलोकादिकी इच्छा नहीं करता. क्यों कि इनमार्गोंको जा- नता है.और समझजाता है,कि जगेजगे धक्के खाकर ब्रह्मलोकमें पहुंच- ता है. फिर वहां ब्रह्माजी बूझते हैं कि तूं कौन है, ऐसी तूं तडाक नीच आदमी सहते है.महात्मा ऐसे जगे नहीं जाते जहां कोई तूं तडाक करे. इसवास्ते हे अर्जुन उत्साह और धीरजकी कमर बांध. दिनरात्रि गंगा- प्रवाहवत् शुद्धसच्चिदानंदका ध्यान कर. पूर्णसच्चिदानंदकोही प्राप्त होगा. ॥ २७ ॥

मू०वेदेषुयज्ञेषुतपस्सुचैवदानेषुयत्पुण्यफलंप्रदि- ष्टम् ॥ अत्येतितत्सर्वमिदंविदित्वायोगीपरं स्थानमुपैतिचाद्यम् ॥ २८॥

यत् १ पुण्यफलम् २ वेदेषु ३ यज्ञेषु ४ तपस्सु ५ च ६ एव ७ दानेषु ८ प्रदिष्टम् ९ योगी १० इदम् ११ विदित्वा १२ तत् १३ सर्वम् १४ अत्येति १५ च १६ आद्यम् १७ परम् १८ स्थानम् १९ उपैति २० ॥ २८ ॥ अ० उ० श्रद्धा वढानेके लिये योगकी स्तुति करते हैं. श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन सुन ध्याननिष्ठयोगीका माहात्म्य जो १ पुण्यफल २ वेदोंमें ३ सि० और ❋ यज्ञोंमें ४ और तपमें ५।६।७ सि० और ❋ दानमें ८ सि० वेदशास्त्र और महात्माओंनें ❋ कहा है. ९ अर्थात् सांग और सोपांगविधिवत्वेदोंके अध्ययन करनेमें जो पुण्यका फल होता है. कि जैसा शास्त्रने कहा है. ९ ध्याननिष्ठयोगी १० यह ११ जानकर १२ अर्थात् जो पीछे कहा, वो सब फल मुझको हुवा यह समझकर अथवा सप्तप्रश्नोंका अर्थ भलेप्रकार जानकर, और उनका भलेप्रकार अनुष्ठान करके. १२ तिस १३ सबको १४ उलंघ जाता है. १५ अर्थात् यह फल अवान्तरवीचका फल, जिसको गौण कहते हैं, उसको उलंघकर उससे श्रेष्ठफलको प्राप्त होता है. १५ फिर १६ आदि १७ पर १८ स्थानको १९ प्राप्त होता है. २० अर्थात् कारणब्रह्मको प्राप्त होता है. २० ॥ २८ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे महापुरुषयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवें अध्यायका प्रारम्भ हुवा ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ इदंतुतेगुह्यतमंप्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥ ज्ञानंविज्ञानसहितंयज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

इदम् १ तु २ ज्ञानम् ३ विज्ञानसहितम् ४ गुह्यतमम् ५ ते ६

प्रवक्ष्यामि ७ अनसूयवे ८ यत् ९ ज्ञात्वा १० अशुभात् ११ मोक्ष्यसे १२ ॥ १ ॥ अ० उ० इसअध्यायमें अचिन्त्यप्रभाव और अपनी अचित्यशक्ती निरूपण करके, तत्पदार्थकी त्वंपदार्थकेसाथ लक्ष्यार्थमें एकता दिखाकर, उसके प्रातीका सुलभ उपाय निरूपण करेंगे. और वो उपाय सबकेवास्ते साधारण है. सि० जो इसअध्यायमें कहना है ❋ यह १२ ज्ञान ३ अनुभवके साथ ४ गुह्यतम ५ तेरे अर्थ ६ कहूंगा. ७ सि० कैसा है. तू कि ❋ असूयारहित है. ८ अर्थात् किसीके गुणोंमें अवगुण नहीं आरोपण करता है ८ सि० किसीके गुणोंमें अवगुण आरोपण करना वडा अनर्थ है. दूसरेके गुणोंमें जो अवगुणोंका आरोप करेगा वो ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं इसविशेपणसे अर्जुनको ब्रह्मविद्याका अधिकारी दिखाया. कैसा है वो ज्ञान कि ❋ जिसको ९ जानकर १० अशुभसंसारसे ११ छूट जायगातूं. १२ टी० तु यह शब्द ऐसी जगे विशेप आता है. कि जहां पूर्वोक्तसे विलक्षण विशेष निरूपण होगा. धर्मतत्त्व गुह्य है और उपासनाका तत्त्व गुह्यतर है, और ज्ञानका तत्त्व गुह्यतम है. ५ केवल तेरे कल्याणके अर्थ तुझसे कहूंगा. मेरा कुछ मतलव नहीं ६ ऐसे कौन हैं कि जो गुणोंमें अवगुण निकालें. सुनो ज्ञाननिष्टामें जो तर्क करते हैं श्रद्धा नहीं करते. जानवूझ ब्रह्मविद्याका उलट अर्थ करते हैं. ८ तात्पर्य ब्रह्मविद्याका अधिकारी जानकर तुझसे कहूंगा. तूं मेरा भक्त है. इसज्ञानके आश्रेसे तूं मुक्त होगा. कोई कोई जो यह कहते हैं, कि बिनाअद्वैतब्रह्मज्ञानकेभी मोक्ष होजाता है, सो नहीं. किन्तु इसीज्ञानसे, कि जो विज्ञानके सहित मैं कहूंगा. जिससे आत्मा अद्वैत जानाजावे, उससे मोक्ष होगा. द्वैतज्ञानमें तेरे सन्देह नहीं. साक्षात् द्वैतउपासनाका फल मैं प्रत्यक्ष हूं. आत्माका यथार्थ ज्ञान तुझको नहीं वो मैं विलक्षण कहूंगा. इसवास्ते तु यह पद इसश्लोकमें है. ॥ १ ॥

मू०राजविद्याराजगुह्यंपवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमंधर्म्यंसुसुखंकर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

इदम् १ राजविद्या २ राजगुह्यम् ३ पवित्रम् ४ उत्तमम् ५ प्रत्यक्षावगमम ६ धर्म्यम् ७ कर्तुम् ८ सुसुखम् ९ अव्ययम् १० ॥ २ ॥ अ० उ० इसश्लोकमें ब्रह्मज्ञानके सब विशेषण हैं. यह १ सि० ब्रह्मज्ञान ❋ सबविद्याओंका राजा है. २ अर्थात् अठारह विद्या हैं, प्रसिद्ध यह सबका राजा है २ सि० और ❋ गुप्तपदार्थोंकाभी राजा है. ३ सि० क्यों कि कोई विरले महात्मा जानते हैं. और यह ❋ पवित्र ४ सि० है, क्यों कि निरवयवपदार्थ है. चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवानने कहा है, कि ज्ञानके सदृश और कोई पदार्थ पवित्र नहीं और सबसे ❋ श्रेष्ठ ५ सि० है. क्यों कि अनेकजन्मोंके पापोंको,अनादिकालके अविद्याका, एकक्षणमें नाशकर देता है. ❋ इष्टफलवाला है, ६ सि० क्यों कि आत्माका जीतेहुवेही अनुभव करदेता है. अर्थात् ज्ञानीको परात्परपरमानंदानित्यमुक्तकी प्राप्ती जीते ही होती है. क्यों कि ज्ञानियोंको जीवन्मुक्त कहते हैं. और ❋ सबधर्मोंका फल यही है,सबधर्मकर्मउपासना इसीकेवास्ते हैं ७ सि० और ❋ करनेको ८ अर्थात् अनुष्ठानकरनेके लिये ८ सुखाला है.९तात्पर्य सुखपूर्वक इसका अनुष्ठान होसक्ता है. क्यों कि अपना आत्मा सुखरूप है, सुखको सब जानते हैं, सुखपदार्थके जाननेमें कुछ प्रयत्न नहीं करने पडता. केवल इतना और समझना चाहिये कि मेरे हृदयमें जो यह सुख प्रतीत होता है, इसका अखंडअद्वैतपुंज मैंहूं.वसिष्ठजीनें श्रीरामचंद्रजीसे कहा है,किहे राम फूलके मलनेमें विलंब और यत्न होता है,ज्ञानकी प्राप्ति उससेभी जलदी होती है.क्यों कि स्वयंशुद्धआत्मा सदा प्राप्त है. केवल अज्ञान दूर होनां चाहिये. और अज्ञान दूर होनेमें पलभी काल नहीं लगता. मूर्ख वका

करते हैं, कि अजी ज्ञान बडा कठिन है. देखो श्रीभगवान् उनके मुखपर क्या धूल डालते हैं, जडपदार्थोंके जाननेमें ज्ञानकी इच्छा होती है. ज्ञानस्वरूपके जाननेमें क्या प्रयत्न चाहिये. जैसे कोई कहे कि मैं अपनी आँख नहीं देखता हूं. उसमूर्खसे कहना चाहिये, कि जिससे तूं सबको देखता है वो तेरी आँख है. और जैसे कोई बोले और कहे कि मेरे मुखमें जीव है वा नहीं, ऐसेही अज्ञानी कहते हैं, कि ब्रह्मज्ञान हमको है वा नहीं. सो निश्चयसे उनको ज्ञान नहीं, और न होगा. क्यों कि ज्ञानस्वरूप-आत्मासे पृथक् पदार्थको ब्रह्म जाना चाहते हैं, वो कैसे प्राप्त होगा. सि० और इसका फल ❋ अविनाशी १० सि० है, क्यों कि आत्मा नित्य है, आत्मासे पृथक् सबपदार्थ अनित्य हैं. प्रत्युत परमार्थदृष्टीकरके अभावरूप हैं ॥ २ ॥

मू० अश्रद्दधानाःपुरुषाधर्मस्याऽस्यपरंतप ॥
अप्राप्यमांनिवर्त्ततेमृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

परंतप १ अस्य २ धर्मस्य ३ अश्रद्दधानाः ४ पुरुषाः ५ माम् ६ अप्राप्य ७ मृत्युसंसारवर्त्मनि ८ निवर्तंते ९ ॥ ३ ॥ अ० उ० जब कि यह ब्रह्मज्ञान सबगुणसंपन्न है, तो बहुत लोग कर्मकांडी द्वैतवादी इसका क्यों नहीं आदर करते, यह शंका करके कहते हैं. हेअर्जुन १ इस २ धर्मके ३ अश्रद्धावाले ४ पुरुष ५ अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानमें श्रद्धा नहीं करते वे ५ मुझको ६ न प्राप्त होकर ७ जन्ममरणरूपसंसारमार्गमें ८ भ्रमा करते हैं. ९ तात्पर्य अन्तःकरण मैला होनेसे, और कर्मसमझसे, ब्रह्मविद्याका कर्मकांडी, द्वैतवादी, उपासकादि, श्रवण नहीं करते. इसहेतूसे वे इसपरम धर्मका अनुष्ठान नहीं करते. और जो श्रवणभी करते हैं, और पढतेभी हैं, तो उसका अर्थ उलटा समझते हैं. तात्पर्य अभिप्राय शास्त्रका

नहीं समझते, रोचक अर्थवादवाक्योंमें विश्वास करते हैं. सिद्धान्तमें श्रद्धा नहीं करते. इसहेतूसे उलटाही फल उनको मिलता है. अर्थात् वेदोक्तअनुष्ठान करनेसे परमफल (मुक्त) होना चाहिये, सो वे आप अपने मुखसे यह कहते हैं, कि हम वृन्दावनके गीदड शृगाल होजावें, परन्तु मुक्ति हम नहीं चाहते. इसवाक्यको विचारो कि जिनकी मुक्तिफलमें श्रद्धा नहीं, तो ज्ञाननिष्ठा तो मुक्तीका साधन है, उसमें उनकी श्रद्धा कब होसक्ती है. चतुर्थाध्यायमें कह चुके हैं, कि ज्ञानकू श्रद्धावान् प्राप्त होता है. यह जो लोग वाहिर्मुख हैं, और रूपरसादिहीमें सुख समझते हैं, अन्तःसुख नहीं जानते, यह वहिर्मुख होनाही ज्ञाननिष्ठामें अश्रद्धाका कारण है. और यह न समझना चाहिये कि भक्तिउपासनाके आश्रे संबंध आडमिसवहानेसे जो रूपका देखना और शब्दका सुनना है, यह विषय विषवत् नहीं, इनसे कुछ क्षती नहीं होती. किन्तु विषय सब बराबर हैं. केवल इतना भेद है, कि जैसे लोहेकी वेडी और सोनेकी वेडी. तात्पर्य लौकिक प्रसिद्धविषयोंसे वे अच्छे हैं यह बात कुछ बुरा माननेकी नहीं. विचार देखोकि रामलीलादिके देखनेवाले प्रायशः विषयी वहिर्मुख पामर होते हैं, वा प्रेमी, वैराग्यवान् विवेकी, या साधनसंपन्न ऐसे हैं. और शतपचास लोग जो नये श्रद्धापूर्वक ऐसे भक्तीमें लगेंगे, ऐसेभक्तीको पुण्यजनक मोक्षप्रदा, परात्पर ऐसी समझकरभी जो लगेंगे, वा लगते हैं, तो वे परिणाममें बहिर्मुखही रहते हैं. वा अन्तर्मुख शमदमादिसाधनसंपन्न होजाते हैं. तात्पर्य यह है कि जो ऐसाऐसा रस चाखते हैं, उनको ज्ञाननिष्ठा आपही फींकी लगेगी, यह व्यवस्था सुनी हुई है, अनुमानद्वारा मैंने नहीं लिखी, किन्तु अपने आखोंसे देखी हुई और वरती हुई लिखी है. ऐसे आदमियोंके सामने ज्ञानका नामभी लेना दुःखक है. ॥ ३ ॥

मू० मयाततमिदंसर्वंजगदव्यक्तमूर्त्तिना ॥
मत्स्थानिसर्वभूतानिनचाहंतेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

मया १ अव्यक्तमूर्त्तिना २ इदम् ३ सर्वम् ४ जगत् ५ ततम् ६ सर्वभूतानि ७ मत्स्थानि ८ अहम् ९ तेषु १० न ११ च १२ अवस्थितः १३ ॥ ४ ॥ अ० उ० ज्ञाननिष्ठाके अनधिकारियोंको फलकेसहित कहकर, और अर्जुनको ज्ञाननिष्ठामें श्रद्धावान् असूयारहित समझकर, अर्जुनको सन्मुखकरके ब्रह्मज्ञान कहते हैं. मुझ १ अव्यक्तमूर्त्तीकरके २ अर्थात् सोपाधिकसच्चिदानन्दकरके २ यह ३ सब ४ जगत् ५ व्याप्त होरहाहै. ६ तात्पर्य इन्द्रियमनका विषय जो जो पदार्थ है, सबमें निराकार, सत्, चित्, आनन्द, पूर्ण होरहा है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जिसमें सत्ता, चैतन्यता, और आनन्दता, नहो. सबभूत (सूक्ष्मस्थूल) ७ मुझसोपाधिकसच्चिदानंदमें स्थित हैं. ८ अर्थात् कल्पित हैं. ८ सि० जैसे शुक्तीमें रजत * मैं ९ तिनमें १० नहीं ११ तैसाही स्थित हूं १२ अर्थात् मैं असंग हूं मेरा किसीके साथ संबंध नहीं. जैसे यह कहते हैं, कि घटमें आकाश है सो नहीं. वास्तव घटही आकाशमें है. जो भीतरभी प्रतीत होता है, तो भी निर्विकार असंग है. १२ ॥ ४ ॥

मू० नचमत्स्थानिभूतानिपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्नचभूतस्थोममात्माभूतभावनः ॥ ५ ॥

भूतानि १ न २ च ३ मत्स्थानि ४ न ५ च ६ भूतस्थः ७ मे ८ योगम् ९ ऐश्वरम् १० पश्य ११ मम १२ आत्मा १३ भूतभृत् १४ भूतभावनः १५ ॥ ५ ॥ अ० उ० परमानंदस्वरूपनित्यमुक्तनिराकारपरमात्मामें यह त्रिगुणात्मकजगत् स्थूलसूक्ष्म और इन दोनोंका कारण अज्ञानकल्पित है. यहभी जिज्ञासूके समझानेके लिये अध्यारोपमें कहाजाता है. वास्तव तीनकालमें यह जगत् नहीं. अखंड अद्वैत नित्य मुक्त ऐसा हैं. कल्पितशब्दभी कल्पित है. जो यह कहो

कि इसकल्पनारूपक्रियाका कर्त्ता,कर्म,और अधिकरण, कौन है.सुनो, यहसब अविद्या है.अर्थात् कर्ता कर्म क्रिया अधिकरण यह सब अविद्या है.तात्पर्य कल्पना करनेवाली भी अविद्या,कल्पनाभी अविद्या,जोपदार्थ कल्पना कीया जाता है,सो भी अविद्या,जिसमें कल्पना होती है,सो भी अविद्या, जिसकरके, जिसके लिये, जिससे होती है कल्पना, वो सब अविद्या है. अविद्याका लक्षण क्या है, सुनो.॥ अविद्यायाअविद्यात्वमिदमेवहिलक्षणम्॥अविद्याका अविद्याही रूप है. और जो कोई यह प्रश्नकरे, कि चैतन्य रूप आत्मामें अज्ञान होना असंभव है. उसीसे फिर बूझना जब तुम आपही कहतेहो, हमतो प्रथमही कह चुके हैं, कि तीनकालमें अज्ञान है नहीं. और जो यह कहो, कि अज्ञान हमको और बहुतलोगोंको प्रतीत होता है. तो विचारना चाहिये, कि आत्मा चैतन्य है,वा जड है. प्रत्यक्षमें प्रमाण और युक्तियोंकी क्या आकांक्षा है. और तुम कैसे कहते हो कि ज्ञानरूपमें अज्ञान नहीं बनसक्ता. यह बातों अलौकिक हैं. सि० सोई परमेश्वर इसमंत्रमें कहते हैं, कि वास्तव ❀भूत १न२ ।३ मुझमें स्थितहैं४और न ५।६सि० मैं ❀भूतोंमें स्थित हूं.७ सि० हेअर्जुन ❀मेरे ८ सि० इस ❀ योग और ईश्वरताको ९।१०देख. ११ अर्थात् विचारकर११ सि०कि ❀मेरा १२ आत्मा १३अर्थात् मैं ही १३ सि०असंगनित्य मुक्तनिर्विकार हूं. और मैं ही ❀भूतोंको धारण करता, हूं १४भूतोंको पालन करता हूं. १५टी० भूतोंको जो धारण करे उसको भूतभृत् कहते हैं, जो भूतोंका पालन करे उसको भूतभावन कहते हैं. और योगशब्द जो इसमंत्रमें है, इसका अर्थ अचिन्त्यशक्ति है. जगतके रचनास्थितिलयकेविषय बुद्धीको बहुतश्रम देना न चाहिये. केवल अपने कल्याणपर दृष्टि रखना योग्य है. जीवको स्पष्ट प्रतीत यह होता है कि मैं अज्ञानकरके जगतमें फँस रहा हूं. अपनी व्यवस्था और अपने घरकी व्यवस्था मुझको मालूम नहीं. फिर परमे-

श्वरकी व्यवस्था और उनके लीलाकी व्यवस्था मैं कैसे जानसकूंगा. तात्पर्य अज्ञानके निवृत्तीका उपाय करना चाहिये. जो बूझोकि क्या उपाय है, स्पष्ट बात है कि अज्ञान, ज्ञानसे दूर होता है. जो बूझे ज्ञान किसको कहते हैं, उत्तर इसका बहुत सीधा और सहज है, परंतु अधिकारिके समझमें आता है. और इसगीताशास्त्रमें जगेजगे ज्ञानका उपदेश है. प्रथम ज्ञानमें श्रद्धा करना योग्य है. और जितेन्द्रिय होकर तत्पर होना चाहिये.सद्गुरुओंके कृपासे ज्ञान प्राप्त होजायगा. जो श्रीभगवानने ऊपर निरूपण कीया सब समझमें आजायगा. केवल इसबातमें विद्या और चर्चाका काम नहीं तीनों साधन जो पीछे कहे, वे प्रथम हैं. पीछे विद्या और चर्चाभी चाहिये. ॥ ५ ॥

मू०यथाकाशस्थितोनित्यंवायुःसर्वत्रगोमहान् ॥
तथासर्वाणिभूतानिमत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

यथा १ महान् २ सर्वत्रगः ३ वायुः ४ नित्यम् ५ आकाशस्थितः ६ तथा ७ सर्वाणि ८ भूतानि ९ मत्स्थानि १० इति ११ उपधारय १२ ॥ ६ ॥ अ० उ० दोश्लोकोंमें जो अर्थ पीछे निरूपण कीया, उसको दृष्टांत देकर स्पष्ट करते हैं. जैसे १ अप्रमाण २ सबजगतमें ३ वायु ४ सदा ५ आकाशमें स्थित है ६ तैसेही ७ सब ८ भूत ९ मुझमें स्थित हैं. १० यह ११ जानतूं. १२ ॥ ६ ॥

मू०सर्वभूतानिकौन्तेयप्रकृतिंयांतिमामिकाम् ॥
कल्पक्षयेपुनस्तानिकल्पादौविसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

कौंतेय १ कल्पक्षये २ सर्वभूतानि ३ मामिकाम् ४ प्रकृतिम् ५ यांति ६ कल्पादौ ७ पुनः ८ तानि ९ अहम् १० विसृजामि ११ ॥ ७ ॥ अ० उ० जगत् जैसे स्थित है सो व्यवस्था कहकर सृष्टीकी और लयकीभी व्यवस्था कहते हैं. अर्थात् श्रीभगवान् यह कहते हैं, कि जैसे जगतके स्थितिकालमें मैं असंग हूं. ऐसेही सृष्टि और

प्रलयकालमेंभी. मैं असंग हूं. हे अर्जुन १ कल्पके क्षयमें २ अर्थात् प्रलयकालमें. २ सबभूत३ सि० सिवाय ब्रह्मवित्के ❋ मेरे ४ प्रकृतीको५अर्थात् अपरा जो त्रिगुणात्मिका माया उसको ५प्राप्त होतेहैं ६सि०मायामें लय होजाते हैं सूक्ष्मरूप होकर.और ❋ कल्पके आदीमें ७ अर्थात् जगतके सृष्टिसमय ७ फिर ८ तिनको ९ मैं १० रच देताहूं, ११ अर्थात् प्रकट करदेताहूं. ११ इत्यभिप्रायः तात्पर्य माया और उसका कार्य, और परा प्रकृति जीवरूप, सब परतंत्र हैं, स्वतंत्र कोई नहीं. सब ईश्वराधीन हैं. इसवास्ते सदा ईश्वरका आराधन करना योग्य है, जो स्वतंत्र और मुक्त होना चाहतेहो तो. ॥ ७ ॥

मू०प्रकृतिंस्वामवष्टभ्यविसृजामिपुनःपुनः॥
भूतग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात्॥ ८ ॥

स्वाम् १ प्रकृतिम् २ अवष्टभ्य ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ भूतग्रामम् ६ पुनः ७ पुनः ८ विसृजामि ९ प्रकृतेः १० वशात् ११ अवशम् १२ ॥ ८ ॥ अ० उ० आप निराकारनिरवयव जगतको कैसे रचते हो, यह शंका करके कहते हैं. अपने १ प्रकृतीको २ वसकरके ३ अर्थात् मायाके साथ सम्बन्धकरके ३ इस ४ समस्त ५ भूतोंके समूहको६ वारंवार ७।८ मैं रचता हूं. ९ सि० कैसा है. यह भूतग्राम अर्थात् जगत् ❋ प्रकृतीके १० वससे ११ परतंत्र है. १२ तात्पर्य यह जगत् अपने कर्मोंके वस में है, स्वतंत्र नहीं. इत्यभिप्रायः टी० त्रिगुणात्मक जो अज्ञान है, वो शुद्धसत्वप्रधान हुवा माया कहा जाता है. उस मायाके सम्बन्धसे जगत् रचता हूं. और उसके मैं वस नहीं, वो मेरे आधीन है. और वोही अज्ञान मलिनसत्वप्रधान हुवा अविद्या कहा जाता है. यह समस्तजगत् अविद्याके आधीन होरहा है. अर्थात् अवश याने परतंत्र होरहा है. उनके कर्मोंके अनुसार वारम्वार उनको मैं रचता हूं. वारम्वार

कहनेसे यह तात्पर्य है, कि यह जगत् अनादि है. असंख्यात वार उत्पन्न हूवा और नाश हूवा. यह सब जगत् अविद्याके वसमें है, और अविद्या ईश्वरके वसमें है. ॥ ८ ॥

मू०नचमांतानिकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ ९ ॥

धनंजय १ तानि २ कर्माणि ३ माम् ४ नच ५ निबध्नंति ६ उदासीनवत् ७ आसीनम् ८ तेषु ९ कर्मसु १० असक्तम् ११ ॥ ९ ॥ अ० उ० जब कि रचना, पालना, और संहार करना इनक्रियोंको आप कर्ते हो, तो जीववत् आपको वे कर्म बंधन कैसे नहीं करते यह शंकाकरके कहते हैं, हे अर्जुन १ सि० जगतकी रचना इत्यादि जो कर्म हैं ❋ वे २ कर्म ३ मुझको ४ नहीं ५ बन्धन करते हैं. ६ सि० क्योंकि मैं ❋ उदासीनवत् ७ स्थित हूं ८ तिन कर्मोंमें ९ । १० सक्त नहीं. ११ टी० असक्त और आसीन, ये दोनों मांशब्दके विशेषण हैं. उदासीनभी होना, और कर्मभी करना. इसका तात्पर्य कर्मके फलविषय उदासीन रहना यह है, कर्मफलके विषय उदासीन होकर जो जीव कर्म करे तो वो भी कर्मसे बद्ध नहीं होता, फिर मैं कैसे बद्ध होसक्ता हूं ॥ ९ ॥

मू०मयाध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥
हेतुनानेनकौंतेयजगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

प्रकृतिः १ मया २ अध्यक्षेण३ सचराचरम्४ सूयते५ कौंतेय ६ अनेन ७ हेतुना ८ जगत् ९ विपरिवर्तते १० ॥ १० ॥ अ० उ० जगतके रचनादिक्रियामें विषमदोष प्रतीत होता है,यह शंका करके कहते हैं. प्रकृति १ मुझ २ अध्यक्षरूपकरके ३ अर्थात् मुझ निमित्तमात्रकारणकरके, ३ सचराचर ४ सि० जगतको ❋ उत्पन्न करती है. ५ हे अर्जुन ६ इस ७ हेतूकरके ८ जगत् ९ वारम्वार उत्पन्न

होता है. १० टी० जगतके रचनादिक्रियामें प्रकृति उपादानकारण है, और मैं निमित्तकारण हूं. वो प्रकृति मेरी अचिन्त्यशक्ति है, मुझसे भिन्ननहीं. इसवास्ते मैं अभिन्ननिमित्तोपादानकारण हूं यह बात दृष्टांतके सहित भले प्रकार आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें लिखी है, निमित्तकारण होना और उदासीन रहना, यह दोनों बनसक्ते हैं, जैसे प्रकाश व्यवहारमें निमित्तकारण है. विनाप्रकाश कुछ व्यवहारभी नहीं होसक्ता. और प्रकाशमें जो बुराभला कर्मकरे, वो प्रकाशको नहीं लगेगा, क्रिया करनेवालेको लगेगा. इसीप्रकार यह विषमदोष मायामें है, ईश्वरमें नहीं. यह बात भले प्रकार विचारनेके योग्य है. जो ईश्वर जगतका कर्ता कहाजावे, तो ईश्वरमें विषमदोष आता है. और जो मायाको कर्ता कहाजावे, तो वो जड है. और जो जगतको अनीश्वर कहाजावे, तो वेदशास्त्रादि सब व्यर्थ हूवे जाते हैं. तात्पर्य यह है, कि ईश्वर जगतके अभिन्न निमित्तोपादानकारण हैं. इसमें कोई दोष नहीं. विनाचैतन्यका आश्रा याने सम्बंधलिये स्वतंत्र माया जगतको नहीं रचसक्ती. और प्रकाशवत् ईश्वरको निमित्तमात्र होनेमें कुछ दोष नहीं. ॥ १० ॥

मू०अवजानन्तिमांमूढामानुषींतनुमाश्रितम् ॥
परंभावमजानन्तोममभूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

मूढाः १ माम् २ अवजानंति ३ मानुषीम् ४ तनुम्५आश्रितम्६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानंतः १० भूतमहेश्वरम् ११ ॥ ११॥

अ० उ० जैसा स्वरूप मैंने पीछे कहा, वैसा बहुत जीव मुझको नहीं जानते हैं. मनुष्योंके बराबर मुझको समझकर मेरा अनादर करते हैं. मेरे वाक्यमें जो श्रद्धा नहीं करते यही मेरी अवज्ञा है. मुझ निराकारको हटकरके अज्ञानसे मोहकेवस होकर साकार कहते हैं. विवेकरहित १ अर्थात् नित्य क्या है और अनित्य क्या है, इसप्रकार आ-

त्माअनात्माका जिनको विचार नहीं ऐसे मूढ १ मुझको अनादृत करते हैं. २।३ अर्थात् मेरी अवज्ञा याने तिरस्कार करते हैं२।३सि० कौनसे मेरे स्वरूपका अनादर करते हैं. कि जो ❀मनुष्यसम्बन्धी४ शरीरका ५ सि० मैंने ❀आश्रय कीया है ६ अर्थात् दुष्टोंके नाश करनेको और साधुजनोंकी याने अपने भक्तोंकी रक्षा करनेको मनुष्यकेसा आकारवाला जो मैं प्रतीत होता हूं, उसस्वरूपको मूर्ख मनुष्य राजपुत्रइत्यादीही समझते हैं. यही मेरी अवज्ञा है. (१ से ६ तक) मेरे ७ परम ८ सि० ऐसे ❀प्रभावको९नहीं जानते १०सि० अर्थात् मुझको ऐसा नहीं समझते कि यह ❀भूतोंके महेश्वर हैं.११ तात्पर्य अध्यारोपापवादन्यायकरके निष्प्रपंचवस्तु जो सच्चिदानंद उसमें त्रिगुणात्मकजगत्प्रपंच निरूपण कीया है, महात्मा और वेदोंने. वास्तेसमझाने जिज्ञासुके. जैसे तत्पदका वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और त्वंपदका वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ अध्यारोपमें निरूपण कीया है. और ईश्वरको जगतका अभिन्ननिमित्तोपादानकारण बरणन कीया. फिर लक्ष्यार्थमें दोनोंपदोंकी एकता जैसे कही तिनसम्बन्ध और लक्षणादिकरके. इसप्रकार जो जीव ईश्वरको नहीं जानते अथवा जानबूझ अनादर करते हैं. याने शास्त्रीयज्ञानहोभी जाता है शास्त्रके पढने सुननेसे. तो भी उसमें श्रद्धा नहीं करते. अध्यारोप और पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतियोंका प्रमाण देदेकर वृथा वाद करते हैं. यही ईश्वरकी अवज्ञा याने अनादर है. और अपने मनुष्यशरीरमें जो सच्चिदानंद आत्मा है, उसके परमप्रभावको नहीं जानते. वर्णाश्रमवाला, औरोंका दास, सिद्धान्तमेंभी सदा समझते हैं. यह सच्चिदानंदकी अवज्ञा याने तिरस्कार है. इतिहाससे इसबातको स्पष्ट करते हैं. इतिहास, एक साहुकार बालकलडकेको घरमें छोड परदेशमें चला गया. लडका तरुण होकर वास्ते तालाश करने अपने पिताके निकला और ढूंढता ढूंढता पिताके पास पहुंच गया. न पिताने पहचाना न

लडकेने. और उसलडकेको टहलकरनेकेलिये नौकर रखलिया. लडकेने कहाभी उसदेवदत्तसाहुकारका नाम लेकर, कि मैं अमुक-देवदत्तसाहुकारका लडका हूं. अपने पिताका तालाश करनेको आया हूं,उनका पता नहीं लगता. कोई कहीं बताता है, और कोई कहीं. और मैं महादीन होगया. यह साहुकारने सुनाभी और कुछ विश्वासभी हुवा, परंतु मूर्खसहवासियोंके उपदेशसे उसमें विश्वास न किया,कि यही मेरा लडका है.सदासे उसी लडकेके तालाशमेंथा. दिनरात्रि चाहताथा कि किसी प्रकार मेरा लडका मुझको मिले. एक आदमी सच्चा सद्गुणाकर विद्यावान् उसलडकेको पहचानताथा. उसी जगेका रहनेवालाथा, जहां साहुकारका पहला घरथा. दैवयोग-से वो आदमी साहुकारके पास जापहुंचा. लडकेको देखा पहचाना, परंतु साहुकारकी प्रीति उसलडकेमें पुत्रवत् न देखी. इसहेतुसे और अन्यकारणसेभी साहुकारसे यह न कहा कि इसलडकेमें तेरी प्रीति पुत्रवत् क्यों नहीं. और नकभी साहुकारने बूझाथा. इसवास्तेभी कुछ न कहा. एकदिन एकांतमें साहुकारने उसआदमीसे अपने लडकेके स्नेहकी व्यवस्था कहकर लडकेका पता बूझा, और लड-केके कहनेके अनुसार कुछ विश्वास हूवाथा, और मूर्खसहवासियोंके कहनेसे लडकेमें विश्वास नहीं कीयाथा, यह सब व्यवस्था कही. उसआदमीने कहा कि तेरा लडका बेसंदेह यही है. साहुकार यह सु-नकर पुत्रानंदमें मग्न होगया. लडकेको छातीसे लगाकर बहुत सन्मान कीया. और उनसहवासी उपदेशकरनेवाले मंत्रियोंको मूर्ख और लालची समझा. उसआदमीकेसाथ बहुत स्नेह कीया. अपना सुहृद हितकारी समझा, इसदृष्टांतके एक एक पदमें दार्ष्टांत है. भलेप्रकार विचारो जैसे साहुकारने लडकेका तिरस्कार कीया मूर्ख-मंत्रियोंके उपदेशसे. इसीप्रकार अज्ञानीजीवोंने तिरस्कार कीया है, सच्चिदानंदआत्माका मूर्खोंके उपदेशसे. जो कोई कहे कि साहुकारके

सहवासी मंत्रि उपदेष्टा तो मूर्ख अनजानथे उनका क्या दोषथा, उत्तर उसका यह है, कि मूर्खोंको मंत्रि और उपदेष्टा बनाना किसने कहा है; दार्ष्टांतमें साहुकारके उपदेशकरनेवालोंके जगे लोभी, लालची कमसमझ, विषयी, बहिर्मुख, प्रवृत्तिमार्गवाले, ऐसे उपदेशकरनेवालोंको समझना चाहिये. जैसे साहुकारके सहवासीमंत्रियोंने जानबुझकर अपने खानेपीनेका हर्ज समझकर, लडकेमें विश्वास न होने दीया. इसी प्रकार प्रवृत्तिमार्गवाले उपदेष्टा, आचार्य, गुरु, ये अपने विषयानंदमें ब्रह्मज्ञानको विक्षेपका हेतु समझकर, आत्मामें विश्वास नहीं होने देते. नानाप्रकारकी युक्ति और तर्क सिखाते हैं. तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें मोहनभोग और तस्मै आदिपदार्थ खानेको, और फुलबंगलाहिंडोरानृत्यादि देखनेको, रागादि सुननेको, स्त्री छोकरेराजादिधनी विषयी जन चेलीचेलाकरनेको, नहीं मिलते हैं. इसहेतुसे ब्रह्मज्ञानको भूसेका कूटना बताते हैं. ऐसे पुरुषोंके लक्षण और कर्मफलके सहित अगलेमंत्रमें श्रीभगवान् निरूपण करेंगे ॥ ११ ॥

मू० मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः ॥
राक्षसीमासुरींचैवप्रकृतिंमोहिनींश्रिताः ॥ १२ ॥

मोघाशाः १ मोघकर्माणः २ मोघज्ञानाः ३ विचेतसः ४ राक्षसीम् ५ आसुरीम् ६ च ७ एव ८ प्रकृतिम् ९ मोहिनीम् १० श्रिताः ११ ॥ १२ ॥ अ० उ० जबतक शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपपूर्ण ब्रह्मआत्माको नहीं जानता है, तबतक उनका कर्म, ज्ञान, और आशा, ये सब निष्फल हैं. क्योंकि जो पदार्थ अनित्य है, अथवा दीवारमें प्रेतवत् प्रतीत होता है, ऐसे पदार्थोंकी आशा रखना, और उनके लिये प्रयत्न करना, ये सब निष्फल हैं. अनित्यफलकी जो प्राप्तीभी होजावे, सोभी निष्फल है. प्रत्युत पहलेसे सिवाय दुःखकी हेतु है. प्राप्त होकर जो पदार्थ जाता रहे, उससे उसपदार्थका न मिलना अच्छा है. पी-

छलेमंत्रमें जो मूढ शब्द है, उसीके इसमंत्रमें विशेषण हैं. सि० कैसे हैं वे मूढकि ❋ निष्फल हैं आशा जिनकी १ अर्थात् सच्चिदानंदरूप आत्मासे अन्यईश्वरके मिलनेकी जों आशा रखते हैं. यह आशा उनकी निष्फल है. १ सि० क्योंकि आत्मासे भिन्न परमार्थमें कोई ईश्वर नहीं और ❋ निष्फल हैं कर्म जिनके २ अर्थात् आत्मासे पृथक् ईश्वर वा स्वर्गवैकुंठादीके प्राप्तीकेलिये जो प्रयत्न करते हैं, वो-भी निष्फल हैं. सि० इसमेंभी वोही पहला हेतु है. और ❋ निष्फल हैं ज्ञान जिनके ३ अर्थात् आत्मासे भिन्न जोजोपदार्थ, उन्होंने सच्चे समझरक्खे हैं. सब झूटे हैं. क्यों कि आत्मा अद्वैत एक है. इस-विशेषणसे यहभी समझना चाहिये कि वे बालकवत् मूढ अज्ञानी नहीं, अनात्मशास्त्रका उनको बहुत ज्ञान है. आत्माको तो यथार्थ नहीं जानते अनात्मपदार्थ बहुत जानते हैं. आत्माके यथार्थ न जा-ननेमें और मोघाशादि होनेमें, ये दो हेतु हैं. १।२।३ सि० प्रथम यह कि वे ❋ विक्षिप्तचित्त हैं ४ अर्थात् बहिर्मुखविषयी मूर्खवत् रूपरसा-दिविषयोंकी इच्छा रखते हैं. अंतःसुखमें वृत्ति नहीं लगाते, यह हेतु हेतुगर्भित विशेषण है. ४ सि० अर्थात इसहेतूमें दूसरा हेतू यह है कि ❋ राक्षसी ५ और आसुरीमाया ६।७।८।९ सि० इनका और ❋ मोहमयीका १० आश्रय कर रक्खा है. ११ अर्थात् जैसे असुर और राक्षसदेहाभिमानी होते हैं, ऐसेही अज्ञानी अनात्मदर्शी होते हैं. क्यों-कि जिसको अन्तरात्मानंद प्राप्त न होगा, वो बेसंदेह विषयानंदकी कामना रक्खेगा. कामनासे क्रोधादिअसुरराक्षसोंकेसा स्वभाव अव-श्य होगा. ११ तात्पर्य इनदोनोंमंत्रोंका ज्ञाननिष्ठामें प्रयत्नकरनेके लिये है. अनात्मदर्शियोंकी निष्ठा हटानेमें, और उनकी निन्दाकरनेमें तात्पर्य नहीं. क्योंकि प्रवृत्तिमार्गभी अधिकारीप्रति मोक्षमार्ग है. १२

मू० महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजन्त्यनन्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययम् ॥१३॥

पार्थ १ महात्मानः २ तु ३ अनन्यमनसः ४ दैवीम्५प्रकृतिम् ६ आश्रिताः ७ भूतादिम् ८ अव्ययम् ९माम् १० ज्ञात्वा ११ भजंति १२ ॥ १३ ॥ अ० उ० ऐसे पुरुष परमेश्वरका आराधन करते हैं. हेअर्जुन १ महात्मापुरुष २।३ अनन्यमन हूवे ४ दैवी ५ प्रकृतीका ६ आश्रय कीये हूवे ७ आकाशादिभूतोंका कारण ८ अविनाशी ९ मुझको १० जानकर ११ सेवते हैं. १२ टी० संसारको दुःखरूप, और मुक्तीको मुख्यपुरुपार्थ समझकर, संसारके विषयोंसे उपराम हूवे मोक्षमें जो प्रयत्न करते हैं, वें महात्मा हैं २ सिवाय श्रीनारायणके और किसीजगे पुत्रमित्रस्तुतिमानादीमें नहीं है मन जिनका ३ सोलवें अध्यायमें छब्बीस लक्षण दैवीसंपतके कहेंगे. उनसाधनोंकरके संपन्न अर्थात् धीरजवाले, इंद्रियोंको विषयोंसे विमुखकरनेवाले, ऐसे लक्षण हैं जिनमें, वे परमेश्वरकोही सेवते हैं. स्त्रीछोकरोंको और बहिर्मुखधनीकामी ऐसे जनोंको नहीं सेवते ॥ १३ ॥

मू०सततंकीर्त्तयन्तोमांयतंतश्चदृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्चमांभक्त्यानित्ययुक्ताउपासते॥१४॥

सततम् १ कीर्तयंतः २ माम् ३ उपासते ४ नित्ययुक्ताः५भक्त्या ६ माम् ७ च ८ नमस्यंतः ९ यतंतः १० च ११ दृढव्रताः १२॥१४ अ० उ० महात्मा इसप्रकार भजनकरते हैं,जैसा इनदोमंत्रोंमें बरणन करते हैं. सि० महात्मा ❋निरंतर१कीर्तन करतेहुवे२मुझको३ सेवते हैं. ४ अर्थात् मोक्षशास्त्रका पढना, पढाना और जिज्ञासुवोंको सुनाना, विष्णुसहस्रनामगीतादीका पाठ करना, नामोच्चारण करना, गुरुमंत्र और गायत्री जपना, और सबसे श्रेष्ठ यह है, कि गायत्रीका जप करना यही मेरी उपासना है. इसप्रकार महात्मा मेरी उपासना करते हैं, ४ सि० कैसे है वे कि सदा ❋युक्त हुवे५ प्रेमलक्षणाभक्ती

करके ६मुझको ७।८नमस्कार करते हैं ९ अर्थात् सदा यही स्मरण करते हैं, कि विश्वम्भरनारायण हमारे स्वामी हैं. यह समझकर बहुतप्रीतिनम्रताके साथ, ओंनमो नारायणाय इत्यादिमंत्र पढकर वारम्वार नमस्कार करते हैं ९ सि०फिर कैसे हैं, कि मोक्षमार्गमें सर्वांग लगाकर सदा ❀यत्न करते हैं१०।११ सि०जैसे धनस्त्रीकी चाहवाले रुपैयेकेलिये और स्त्रीकेलिये प्रयत्न करते हैं, और फिर कैसे हैं कि ❀दृढव्रत हैं जिनके १२ तात्पर्य ब्रह्मचर्यादिव्रतमें ऐसे दृढ हैं, कि जंहांतकवने स्वप्नमें भी वीर्यको स्खलित नहीं होने देते. बुद्धिपूर्वक वीर्यका त्याग करना तो महापामरोंपाजियोंका काम है. यद्यपि गृहस्थोंकेवास्ते अपने स्त्रीका संग करना कहीं कहीं लिखा है, परंतु वहांभी तात्पर्य उनका वीर्यके निरोधमेंही है. जो पुरुष वीर्यका निरोध नहीं करसक्ता उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्न करना कठिन है, क्यों कि घरके पूंजीका तो वृथा व्यय करता है, फिर यह कैसे विश्वासहो कि यह कुछ वाहरसे कमाईकरके इखट्टा करेगा. यह वीर्य एक अमोलप्रकाशमान रत्न है. जिसके भीतर यह वना रहेगा, वो भगवत्स्वरूपको देखसकेगा. और जो यह रत्न खोदीया तो परमेश्वरके दर्शनसे नैराश्य होवे. इसीप्रकार खोटाधन अपने खर्चमें नहीं लाना. किसीको किसीप्रकार दुःख नहीं देना. प्रारब्धपरमेश्वरपर विश्वास रखना, और भी वहुत ऐसे अनेक दृढव्रत नियम हैं, जिनमें यह सब परमेश्वरकी भक्ति है. ॥ १४ ॥

मू०ज्ञानयज्ञेनचाप्यन्येयजन्तोमामुपासते ॥
एकत्वेनपृथक्त्वेनबहुधाविश्वतोमुखम् ॥१५॥

ज्ञानयज्ञेन १ माम् २ यजंतः ३ उपासते ४ अन्ये ५ च ६ अपिं ७ एकत्वेन ८ पृथक्त्वेन ९ बहुधा १० विश्वतोमुखम् ११ ॥ १५ ॥ अ० सि० कोई महात्मा तो ❀ज्ञानयज्ञकरके १ मुझको

२ पूजते हुवे ३ उपासनाकरते हैं ४ अर्थात् मुझसच्चिदानंदको सब भूतोंमें जानते हैं ४ सि०क्यों कि साधुमहात्माभगवद्भक्तोंका जो पूजन करना, उनकी सेवा, या उपासना करना, उनको भगवद्रूप समझना यह मेरी उत्तमउपासना है. क्योंकि जैसे मेरे रामकृष्णादि निमित्त अवतार है, वैसेही साधुमहात्मा मेरे भक्त नित्य अवतार है, और कोई ५।६।७। सि० लक्ष्यार्थमें जीवईश्वरको एक समझकर ❋ अभेद (अद्वैत भावना) करके ८ अर्थात् ॥ सोहम्ब्रह्माहमस्मि ॥ यही निरंतरनिदिध्यासन करते रहते हैं. ८ सि० और कोई ❋ पृथक्भावनाकरके ९ अर्थात् परमेश्वरसच्चिदानंदघनसर्वज्ञताभक्तवत्सलताकरुणादिअनेकगुणशक्तियोंकरके युक्त नित्यमुक्त प्रभु सगुणब्रह्म हैं. यद्यपि मैंभी सच्चिदानंद हूं, परंतु अनादित्रिगुणमयमायामे फँस रहाहूं, उस पूर्णब्रह्मसगुणाकरके कृपासे छूटूंगा और अपने परमानंदस्वरूपको प्राप्त हूं गा. यह दोनों बात विनाभगवत्कृपा प्राप्त न होंगी. यह समझकर पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदकी उपासना करते हैं. ९ सि० और कोई ❋ बहुत प्रकारका १० सि० मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं. अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेश, अग्नि, चन्द्र, और रामकृष्णादीको मेराही रूप साक्षात् मुझसच्चिदानंदको मूर्त्तिमान् समझकर मेरी उपासना करते हैं. और कोई ❋ विराड्विश्वरूप ११ मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं. अपने अपने अधिकारमें ये सब महात्मा हैं. पूर्णब्रह्म, शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, निर्विकार, नित्यमुक्त, ऐसे मेरे स्वरूपको अवश्य काल पाकर प्राप्त होंगे. ॥ १५ ॥

मू०अहंक्रतुरहंयज्ञःस्वधाहमहमौषधम् ॥
मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहंहुतम् ॥ १६ ॥

क्रतुः १ अहम् २ यज्ञः ३ अहम् ४ स्वधा ५ अहम् ६ औषधम्

७ अहम् ८ मंत्रः ९ अहम् १० एव ११ आज्यम् १२ अहम् १३ अग्निः १४ अहम् १५ हुतम् १६ अहम् १७ ॥ १६ ॥ अ० उ० पीछलेमंत्रमें दश अंकवाला जो (बहुधा) पद है उसकी व्याख्या चारमंत्रोंमें करते हैं. श्रौतयज्ञ १ सि० अग्निष्टोमादि ❋ अहम् २ अर्थात् मैं हूं. २ स्मार्तयज्ञ (अतिथि. अभ्यागत) इनकी पूजा इत्यादि पंचयज्ञ. ३ मैं हूं. ४ पित्रोंको जो अन्न दीया जाता है मंत्रसे सो ५ मैं हूं. ६ मनुष्यादि जो यवादि भक्षण करते हैं सो ७ मैं हूं. ८ यज्ञमें जोपढे जाते हैं ओम् नमः शिवाय इत्यादिमंत्र ९ मैंहीहूं. १० ११ होमादीका साधन १२ मैंहूं. १३ अग्नि १४ मैंहूं १५ होम १६ मैंहूं. १७ तात्पर्य ये सब अंतःकरणशुद्धीके कारण हैं, और मोक्षके साधन हैं. ॥ १६ ॥

मू० पिताहमस्यजगतोमाताधातापितामहः ॥
वेद्यंपवित्रमोंकारऋक्सामयजुरेवच ॥ १७ ॥

अस्य १ जगतः २ अहम् ३ पिता ४ माता ५ धाता ६ पितामहः ७ वेद्यम् ८ पवित्रम् ९ ओंकारः १० ऋक्सामयजुः ११ एव १२ च १३ ॥ १७ ॥ अ० इसजगतका १।२ मैं ३ पिता ४ माता ५ विधाता ६ पितामह ७ सि० हूं ❋ जाननेकेयोग्य ८ पवित्र (शुद्ध) ९ प्रणव १० ऋक्सामयजुष् यहवेदत्रयीभी ११।१२।१३ सि० मैंहूं. ❋ टी० उत्पन्नकरनेवाला, पालनकरनेवाला, कर्मोंके फलको देनेवाला, वेदादिप्रमाणोंका विषय, प्रमेय, चैतन्य, मैंही हूं. सब वेद मुझकोही प्रतिपादन करते हैं. चकारसे अथर्ववेद भी जानना चाहिये. ऋगादिवेद और ओम् प्रणवभी मैंही हूं और प्रमाता और प्रमाणभी मैंही हूं इति तात्पर्यार्थः ॥ १७ ॥

मू० गतिर्भर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत् ॥
प्रभवःप्रलयःस्थानंनिधानंबीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

गतिः १ भर्ता २ प्रभुः ३ साक्षी ४ निवासः ५ शरणम् ६ सुहृत् ७ प्रभवः ८ प्रलयः ९ स्थानम् १० निधानम् ११ अव्ययम् १२ बीजम् १३ ॥ १८ ॥ अ० कर्मोंकाफल १ पोषण करनेवाला २ समर्थ याने स्वामी ३ शुभाशुभदेखनेवाला ४ भोगस्थान ५ रक्षाकरनेवाला ६ बेप्रयोजन हितकरनेवाला ७ जगतका आविर्भाव है जिससे ८ संहर्ता ९ सर्वभूतस्थित हैं जिसमें १० लयका स्थान ११ अविनाशी १२ बीज १३ सि० मैं हूं. ❋ ॥ १८ ॥

मू० तपाम्यहमहंवर्षंनिगृह्णाम्युत्सृजामिच ॥
अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अहम् १ तपामि २ वर्षम् ३ उत्सृजामि ४ च ५ निगृह्णामि ६ अमृतम् ७ च ८ एव ९ मृत्युः १० च ११ सत् १२ असत् १३ च १४ अहम् १५ अर्जुन १६ ॥ १९ ॥ अ० सि० ग्रीष्मऋतूमें सूर्यमें स्थित होकर ❋ मैं १ सि० जगतको ❋ तपाताहूं. २ वर्षाको ३ वर्षाता हूं ४ और ५ सि० जबकभी प्रजा पुण्यकरना छोड देती है तब वर्षाका ❋ निग्रह करलेता हूं. ६ अर्थात् पानी नहीं वर्षाता हूं. ६ अमृत अर्थात् जीवनाभी और मृत्यु अर्थात् भूतोंका अदर्शनभी ७।८।९।१०।११ सि० मैं ही हूं; और ❋ स्थूल १२ सूक्ष्म प्रपंच १३।१४ मैं १५ सि० हूं ❋ हेअर्जुन १६ तात्पर्य बहुत महात्मा इसप्रकार मुझको जानकर सर्वात्मदृष्टीकरके मेरी उपासना करते हैं. ॥ १९ ॥

मू० त्रैविद्यामांसोमपाःपूतपापायज्ञैरिष्ट्वास्वर्गतिं
प्रार्थयन्ते ॥ तेपुण्यमासाद्यसुरेन्द्रलोकमश्नं-
तिदिव्यान्दिविदेवभोगान् ॥ २० ॥

त्रैविद्याः १ सोमपाः २ पूतपापाः ३ यज्ञैः ४ माम् ५ इष्ट्वा ६ स्वर्गतिम् ७ प्रार्थयन्ते ८ ते ९ पुण्यम् १० लोकम् ११ आसाद्य १२

दिवि १३ दिव्यान् १४ देवभोगान् १५ अश्नन्ति १६ ॥ २० ॥ अ० उ० जो कामना करके वेदोक्तभी कर्म करते हैं, उनका जन्ममरण विनाज्ञाननिष्ठाके दूर न होगा. प्राकृतोंका याने मूढोंका तो कुछ प्रसंगही नहीं, यह कहते हैं दोश्लोकोंमें. सि० जो ❋ तीनवेदके जाननेवाले १ अमृतके पान करनेवाले २ पवित्रजन ३ सि० श्रौतस्मार्त ❋ यज्ञोंकरके ४ मेरा ५ पूजनकरके ६ स्वर्गकी प्राप्ति ७ चाहते हैं. ८ वे ९ पुण्यफल १० सि० जो ❋ स्वर्गलोक उसको ११ प्राप्त होकर १२ स्वर्गमें १३ दिव्य १४ अर्थात् अलौकिक. जो इसलोकमें नहीं, स्वर्गमेंही हैं १४ उन देवभोगोंको १५ भोक्ते हैं १६ टी० ऋक्, साम, और यजुष, इनतीनवेदके जाननेवाले अर्थात् अथर्वणवेदमें ब्रह्मविद्याविशेष है. उसको नहीं जानते १ यज्ञके शेषभागको अर्थात् यज्ञमेंसे बचाहूवा जो अन्न उसको अमृत कहते हैं. उसअन्नके भोजनकरनेवालोंका अंतःकरणशुद्ध होजाता है जो निष्काम होकर करेंगे. नहीं तो स्वर्गको प्राप्त होंगे. इत्यभिप्रायः २ वनजनौकरीआदिलौकिककर्मकरनेवालोंसे वैदिककर्मकरनेवाले अच्छे हैं. इसहेतूसे वैदिककर्म करनेवाले पवित्र कहे जाते हैं. ३ वेदोक्तकर्मोंका जो करना है उसीको कर्मकांडी ईश्वर जानते हैं. अर्थात् कर्मही स्वर्गफलका दाता ऐसा समझते हैं. ४।५।६। तात्पर्य वेदोक्तकर्मोंका निष्काम जो अनुष्ठान करना है, अथवा भगवद्भक्ति और ज्ञाननिष्ठाके संबन्धि जो कर्म हैं, उनका करना बन्धका हेतु नहीं अंतःकरणकी शुद्धि और जीवन्मुक्ति होनेका हेतु है. और मुक्तीके लिये भेद उपासनाभी अच्छी है. वैकुंठादिलोकोंके प्राप्तिके लिये और सावयवभगवन्मूर्तीके प्राप्तीकेलिये जो मूर्तिमान् भगवतकी सकाम उपासना करते हैं, उनकाभी इनहीलोगोंमें अन्तरभाव है, कि जिनका वीस और इक्कीस इन दो श्लोकोंमें प्रसंग है. जो

फल अनित्य कर्मकांडियोंको होगा, वोही फल भेदवादियोंको होगा. मूर्तिमान्‌परमेश्वरकी उपासनाभी निष्कामकरना चाहिये. रूपदेख-नेकेवास्ते न करे. उसका फल अनित्य और दुःखका हेतु होगा. जैसे प्रथम किसीसमय दशरथ, कौसिल्या, गोपी, यशोदा और नन्दादीको हूवा है. और जो उसको दुःख न समझे, वो वेसंदेह करे. ॥ २० ॥

मू०तेतंभुक्त्वास्वर्गलोकंविशालंक्षीणेपुण्येमर्त्यं लोकंविशंति ॥ एवंत्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतं कामकामालभंते ॥ २१ ॥

ते १ तम् २ विशालम् ३ स्वर्गलोकम् ४ भुक्त्वा ५ पुण्ये ६ क्षीणे ७ मर्त्यलोकम् ८ विशंति ९ एवम् १० त्रयीधर्मम् ११ अनु-प्रपन्नाः १२ कामकामाः १३ गतागतम् १४ लभन्ते १५ ॥ २१ ॥

अ० उ० वे १ अर्थात् शब्दस्पर्शादिविषयोंके कामनावाले वेदोक्त-कर्म करनेवाले सकामपुरुष १ तिस २ विशालस्वर्गको ४ भोगके ५ अर्थात् अपने कर्मोंके फलको स्वर्गमें भोगके ५ पुण्य ६ नाशहोते-ही ७ मनुष्यलोकमें ८ प्राप्त होंगे. ९ इसप्रकार १० वेदोक्तधर्मका ११ आचरणकरनेवाले १२ भोगोंकी कामना करनेवाले १३ गतागत-को १४ प्राप्त होते हैं. १५ तात्पर्य स्वर्गादीमें गये फिर वहांसे धक्के खाकर मनुष्यलोकमें आये, फिर भी वेही कर्म कीये. और जब खोटे कर्म बनगये तब नरकमें गये.वे लोग कभी नरकमें,कभी स्वर्गमें कभी मनुष्ययोनीमें, कभी पशुपक्षीके योनियोंमें सदा भटकते फिराक-रते हैं. सदा शुद्धसच्चिदानंदभगवतसे विमुख होकर भोगोंके बसमें फँसे रहते है. जब कि ऐसे लोगोंकी यह व्यवस्था है, तो जो सदा लौकिकबखेडोंमें ही लगारहता है, उसकी व्यवस्था क्या कही जावे

और यह एक वारीकवात सोचनेके योग्य है, कि सकामवैदिककर्म करनेवालोंकि तो यह व्यवस्था है, पुराणोक्त सकामकर्म और सकाम उपासना जो करते हैं, उनको क्या फल होगा. अपने अपने बुद्धीके अनुसार विचार करना चाहिये. प्रकटकरके लिखदेनेमें. वहुत लोग कि जो मोक्षमार्गका आश्रा लेकर भोग भोक्ते हैं. वे दुःख पावेंगे. बुद्धिमान् मनमें समझ लेते हैं. इसशास्त्रमें जिसजगे सकामकर्मका प्रसंग है. तो उसजगे अर्थसे सकामउपासनाकोभी वैसाही समझना चाहिये. और जिसजगे स्वर्गादिफलका प्रसंग है, वहां वैकुंठादिफलकोभी वैसाही समझनाचाहिये. ॥ २१ ॥

मू० अनन्याश्चिंतयंतोमांयेजनाःपर्युपासते ॥
तेषांनित्याभियुक्तानांयोगक्षेमंवहाम्यहम् ॥२२॥

ये १ जनाः २ अनन्याः ३ माम् ४ चिंतयंतः ५ पर्युपासते ६ तेषाम् ७ नित्याभियुक्तानाम् ८ योगक्षेमम् ९ अहम् १० वहामि ११ ॥ २२ ॥ अ० उ० जो ज्ञाननिष्ठपुरुष अभेदभावनाकरके मेरी उपासना करते हैं, उनको इसलोकके और परलोकके पदार्थ (मुक्तिपर्यंत) देकर मैं ही रक्षा करता हूं यह कहते हैं. जो १ जन २अर्थात् कर्मफलके संन्यासी अभेदउपासक २ अनन्य ३ मेरा ४ चितवन करते हुवे ५ उपासना करते हैं, ६ अर्थात् सदा वे यह चितवन करते रहते हैं कि शरीर इन्द्रिय प्राण और अंतःकरण इनसे परे सच्चिदानंदस्वरूप, तीनों अवस्थाका साक्षी, जो यह हमारा आत्मा है, यही पूर्णब्रह्म है. कि जिसको महावाक्य प्रतिपादन करते हैं. इससे अन्य जूदा और कोई सच्चिदानंद ब्रह्म नहीं. इसप्रकार अनन्यहुवे निदिध्यासन करते हैं. शरीरादि विजातीयपदार्थोंका तिरस्कारकरके सजातीयपदार्थ सच्चिदानंद ऐसे आत्मामें निर्मलअंतःकरणके वृत्तीका गंगावत् प्रवाह किया है जिन्होंने, ६ तिन ७ नित्यआत्मनिष्ठोंको ८

योगक्षेम ९ मैं सोपाधिकसच्चिदानंदमायोपहितईश्वर १० प्राप्त करता हूं. ११ टी० अप्राप्तपदार्थको प्राप्त करना उसको योग कहते हैं. और प्राप्तपदार्थकी रक्षा करना उसको क्षेम कहते हैं. आत्मनिष्ठपुरुषोंको आत्मतत्वकी प्राप्ति मेरे कृपासे होती है. और मैंही उसकी रक्षा करता हूं, और करूंगा यह मेरी प्रतिज्ञा है. कबतक, कि जबतक ज्ञाननिष्ठाका भलेप्रकारपरिपाक न होगा. जो कोई यह शंका करेकि जो भगवद्भक्त नहीं, उनको क्या पदार्थ रुपैयेआदि नहीं मिलते हैं, और उनके क्या पदार्थोंकी रक्षा नहीं होती. उत्तर इसका यह हैं कि जो भगवद्भक्त नहीं, वे दिनरात्रि आप पदार्थोंके योगक्षेममें प्रयत्न करते हैं. फिरभी संदेह हरता है, और परमानंदरूपमुक्तीसे तो वे सदा विमुख रहते हैं. और जो भगवद्भक्त हैं, उनको मुख्यफल परमानंदस्वरूप (मुक्ति) तो अवश्यही मिलेगी. परंतु गौणफल (शरीरयात्राके लिये) अन्नवस्त्रादि उनको बेयत्न प्राप्त होते हैं. और उनकी रक्षा अंतर्यामी करता है. वे सदा बेसन्देह रहते हैं. जैसे कोई फलकी इच्छा करके बागमें गया वोफल तो उसको अवश्यही मिलेगा. और रस्तेमें फ़ुलवारीका देखना, सुगंधका सूंघना, इत्यादि गौणफल उसको अपनेआप मिलजाते हैं, और मुख्यफलभी प्राप्त होता है. भक्त और अभक्तके योगक्षेममें इतना भेद है. ॥ २२ ॥

मू० येऽप्यन्यदेवताभक्तायजन्तेश्रद्धयान्विताः॥
तेऽपिमामेवकौंतेययजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३।

कौन्तेय १ ये २ अपि ३ भक्ताः ४ श्रद्धया ५ अन्विताः ६ अन्यदेवताः ७ यजंते ८ ते ९ अपि १० माम् ११ एव १२ यजंति १३ अविधिपूर्वकम् १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० जो भक्त आत्मासे जूदा विष्णु महेश रामकृष्णादिदेवताको समझकर भेदभावना करके, व्यासादीके वाक्योंमें विश्वासकरके रामकृष्ण इंद्रा

दीकी उपासना करते हैं, वेभी परमेश्वरकाही भजन करते हैं. परंतु वो निष्ठा उनकी अज्ञानपूर्वक है, उसको स्थिरता नहीं. यह बात इसमंत्रमे श्रीभगवान् स्पष्टवर्णन करते हैं. हेअर्जुन १ जो २।३ भक्त ४ श्रद्धाकरके ५ युक्त ६ अन्यदेवताका ७ अर्थात् सच्चिदानंद स्वरूपआत्मासे अन्य (पृथक्) सावयव वा निरवयवदेवताका ७यजन पूजा सेवा ध्यान करते हैं. ८वे ९भी१० मेराही ११।१२ यजन करते हैं. १३ सि० परंतु ❋अज्ञानपूर्वक १४ सि० यजन करते हैं. ❋तात्पर्य उनके भजनमें तो संदेह नहीं, परन्तु वो उन्होंने कियाहुवा मेरा भजन अज्ञानपूर्वक है. क्योंकि वास्तव न मेरा स्वरूप उन्होंने जाना, न अपना. परंतु जो वो भजन निष्काम होगा, तो वेभी ज्ञानद्वारा अवश्य मुक्त होंगे. और उनका योगक्षेमभी मैंही करूंगा. जो निष्कामभजन करता है, उसको विदेहमोक्षपर्यंत पदार्थ मैं देताहूं, और रक्षा करता हूं. तोभी पशुवृत्तीका त्यागना अवश्य चाहिये. जैसे पशु मनुष्योंका दास बना रहता है, ऐसेही अन्यदेवताका उपासक देवताका पशु बना रहता है. जो आपको ब्रह्म नहीं जानता वो निराकार सच्चिदानंदहोकर साकाररूपका दास बनकर साकारोंके आधीन रहता है, और आपभी साकार बनता है. इससे परे और क्या अज्ञान होगा. पूर्ण,अनन्य एसेको परिच्छिन्न,तुच्छ, एकदेशी ऐसा मानना, जड और चैतन्य,द्रष्टा और दृश्यको एक समझना. इससे परे और क्या अज्ञान होगा. तदुक्तम् ॥ अन्योसावहमन्योस्मीत्युपास्तेयोन्यदेवताम् ॥ नसवेदनरोब्रह्मसदेवानांयथापशुः॥तात्पर्यार्थ इसमंत्रका ऊपर लिखा गया. ॥ २३ ॥

मू० अहंहिसर्वयज्ञानांभोक्ताचप्रभुरेवच ॥
नतुमामभिजानंतितत्त्वेनातश्च्यवंतिते ॥ २४ ॥

सर्वयज्ञानाम् १ भोक्ता २ च ३ प्रभुः ४ एव ५ च ६ अहम् ७

हि ८ माम् ९ तत्वेन १० न ११ तु १२ अभिजानाति १३अतः१४ ते १५ च्यवंति १६॥२४॥अ० उ० पीछलेमंत्रमें कहाकि भेदवादी अज्ञानपूर्वक मेरा भजन करते हैं. इस मंत्रमें फिर उसीवातको स्पष्ट करते हैं. सब यज्ञोंका १ भोक्ता २।३सि० और *स्वामी४।५।६मैं ७ही ८सि०हूं. *मुझको९तत्वसे१०नहीं११।१२ जानते. १३इस-वास्ते१४वे१५गिरपडते हैं.१६तात्पर्य श्रौतस्मार्त सवयज्ञोंका भोग-नेवाला,और मालिक मैं सच्चिदानंद हूं. मुझको यथार्थ नहीं जानते. अर्थात् यह नहीं समझते कि फलदाता अंतर्यामी सच्चिदानंद(मायो-पहित हुवा वोहि)एकशुद्ध सच्चिदानंदरूपयज्ञोंका स्वामी और फल-का दाता है.और(अविद्योपहित हुवा)वोही उस फलका भोक्ता है.और वो मुझ सच्चिदानंदरूप आत्मासे कोई जूदा वास्तव सच्चिदानंद नहीं. इसप्रकार जो ईश्वरका स्वरूप नहीं जानते,वे इस हेतूसे जन्ममरणके चक्रमें घूमते हैं. इसमंत्रमें प्रभुशब्द तत्पदका वाच्यार्थ है. और भो-क्ताशब्द त्वंपदका वाच्यार्थ है. लक्ष्यार्थमें दोनोंकी एकता श्रीभग-वान् स्पष्ट कहते हैं, कि प्रभूभी और भोक्ताभी दोनों मैं ही हूं. अहं-शब्दका लक्ष्यार्थमें तात्पर्य है. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं, कि मैं शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप मायोपहितहुवा तो सबयज्ञोंका स्वामी फल-दाता हूं. और अविद्योपहित हुवा उसी फलका मैंही भोक्ता हूं अब विचारकरना चाहिये, कि जप, स्वाध्याय, इन्द्रियप्राणादीका निरोध इत्यादि जो यज्ञ चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवानने निरूपण कीये हैं उन-का भोक्ता ईश्वर है, वा जीव है. ॥ २४ ॥

मू०यांतिदेवव्रतादेवान्पितॄन्यांतिपितृव्रताः ॥
भूतानियांतिभूतेज्यायांतिमद्याजिनोऽपिमाम् ॥ २५ ॥

देवव्रताः१ देवान् २ यांति ३ पितृव्रताः ४ पितॄन् ५ यांति ६ भूतेज्याः ७ भूतानि ८ यांति ९ मद्याजिनः १० माम् ११अपि १२

यांति १३ । २५॥अ० उ० भेदभावनाकरके वा अभेदभावनाकरके, जो परमेश्वरका आराधन करते हैं, उन दोनोंका फल इसमंत्रमें कहते हैं. देवतोंके उपासक १ देवतोंको २ प्राप्त होते हैं, ३ पित्रोंके उपासक ४ पित्रोको ५ प्राप्त होते हैं, ६ भूतोंके उपासक ७ भूतोंको ८ प्राप्त होते हैं, ९ मेरे उपासक १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होते हैं. १३ टी०ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण इत्यादि, इनके और इंद्रादिमूर्तिमान् देवतोंके आराधन करनेवाले १ सलोकता, सरूपता,समीपता,और सायुज्यता इन चारमुक्तियोंको प्राप्त होते हैं२ विनायक मातृगण भूतोंके पूजनेवाले मातृगण भूतोंमें जा मिलेंगे. और इसकलियुगमें जो मीरांगूगादिपीरोंका (भूतप्रेतोंका) पूजनकरते हैं, वे उनकोही प्राप्त होंगे. अर्थात् मरकर सब भूतप्रेत बनेंगे ७ और मुझ शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपआत्माके यजन करनेवाले अर्थात् ज्ञाननिष्ठावाले१०मुझ नित्यमुक्त परमानंदस्वरूप निराकारनिर्विकारको ११ अवश्य, निश्चयसे १२ प्राप्त होंगे १३ अर्थात् नित्यमुक्त परमानंदस्वरूपही होजावेंगे. मांशब्दका अर्थ जो सावयवमूर्तिमान् वासुदेव कियाजावे तो इस गीताशास्त्रको योगशास्त्रब्रह्मविद्या कहना नहीं बनता, क्योंकि इस अर्थमें यह ग्रंथ स्पष्ट एकदेशी प्रतीत होता है मूर्तिमान् वासुदेवश्रीकृष्णचन्द्रमहाराजके उपासकोंका यह ग्रंथ हुवा,औरोंको इससे क्या प्रयोजन रहा यह बात नहीं किंतु मामृशब्दका अर्थ सच्चिदानंद निराकार है, सो वो नित्य है. उससे पृथक् सब अनित्य है इतनेमेंही तात्पर्यार्थ समझ लेना. श्रीमहाराजने आठवें अध्यायमें स्पष्ट कहदीया है, कि ब्रह्मलोकसे बडा और कोईलोक नहीं क्योंकि उसका निरूपण वेदोंमें है. जब उसीको अनित्य कहा तो औरोंको कैमुतिकन्यायसे अनित्य समझलेना चाहिये, और ब्रह्मशब्दका अर्थ बडा बृहत् है. इसप्रकार नहीं समझना कि ब्रह्मलोक केवल ब्रह्माजीके लोकको कहते हैं. ब्रह्माजीसे

विष्णु महेश बडे हैं, उनके लोक जूदे हैं, सो नहीं किंतु पूर्णब्रह्मप-रमेश्वरके सावयवलोकका नाम ब्रह्मलोक है, और वो एकही है. सत्यलोक वैकुंठ कैलासादि यह पुराणोंकी प्रक्रिया है. ॥ २५ ॥

मू० पत्रंपुष्पंफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ॥
तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

यः १ पत्रम् २ पुष्पम् ३ फलम् ४ तोयम् ५ मे ६ भक्त्या ७ प्रयच्छति ८ तत् ९ भक्त्या १० उपहृतम् ११ प्रयतात्मनः १२ अहम् १३ अश्नामि १४ ॥ २६ ॥ अ० उ० परमेश्वरका दास हूं मैं, इसप्रकार भेदभावना करके श्रद्धापूर्वक परमेश्वरकी जो भक्ति करते हैं, उनको ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तीका सुलभ उपाय श्रीभगवान् बताते हैंजो १ सि० भक्त *पत्र २ फूल ३ फल ४ जल ५ मेरे-अर्थ ६ भक्तीकरके ७ अर्पणकरता है, ८ सो ९ भक्तीकरके १० अर्पण कियाहुवा ११ सि० पदार्थ थोडाभी रूखासूखा *शुद्धांतःकरणवालेका १२ अर्थात् अपने भक्तका १२ मैं १३ सि० आद-रपूर्वक प्रीतीके साथ *खाताहूं. १४ अर्थात् ग्रहण करता हूं. १४ तात्पर्य पत्र तुलसीविल्वपत्रादि और जल सदाशिवजीपर जो चढाते हैं, उससे महेश्वर प्रसन्न होते हैं. श्रीमहाराज कहते हैं, कि मैं फल भोजन करता हूं, फूल सूंघता हूं, पत्र ग्रहण करता हूं, जल पान करता हूं, जैसे गुलदस्तेमें फूलभी होते हैं, उसको हाथमें ग्रहण करके फूलोंको सूंघते हैं, और पत्रोंको देखते हैं" दुर्योधनका मेवा त्यागा शाक विदुरघर खाया." इसप्रकार किसीजगे पत्रका भोजनभी होताहै. ॥ २६ ॥

मू० यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत् ॥
यत्तपस्यसिकौन्तेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥ २७ ॥

कौन्तेय १ यत् २ करोषि ३ यत् ४ अश्नासि ५ यत् ६ जुहोषि ७ यत् ८ ददासि ९ यत् १० तपस्यसि ११ तत् १२ मदर्पणम् १३

कुरुष्व १४ ॥ २७ ॥ अ० उ० परमकरुणाकर श्रीभगवान् उससे- भी और सुलभ उपाय बताते हैं. पत्रादिकरके जो श्रीनारायणका पूजन करना है,सो परतंत्र है.यह स्वतंत्र उपाय सुन. हेअर्जुन१जो२ करता है, तूं३जो४खाता है तूं,५जो ६ होमकरता है तूं,७जो ८देता है तूं९जो १० तपकरता है तूं, सो १२ सि०सब ❋ मुझको अर्पण १३कर तूं १४ तात्पर्य लौकिक वैदिक शुभाशुभ जो तूं कर्म करता है. अर्थात् जो तूं खाता है, पहरता है होम करता है, देता है, तप करता है, हे अर्जुन सब मुझको अर्पण कर. तात्पर्य निष्काम हो, फलकी इच्छा मतकर. ॥ आत्मात्वंगिरिजामतिःसहचराःप्राणाः शरीरंगृहं पूजातेविपयोपभोगरचनानिद्रासमाधिस्थितिः ॥ संचारः पद्योःप्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणिसर्वागिरोयद्यत्कर्मकरोमितत्तदखिलं- शंभोतवाराधनम् ॥यह शरीर आपका घर शिवालय है, इस शरीरमें सदाशिवरूप सच्चिदानंद आत्मा आप हो. बुद्धि श्रीपार्वतीजी हैं.आ पकेसाथ चलनेवाले नौकर प्राण हैं. ये जो मैं विपयानंदकेवास्ते वि- षयभोक्ता हूं, याने जो खाता हूं, पिता हूं, देखता हूं, सुनता हूं, सूंघता हूं, बोलता हूं, स्पर्शकरता हूं, यही मैं आपकी पूजा करता हूं निद्रा मेरी समाधि है. फिरना मेरा आपकी प्रदक्षिणा है. जो कुछ मैं बोलता हूं यह सब आपकी स्तुति करता हूं. जोजो औरभी मैं कर्म करता हूं, हेचन्द्रशेखर सबप्रकार आपकाही मैं आराधन करता हूं. आप आशुतोष हो,जल्दी मुझपर कृपा करो,जिस आपके कृपासे मैं विदेहमुक्तीको प्राप्त हूंगा. ॥ २७ ॥

मू०शुभाशुभफलैरेवंमोक्ष्यसेकर्मबन्धनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि ॥२८॥

एवम् १ शुभाशुभफलैः २ कर्मबन्धनैः ३ मोक्ष्यसे ४ संन्यासयो- गयुक्तात्मा ५ विमुक्तः ६ माम् ७ उपैष्यसि ८ ॥ २८ ॥ अ० उ०

निष्कामकर्म करनेवाले निष्फल नहीं रहते,उनको अनंत अविनाशी परमानंदफल प्राप्त होता है.इस हेतूसे हेअर्जुन इसप्रकार तूं मेरी भक्ति करता हुवा बेसंदेह मुझ अविनाशीपरमानंदरूपको प्राप्त होगा, यह कहते हैं इसश्लोकमें. सि० जैसे अब निरूपण कीया ❋ इस प्रकार १ सि० मेरी भक्ति करताहुवा ❋ शुभ अशुभ फल हैं जिनके २ सि० तिन ❋कर्मबंधनोंसे ३ छूट जायगा तूं ४ सि० फिर पीछे ❋ संन्यासयोगकरके युक्त है, आत्मा याने अंतःकरण जिसका ५ सि० ऐसा होकर तूं ❋ जीवन्मुक्त होकर६ अर्थात् शरीरपातके पीछे ६ मुझ परमानंदस्वरूपनित्यमुक्तपूर्णब्रह्मशुद्धानंतआत्माको ७ प्राप्त होगा तूं. ८ तात्पर्य निष्काम उपासना करनेसे चित्त शुद्धहोकर एकाग्र होजाता है, फिर कर्म उसको अपनेआप बंधनविक्षेपरूप प्रतीत होने लगते हैं. उन सब कर्मोंका त्यागकरके विरक्तसंन्यासी होजाता है.तब विरक्तअवस्थामें ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होती है. फिर जीतेजी उस परात्परपरमानंदका अनुभव लेता है. और जीवन्मुक्त हुवा विचरता है. प्रारब्धकर्म नाशहोनेके पीछे देहपात होजाता है. मूलाज्ञान कार्यसहित नष्ट होजाता है. यही सब अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति है. इसीका नाम कैवल्यमुक्ति है. ॥ २८ ॥

मू०समोहंसर्वभूतेषुनमेद्वेष्योस्तिनप्रियः ॥
येभजंतितुमांभक्त्यामयितेतेषुचाप्यहम्॥२९॥

सर्वभूतेषु १ अहम् २ समः ३ न ४ मे ५ द्वेष्यः ६ अस्ति ७ न ८ प्रियः ९ तु १० ये ११ माम् १२ भक्त्या १३ भजंति १४ ते १५ मयि १६ तेषु १७ च १८ अपि १९ अहम् २० ॥ २९ ॥ अ० उ० कोई कोई प्राणी अपनेको वडा समझवाला समझकर भगवद्भक्तिरहित यह कहा करता है, कि “ विनाभक्ति तारो तो तारवोतिहारो

है " यह आलसीविषयीवहिर्मुखोंकी बात है इस वाक्यसे यद्यपि महिमा भगवतकी पाई जातीं हैं. परंतु भक्तीका माहात्म्य जाता है. तात्पर्य इसवाक्यका भगवन्माहात्म्यमें समझना चाहिये. इसजगे भक्तीके माहात्म्यका प्रसंग है. क्योंकि भगवान् अपनेको रागद्वेषादिरहित (सम) कहते हैं. दूसरेका भलाबुरा विनारागद्वेष नहीं होसक्ता. विनाभक्ति भगवान् यदि किसीका भला करें, तो बडी विषमताकी बात है. अन्यजीव फिर भक्ति क्यों करेंगे. तात्पर्य भगवद्भक्ति करना आवश्यक है. सोई कहते हैं. सबभूतोंमें अर्थात् भक्तोंमें और अभक्तोंमें १ मैं २ बराबर ३ सि० हूं. ❋ न ४ सि० कोई ❋ मेरा ५ वैरी ६ है, ७ न ८ सि० कोई मेरा ❋ प्यारा ९ सि० है, ❋ परंतु १० जो ११ मुझको १२ भक्तीकरके १३ भजते हैं, १४ अर्थात् मेरीभक्ति (सेवा) करते हैं, १४ वे १५ मुझमें १६ सि० है ❋ और तिनमें १७।१८।१९ मैं २० सि० हूं.❋ अर्थात् वे मेरे हृदयमें हैं. २० मुझको उनका उद्धार करनेका स्मरण सदा बना रहता है. और तिनके हृदयमें मैं सदा विराजमान रहता हूं. मेरे भक्तीका प्रताप है. जैसे अग्निसम है. उसका किसीसे रागद्वेष नहीं, परंतु जो अग्नीके पास जाता है, उसीका शीत दूर होता है. जो अग्नीका सेवन नहीं करता, उसका शीत दूर नहीं होता, इसीप्रकार जो भगवतकी भक्ति करते हैं. वेही मुक्त होंगे. तात्पर्यार्थ यह हुवा कि जनोंमें विषमतादोष है, क्योंकि कोई भक्ति करता है, कोई नहीं. ईश्वरमें यह दोष नहीं. जो दोपुरुष भक्ति करें, उनमेंसे एक भक्त हो, एक न हो, तो ईश्वरमें विषमता आवे. जो कोई यह शंका करे, कि अजामीलादि बहुत जीव विनाभक्ति मुक्त हुवे. यह उनका कहना झूंठ है. उनके पहले जन्मोंकी कथा श्रवण करना चाहिये. वे लोग योगभ्रष्ट थे.॥ २९ ॥

मू० अपिचेत्सुदुराचारोभजतेमामनन्यभाक् ॥
साधुरेवसमंतव्यःसम्यग्व्यवसितोहिसः॥ ३० ॥

चेत् १ अनन्यभाक् २ सुदुराचारः ३ अपि ४ माम् ५ भजते ६ सः ७ साधुः ८ एव ९ मंतव्यः १० हि ११ सः १२ सम्यग्व्यवसितः १३ ॥ ३० ॥ अ० उ० भगवद्भक्तीका माहात्म्य और उसका अतर्क्यप्रभाव यह कहते है. कदाचित् १ अनन्यभजनकरनेवाला २अर्थात् सबतरफसे मनको रोककर केवल श्रीनारायणका जो आराधन करता है. २ सि०वो लोकदृष्टीमें यदि ॐ अत्यन्तदुराचारभी है३।४ अर्थात् वो स्नानादिआचार नहीं भी करता परंतु अनन्य हुवा ३।४ मुझको ५ भजता है, ६ अर्थात् सदा नारायणका ध्यान या श्रीकृष्णादीके चरित्रोंका स्मरण करता रहता है, अथवा ज्ञाननिष्ठमहापुरुष आत्मानंदमें मग्न रहता है६सो७ साधु ८ही९मानना योग्य है.१० सि०कभी उसको बुरा नहीं समझना मुखसे बुरा करना तो बडाही अनर्थहै. ॐ क्योंकि११सो१२भलेप्रकार बहुतअच्छे निश्चयवालाहै.१२ अर्थात्भीतरका निश्चय उसका अच्छा है.१३तात्पर्य निश्चय यह बात है कि पारहुवेपीछे नौकाका क्या काम है. आचारपूजापत्री तबतक है कि जबतक श्रीमहाराजके चरणकमलोंमें वा आत्मस्वरूपमें, मन अनन्य होकर नहीं लगा. ॥ ज्ञाननिष्ठोविरक्तोवामद्भक्तोवानपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वाचरेदविधिगोचरः ॥ इसश्लोकका तात्पर्य यह है कि ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, वा मेरा भक्त, बेपरवाह सब दिखावटके चिन्होंको आश्रमोंको त्यागकर सिवाय भगवद्भजन वा आत्मनिष्ठाके सब वेदशास्त्रके विधीको नमस्कारकर पंचमाश्रमपरमहंसअवस्थामें विचरे. वेदमेंभी यह लिखा है, कि जिसको वर्णाश्रमका अभिमान है. वो बेसंदेह श्रुतिस्मृतीका दास है. और जो वर्णाश्रमरहित अपने को सर्वथा श्रीनारायणका दास वा सच्चिदानंदपूर्णब्रह्मआत्मा ऐसा जानता है, वो श्रुतिमार्गका उलंघनकरके वर्तता है. अर्थात् यह समझता है कि वेदका विधि तबतक है,कि जबतक स्त्रीपुत्रधनराजादीका दास है, अनन्यनारायणका दास नहीं, और आत्मनिष्ठ नहीं. और

यह प्रकट रहे कि यह कथा सच्चेपुरुषोंकी है. विनाभक्ति वा विनाज्ञान भ्रष्टभी ऐसेही होते हैं. तथाहि ॥ वर्णाश्रमाभिमानेनश्रुतिदासोभवेन्नरः ॥ वर्णाश्रमविहीनश्चवर्ततेश्रुतिमूर्धनि ॥ ३० ॥

मू० क्षिप्रंभवतिधर्मात्माशश्वच्छांतिंनिगच्छति ॥
कौन्तेयप्रतिजानीहिनमेभक्तःप्रणश्यति ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा १ भवति २ क्षिप्रम् ३ शश्वत् ४ शांतिम् ५ निगच्छति ६ कौन्तेय ७ प्रतिजानीहि ८ मे ९ भक्तः १० न ११ प्रणश्यति १२ ॥ ३१ ॥ अ० सि० अर्जुन सुन भक्तीका माहात्म्य. अनन्यभक्त दुराचारभी ❋ धर्मात्मा १ है, २ शीघ्र (जलदी) ३ नित्य ४ शांतिको ५ अर्थात् उपरामउपशमको ५ प्राप्तहोगा. ६ हे अर्जुन ७ सि० इसबातकी ❋ तूं प्रतिज्ञाकर ८ सि० कि ❋ मेरा ९ भक्त १० अर्थात् परमेश्वरका दुराचारभी भक्त १० नहीं ११ भ्रष्ट होता है. १२ अर्थात् अधो गतीको नही प्राप्त होता है १२ उपासनाकांडका यह सूत्र है. ॥ अथातो भक्तिजिज्ञासा ॥ पीछेधर्मकेभक्तीकी जिज्ञासा होती है. इसहेतूसे प्रतीत होता है कि पहले जन्मोंमें वो धर्मकरचुका. इसीवास्ते श्रीमहाराजनेभी उसको धर्मात्मा कहा, और अपने भक्तसे (भुजा उठाकर) कहते हैं, कि कुतर्कियोंके सभामें यह प्रतिज्ञाकरके भगवद्भक्त दुराचारभी दुर्गतीको प्राप्त नहीं होता है. भक्तिमार्गवालोंका यह डंका बजाता है. ॥ ३१ ॥

मू० मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेपिस्युःपापयोनयः ॥
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेपियान्तिपरांगतिम् ३२ ॥

पार्थ १ ये २ अपि ३ पापयोनयः ४ स्युः ५ ते ६ अपि ७ माम् ८ हि ९ व्यपाश्रित्य १० तथा ११ शूद्राः १२ स्त्रियः १३ वैश्याः १४ पराम् १५ गतिम् १६ यांति १७ ॥ ३२ ॥ अ० उ० आचारभ्रष्टको जो मेरी भक्ति पवित्रकर दे, तो इसमें क्या आश्चर्य मान-

ता है तूं हे अर्जुन मेरी भक्ति रजोगुणीतमोगुणीजन्मके पापियोंको कृतार्थ कर देतीहै. हे अर्जुन १जो२निश्चयसे३जन्मकेपापी४सि०भी ✻है ५ अर्थात् पापियोंके कुलमें याने अन्त्यजम्लेच्छवर्णसंकरोंमें उत्पन्न हुवे हों ५ वे ६ भी ७ मेरा ८ ही ९ आश्राकरके १० सि० परमगतिमुक्तीको प्राप्त होंगे,पहले वहुत होयगे,अव हैं, और होंगे और जैसे ये मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होते हैं, ✻तैसे ही ११ शूद्र १२ स्त्री १३ वैश्य १४ परमगतीको १५।१६ प्राप्त होते हैं,१७ तात्पर्य रजोगुणी तमोगुणी, मूर्ख पंडित, लुगाई ये सवलोग मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होते हैं और मेरी कृपा और भक्तीके प्रतापसे ज्ञानवान् होकर सब परमानंदस्वरूपआत्माको प्राप्त होते हैं. मेरे भक्तीमें सबका अधिकार है. भक्तजनही मुझको प्यारे है, मेरा भक्त, व्यवहारमें कोई जाति कहलाता हो शूद्र म्लेछ वा वर्णसंकर जो वो मेरा भक्त है, तो परमार्थमें उसको साधुसंन्यासी समझना चाहिये. क्यों कि उत्तमपदका भागी वोही है. ज्ञातृपुरुप (विद्वान्) व्यवहारमेंभी उसको श्रेष्ठ जानते हैं. परमार्थमें तो वो वेसन्देह सबसे श्रेष्ठ है.बारवें अंकसे सत्रावेंअंकतककी टीका लिखते हैं. मैत्रयी, गार्गी, मदालसा, मीरां, करमेती, इत्यादि हजारों परमपदको प्राप्त हूई वर्तमानकालमें वहुतस्त्री, उदार, दाता, तपस्वी, ज्ञानी, भक्त, प्रसिद्ध,हैं. जिनके सहायसे और मुख्य जिनके वास्ते यह टीका वनी वे बीबीबीरा, और बीबीजानिकी, ये दोनोंस्त्री ब्राह्मणी हैं. जानिकीको दो विशेषण विद्वानोंने दीये हैं. "ब्राह्मणवंशविद्वज्जनैर्वन्दिता" अर्थात् ब्राह्मणोंके वंशमें जो विद्वज्जन वे उसको भक्तीके और विरक्तीके प्रतापसे वन्दन करते हैं. और श्रीसम्प्रदायचन्द्रिका अर्थात् श्रीसंप्रदायके प्रकट और प्रसिद्ध करनेके लिये यह जानिकी चांदनीके सहश है. गुजराथदेशमें जो अहमदावादनगर वहांकी रहनेवाली, शंकरलालविष्णुनागरब्राह्मणकी बेटी, मानकलालप्रसिद्धसांकललालकी पत्नी, श्रीमान् उत्तमगुणोंकी खान, अब श्रीबृन्दाव-

नचंद्रमें वास करती हैं. वरमें इनका नाम पार्वतीथा. श्रीसम्प्रदायको जब ये शरणागत हुई तब विधिवत् द्वितीयनाम बीबीजानिकी रख्ख गया. बीबीबीराका द्वितीय नाम बीबीझुंनिया भी प्रसिद्ध है. इन्होंने श्रीबीरविहारीजी और बीरेश्वरमहादेवजीका मंदिर बनाकर, सर्वस्व दानकरदीया यहभी वृन्दावनमें वास करती हैं. हरीरामसारस्वतब्राह्मणकी बेटी श्योदत्तकीपत्नी है. सर्वस्वदानसे विशेष कोईदान नहीं सर्वस्वदानका फल अक्षय है. और जीतेजी प्रत्यक्ष होता है. इसमे इतिहास यह है. श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्यमहाराजजी एक स्त्रीके घर भिक्षाके लिये गये. उससमय स्त्रीके घरमें कुछ नथा. स्त्री वडी पछताई श्रीमहाराजको करुणा आई और कहा कि, तेरे घरमें जो दाना अन्नका या कोई फल सूखा पडा हो ढूंढकर ला, एक आमला उसस्त्रीको मिला, अतिसंकोचके साथ महाराजके भिक्षावस्त्रमें दीया, जो कि उसस्त्रीके घरमें सिवाय उस-आमलेके कुछ नथा. श्रीमहाराजने सर्वस्वदानकी कल्पनाकर, लक्ष्मीजीका आवाहन कीया. श्रीजी आई. महाराजने कहा इसस्त्रीको विशेष द्रव्य दो. महाराणीजीने कहा हमको देनेमें इनकार नहीं. परंतु सप्तजन्म यह दरिद्री रहेगी ऐसे इसके कर्म हैं. और यह मर्यादाभी आपकी बांधी हूई है. महाराजने कहा इसने इससमय सर्वस्वदान कीया इसका प्रत्यक्ष शीघ्र मनवांछित फल होना चाहिये. देवीजी बोली कि सत्य है, जो आज्ञा हो. महाराजने कहा, कि इसका घर सोनेके आमलोंसे भर दो उसीसमय सोनेके आमले उसके घरमें वर्से, घर भर गया. श्रीमहाराज उसस्त्रीको सर्वस्वदानका माहात्म्य कहकर, परमपदके प्राप्तीका वरदान दे गये. विचारो भक्तिमार्गमें तर्कका अवसर नहीं. स्त्री शूद्रादि भक्तीकरके सब परमपदके अधिकारी हैं. भक्तीका फल प्रत्यक्ष देखनेकेलिये बीबीजानिकी और बीबीबीराकी कथा लिखी गई " भक्तिभक्तभगवतगुरु चतुर्ना-

मवपुएक ॥ तिनकेपदवंदनकिये नाशतविघ्नअनेक ” अथवा “ तिनकेजसवरननकिये नाशतविघ्नअनेक ” चारोंका प्रभाव इसटीकामें लिखा गया. ग्रंथके बीचका यह मंगलाचरण है. आनंदचन्द्रप्रभाग्रन्थ वार्तिकभाषामें बीबीबीरा और बीबीजानिकीनें मिलकर बनाया है. संख्यामें दसहजारश्लोकोंसे कम नहीं. सिवाय होगा. अ, क, ह, इत्यादि अक्षरोंके संख्यापर अकारसे हकारपर्यन्त कई सोप्रामाणीकमहानुभावोंकी (कथा उसमें सिवाय वैराग्य, विद्या, भक्ति, इत्यादिकोंसे विशेष) लिखी हैं. उसग्रंथसे और शाब्दादिप्रमाणोंकरके सह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि स्त्रीशूद्रादि सब लोग लुगाईमात्र भक्तीके प्रतापसे परमगतीको प्राप्त होते हैं. जिससे परे अन्यश्रेष्ठ कोई गति नहीं. उसकोही परमगति कहते है. ॥ ३२ ॥

मू०किंपुनर्ब्राह्मणाःपुण्याभक्ताराजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखंलोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम् ॥ ३३ ॥

तथा १ ब्राह्मणाः २ राजर्षयः ३ पुण्याः ४ भक्ताः ५ पुनः ६ किम् ७ असुखम् ८ अनित्यम् ९ इमम् १० लोकम् ११ प्राप्य १२ माम् १३ भजस्व १४ ॥ ३३ ॥ अ० उ० व्यवहार में जो ब्राह्मणक्षत्रिय कहलाते हैं, यह मेरी भक्ती करके परमगतीको प्राप्त हों, तो इसमे क्या कहना है. अर्थात् यह बात बेसंदेह है, इसमें व्यवहार परमार्थ दोनोंका सम्मत है. परन्तु बिनामेरे भक्ती हे अर्जुन जो तूं चाहे कि मैं व्यवहारमें क्षत्रिय कहलाता हूं, इसहेतूसे परमगतीको प्राप्त होजाऊंगा, इसका लेशमात्रभी भरोसा मत रख. मैं तुझको समझाता हूं कि यह व्यावहारिकजातीका अभिमान छोड. जल्द मेरा भजन कर, शरीरोंका भरोसा नहीं. शरीरका नाम दुःखालय है. अर्थात् यह शरीर दुःखोंका घर है. इसमें सुखकी आशा छोड. वर्तमानमें जैसा हैं तूं वैसाही भजन कर.

तात्पर्य इसश्लोकका लिखागया. अब अक्षरार्थ लिखते हैं. श्रीभगवान् कहते हैं कि जैसे व्यवहारमें जो शूद्रवर्णसंकरादि कहलाते हैं. वे मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होंगे. अर्थात् परमगतीको प्राप्त होते हैं. तैसे १ सि० ही व्यवहारमें जो *ब्राह्मण सि० और* राजऋषि (क्षत्रिय) ३ सि० कैसे हैं यह कि व्यवहारमें भी उनको जन्मसेही *पवित्र ४ सि० कहते हैं, यह मेरे *भक्त ५ सि० होकर अर्थात् मेरी भक्तीकरके परमगतिको प्राप्त होतो *फिर ६ क्या ७ सि० कहना है. इसबातकाही अर्जुन निश्चय रख बेसन्देह तूं भक्तीकरके परमगतिको प्राप्त होगा. इसवास्ते *अनित्य ८ सि० और *असुख ९ अर्थात् नहीं है किसी कालमें सुख जिसमें ऐसे ९ इस १० शरीरको ११ प्राप्त होकर १२ मेरा १३ भजनकर. १४ अर्थात् मुझको भज. १४ तात्पर्य अनित्यहोनेसे तूं देर मत कर, और असुख होनेसे यह मत समझ कि जिसकालमें सुख होगा, तब भजन करूंगा. इसमें कभी सुख होताही नहीं, सुख भजनमें ही है. व्यवहारके. जातीका आश्राछोड, भक्तीका आश्रा ले. जिस भक्तीके प्रतापसे व्यवहारमें जो शूद्रवर्णसंकर कहे जाते हैं, वे भी परमगतीको प्राप्त होते हैं. और तूं तो व्यवहारमेंभी उत्तम कहलाता है, तूं क्यों देर करता हैं. जल्द भजन कर. यह मतलब है, महाराजका. ॥ ३३ ॥

मू० मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानंमत्परायणः ३४ ॥

मन्मनाः १ भव २ मद्भक्तः ३ मद्याजी ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ एवम् ७ आत्मानम् ८ युक्त्वा ९ मत्परायणः १० माम् ११ एव १२ एष्यसि १३ ॥३४॥ अ० उ० भजनका प्रकार दिखलाते हुवे फलपूर्वक इसप्रसंगको समाप्त करतेहैं. मुझमें है मन जिसका १

सि० ऐसा ❋ होतूं. २ अर्थात् मुझमेंही मन लगा. २ मेरा भक्त ३ सि० हो, और ❋ मेरा यजन करनेवाला ४ सि० हो तूं ❋ अर्थात् मेरी पूजा कर. ४ सि० और ❋ मुझको ५ नमस्कार कर ६ इसप्रकार ७ मनको ८ सि० मुझमें ❋ लगाकरके ९ मुझपरायणहूवा १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होगा तूं. १३ अर्थात् मुझ परमानन्दस्वरूपको प्राप्त होगा. १२ ॥ ३४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

दसवें अध्यायका प्रारंभ हुवा ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणुमेपरमं वचः॥यत्तेहंप्रियमाणायवक्ष्यामिहितकाम्यया॥१॥

महाबाहो १ भूयः २ एव ३ मे ४ वचः ५ शृणु ६ यत् ७ परमम् ८ ते ९ प्रियमाणाय १० हितकाम्यया ११ अहम् १२ वक्ष्यामि १३ ॥ १ ॥ अ० उ० सातवें और नववें अध्यायमें संक्षेपकरके तो मैनें अपने विभूतियोंका निरूपण कीया. अब विस्तारपूर्वक कहता हूं. हेअर्जुन १ फिरभी २।३ मेरा ४ वचन ५ सुन ६ सि० कैसा है वो वचन कि ❋ जो ७ परमार्थनिष्ठावाला ८ अर्थात् मेरा वचन सुननेसे परमार्थमें निष्ठा होजाती है, बारंबार तुझसे इसलिये कहता हुं कि मेरे वचन सुननेमे तेरी प्रीति है. ८ तुझप्रीतिमानकेअर्थ ९।१० अर्थात् तूं मेरेवचनमें श्रद्धाकरता है, इसवास्ते तेरेअर्थ अर्थात् तुझसे १० हितकी कामनाकरके ११ अर्थात् तूं मेरा प्यारा है, मैं यह चाहता हूं, कि तेरा पीछे भला हो इसवास्ते भी ११ मैं १२ कहुंगा. १३ ॥ १ ॥

मू० नमेविदुःसुरगणाःप्रभवंनमहर्षयः॥
अहमादिर्हिदेवानांमहर्षीणांचसर्वशः॥ २॥

मे १ प्रभवम् २ न ३ सुरगणाः ४ विदुः ५ न ६ महर्षयः ७ हि ८ सर्वशः ९ देवानाम् १० महर्षीणाम् ११ च १२ अहम् १३ आदिः १४ ॥ २ ॥ अ० उ० सिवाय मेरे मेरेप्रभावको कोई नहीं जानता इसवास्तेभी कहूंगा. मेरे १ प्रभावको २ न ३ देवतोंके समूह ४ जानते हैं, ५ न ६ महर्षी. ७ क्योंकि ८ सबप्रकारसे ९ देवतोंका १० और महर्षियोंका भी ११।१२ मैं १३ आदि १४ सि० हुं. ❋ तात्पर्य प्रभूके अचिन्त्यशक्तीको और सामर्थ्यको जब देव नहीं जानते, तो फिर मनुष्य कब जानसक्ते हैं. क्योंकि कारणसे कार्य होता है, इसवास्ते कार्य, कारणको नहीं जानसक्ता. परंतु कार्यसे कारणका अनुमान होसक्ता है. तात्पर्य सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मासे पृथक् कोई परमेश्वरको नहीं जानसक्ता. ॥ २ ॥

मू० योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरम्॥
असंमूढःसमर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते॥ ३॥

यः १ माम् २ अजम् ३ अनादिम् ४ च ५ लोकमहेश्वरम् ६ वेत्ति ७ सः ८ मर्त्येषु ९ असंमूढः १० सर्वपापैः ११ प्रमुच्यते १२॥३॥ अ० उ० मुझको इसप्रकार जो जानता है सो तो जानता है. और वो ज्ञानी वेसन्देह मुक्त होगा. जो १ मुझको २ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूपआत्माको मुझसे अभिन्न २ जन्मरहित ३ अनादि ४।५ सि० और सच्चिदानन्द सोपाधिकमायोपहित हुवा ❋ लोकोंका महेश्वर ६ सि० है. इसप्रकार जो मुझको ❋ जानता है ७ सो ८ मनुष्योंमें ९ अज्ञानरहित है. १० अर्थात् उसीका अज्ञान दूर हुवा १० सि० वोही ❋ सब पापोंकरके ११ अर्थात् समस्तकर्मोंके फल (अगले पीछले) से ११ मुक्त होगा वेसन्देह. १२ " जो इसश्लोकका अर्थ ऐसे

कियाजाय कि मुझवासुदेवको अज अनादि लोकोंका महेश्वर जानता है सो मनुष्योंमें ज्ञानी है, सब पापोंकरके मुक्त होगा" इस अर्थमें यह शंका है, कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजमूर्त्तिमानको उपासक जनभी अजादि महेश्वर कहते हैं, और ज्ञाननिष्ठावालेभी यही कहते हैं. वे कौन हैं कि जो श्रीमहाराजको जन्मादिवाला जीव कहता है. प्राकृत मूर्ख स्त्री बालक और नास्तिक इन्होंका इसजगह कुछ प्रसंग नहीं. कर्मी कर्महीको फलदाता जानते हैं. कर्मसे पृथक् कोई ईश्वर नहीं मानते. विचारोकि यह उपदेश श्रीभगवानका किसको है. तात्पर्य मायोपहितसच्चिदानन्दको अविद्योपहितसच्चिदानन्दसे अर्थात् ईश्वरको जीवसे जो लक्ष्यार्थमें अपृथक् समझतेहैं, कि मायोपहित हुवा यही अविद्योपहित जीव सच्चिदानन्द महेश्वरहै. इसी हेतुसे अज अनादि है. जब ऐसा सच्चिदानन्दआत्माको जानेंगे, तब वे मुक्त होंगे. जो ज्ञान इस श्लोक में कहा है, वो कुछ सहज नहीं समझना. पीछलेश्लोकमें श्रीभगवान् कहचुके हैं, कि मेरे प्रभावको ऋषि और देवताभी नहीं जानते, मनुष्य तो क्या जानेंगे. बेसन्देह जो ईश्वरसे अभिन्न निर्विकार आत्माको सच्चिदानन्द जानेगा, वोही भगवतके प्रभावको जानेंगा. और जो आपको भक्त, ऋषि, देवता, मनुष्य. इत्यादि ऐसा जानेंगे, वे नहीं जानेंगे, इसप्रकार समझना चाहिये. ॥ ३ ॥

मू० बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहःक्षमासत्यंदमःशमः ॥
सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥ ४ ॥

बुद्धिः १ ज्ञानम् २ असंमोहः ३ क्षमाः ४ सत्यम् ५ दमः ६ शमः ७ सुखम् ८ दुःखम् ९ भवः १० भावः ११ भयम् १२ च १३ अभयम् १४ एव १५ च १६ ॥ ३ ॥ अ० उ० अब तीन श्लोकीमें सोपाधिक अपने स्वरूपकी ईश्वरता प्रकट करते हैं. सारासारको भलेप्रकार जाननेवाली अंतःकरणकी वृत्ति १ आत्माका निश्चय क-

रनेवाली आत्माकारांतःकरणकी वृत्ति २ जिसकाममें प्रवृत्त होना, विवेकपूर्वक होना,और उसजगे चित्त व्याकुल न होना, सदा चैतन्य रहना, ३ पृथिवीवत् सहनशील होना, ४ यथार्थ (सन्देहरहित)बोलना ५ इन्द्रियोंका निरोध ६ अंतःकरणका निरोध ७ अनुकूलपदार्थमें जो अंतःकरणकी वृत्ति ९ उद्भव होना. १० उद्भव न होना, ११ त्रास होना, १२।१३ त्रास न होना. १४।१५।१६ सि०अगले श्लोककेसाथ इसका संबंध है. अगलेश्लोकमें श्रीभगवान् कहेंगे, कि यह शमादि पृथक् पृथक् भाव मुझ सोपाधिकईश्वरसे होते हैं. अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दआत्मा निर्विकार है. इसप्रकार निरुपाधिक और सोपाधिक सच्चिदानन्दको जानना भगवतका जानना है. ❁ ॥ ४ ॥

मू०अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोयशः ॥
भवन्तिभावाभूतानांमत्तएवपृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अहिंसा१समता २ तुष्टिः३ तपः ४ दानम् ५ यशः ६ अयशः ७ पृथग्विधाः ८ भावाः ९ भूतानाम् १० मत्तः११ एव १२ भवन्ति१३ ॥ ५ ॥ अ० हिंसारहित १ रागद्वेषादिरहित २ सि०दैवयोगसे अपनेआप जो पदार्थ प्राप्त होजा उसीमें ❁ सन्तोष ३इन्द्रियोंका निग्रह ४ सि०न्यायसे कमायाहुवा अन्न सुपात्रोंको ❁ देना ५ सत्कीर्ति ६ अर्थात् सज्जनोमें कीर्ति होना. ६ अकीर्ति ७अर्थात् जो लोग भगवतसे विमुख हैं. और भगवद्भक्तोंसे वैर रखते हैं इसहेतूसे उनकी जो बुराई होती है, उसको अकीर्ति कहते हैं. ७ ये सब कीर्ति अकीर्ति नानाप्रकारके भाव ८।९ सि० बुद्धि ज्ञानादि ❁प्राणियोंके१० मुझसे ११ही १२ होते हैं. १३ तात्पर्य सोपाधिकचैतन्यसे ये सब होते है. " हानि लाभ जीवन मरण। यश अपयश विधिहाथ" पुराणोंमें कथा है कि पृथिवीपर भगवत्संबंधी स्त्रीपुरुषोंके मुखसे जबतक

जिसका जिस श्रवण करनेमें आता है,तबतक वे कीर्तिमान् स्वर्गों निवास करते हैं. ॥ ५ ॥

मू० महर्षयःसप्तपूर्वेचत्वारोमनवस्तथा॥
मद्भावामानसाजातायेषांलोकइमाःप्रजाः॥६॥

पूर्वे १ चत्वारः२ सप्त३ महर्षयः ४ तथा ५ मनवः ६ मद्भावाः ७ मानसाः ८ जाताः ९ येषाम् १० लोके ११ इमाः १२ प्रजाः १३ ॥ ६ ॥ अ० सि० मैथुनीसृष्टिसे ❋ पहले १ सि० जोहुवे ❋ चार २ सि० सनकादि और ❋ सात ३ सि० भृग्वादि ❋ महर्षी ४ तैसेही ५ मनु ६ सि० स्वायम्भ्वादि ❋ मेराही है प्रभाव जिनमें ७ सि० मुझ हिरण्यगर्भात्माके ❋ संकल्पमात्रसे ८ उत्पन्नहुवे हैं ९ अर्थात् उनके शरीरोंको मायामय समझना ९ सि० उनका प्रभाव यह है कि ❋ जिनकी १० लोकमें ११ यह १२ प्रजा १३ सि० है. ❋ तात्पर्य प्रजा दोप्रकारकी है, निवृत्तिमार्गवाली एक, प्रवृत्तिमार्गवाली दूसरी. निवृत्तिमार्गके आचार्य सनकादी, प्रवृत्तिमार्गके आचार्य भृग्वादि हैं. ये दोनोमार्ग अनादि हैं. सनकादिमहाराजने प्रवृत्ति मार्गके तरफ कभी किसीकालमें दृष्टिभी नहीं कीई. जबसे उनका आविर्भाव हुवा तबसेही बाल जितेन्द्रिय ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित परमहंसहुवे विचारते रहते हैं जिसजगे जाते हैं सब देवता विष्णुमहेशादि उनके सामने खडे होजाते हैं. और यह सामर्थ्य रखते हैं कि चाहें जिस देवताको शाप देदें, अनुग्रह करदें. यह प्रताप ज्ञाननिष्ठा और निवृत्तीका समझना मोक्षमार्ग निवृत्तिमार्गवाले संन्यासी परहंसोंसे ही मिलता है.जो आपप्रवृत्तिबद्धहैं.वे दूसरेको कैसे मुक्त करेंगे.॥६॥

मू० एतांविभूतियोगंचममयोवेत्तितत्त्वतः॥
सोविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः॥७॥

एताम् १ मम २ विभूतिम् ३ योगम् ४ च ५ यः ६ तत्त्वतः ७

वेत्ति ८ सः ९ अविकम्पेन १० योगेन ११ युज्यते १२ अत्र १३ न १४ संशयः १५ ॥ ७॥ अ० उ० यथार्थज्ञानका मुक्ति फल है, सो दिखलाते हैं. इस १ मेरे २ विभूतीको ३ और योगको ४।५ जो यथार्थ ६।७ जानता है, ८ सो ९ निश्चल १० योगकरके ११ युक्त होजाता है. १२ अर्थात् संशयविपर्ययरहित होजाता है. १२ इसमें १३ नहीं है १४ संशय. १५ ॥ ७ ॥

मू० अहंसर्वस्यप्रभवोमत्तःसर्वंप्रवर्तते ॥
इतिमत्वाभजंतेमांबुधाभावसमन्विताः ॥ ८ ॥

सर्वस्य १ प्रभवम् २ अहम् ३ मत्तः ४ सर्वम् ५ प्रवर्त्तते ६ इति ७ मत्त्वा ८ भावसमन्विताः ९ बुधाः १० माम् ११ भजन्ते १२ ॥ ८ ॥ अ० उ० संशयविपर्ययरहित भगवद्भक्त ऐसा भगवतको मानकर भजन करते हैं, फिर भगवतके कृपासे उनको आत्मज्ञान होजाता है. यह वात कहते हैं चारश्लोकोंमें. सबकी १ उत्पत्ति है जिससे २ सि० सो मन्वादि ❋ मैं ३ सि० हूं ❋ मुझसे ४ सि० ही बुद्ध्यादिपदार्थ ❋ सब ५ चेष्टा ६ सि० करते हैं. अर्थात् सबका प्रेरक अन्तर्यामी हैं ❋ यह ७ समझकर ८ श्रद्धापूर्वक ९ विद्वान् १० मुझको ११ भजते हैं. १२ ॥ ८ ॥

मू० मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतःपरस्परम् ॥
कथयंतश्चमांनित्यंतुष्यंतिचरमंतिच ॥ ९ ॥

मच्चित्ताः १ मद्गतप्राणाः २ परस्परम् ३ बोधयन्तः ४ नित्यम् ५ माम् ६ कथयंतः ७ च ८ तुष्यंति ९ च १० रमन्ति ११ च १२ ॥ ९ ॥ अ० उ० प्रीतिपूर्वक भजनकरनेवालोंका लक्षण यह है. उत्तरोत्तर उनकी वृत्ति इसप्रकार भगवत्स्वरूपमें वढती है. एक अंकमें प्रथमभूमिकावालोंका लक्षण है. मुझसच्चिदानन्दमें है, चित्त जिनका १ मुझमें लगादिया है प्राण जिन्होंने २ अर्थात् अपना

जीवना मेरे आधीन समझते हैं. २ सि० परस्पर आपसमें ३ बोध- करते हैं. ४ अर्थात् दोचारभक्त तत्त्वके जिज्ञासुमिलकर विचार क- रते हैं श्रुति स्मृति युक्ति इन प्रमाणोंकरके परस्पर बोधन करते हैं ४ सि० कोई श्रुति प्रमाण देता है, कोई स्मृति,युक्तिकरके सिद्ध करते हैं. जब सब भक्तोंका और श्रुति स्मृति युक्तियोंका शंकासमाधानपू- र्वक एकपदार्थ (भगवत्तत्त्व) में सम्मत होजाता है, उसको जानकर जिज्ञासुओंसे ❋ नित्य (सदा) ५ मुझको ६ कहते हैं. ७।८ अर्थात् भक्तोंको भगवत्स्वरूपका उपदेश करते रहते हैं. ७।८ सि० और उसी भगवत्स्वरूपके आनन्दमें ❋ सन्तोष करते हैं९।१०अर्थात् वो निरतिशय आनन्द है, उस आनन्दसे परे विषयानन्दको तुच्छ सम- झते हैं १० सि० सदा उसी आनन्दमें ❋ रमते हैं. ११।१२ अर्थात् उसमें प्रीति रखते हैं सच्चिदानन्दस्वरूपमें मग्न रहते हैं १२ ॥ ९ ॥

मू०तेषांसततयुक्तानांभजतांप्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामिबुद्धियोगंतंयेनमामुपयांतिते ॥ १० ॥

सततयुक्तानाम् १ प्रीतिपूर्वकम् २ भजताम् ३ तेषाम् ४ तम् ५ बुद्धियोगम् ६ ददामि ७ येन ८ माम् ९ ते १० उपयान्ति ११॥१०॥

अ० निरन्तर युक्त हुवे १ प्रीतिपूर्वक २ सि० जो मेरा ❋ भजन करते हैं, ३ उनको ४ वो ५ ज्ञानयोग ६ देऊँगा मैं, ७ सि० कि ❋ जिसकरके ८ मुझको ९ वे १० प्राप्तहोंगे. ११ टी०उनको ज्ञानयोग देता हूं. ४।५।६।७ ॥ १० ॥

मू०तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता ॥११ ॥

तेषाम् १ एव२अनुकम्पार्थम् ३अहम् ४ अज्ञानजम् ५ तमः ६ नाशयामि ७ आत्मभावस्थः ८ भास्वता ९ ज्ञानदीपेन १० ॥११॥

अ० तिनके १।२ भलेकेलिये ३ मैं ४ अज्ञानसे उत्पत्ति है जिसकी

ऐसा जो तम ५।६ अर्थात् संसार ६ सि० तिसका ❀ नाशकरदेता हूं, ७ बुद्धीके वृत्तीमें स्थितहोकर ८ प्रकाशरूप ज्ञानदीपकरके. ९। १० तात्पर्य जो निरन्तर पूर्वरीतीकरके मेरा भजन करते हैं,उनको निरतिशय परमानन्दके प्राप्तीकेलिये मूलाज्ञान और तूलाज्ञानका मैं नाश करदेता हूं, निर्मलबुद्धीके वृत्तीमें स्थित होकर ऐसा प्रकाश करता हूं कि सब संसार उसको मिथ्या प्रतीत होने लगता है. और आत्मा शुद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, निराकार, निर्विकार, अपरोक्ष, होजाता है. ऐसा ज्ञानरूप दीपक उसके हृदयमें प्रज्वलित करता हूं कि अपनेआप सब पदार्थ नित्य अनित्य भलेप्रकार फुरनें लगते हैं. फिर विवेक वैराग्यादि साधनचतुष्टयसम्पन्नहोकर आत्मज्ञानद्वारा परमानन्दको प्राप्त होजाता है, ॥ ११ ॥

मू० अर्जुनउवाच॥परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमंभवान्॥
पुरुषंशाश्वतंदिव्यमादिदेवमजंविभुम् ॥ १२ ॥

अर्जुनउवाच। भवान् १ परम् २ ब्रह्म ३ परम् ४ धाम५परमम् ६ पवित्रम् ७ पुरुषम् ८ शाश्वतम् ९ दिव्यम् १० आदिदेवम् ११ अजम् १२ विभुम् १३ ॥ १२ ॥ अ० अर्जुन कहता है, सि०हे कृष्णचंद्रमहाराज ❀ आप १ परंब्रह्म २।३ परंधाम ४।५ परमपवित्र६। ७सि० हो. व्यासादि आपको ऐसा कहते हैं. और ❀ पुरुष८नित्य ९ दिव्य १० आदिदेव ११ अज १२ व्यापक १३ सि०कहते हैं. इसश्लोकका अगले श्लोककेसाथ सम्बन्ध है ❀ ॥ १२ ॥

मू० आहुस्त्वामृषयःसर्वेदेवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितोदेवलोव्यासःस्वयंचैवब्रवीषिमे ॥ १३ ॥

सर्वे १ ऋषयः २ देवर्षिः ३ नारदः ४ तथा ५ असितः ६ देवलः ७ व्यासः ८ त्वाम् ९ आहुः १० स्वयम् ११ च१२ एव १३मे१४ब्रवीषि १५ ॥१३॥ अ० उ०इसश्लोकका पीछले श्लोककेसाथ सं-

बंध है. सब १ ऋषि २ देवऋषि नारदजी ३।४ और ५ असित ६ देवल ७ व्यासजी ८ आपको ९ सि० एसा ❋ कहते हैं, १० सि० कि जैसा पीछलेश्लोकमें परंब्रह्मसे लेकर विभूतक निरूपण कीया ❋ और आपभी ११।१२।१३ मुझसे १४सि०अपने आपको वैसाही ❋ कहते हो. १५ सि०कि,जैसा आपको व्यासादि कहते हैं. ❋॥१३॥

मू०सर्वमेतदृतंमन्येयन्मांवदसिकेशव ॥
नहितेभगवन्व्यक्तिंविदुर्देवानदानवाः॥ १४ ॥

केशव १ यत् २ माम् ३ वदसि ४ एतत् ५ सर्वम् ६ ऋतम् ७ मन्ये ८ भगवन् ९ हि १० ते ११ व्यक्तिम् १२ न १३ देवाः १४ विदुः १५ न १६ दानवाः १७ ॥ १४ ॥ अ० हे केशव १ जो २ मुझसे ३ कहते हो आप ४ यह ५ सब ६ सत्य ७ मानता हूं मैं. ८ हे भगवन् ९ बेसंदेह (यथार्थ) १०आपके ११स्वरूपको वा प्रभावको १२ न १३ देव १४ जानते हैं १५ न १६ दानव १७ तात्पर्य परमात्माका शुद्धस्वरूप विषयवत् कोईभी नहीं जानसक्ता. भगवतका उपाधिसहित स्वरूप विषयवत् जाना जाता है. आत्मा स्वयंप्रकाश है. ॥ १४ ॥

मू०स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम॥
भूतभावनभूतेशदेवदेवजगत्पते ॥ १५ ॥

पुरुषोत्तम १ भूतभावन २ भूतेश ३ देवदेव ४ जगत्पते ५स्वयम् ६ एव ७ आत्मना ८ आत्मानम् ९ त्वम् १० वेत्थ ११ ॥१५ अ०हे पुरुषोत्तम १ हे भूतभावन २ हे भूतेश ३ देवदेव ४ हे जगत्पते ५ आपही ६।७आत्माकरके ८ आत्माको ९ आप १० जानते हो. ११ तात्पर्य जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश है, सूर्यके देखनेमें किसीपदार्थकी अपेक्षा नहीं, ऐसेही भगवतका शुद्धस्वरूप सच्चिदानन्द आत्माकरकेही जानाजाता है. मन वाणी और उनके देवतोंका विष-

य नहीं. फिर मनुष्योंका विषयतो कैसे होसक्ता है. टी०भूतोंके उत्पन्न करनेवाले २ भूतोंके ईश्वर ३ देवतोंके भी देवता ४ जगतके स्वामी ५ ये सब हेतुगर्भित विशेषण हैं. ॥ १५ ॥

मू०वक्तुमर्हस्यशेषेणदिव्याह्यात्मविभूतयः॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि॥ १६॥

आत्मविभूतयः १ दिव्याः २ हि ३ अशेषेण ४ वक्तुम् ५ अर्हसि ६ याभिः ७ विभूतिभिः ८ इमान् ९ लोकान् १० व्याप्य ११ त्वम् १२ तिष्ठसि १३ ॥ १६ ॥ अ० उ० जबकी अपने स्वरूपको और अपने ऐश्वर्यको आपही जानते हो, इसवास्ते आपसेही आपकी विभूति सुना चाहता हूं. अपना ऐश्वर्य्य १ दिव्य २।३ समस्त ४ कहनेको ५ योग्यहो ६ अर्थात् जो जो आपकी दिव्य विभूती हैं वे समस्त मुझसो कहिये ६ जिन विभूतिकरके ७।८ इस लोकको ९।१० व्याप्तकर ११ आप १२ स्थित हो १३ तात्पर्य जिन जिनविभूतिकरके इसलोकमें आप व्याप्त हो रहेहो, मैं उनका चिंतवन करने चाहता हूं, इसवास्ते मुझसे कहो. ॥ १६ ॥

मू०कथंविद्यामहंयोगिंस्त्वांसदापरिचिंतयन्॥
केषुकेषुचभावेषुचिंत्योसिभगवन्मया॥ १७॥

योगिन् १ कथम् २ त्वाम् ३ सदा ४ परिचिन्तयन् ५ अहम् ६ विद्याम् ७ भगवन् ८ मया ९ केषु १० केषु ११ च १२ भावेषु १३ चिन्त्यः १४ असि १५ ॥ १७ ॥ अ० हे योगीश्वर १ किसप्रकार २ अपको ३ अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्दको ३ सदा ४ चिंतवन करता हुवा ५ मैं ६ जानूं. ७ तात्पर्य इसप्रकार मुझको उपदेश कीजिये, कि जिसप्रकार आपका शुद्धस्वरूप जाना जाय. हे कृष्णचंद्र ८ मुझकरके ९ किन किन पदार्थोंमें १०।११।१२।१३चिंतवन करनेके योग्य १४ हो आप. १५ अर्थात् किस किस पदार्थका

चिंतवन करनेसे अंतःकरण शुद्ध होकर आपका यथार्थ स्वरूप जांना जाता है. उन पदार्थोंको मैं जाना चाहताहूं. (१० से १५ तक) तात्पर्य अन्तःकरणके शुद्धीका उपाय अर्जुन बूझता है. १७

मू० विस्तरेणात्मनोयोगंविभूतिंचजनार्दन ॥
भूयःकथयतृप्तिर्हिंशृण्वतोनास्तिमेमृतम् ॥ १८ ॥

जनार्दन १ विस्तरेण २ आत्मनः ३ योगम् ४ विभूतिम् ५ च ६ भूयः ७ कथय ८ हि ९ अमृतम् १० शृण्वतः ११ मे १२ तृप्तिः १३ न १४ अस्ति १५ ॥ १८ ॥ अ० उ० जब मेराचित्त बहिर्मुख हो, तबभी आपका चिंतवन करता रहूं इसवास्ते. हे प्रभो १ विस्तारकरके २ अपना योग ३।४ और विभूति ५।६ फिर ७ कहो. ८ क्योंकि ९ अमृतरूप १० सि० आपका वचन ❋ सुननेसे ११ मेरी १२ तृप्ति १३ नहीं १४ होती है. १५ टी० दुष्टजनोंको जो दुःख दे, वा भक्तजनोको आनन्द दे, वा भक्तजन जिनसे मोक्षकी याचना करे, उसकों जनार्दन कहते हैं. यह नाम श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजका है. १ सर्वज्ञतादिअचिन्त्यशक्तियोंको योग कहते हैं. ५ ऐश्वर्यको विभूति कहते हैं. जैसे राजा हाथी, घोडे, सेना इत्यादि ऐश्वर्यसे जाना जाता है. ऐसेही ईश्वर अपने विभूतियोंकरके जाने जाते हैं. और जैसे राजाके मंत्रियोंका आश्रय लेनेसे राजा मिलजाता है, इसीप्रकार परमेश्वर जो आगे विभूति वरनन करेंगे, उनके आश्रयसे शुद्ध सच्चिदानन्द परमेश्वर प्राप्त होजाते हैं. श्रीकृष्णचंद्र इस अध्यायमें वासुदेव और रामचंद्रादि इनको अपनी विभूति कहेंगे इसबातका तात्पर्य समझना चाहिये अपने बुद्धीके अनुसार. ॥ १८ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ हंततेकथयिष्यामि
दिव्याह्यात्मविभूतयः ॥ प्राधान्यतः
कुरुश्रेष्ठनास्त्यंतोविस्तरस्यमे ॥ १९ ॥

श्रीभगवान् उवाच. हन्त १ प्राधान्यतः २ दिव्याः ३ हि ४ आत्मविभूतयः ५ ते ६ कथयिष्यामि ७ कुरुश्रेष्ठ ८ मे ९ विस्तरस्य १० अन्तः ११ न १२ अस्ति १३ ॥ १९ ॥ अ० सि० जिज्ञासु जब प्रश्न करता है, पीछे उसके गुरु जिससमय कृपाकरके उत्तर देनेको चाहते हैं, तो उस प्रश्नके आदरार्थ और जिज्ञासूके प्रसन्नताके लिये ऐसा बोलते हैं कि हन्त ❋ श्रीकृष्णचंद्रमहाराज कहते हैं, हन्त, अर्थात् हां जो तुमने बूझा यह हमने अंगीकार किया अच्छा बूझा है. अब उसका उतर सुनो १ प्रधानप्रधान २ सि० जोजो ❋ दिव्य ३।४ मेरी विभूति ५ सि० हैं तिनको ❋ तुझसे ६ कहूंगा. ७ हे अर्जुन ८ मेरे ९ विस्तारका १० अर्थात् मेरे विभूतियोंके विस्तारका १० अन्त ११ नहीं १२ हैं. १३ ॥ १९ ॥

मू० अहमात्मागुडाकेशसर्वभूताशयस्थितः॥
अहमादिश्चमध्यंचभूतानामंतएवच ॥ २० ॥

गुडाकेश १ सर्वभूताशयस्थितः २ आत्मा ३ अहम् ४ भूतानाम् ५ आदिः ६ च ७ मध्यम् ८ च अन्तः १० एव ११ च १२ ॥ २० ॥ अ० हेगुडाकेश, सि० गुडाकेश यह जो शब्द है इसशब्दका अर्थ घनकेशभी है. अर्थात् गुंजान बाल हों जिसके उसको घनकेश कहते हैं. यह नाम अर्जुनका है. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं कि ❋ हे अर्जुन १ सि० चैतन्य हो, अपनी विभूती सुनाता हूं. प्रथम सबसे श्रेष्ठविभूतिको सुन. सब भूतोंकेहृदयमें विराजमान २ आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्दरूप ३ मैं ४ सि० हूं.सदा इसीका ध्यान करना चाहिये. और जो इसमें मन न लगे और समझमें न आवे तो स्थूलविभूतियोंकोसुन. ❋ भूतोंका ५ आदि ६ और ७ मध्य ८ और ९ अन्त १० मैही ११।१२ सि० हूं. ❋ तात्पर्य यह समझ कि ये सब भूत मुझसेही हुवे, मुझमेंही स्थित हैं, मुझमेंही लय होंगे.तात्पर्य ऐसा चिंतवन करना यही परमेश्वरकी उपासना है॥२०॥

मू॰आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी ॥ २१

आदित्यानाम् १ विष्णुः २ अहम् ३ ज्योतिषाम् ४ अंशुमान् ५ रविः ६ मरुताम् ७ मरीचिः ८ अस्मि ९ नक्षत्राणाम् १० शशी ११ अहम् १२ ॥ २१ ॥ अ॰ आदित्योंमें १ विष्णुनामवाला आदित्य २ मैं ३ सि॰ हूं ❋ ज्योतियोंमें ४ किरणवाले ५ श्रीसूर्यनारायणपूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानंद ६ सि॰ मैं हूं ❋ मरुद्गणोंमें ७ मरीचि ८ मैं हूं. ९ नक्षत्रोंमें १० चन्द्र ११ मैं १२ सि॰ हूं. ❋ ॥ २१ ॥

मू॰वेदानांसामवेदोस्मिदेवानामस्मिवासवः ॥
इन्द्रियाणांमनश्चास्मिभूतानामस्मिचेतना ॥ २२॥

वेदानाम् १ सामवेदः २ अस्मि ३ देवानाम् ४ वासवः ५ अस्मि ६ इंद्रियाणाम् ७ मनः ८ च ९ अस्मि १० भूतानाम् ११ चेतना १२ अस्मि १३ ॥ २२ ॥ अ॰ वेदोंमें १ सामवेद २ मैंहूं. ३ देवतोंमें ४ इन्द्र ५ मैं हूं. ६ इन्द्रियोंमें ७ मन ८।९ मैं हूं. १० प्राणियोंमें ११ ज्ञानशक्ति १२ मैं हूं ॥ १३ ॥ २२ ॥

मू॰रुद्राणांशंकरश्चास्मिवित्तेशोयक्षरक्षसाम् ॥
वसूनांपावकश्चास्मिमेरुःशिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

रुद्राणाम् १ शंकरः २ च ३ अस्मि ४ यक्षरक्षसाम् ५ वित्तेशः ६ वसूनाम् ७ पावकः ८ च ९ अस्मि १० शिखरिणाम् ११ मेरुः १२ अहम् १३ ॥ २३ ॥ अ॰ रुद्रोंमें १ श्रीसदाशिवजीमहाराज शंकरभगवान् शुद्धसच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म २ मैं हूं ३।४ यक्षराक्षसोंमें ५ कुबेर. ६ वसूनमें ७ अग्नि मैं हूं ८।९।१० शिखरियोंमें ११ सुमेरु १२ मैं १३ सि॰ हूं ❋ ॥ २३ ॥

मू०पुरोधसांचमुख्यंमांविद्धिपार्थबृहस्पतिम्॥
सेनानीनामहंस्कन्दःसरसामस्मिसागरः॥ २४॥

पार्थ १ पुरोधसाम् २ बृहस्पतिम् ३ माम् ४ मुख्यम् ५ विद्धि ६ सेनानीनाम् ७ च ८ स्कन्दः ९ अहम् १० सरसाम् ११ सागरः १२ अस्मि १३॥ २४॥ अ० हे अर्जुन १ पुरोहितोंमे २ बृहस्पति ३ मुझको ४ मुख्य ५ जान तूं. ६ और सेनाके सरदारोंमें ७।८देवसेनापति स्वामिकार्तिक ९ मैं १० सि०हूं ❀स्थिरजलोंमें याने तालोंमें. ११ समुद्र १२ मैं हूं. १३॥ २४॥

मू०महर्षीणांभृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरम्॥
यज्ञानांजपयज्ञोस्मिस्थावराणांहिमालयः॥ २५॥

महर्षीणाम् १ भृगुः २ अहम् ३गिराम् ४ एकम् ५ अक्षरम् ६ अस्मि ७ यज्ञानाम् ८ जपयज्ञः ९ अस्मि १० स्थावराणाम् ११ हिमालयः १२॥ २५॥ अ०महर्षियोंमें १ भृगु २ मैं३ सि० हूं ❀ वाणीमें ४ अर्थात् जो बोलनेमें आवे उसमें४एक ५ अक्षर,६ अर्थात् प्रणव ओम् ६ मैं ७ सि०हूं❀यज्ञोंमें ८ जपयज्ञ ९ मैं १० सि०हूं ❀स्थावरोमें ११ हिमालय पर्वत १२ मैं हूं❀॥ २५॥

मू०अश्वत्थःसर्ववृक्षाणांदेवर्षीणांचनारदः॥
गंधर्वाणांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः॥२६॥

सर्ववृक्षाणाम् १ अश्वत्थः २ देवर्षीणाम् ३ च ४ नारदः ५गंधर्वाणाम् ६ चित्ररथः ७ सिद्धानाम् ८ कपिलः ९ मुनिः १०॥ २६॥ अ० सववृक्षोंमें १ पीपल, २ देवऋषियोंमें ३ नारदजी ४।५गंधर्वोंमें ६ चित्ररथ, ७ सिद्धोंमें८ कपिलमुनी, ९।१० सि०मैं हूं❀॥२६॥

मू०उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवम्॥
ऐरावतोगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपम्॥ २७॥

अश्वानाम् १ उच्चैःश्रवसम् २ माम् ३ विद्धि ४ अमृतोद्भवम् ५ गजेन्द्राणाम् ६ ऐरावतम् ७ नराणाम् ८ च ९ नराधिपम् १०॥२७॥ अ० घोडोंमें १ उच्चैःश्रवानामवाला घोडा २मुझको३जानतूं. सि० कैसा है वो घोडा कि जब ❋अमृतके अर्थ समुद्र मथागयाथा उस-समय समुद्रमेसे निकलाहुवा ५ सि० यह विशेषण उच्चैःश्रवाकाभी है, और ऐरावतका भी है, ❋हाथियोंमें ६ ऐरावतको ७ सि० मेरी विभूतिजान ❋ और नरोंमें ८।९ राजाको १० सि० मेरी विभूति जान तूं ❋॥२७॥

मू०आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक्॥
प्रजनश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः॥ २८॥

आयुधानाम् १ अहम् २ वज्रम् ३ धेनूनाम् ४कामधुक् ५अस्मि ६ प्रजनः ७ च ८ कन्दर्पः ९ अस्मि १० सर्पाणाम् ११वासुकिः१२ अस्मि १३॥२८॥ अ०हथयारोंमे १ मैं २ वज्र ३ सि०हूं❋गौ-वोंमें ४ कामधेनू ५ मैं हूं. ६ प्रजाके उत्पत्तीका जो हेतु ७।८काम-देव ९ विषवालेसर्पोंमें ११ वासुकी १२ मैं हूं. १३॥२८॥

मू०अनन्तश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहम्॥
पितॄणामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहम्॥२९॥

नागानाम् १ अनंतः २ च ३ अस्मि ४ यादसाम् ५ वरुणः ६ अहम् ७ पितॄणाम् ८ अर्यमा ९ च १० अस्मि ११ संयमताम् १२ यमः १३ अहम् १४॥२९॥ अ० निर्विषनागोंमें १ शेषजी २।३ मैं हूं. ४ जलचरोंमें ५ वरुण ६ मैं हूं. ७ पितरोंमें ८ अर्यमानाम-पितर ९।१० मैं हूं. ११ दंडकरनेवालोंमें १२ यमराज १३ मैं १४ सि० हूं. ❋॥२९॥

मू०प्रह्लादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहम्॥
मृगाणांचमृगेंद्रोहंवैनतेयश्चपक्षिणाम्॥३०॥

दैत्यानाम् १ प्रह्लादः २ च ३ अस्मि ४ कलयताम् ५ कालः ६ अहम् ७ मृगाणाम् ८ च ९ मृगेन्द्रः १० अहम् ११ पक्षिणाम् १२ वैनतेयः १३ च १४ ॥ ३० ॥ अ० दैत्योंमें १ प्रह्लाद २।३ मैं हूं. ४ संख्यावालेपदार्थोंमें ५ काल ६ मैं सि० हूं ❋ चौपायोंमें ८।९ सिंह १० मैं ११ सि० पक्षियोंमें १२ गरुडजी १३।१४ सि० मैं हूं. ❋ ३०

मू० पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणांमकरश्चास्मिस्रोतसामस्मिजाह्नवी ॥ ३१ ॥

पवताम् १ पवनः २ अस्मि ३ शस्त्रभृताम् ४ रामः ५ अहम् ६ झषाणाम् ७ मकरः ८ च ९ अस्मि १० स्रोतसाम् ११ जाह्नवी १२ अस्मि १३ ॥ ३१ ॥ अ० वेगवालोंमें १ वायु २ मैं हूं. ३ शस्त्रधारियोंमे ४ श्रीरामचन्द्रजीमहाराज शुद्धसच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म ५ मैं ६ सि० हूं ❋ मछलियोंमें ७ मकरनामवाली मच्छी ८ मैं हूं. ९। १० वहनेवाले जलोंमें ११ श्रीगंगाभागीरथी १२ मै हूं. १३ ॥ ३१ ॥

मू० सर्गाणामादिरंतश्चमध्यंचैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

अर्जुन १ सर्गाणाम् २ आदिः ३ मध्यम् ४ च ५ अंतः ६ अहम् ७ विद्यानाम् ८ अध्यात्मविद्या ९ प्रवदताम् १० वादः ११ अहम् १२ ॥ ३२ ॥ अ० हेअर्जुन १ जगतका २ आदि ३ मध्य और अन्त ४।५।६ मैं ७ सि० हूं ❋ विद्याके बीचमें ८ आत्मविद्या (वेदान्तशास्त्र). ९ सि० वेदांतशास्त्रमें केवल आत्माके बन्ध मोक्षका विचार है, इसीवास्ते इसको अध्यात्मविद्या कहते हैं, मोक्षशास्त्र यही है. विना इसशास्त्रके पढेसुने आत्मानात्मका ज्ञान कभीनहीं होता. अज्ञान संशय विपर्यय इसीशास्त्रके पढने सुननेसे नाश होते हैं. इसशास्त्रका सेवन करना साक्षात् भगवतका प्रत्यक्ष सेवनकरना है ❋ चर्चा करनेवालोंमें १० वाद ११ मैं १२ सि० हूं ❋

टी॰ चर्चा तीनप्रकारकी है. जल्प, वितंडा, और वाद. जो केवल अपनेही पक्षमें श्रुत्यादिकोंका प्रमाण देकर युक्तियोंकेसहित अपनेही पक्षको सिद्ध करताजा. दूसरेपक्षपर दृष्टि न दे,उसको जल्प कहते हैं. और जो दूसरेके पक्षमें दोषही कहता चलाजा, अपने पक्षके दोषोंका स्मरण नकरे, उसको वितंडा कहते हैं. और जो अपने और दूसरे पक्षको शंकाप्रमाणोंके साथ प्रतिपादन करे, गुरु शिष्यको बोधकेलिये, उसको वाद कहते हैं. वाद परमार्थनिर्णयकेलिये होता है. उसका फल परमानन्द है. जल्पवितंडा वाक्यवाद है, उनका फल दुःख है. जिसका पक्ष चर्चामें दबजायगा, बेसन्देह वो दुःख पावेगा. और जिसने विद्याके बलसे झूंठे बातको सिद्ध किया,वो बेसन्देह पापका भागी होकर परलोकमें दुःख पावेगा. न्यायशास्त्रादिविद्या अन्यपदार्थ है.और परमार्थका यथार्थनिर्णय अन्यपदार्थ है. क्याहुवा जो किसीने अनजानके सामने अपना झूंठापक्ष सिद्धकरदीया. किसीदिन विद्वानोंके सामने दबजायगा. चर्चाका सार सत्यार्थ है. ॥ ३२ ॥

मू॰ अक्षराणामकारोस्मिद्वंद्वःसामासिकस्यच ॥
अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अक्षराणाम् १ अकारः २ अस्मि ३ सामासिकस्य ४ द्वन्द्वः ५ च ६ अहम् ७ एव ८ अक्षयः ९ कालः १० धाता ११ विश्वतोमुखः १२ अहम् १३ ॥ ३३ ॥ अ॰ अक्षरोंमें १ अकार २ मैं हुं. ३ समासोंमें ४ द्वन्द्वसमास ५ मै हीहूं. ६।७।८ अक्षय ९ काल १० सि॰ भी मैं हूं. पीछे काल वो कहाथा कि जो संख्यामें आता है.पल घडी, दिन, रात्रि, वर्ष, और युगादीको क्षयकाल कहते हैं. यहां अक्षय यह कालकाविशेषण है. अथवा परमेश्वरका नाम कालकाभी काल है ❋ कर्मफल विधाता ११ विराट १२ मैं १३ सि॰ हुं. ❋ ॥ ३३ ॥

मू॰ मृत्युःसर्वहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यताम् ॥
कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ३४॥

मृत्युः १ सर्वहरः २ च ३ अहम् ४ भविष्यताम् ५ उद्भवः ६ च ७ नारीणाम् ८ कीर्तिः ९ श्रीः १० वाक् ११ च १२ स्मृतिः १३ मेधा १४ धृतिः १५ क्षमा १६ ॥ ३४ ॥ अ० मृत्यु १ सबका हरनेवाला २ मैं ३।४ सि० हूं ❋ होनेवालेपदार्थोंमें ५ अर्थात् वडाई होनेके योग्य जो पदार्थ हैं, उनमें मोक्षके प्राप्तीका हेतु उद्भव, उत्कर्ष अभ्युदयभी ६।७ सि० मैं हूं. ❋ स्त्रियोंमें ८ कीर्ति ९ अर्थात् महापुरुषोंमें शमदमऔदार्यदानादिगुणोंकी ख्याती होना वो कीर्ति ९ सि० भगवतकी विभूति है. ❋ लक्ष्मी कांति वा शोभा १० मधुरवाणी ११।१२ वहुतदिनोंकी बात याद रहना १३ ग्रन्थधारणाशक्ति १४ क्षुत्पिपासादिसमयमें चित्तमें क्षोभ न होना, १५ अपमानादिसमयमें क्षोभ न होना, १६ सि० ये सब परमेश्वरकी विभूति हैं. जिनके आभासमात्रसंबन्धसे स्त्रीपुरुष श्रेष्ठ कहलाते हैं. ❋ ॥ ३४ ॥

सू० बृहत्सामतथासाम्नांगायत्रीछन्दसामहम् ॥
मासानांमार्गशीर्षोहमृतूनांकुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

साम्नाम् १ तथा २ बृहत्साम ३ छंदसाम् ४ गायत्री ५ अहम् ६ मासानाम् ७ मार्गशीर्षः ८ अहम् ९ ऋतूनाम् १० कुसुमाकरः ११ ॥ ३५ ॥ अ० उ० वेदोंमें सामवेद मैं हूं यह श्रीभगवानने पीछे कहा, अव कहते हैं कि, सामवेदमें १ भी २ बृहत्सामऋचा ३ सि० मैं हूं ❋ छन्दोंमें ४ गायत्री ५ मैं ६ सि० हूं ❋ महीनोंमें ७ अघन (मार्गशीर्ष) ८ मैं ९ सि० हूं ❋ ऋतूंमें १० वसन्तऋतु ११ सि० मैं हूं मीन और मेषका सूर्यजबतक वर्तता है. इनही दोनोंमहीनोंको वसन्त कहते हैं. इसीऋतूमें यह टीका वनी है ॥३५॥

सू० द्यूतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोस्मिव्यवसायोस्मिसत्वंसत्ववतामहम् ॥ ३६ ॥

छलयताम् १ द्यूतम् २ अस्मि ३ तेजस्विनाम् ४ तेजः ५ अहम् ६

जयः ७ अस्मि ८ व्यवसायः ९ अस्मि १० सत्त्ववताम् ११ सत्त्वम् १२ अहम् १३ ॥ ३६ ॥ अ० छलकरनेवालोंमें १ जूवा २ मैं हूं, ३ तेजस्विपुरुषोंमें ४ तेज ५ मैं ६ सि० हूं. जीतनेवालोंमें ❋ जय ७ मैं हूं. ८ सि० निश्चय करनेवालोंमें ❋ आत्मनिश्चय ९ मैं हूं, १० सतोगुणीपुरुषोंमें ११ सत्त्वगुण १२ मैं हूं. १३ टी० छलया-लोगोंकेलिये जूवा, अपनी विभूति परमेश्वरने कही है १२॥ ३६ ॥

मू०वृष्णीनांवासुदेवोस्मिपांडवानांधनंजयः॥
मुनीनामप्यहंव्यासःकवीनामुशनाकविः ॥ ३७ ॥

वृष्णीनाम् १ वासुदेवः २ अस्मि ३ पांडवानाम् ४ धनंजयः ५ मुनीनाम् ६ अपि ७ अहम् ८ व्यासः ९ कवीनाम् १० उशना ११ कविः १२ ॥ ३७ ॥ अ० वृष्णियोंमे १ वासुदेव २ मैं हूं. ३ अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजशुद्धसच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म वसुदेवजीके मूर्तिमान् पुत्र, कि जो अर्जुनको उपदेशकरते हैं. यही वासुदेव हैं.३पांडवनमें ४ अर्जुन ५ सि० जिसको भगवान् उपदेश करते हैं. ❋ मुनीश्व-रोंमें ६।७ मैं ८ श्रीवेदव्यासजी ९ सि० हूं. ❋ कविपुरुषोंमें १० शुक्राचार्य ११ कवि १२ सि० मैं हूं. ❋ ॥ ३७ ॥

मू०दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीषताम्॥
मौनंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम् ॥ ३८॥

दमयताम् १ दंडः २ अस्मि ३ जिगीषताम् ४ नीतिः ५ अस्मि ६ गुह्यानाम् ७ मौनम् ८ च ९ एव १० अस्मि ११ ज्ञानवताम् १२ ज्ञानम् १३ अहम् १४ ॥ ३८ ॥ अ० निरोधकरनेवालोंमें १ दंड २ मैं हूं. ३ जीतनेकी इच्छा जिनको है उनमें ४ नीति ५ मैं हूं. ६ गुप्तपदार्थोंमें ७ चुपरहना ८।९।१० मै हूं. ११ ज्ञानवालोंमें १२ ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) १३ मैं १४ सि० हूं. ❋ तात्पर्य दूसरेका स्वरूप और ऐश्वर्य जाननेसे किसीको क्या मिलना है. अपना स्व-रूप और अपना ऐश्वर्य जानना चाहिये. ॥ ३८ ॥

मू०यच्चापिसर्वभूतानांबीजंतदहमर्जुन ॥
नतदस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतंचराचरम्॥३९॥

सर्वभूतानाम् १ यत्२च ३ अपि४बीजम् ५ तत् ६ अहम् ७ अर्जुन ८ चराचरम् ९ भूतम्१०मया११विना१२यत्१३ स्यात् १४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥ ३९ ॥ अ० सबभूतोंका १ जो २।३।४ बीज ५ सो ६ मैं ७ सि० हूं. ❋ हेअर्जुन ८ चराचर ९ सत्तामात्र १० मेरे ११ विना १२ जो १३ हो १४ सो १५ नहीं १६ है.१७ तात्पर्य ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, जिसमें सत् चित् और आनन्द ये तीन अंश भगवानके नहों ॥ ३९ ॥

मू०नांतोस्तिममदिव्यानांविभूतीनांपरंतप ॥
एषतूद्देशतःप्रोक्तोविभूतेर्विस्तरोमया ॥ ४० ॥

परंतप १ मम २ दिव्यानाम् ३ विभूतीनाम् ४ अंतः ५ न ६ अस्ति ७ एषः ८ तु ९ विभूतेः १० विस्तरः ११ उद्देशतः १२ मया १३ प्रोक्तः १४ ॥ ४० ॥ अ० हेअर्जुन १ मेरे २ दिव्य ३ विभूतियोंका ४ अन्त ५ नहीं ६ है. ७ सि० और जो वर्णन किया ❋ यह ८ तो ९ विभूतियोंका १० विस्तार ११ संक्षेपसे १२ मैंने १३ कहाहै १४ ॥ ४० ॥

मू०यद्यद्विभूतिमत्सत्वंश्रीमदूर्जितमेववा ॥
तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

यत् १ यत् २ सत्वम् ३ विभूतिमत् ४ श्रीमत् ५ वा ६ ऊर्जितम् ७ एव ८ तत् ९ तत् १० एव ११ मम १२ तेजोंशसंभवम् १३ त्वम् १४ अवगच्छ १५ ॥४१॥ अ उ० जो तूं मेरे ऐश्वर्यका विस्तार जानना चाहता है, तो इसप्रकार जान. जो १जो२ पदार्थ ३ ऐश्वर्यवान् ४ श्रीमान् ५ वा ६ सि० किसीअन्यगुणकरके ❋ श्रेष्ठ ७ ही ८ सि० कहलाताहै ❋ तिस ९ तिसको १० ही ११

मेरे १२ तेजके अंशसे उत्पन्न हुवा १३ तूं १४ जान १५ तात्पर्य संसारमें जो जो पदार्थ श्रेष्ठ हैं, वे वे सव भगवतकी विभूति हैं, जो जिसगुणकरके श्रेष्ठ समझाजाता है, वो गुण भगवतकाही अंश है ॥ आनन्दोब्रह्म ॥ इसश्रुतीसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि आनन्द ब्रह्म है. तो फिर जो जो पदार्थ विशेष आनन्दजनक है, सो भगवतकी विभूति है ॥ ४१ ॥

मू० अथवाबहुनैतेनकिंज्ञानेनतवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत् ॥ ४२ ॥

अर्जुन १ अथवा २ एतेन ३ बहुना ४ ज्ञानेन ५ तव ६ किम् ७ अहम् ८ इदम् ९ कृत्स्नम् १० जगत् ११ एकांशेन १२ विष्टभ्य १३ स्थितः १४ ॥ ४२ ॥ अ० हेअर्जुन १ अथवा २ इस ३ बहुत ४ सि० पृथक् पृथक् ❋ ज्ञानकरके ५ तुमको ६ क्या ७ सि० काम है, ऐसे समझ कि ❋ मैं ८ इस ९ समस्त १० जगतको ११ एकअंशसे १२ धारणकरके १३ स्थित हूं १४ तात्पर्य यह सवजगत् भगवतके एकअंशमें कल्पित है, भगवतसे जूदा नहीं. जगतमें जो आनंद प्रतीत होता है, यही प्रभूका अंश है अंशसे अंशीका ज्ञान जल्दहोताहै ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोनाम दशमोध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवें अध्यायका प्रारम्भ हुवा ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ मदनुग्रहायपरमंगुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥ यत्त्वयोक्तंवचस्तेनमोहोयं विगतोमम ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच. मदनुग्रहाय १ परमम् २ गुह्यम् ३ अध्यात्मसंज्ञितम् ४ यत् ५ वचः ६ त्वया ७ उक्तम् ८ तेन ९ अयम् १० मम ११ मोहः १२ विगतः १३ ॥१॥ अ० उ० पीछले अध्यायमें श्रीभगवानने कहा कि, यह जगत् समस्त मेरे एकअंशमें कल्पित है. यह सुन अर्जुनको इच्छा हूई कि, विश्वरूप श्रीभगवानका देखना चाहिये. इसवास्ते अर्जुन श्रीभगवानकी स्तुति करता हूवा बोलता है. चारमंत्रोंमें. मेरेपर अनुग्रहकरनेकेवास्ते १ अर्थात् मेरा शोक दूरकरनेके लिये १ परमार्थनिष्ठावाला २ गुप्त ३ आत्मा और अनात्मा इनका ज्ञान हो जिससे ४ मि० ऐसा ❀ जो ५ वचन ६ आपने ७ कहा ८ तिसवचनकरके ९ यह १० मेरा ११ मोह १२ गया. १३ अर्थात् इनको (भीष्मादीकों) मैं मारता हूं, ये मारे जाते हैं, इसप्रकार जो शुद्धनिर्विकारआत्माको कर्ता कर्म समझता था यह मेरी भ्रान्ति आपके कृपासे दूर हूई ११।१२।१३ तात्पर्य मैनें जाना कि आत्मा शुद्धसच्चिदानंद निर्विकार है. कर्ता कर्म इत्यादि सब भ्रांतीसे प्रतीत होता है. जैसे शुक्तीमें रजत, रज्जूमें सर्प, आकाशमें नीलता, नावमें बैठे हूवेको मंदिरोंका चलना प्रतीत होताहै, इसीप्रकार आत्मा विकारवान् प्रतीत होता है. वास्तव आत्मा निर्विकार है, यह मैं समझा ॥ १ ॥

मू० भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ॥
त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययम्॥२॥

कमलपत्राक्ष १ त्वत्तः २ मया ३ विस्तरशः ४ भूतानाम् ५ भवाप्ययौ ६ हि ७ श्रुतौ ८ माहात्म्यम् ९ च १० आपि ११ अव्ययम् १२॥२॥ अ० हे भगवन् १ आपसे २ मैंनें ३ विस्तारपूर्वक ४ भूतोंकी ५ उत्पत्ति और लय ६।७ सि० इनदोनोंको ❀ सुना ८ अर्थात् सब भूतोंकी उत्पत्ति आपसेही है. और तुम्हारेही स्वरूपमें लय हो-

जाते हैं सबभूत. यहभी मैनें सुना और समझा८ और माहात्म्य९।१० भी ११ सि० आपका ❋ अक्षय १२ सि० सुना. ❋ तात्पर्य आप जगतको रचतेभी हो, पालनसंहारभी करते हो, शुभाशुभकर्मोंका फलभी देते हो, बन्धमोक्ष सब आपके आधीन हैं जैसी भक्तोंकी इच्छा होती है, उनकेवास्ते वैसेही नानारूप धारण करते हो, वैसेही चरित्र करते हो, ऐसे विषमव्यवहारमेंभी आप सदा अकर्ता निर्विकार निर्लेप, उदासीन ऐसे रहतेहो, यही आपका माहात्म्य है. करनेको नकरनेको, और औरका औरकरदेनेको, जो समर्थ उसीको ईश्वर कहते हैं. ऐसे आपही हैं आपके कृपासे मैनें अब आपका माहात्म्य सुनकर आपको जाना.॥ २॥

मू० एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानंपरमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामितेरूपमैश्वरंपुरुषोत्तम ॥ ३॥

परमेश्वर १ यथा २ आत्मानम् ३ आत्थ ४ त्वम् ५ एतत् ६ एवम् ७ पुरुषोत्तम ८ ते ९ ऐश्वरम् १० रूपम् ११ द्रष्टुम् १२इच्छामि १३ ॥ ३ ॥ अ० हेपरमेश्वर १ जैसा २ आत्माको ३ कहतेहो४ आप, ५ यह ६ इसीप्रकार है. ७ अर्थात् बेसन्देह आप अचिंत्यशक्तिमान् हैं ७ हेप्रभो ८ आपके ९ ऐश्वररूपके १०।११देखनेकी१२ इच्छा करता हूं. १३ अर्थात् आपका ऐश्वर्य और विश्वरूप देखा चाहता हूं. याने ज्ञान, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, शक्ति, तेज, इनकरके युक्त और आपका रूप देखने चाहता हूं. १३ तात्पर्य परमार्थदृष्टीमें आप निराकार पूर्ण हैं. इसीस्वरूपको मूर्तिमान् देखा चाहता हूं. यद्यपि यह बात असम्भावित है, परंतु आप समर्थहो, दिखासक्ते हो.॥ ३॥

मू० मन्यसेयदितच्छक्यमयाद्रष्टुमितिप्रभो ॥
योगेश्वरततोमेत्वंदर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४॥

प्रभो १ योगेश्वर २ यदि ३ मया ४ तत् ५ द्रष्टुम् ६ शक्यं ७ मन्यसे ८ ततः ९ मे १० त्वम् ११ अव्ययम् १२ आत्मानम् १३ दर्शय १४ इति १५ ॥ ४ ॥ अ० उ० यदि आपके दृष्टीसे उसरूपके देखनेको मैं अधिकारी हूं तो दिखाइये. हेसमर्थ १ हेयोगेश्वर २ यदि ३ मुझकरके ४ सोरूप ५ देखनेको ६ शक्य ७ सि० है, ऐसा आप ❁ समझतेहो ८ अर्थात् उसरूपको मैं इननेत्रोंकरके देखसकूंगा, ८ तो ९ मुझे १० आप ११ निर्विकार १२ आत्माको १३ दिखाइये १४ यह १५ सि० मेरा तात्पर्य है. ❁ ॥ ४ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ पश्यमेपार्थरूपाणिशतशो-
थसहस्रशः ॥ नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णा-
कृतीनिच ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् उवाच. पार्थ १ शतशः २ अथ ३ सहस्रशः ४ दिव्यानि ५ मे ६ रूपाणि ७ पश्य ८ नाना ९ विधानि १० च ११ नाना १२ वर्णाकृतीनि १३ ॥ ५ ॥ अ० श्रीभगवान् बोलते हैं. हेअर्जुन १ सैकरों हजारों २।३।४ दिव्य ५ मेरे ६ रूपोंको ७ देख ८ नानाप्रकारके ९ भेद हैं जिसमें १० और ११ नानाप्रकारके १२ वर्ण नीलपीतादि, और आकृती हैं, जिसमें १३ सि० ऐसा रूप देख वो विश्वरूप एकही था परंतु नानाप्रकारके जो उसमें भेदथे इसवास्ते श्लोकमें रूपका बहुवचन है. रूपाणि इति ❁ ॥ ५ ॥

मू० पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौमरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणिपश्याश्चर्याणिभारत ॥ ६ ॥

भारत १ आदित्यान् २ वसून् ३ रुद्रान् ४ अश्विनौ ५ मरुतः ६ पश्य ७ तथा ८ बहूनि ९ अदृष्टपूर्वाणि १० आश्चर्याणि ११ पश्य १२ ॥ ६ ॥ अ० हेअर्जुन १ बारहसूर्जोंको २ आठवसुवोंको ३ ग्यारह-रुद्रोंको ४ दोनों अश्विनीकुमारोंको ५ उंचासमरुतगणोंको ६ देख

७ और ८ बहुत ९ सि० पदार्थ जो तुमने और औरोंने कभी ❋ नहीं देखे हैं पहले, १० सि० ऐसे ❋ आश्चर्यरूपोंको ११ देख, १२ सि०अब मैं दिखाता हूं ❋ ॥ ६ ॥

मू०इहैकस्थंजगत्कृत्स्नंपश्याद्यसचराचरम् ॥
ममदेहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७॥

गुडाकेश १ इह २ एकस्थम् ३ अद्य ४ मम ५ देहे ६ सचराचरम् ७ कृत्स्नम् ८ जगत् ९ पश्य १० यत् ११ च १२ अन्यत् १३ द्रष्टुम् १४ इच्छसि १५॥ ७॥ अ० उ०समस्तभूतभविष्यत्वर्तमानकालकी व्यवस्था तुझको दिखाता हूं, जो असंख्यातजन्मोंमें तूं या और कोई नहीं देखसक्ता वो सब तनकदेरमें दिखाता हूं. हे अर्जुन १ इसीजगे २ मुझएकमें स्थित ३ अभी ४ मेरे ५ देहमें ६ स्थावरजंगम ७ संपूर्ण ८ जगतको ९ अर्थात् कार्यकारण के सहित समस्तजगतको ९ देख १० और जो ११।१२ अन्यपदार्थोंके देखनेकी १३।१४ इच्छा करता है तूं १५ अर्थात् इस जगतका आश्रा क्या है,कैसा उत्पन्न हूवा है, कैसी इसकी स्थिति है, कैसा लय होता है, उपादान इसका क्या है, कैसा कैसा यह रूप बदलता है. इसलड़ाईमें किसकी जीत होगी. हेअर्जुन! जो तेरी इच्छा हो, सब देख, जो मैं अपने इच्छासे दिखाता हूं. सो देख, और जो तेरी इच्छाहो सोभी देख ले. ऐसा समय मिलना काठिन है.१५ टी० गुडाकानाम निद्राकाहै निद्रा अर्जुनके वशमें थी, इसहेतूसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है १ ॥ ७ ॥

मू०नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा॥
दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥ ८॥

अनेन १ स्वचक्षुषा २ माम् ३ एव ४ द्रष्टुम् ५ न ६ शक्यसे ७ तु ८ तु ९ दिव्यम् १० चक्षुः ११ ददामि १२ मे १३ योगम्

१४ ऐश्वरम् १५ पश्य १६ ॥८॥ अ०उ० अर्जुनने कहाथा कि, वो रूप मैं देख सक्ता हूं या नहीं. श्रीभगवान् कहते हैं कि, इननेत्रोंसे तो तूं नहीं देखसकेगा, दिव्यचक्षु मैं देता हूं, तिनकरके देखेगा, इन अपने नेत्रोंकरके १।२ मुझको ३ बेसन्देह ४ देखनेको ५ नहीं ६ समर्थ है तूं ७ परंतु तुझको ८।९ दिव्यचक्षु १०।११ देता हूं. १२ मेरे १३ योगको १४ सि० और ❀ऐश्वर्यको १५ देख. १६ टी० किसीलोकमें जो देखनेसुननेमें न आवे उसको दिव्य या अलौकिक कहते हैं १० जो बात संभव न हो, वो बात समझमें आजावे जिसकरके उसको योग कहते हैं १४ जीवसे जो बात न होसके, ईश्वरहीमें वो बात पावे, और जिसकरके जीवसे जूदा ईश्वर पहचाना जावे, उसको ऐश्वर्य कहते हैं. कि जिसको ईश्वरका असाधारण लक्षणभी कहते हैं. ईश्वरका एक साधारण लक्षण है, एक असाधारण. साधारण वो कि जो ईश्वरमेंभी पावे, और जीवमेंभी पावे. जैसे कंसादीका मारना, गोवर्धनका उठाना, बहुरूप हो जाना, इत्यादिकर्म तो जीवभी करसक्ता है. रावणादीकी कथा कैलासका उठालेना इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हैं परंतु विश्वरूप जीव नहीं दिखासक्ता, यह ईश्वरका असाधारण लक्षण है. १५ ॥ ८ ॥

मू०संजयउवाच॥ एवमुक्त्वाततोराजन्महायोगेश्वरोहरिः॥दर्शयामासपार्थायपरमंरूपमैश्वरम् ॥९॥

संजयः उवाच. राजन् १ महायोगेश्वरः २ हरिः ३ एवम् ४ उक्त्वा ५ ततः ६ पार्थाय ७ परमम् ८ ऐश्वरम् ९ रूपम् १० दर्शयामास ११ ॥ ९ ॥ अ० उ० संजयधृतराष्ट्रसे कहता है. हेराजन् १ महायोगेश्वर २ व्रजचन्द्र ३ इसप्रकार ४ सि० पूर्वोक्त ❀ कहकर ५ फिर ६ अर्जुनको ७ परम ८ ऐश्वर्य ९ रूप १० दिखातेभये. ११ टी०श्रीभगवानने परमऐसाअद्भुतरूप अर्जुनको दिखाया ८।९॥९॥

मू० अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

अनेकवक्त्रनयनम् १ अनेकाद्भुतदर्शनम् २ अनेकदिव्याभरणम् ३ दिव्यानेकोद्यतायुधम् ४ ॥ १० ॥ अ० उ० उसविश्वरूपके ये विशेषण हैं. अनेक मुख और नेत्र हैं जिसमें १ अनेक अद्भुत आश्चर्य करनेवाले दर्शन हैं जिसमें. २ अनेक दिव्यगहने हैं जिसमें ३ अनेक दिव्यशस्त्र उठाये हूये हैं जिसमें. ४ तात्पर्य ऐसा रूप श्रीमहाराजका था कि, जो अर्जुनने देखा ॥ १० ॥

मू० दिव्यमाल्यांबरधरंदिव्यगंधानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयंदेवमनंतंविश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

दिव्यमाल्यांवरधरम् १ दिव्यगंधानुलेपनम् २ सर्वाश्चर्यमयम् ३ देवम् ४ अनन्तम् ५ विश्वतोमुखम् ६ ॥ ११ ॥ अ० दिव्यमाला और वस्त्र धारणकररक्खेहैं जिसने १ दिव्यगंधका लेपन है जिसको २ सब आश्चर्यरूप है ३ प्रकाशरूप. ४ नहीं है अन्त जिसका ५ सब तर्फहैं मुख जिसमें ६ ॥ ११ ॥

मू० दिविसूर्यसहस्रस्यभवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदिभाःसदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः १२ ॥

यदि १ दिवि २ सूर्यसहस्रस्य ३ भाः ४ युगपत् ५ उत्थिता ६ भवेत् ७ तस्य ८ महात्मनः ९ भासः १० सा ११ सदृशी १२ स्यात् १३ ॥ १२ ॥ अ० उ० उसविश्वरूपका प्रकाश ऐसाथा. जो १ आकाशमें २ हजारसूर्योंकी ३ प्रभा ४ एकवारही ५ उदित ६ हो ७ सि० तो ❋ तिसमहात्माके ८।९ प्रभाके १० सो ११ सि० प्रभा ❋ बरावर १२ हो १३ सि० नहो इत्यभिप्रायः क्यों कि, यह अनुपरूप है. ❋ ॥ १२ ॥

मू०तत्रैकस्थंजगत्कृत्स्नंप्रविभक्तमनेकधा॥
अपश्यद्देवदेवस्यशरीरेपाण्डवस्तदा॥ १३ ॥

तत्र १ एकस्थम् २ अनेकधा ३ प्रविभक्तम् ४ कृत्स्नम् ५ जगत् ६ तदा ७ पांडवः ८ देवदेवस्य ९ शरीरे १० अपश्यत् ११ ॥ १३ ॥ अ० तिसविश्वरूपमें १ एककेही विषय स्थित २ अनेक प्रकारका ३ जूदाजूदा ४ समस्त ५ जगतको ६ तिसकालमें ७ अर्जुन ८ देवतोंकेभी जो देवता उन देवदेवके ९ शरीरमें ॥ १० देखता भया ११ टी० पितरमनुष्यगंधर्वादीको ३।४ जगतमें जितने पदार्थ हैं, अर्जुनको सब भगवतके शरीरमें दीखतेथे ५।६ इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

मू०ततःसविस्मयाविष्टोहृष्टरोमाधनंजयः॥
प्रणम्यशिरसादेवंकृताञ्जलिरभाषत॥ १४ ॥

ततः १ सः २ धनंजयः ३ विस्मयाविष्टः ४ हृष्टरोमा ५ कृतांजलिः ६ देवम् ७ शिरसा ८ प्रणम्य ९ अभाषत १० ॥ १४ ॥ अ० उ० जब अर्जुनने ऐसा स्वरूप देखा. पीछे उसके १ सो २ अर्जुन ३ आश्चर्यकरके युक्तहुवा ४ अर्थात् आश्चर्य मानता हुवा ४ रोमावली प्रफुल्लित होगई है जिसकी ५ कीई है अंजलि जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडकर ६ सि० उसी ❋ देवको ७ शिरसे ८ प्रणाम करके ९ अर्थात् सिर झुकाकर नमस्कार करके ९ बोलता भया. १० अर्थात् यह बोला कि जो आगे सत्रहश्लोकोंमें कहना है १०॥१४॥

मू०अर्जुनउवाच॥ पश्यामिदेवांस्तवदेवदेहेसर्वांस्तथाभूतविशेषसंघान्॥ ब्रह्माणमीशंकमलासनस्थमृषींश्चसर्वानुरगांश्चदिव्यान्॥ १५॥

अर्जुनः उवाच. देव १ तव २ देहे ३ सर्वान् ४ देवान् ५ तथा ६ भूत-

विशेषसंघान् ७ कमलासनस्थम् ८ ईशम् ९ ब्रह्माणम् १० च ११ सर्वान् १२ ऋषीन् १३ दिव्यान् १४ उरगान् १५ च १६ पश्यामि १७॥ १५॥ अ०उ० जैसा विश्वरूप अर्जुनके देखनेमें आया, उसको अर्जुन कहता है सत्रहश्लोकोंमें. हेदेव १ आपके २ शरीरमें ३ सबदेवतोंको ४।५और भूतोंके विशेषसमुदायोंको ६ ।७ अर्थात् जेरजादिकोंको ६।७ कमलके आसनपर वैठे हूवे, देवतोंके स्वामी, जो उनब्रह्माजीको ८।९।१० और ११ सब १२ सि० वसिष्ठादि ❋ ऋषियोंको १३ दिव्य १४ सि० तक्षकादि ❋ नागोंको १५ भी १६ देखता हूं मैं १७ टी० आपके नाभीमें जो कमल उसपर ब्रह्माजीको विराजमान देखता हूं ८।१० ॥ १५ ॥

मू०अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामित्वांसर्वतो-
नंतरूपम् ॥नांतंनमध्यंनपुनस्तवादिंपश्यामि-
विश्वेश्वरविश्वरूप॥ १६॥

विश्वेश्वर १ विश्वरूप २ तव ३ न ४ आदिम् ५ पुनः ६ न ७ मध्यम् ८ न ९ अन्तम् १० पश्यामि ११ सर्वतः १२ अनन्तरूपम् १३ त्वाम् १४ अनेकवाहूदरवक्त्रनेत्रम् १५ पश्यामि १६ ॥ १६ ॥ अ० हेविश्वके ईश्वर१हेविश्वरूप२ आपका ३ न ४ आदि ५ और ६ न ७ मध्य ८ न ९ अंत१० देखता हूं११सबतर्फसे १२ अनन्तरूपवाला १३ आपको १४ अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्र, हैं जिनकों १५ सि० ऐसा आपको ❋ देखता हूं १६ ॥ १६ ॥

मू०किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिंसर्वतो
दीप्तिमंतम् ॥पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यंसमंताद्दी-
प्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७॥

त्वाम् १ समंतात् २ किरीटिनम् ३ गदिनम् ४ चक्रिणम् ५ च ६ तेजोराशिम् ७ सर्वतः ८ दीप्तिमन्तम् ९ दुर्निरीक्ष्यम् १०

दीप्तानलार्कद्युतिम् ११ अप्रमेयम् १२ पश्यामि १३ ॥ १७ ॥ अ० आपको १ सवतर्फसे २ मुकुटवाला ३ गदावाला ४ चक्रवाला ५ और ६ तेजका पुंज ७ सवतर्फसे ८ दीप्तिमान् ९ दुःखकरके देखा जाता है १० अर्थात् उसका देखना बहुत कठिन प्रतीत होता है १० चैतन्य ऐसे अग्नि और सूर्यके प्रभावत् प्रभा है उसकी ११ प्रमाण नहीं होसक्ता उसका कि इसस्वरूपकी इतनी चौडाई लम्बाई है १२ सि० ऐसा आपको ❀ देखता हूं १३ ॥ पश्यामि यह क्रिया सबके साथ लगती है, जितने त्वां इस एकअंकवाले पद के विशेषण हैं उनके ॥ १७ ॥

मू० त्वमक्षरंपरमंवेदितव्यंत्वमस्यविश्वस्यपरंनिधानं॥
त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्तासनातनस्त्वंपुरुषोमतोमे ॥

त्वम् १ परम् २ अक्षरम् ३ वेदितव्यम् ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परम् ८ निधानम् ९ त्वम् १० अव्ययः ११ शाश्वत-धर्मगोप्ता १२ सनातनः १३ पुरुषः १४ त्वम् १५ मे १६ मतः १७ ॥ १८ ॥ अ० उ० आपकी यह योगशक्ति देखनेसे तो मैं अब यह अनुमान करता हूं कि, आप १ परम २ ब्रह्म ३ सि० हो. मुमु-क्षूकरके ❀ जाननेके योग्य ४ आप ५ सि० ही हो ❀ इस ६ विश्वका ७ पर ८ आश्रा ९ सि० भी आपहीहो. और ❀ आप१० नित्य ११ नित्यधर्मके पालनकरनेवाले १२ ॥ सनातन पुरुष १३। १४ आप १५ सि० ही हो. ❀ मेरे १६ ॥ समझसे १७ सि० वेद भी ऐसाही प्रतीपादन करते हैं ❀ ॥ १८ ॥

मू० अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुंशशि
सूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामित्वांदीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसाविश्वमिदंतपंतम् ॥ १९ ॥

त्वाम् १ पश्यामि २ अनादिमध्यान्तम् ३ अनन्तवीर्यम् ४ अ-

नंतबाहुम् ५ शशिसूर्यनेत्रम् ६ दीप्तहुताशवक्त्रम् ७ स्वतेजसा ८ इदम् ९ विश्वम् १० तपन्तम् ११ ॥ १९ ॥ अ० आपको १ सि० ऐसा ❀ देखता हूं मैं २ सि० कि, जिसके विशेषण ये हैं ❀ नहीं है आदिमध्यअन्त जिसका ३ अनन्त पराक्रम हैं जिसके ४ अनंत भुजा हैं जिसकी ५ चन्द्रसूर्य नेत्र हैं जिसके ६ जलती हुई याने लपट उठती हुई अग्नि मुखमें है जिसके ७ अपने तेजकरके ८ इस विश्वको ९।१० तपाते हूवे ११ सि० मुझको दीखते हो ❀ ॥ १९ ॥

मू० द्यावापृथिव्योरिदमंतरंहिव्याप्तंत्वयैकेनदिशश्चसर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतंरूपमुग्रंतवेदंलोकत्रयंप्रव्यथितंमहात्मन् ॥ २० ॥

महात्मन् १ द्यावापृथिव्योः २ इदम् ३ अन्तरम् ४ एकेन ५ त्वया ६ हि ७ व्याप्तम् ८ सर्वाः ९ दिशः १० च ११ तव १२ इदम् १३ अद्भुतम् १४ उग्रम् १५ रूपम् १६ दृष्ट्वा १७ लोकत्रयम् १८ प्रव्यथितम् १९ ॥२०॥ अ० हे भगवन् १ आकाशपृथिवीका २ यह ३ अन्तर ४ अकेले ५ आपकरके ६ ही ७ व्याप्त ८ सि० हैं. और ❀ पूर्वादिदशोंदिशा ९।१०।११ सि० भी आपकरके व्याप्त होरही हैं ❀ अर्थात् सब जगतमें आपही पूर्ण होरहे हो ११ आपका १२ यह १३ अद्भुत १४ क्रूर १५ रूप १६ देखकर १७ तीनोलोक १८ भयको प्राप्त हुवे हैं १९ तात्पर्य ऐसा मैं आपकोदेखता हूं॥२०॥

मू०अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्भीताःप्रांजलयोगृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वामहर्षिसिद्धसंघास्तुवंतित्वांस्तुतिभिःपुष्कलाभिः ॥२१॥

अमी १ सुरसंघाः २ त्वाम् ३ हि ४ विशन्ति ५ केचित् ६ भीताः ७ प्रांजलयः ८ स्वस्ति ९ इति १० उक्त्वा ११ गृणंति १२ मह-

र्षिसिद्धसंघाः १३ पुष्कलाभिः १४ स्तुतिभिः १५त्वाम् १६ स्तुवंति १७ ॥ २१ ॥ अ० वे १ देवतोंके समूह २ तुह्मारेमेंही ३।४ प्रविष्ट होते हैं. ५ अर्थात् आपको देवतोंने अपना आश्रा समझ रक्खा है, आपको शरण प्राप्त है. सि० और उनमेंसे ❋कोई ६ भयको प्राप्त हूवे ७ दोनोंहाथ जोड रक्खे हैं जिन्होंने ८ स्वस्ति ९ यह १०सि० शब्द ❋ कहकर ११अर्थात् आपका कल्याण हो.भलाहो ११सि०यह कहते हुवे आपकी ❋ प्रार्थना कर रहे हैं १२ अर्थात् आपकी जय-हो जयहो आप हमारी रक्षा करो यह कह रहे हैं. १२ सि० और ❋ बडेबडे ऋषीश्वर सिद्धोंके समूह १३ बडेबडे १४ स्तोत्रोंकरके १५ आपकी १६ स्तुति कर रहे हैं ॥ १७ ॥ २१ ॥

मू०रुद्रादित्यावसवोयेचसाध्याविश्वेश्विनौमरुत-श्चोष्मपाश्च॥गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघावीक्ष्यंतेत्वां विस्मिताश्चैवसर्वे ॥ २२ ॥

रुद्रादित्यावसवः १ साध्याः २ च ३ ये ४ विश्वे ५ अश्विनौ ६म-रुतः ७ च ८ ऊष्मपाः ९ च १० गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः ११च१२ सर्वे १३ एव १४ विस्मिताः १५ त्वाम् १६ वीक्ष्यंते १७ ॥ २२ ॥ अ० ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसू, १ और साध्यदेवता २।३ जो ४ सि० हैं ❋ विश्वेदेव ५ अश्विनीकुमार ६ और उंचास मरुद्गण ७।८ और पितर ९।१० और गंधर्व (हूहूहाहादि) यक्ष (कुवेरादि) असुर (विरोचनादि) सिद्ध (कपिलदेवादि) इनसबके समूह ११।१२ सि० कहांतक कहूं, ❋ सब १३ ही १४ आश्चर्य युक्तहुवे १५ आपको १६ देखते हैं. १७ सि० इसप्रकारका रूप मैं आपका देखता हूं. ❋ टी० ऊष्मपा पितरोंका नाम इसवास्ते है कि, वे गरमगरमभोजनके भागी हैं. जबतक अन्न गरम रहता है और

जबतक ब्राह्मण चुपचाप भोजन करता रहे, बोले नहीं, तबतकही पितर भोजन करते हैं ९ तदुक्तम् ॥ यावदुष्णंभवेदन्नंयावदश्नन्तिवाग्यताः ॥ पितरस्तावदश्नन्तियावन्नोक्ताहविर्गुणाः ॥ २२ ॥

मू० रूपंमहत्तेबवहुवक्रनेत्रंमहाबाहोबहुबाहूरुपादम् ॥ बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालंदृष्ट्वालोकाःप्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

महाबाहो १ ते २ महत् ३ रूपम् ४ दृष्ट्वा ५ लोका ६ प्रव्यथिताः ७ तथा ८ अहम् ९ बहुवक्रनेत्रम् १० बहुबाहूरुपादम् ११ बहूदरम् १२ बहुदंष्ट्राकरालम् १३ ॥ २३ ॥ अ० हेमहाबाहो १ आपका २ बडा ३ रूप ४ देखकर ५ लोक ६ भयको प्राप्त होरहे हैं ७ सि० और जैसे और लोक भयभीत होरहे हैं ❋ तैसेही ८ मैं ९ सि० भी भयकूं प्राप्त हूं. क्योंकि वो रूपही आपका ऐसा है कि, जिसके ये विशेषण हैं ❋ बहुत मुख और नेत्र हैं जिसके १० बहुत भुजा, जंघा, चरण हैं जिसके ११ बहुत पेट हैं जिसके १२ बहुत विकाल कठिन डार हैं जिसकी १३ तात्पर्य ऐसा आपका रूप है कि, जिसको देखकर मैं डरता हूं ॥ २३ ॥

मू० नभःस्पृशंदीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननंदीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वाहित्वांप्रव्यथितांतरात्माधृतिंनविंदामिशमंचविष्णो ॥ २४ ॥

विष्णो १ त्वाम् २ नभःस्पृशम् ३ दीप्तम् ४ अनेकवर्णम् ५ व्यात्ताननम् ६ दीप्तविशालनेत्रम् ७ दृष्ट्वा ८ हि ९ प्रव्यथितांतरात्मा १० धृतिम् ११ शमम् १२ च १३ न १४ विन्दामि १५ ॥ २४ ॥ अ० हे विष्णो १ आपको २ आकाशके साथ स्पर्श करता हूवा ३ अर्थात् समस्त आकाशमें व्याप्त ३ तेजरूप ४ अनेकवर्णवाला ५ फहला हुवा है मुख जिसका ६ प्रज्वलित होरहे हैं, याने बल रहे हैं

बडेबडे नेत्र जिसके ७ सि॰ ऐसा आपको ❋ देखकर ८ ही ९ बहुतभयको प्राप्त हुवा है अंतःकरण मेरा १० धृति ११ और उपशमको १२।१३ नहीं १४ प्राप्त होता हूं. १५ तात्पर्य मुझको न धीरजबंधता है,न मनमें संतोष होता है, ऐसा स्वरूप आपका देखके मेरा चित्त घबराता है ॥ २४ ॥

मू०दंष्ट्राकरालानिचतेमुखानिदृष्ट्वैवकालानल-संनिभानि॥ दिशोनजानेनलभेचशर्मप्रसीददेवे-शजगन्निवास ॥ २५॥

देवेश १ जगन्निवास २ ते ३ मुखानि ४ कालानलसन्निभानि ५ दृष्ट्वा ६ एव ७ च ८ दंष्ट्राकरालानि ९ दिशः १० न ११ जाने १२ शर्म १३ च १४ न १५ लभे १६ प्रसीद १७ ॥ २५ ॥ अ० हे देवतोंके ईश्वर १ हेजगतके आश्रय २ आपके ३ मुख ४ प्रलयाग्नीके सम ५ देखकर ६।७।८ सि॰ कैसे हैं वे आपके मुख ❋ कठिन डाढ़ है जिसमें ९ ऐसे मुखोंको देख पूर्वादिदशोदिशाको १० नहीं ११ जानता हूं मैं १२ अर्थात् मुझको यह नहीं प्रतीत होता कि, पूर्व किधर, उत्तर किधर, पृथिवी कहां, आकाश कहां है. १२ और सुखको १३।१४ नहीं १५ प्राप्त हूं १६ अर्थात् मेरा अंतःकरण विक्षेपको प्राप्त हुवा है. ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ प्रसन्न हुइये १७ ॥ सि॰ आप ❋ ॥ २५ ॥

मू०अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राःसर्वेसहैवावनि-पालसंघैः॥ भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथासौसहा-स्मदीयैरपियोधमुख्यैः॥ २६॥

अमी १ च २ सर्वे ३ धृतराष्ट्रस्य ४ पुत्राः ५ अवनिपालसंघैः ६ सह ७ भीष्मः ८ द्रोणः ९ तथा १० असौ ११ सूतपुत्रः १२ अस्म-

दीयैः १३ अपि १४ योधमुख्यैः १५ सह १६ त्वाम् १७ एव १८ ॥ २६ ॥ अ० उ० श्रीभगवानने कहाथा कि, इससंग्राममें जो जीतेगा, हे अर्जुन सोभी देख, वोही वात अर्जुन देखता हुवा कहता है. पांचश्लोकोंमें. और ये १।२ सब ३ धृतराष्ट्रके ४ पुत्र ५ राजाओंके समूहसहित ६।७ भीष्मपितामह ८ द्रोणाचार्य ९ और १० वो ११ कर्ण १२ सि० और ❋ हमारे १३ भी १४ मुख्ययोधाओंकेसाथ १५।१६ तुझमें १७ ही १८ सि० प्रवेश करते हैं. ❋ अर्थात् आपके मुखमें प्रवेश करते हैं. इस श्लोकका अगलेश्लोकके साथ सम्बन्ध है. तात्पर्य कुछ यह नहीं कि, दुर्योधनादिही आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं. किन्तु हमारी ओरकेभी सव राजा आपके मुखमें दौडदौड प्रवेश करते हैं. यह आश्चर्य मैं देखता हूं ॥ २६ ॥

मू०वक्त्राणितेत्वरमाणाविशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि॥केचिद्विलग्नादशनांतरेषुसंदृश्यंतेचूर्णितैरुत्तमांगैः॥ २७॥

त्वरमाणाः १ ते २ वक्त्राणि ३ विशन्ति ४ दंष्ट्राकरालानि ५ भयानकानि ६ केचित् ७ चूर्णितैः ८ उत्तमांगैः ९ दशनांतरेषु १० विलग्नाः ११ संदृश्यन्ते १२ ॥ २७ ॥ अ० सि० यह सवयोधा ❋ दौडते हुवे १ आपके २ मुखोंमें ३ प्रविष्ट होते हैं. ४ सि० कैसे हैं वे मुख कि ❋ कठिन डाढ दाँत हैं जिनमें ५ भयानकरूप ६ सि० जो मुखमें प्रविष्ट होते हैं. उनमें ❋ कोई ७ सि० तो ऐसे हैं. कि ❋ चूर्ण होगये हैं सिर जिनके ८।९ सि० वे ❋ दाँतोंके वीचमेंही १० लटके हुवे ११ दीखते हैं. १२ तात्पर्य जैसा अन्न भोजन हुवे वाद दाँतोंमें रहजाता है (जिसको तिनकेसे निकालते हैं.) इसप्रकार वहुत शूरवीर श्रीमहाराजके दाँतोंके सन्धीमें इलझे हुवे दीखते हैं ॥ २७ ॥

मू०यथानदीनांबहवोंवुवेगाःसमुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ॥ तथातवामीनरलोकवीराविशंतिवक्रा-ण्यभिविज्वलंति ॥ २८ ॥

यथा १ नदीनाम् २ वहवः ३ अम्बुवेगाः ४ समुद्रम् ५ एव ६ अभिमुखाः ७ द्रवन्ति ८ तथा ९ अमी १० नरलोकवीराः ११ तव १२ अभिविज्वलन्ति १३ वक्राणि १४ विशंति १५ ॥ २८ ॥ अ० उ० अर्जुन दृष्टान्त देते हैं कि, इसप्रकार आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं. जैसे १ नदीके २ वहुत ऐसा ३ जलके वेग ४ समुद्रके ५ ही ६ सन्मुख ७ दौडते हैं, ८ तैसे ९ ये १० नरलोकवीर ११ आपके १२ सवतरफसे जलते हुवे मुखोंमें १३।१४ प्रविष्ट होते हैं. १५ तात्पर्य आपका मुख तो सवतरफसे प्रज्वलित होरहा है, उसमें दौडदौड गि-रते हैं. महाराजके मुखमें सवतरफसे अग्नी जलती हुई प्रतीत होती है. जैसे कहते हैं कि, दीपक जल रहा है, ऐसे यहां कहा कि,महारा-जका मुख प्रज्वलित होरहा है. ॥ २८ ॥

मू०यथाप्रदीप्तंज्वलनंपतंगाविशन्तिनाशायस-मृद्धवेगाः॥तथैवनाशायविशन्तिलोकास्तवापि वक्राणिसमृद्धवेगाः॥ २९ ॥

यथा १ समृद्धवेगाः २ पतंगाः ३ नाशाय ४ प्रदीप्तम् ५ ज्वल-नम् ६ विशंति ७ तथा ८ एव ९ समृद्धवेगाः १० लोकाः ११ नाशाय १२ अपि १३ तव १४ वक्राणि १५ विशंति १६ ॥ २९ ॥ अ० उ०नदीके दृष्टान्तसे तो यह प्रकट किया कि, परवशहुवे आ-पके मुखमें प्रविष्ट होते हैं. अव पतंगके दृष्टान्तसे यह दिखाता है कि, जानवूझ आपके मुखमें प्रवेश करते हैं वहुत शूर. जैसे १ समृद्धवेग है जिनका २ अर्थात् शीघ्र चाल है जिनकी दौडते उडते हुवे २ छोटेछोटे कीट ३ मरनेके लिये ४ प्रदीप्त ५ अग्नीमें

६ अर्थात् जलती हुई अग्नि या दीपक उसके अग्नीमें ६ प्रवेश क- रते हैं ७ तैसे ८ ही ९ बडावेग है जिनका १० सि० ऐसे ❋ लोग शूरवीर ११ मरनेके लिये १२ ही १३ आपके १४ मुखमें १५ प्रवेश करते हैं १६ ॥ २९ ॥

मू० लेलिह्यसेग्रसमानःसमंताल्लोकान्समग्रान्व-
दनैर्ज्वलद्भिः ॥तेजोभिरापूर्यजगत्समग्रंभा-
सस्तवोग्राःप्रतपंतिविष्णो ॥ ३० ॥

ज्वलद्भिः १ वदनैः २ समग्रान् ३ लोकान् ४ समंतात् ५ ग्रसमानः ६ लेलिह्यसे ७ विष्णो ८ तव ९ उग्राः १० भासः ११ तेजोभि. १२ स- मग्रम् १३ जगत् १४ आपूर्य १५ प्रतपंति १६ ॥ ३० ॥ अ० दीप्ति- मान् १ मुखोंकरके २ सबलोकोंका ३।४ अर्थात् महामहा इनशूरवी- रोंका ४ सबतरफसे ५ ग्रास करते हुवे ६ भलेप्रकार भक्षण कर रहे- हो ७ हे पूर्णब्रह्म व्यापक आपकी ८।९ तीव्र १० प्रभा ११ सि० अपने ❋ तेजसे १२ समस्त १३ जगतको १४ व्याप्तकरके १५ जला रही हैं. १६ अर्थात् आपके तेजके किरण सबजगतमें फै- लकर जला रहे हैं. सब जगतको चटनीके तरह चाट रहे हो. आप ऐसे मुझको दीखते हो १६ ॥ ३० ॥

मू० आख्याहिमेकोभवानुग्ररूपोनमोस्तुतेदेव-
वरप्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामिभवंतमाद्यंन-
हिप्रजानामितवप्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

भवान् १ उग्ररूपः २ कः ३ मे ४ आख्याहि ५ नमः ६ अस्तु ७ देववर ८ प्रसीद ९ भवन्तम् १० आद्यम् ११ विज्ञातुम् १२ इ- च्छामि १३ तव १४ प्रवृत्तिम् १५ नहि १६ प्रजानामि १७ ॥ ३१ ॥ अ० आप १ उग्ररूप २ कौन ३ सि० हो, यह ❋ मुझसे ४ क- हो ५ सि० मेरा आपको ❋ नमस्कार ६ हो ७ हे देवतोंमें श्रेष्ठ

८ प्रसन्न हो ९ आप आद्य हो १०।११ अर्थात् सबसे पहले आप हो १०।११ सि० इसबातको ❋ भले प्रकार जाननेकी १२ इच्छा करता हूं. १३ अर्थात् आदिपुरुष जो आपहो, उन आपको भले-प्रकार जाना चाहता हूं. १३ आपके १४ प्रवृत्तीको १५ नहीं १६ जानता हूं. १७ अर्थात् यह ऐसा स्वरूप आपने क्यों धारण किया है. १५।१६।१७ ॥ ३१ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ कालोस्मिलोकक्षयकृत्प्रवृद्धोलोकान्समाहर्तुमिहप्रवृत्तः ॥ ऋतेपित्वांनभविष्यंतिसर्वेयेवस्थिताःप्रत्यनीकेषुयोधाः ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान् उवाच. लोकक्षयकृत् १ प्रवृद्धः २ कालः ३ अस्मि ४ लोकान् ५ समाहर्तुम् ६ इह ७ प्रवृत्तः ८ त्वाम् ९ ऋते १० अपि ११ ये १२ सर्वे १३ योधाः १४ प्रत्यनीकेषु १५ अवस्थिताः १६ न १७ भविष्यन्ति १८ ॥३२॥ अ० उ० हे अर्जुन जो तूं बूझता है. तो सुन कि, जो मैं हूं और जिसवास्ते मैने यह रूप धारण किया है. तीनश्लोकोंमें कहते हैं लोकोंका नाश करनेवाला १ अतिउग्र २ काल ३ हूं मैं. ४ लोकोंका नाश करनेको ५।६ इसलोकमें ७ प्रवृत्त ८ सि० हुवा हूं. तूंने जो बूझाथा कि, आप और किसवास्ते आपकी यह प्रवृत्ति है. सो समझा. और सुन ❋ तेरे ९ विना १० भी ११ ये १२ सब १३ योद्धा १४ दोनोंसेनामें १५ सि० जो ❋ स्थित हैं १६ नहीं १७ होंगे. १८ अर्थात् तूं जो यह शंका करता है कि, मैं इनका मारनेवाला, हूं. ये सब तेरे बिनामारे-भी सब मरेंगे. जो ये सब दीखते हैं. मुझ कालरूपसे कोई भी नहीं बचेगा १७।१८ तात्पर्य क्षत्रियजातीमें तूं मेरा भक्त है, तुझको तो यह एक जस देता हूं ॥ ३२ ॥

मू०तस्मात्त्वमुत्तिष्ठयशोलभस्वजित्वाशत्रून्भुं-
क्ष्वराज्यंसमृद्धम्॥ मयैवैतेनिहताःपूर्वमेव
निमित्तमात्रंभवसव्यसाचिन्॥ ३३॥

तस्मात् १ त्वम् २ उत्तिष्ठ ३ यशः ४ लभस्व५शत्रून् ६ जित्वा ७ समृद्धम् ८ राज्यम् ९ भुंक्ष्व १० एते ११ एव १२ पूर्वम् १३ एव १४ मया १५ निहताः १६ सव्यसाचिन् १७ निमित्तमात्रम् १८ भव. १९ ॥३३॥ तिसकारणसे १ तूं २खडा हो ३ सि०युद्धके लिये, ❋ जसको ४ प्राप्त हो ५ सि० जो भीष्मपितामह द्रोणादि, देवतोंसे भी जीते न जावें, उनको अर्जुनने जीता इसजसको प्राप्त हो. पीछे उसके ❋ वैरियोंको ६ जीतकर ७ पदार्थोंसे भरा हुवा ८ राज ९ भोग, १० ये ११ तो १२ पहले १३ ही १४ मैंने १५ माररक्खे हैं. १६ हे अर्जुन १७ निमित्तमात्र १८ होजा तूं.१९ अर्थात् इनका तो काल आ पहुंचा प्रत्यक्ष देखता है तूं. और यह कालके मुखमें अपने आप दौड जाते हैं. तूंतो केवल एक नाम मात्र मारनेवाला हो, जस लेले. १९ टी०वामेहातसे भी अर्जुन धनुष खैंचकर तीर चलातांथा इसवास्ते अर्जुनका नाम सव्यसाची है १७॥ ३३॥

मू०द्रोणंचभीष्मंचजयद्रथंचकर्णंतथान्यानपि
योधवीरान् ॥ मयाहतांस्त्वंजहिमाव्यथि
ष्ठायुध्यस्वजेतासिरणेसपत्नान् ॥ ३४॥

द्रोणम् १ च २ भीष्मम् ३ च ४जयद्रथम् ५ च ६ कर्णम् ७तथा ८ अन्यान् ९ अपि १० योधवीरान् ११ मया १२ हतान्१३त्वम् १४ जहि १५ माव्यथिष्ठाः १६ युद्धचस्व १७ रणे १८सपत्नान्१९ जेता २० असि २१॥ ३४॥ अ० उ० पीछे हे अर्जुन तुमने यह

कहाथा कि मैं यह नहीं जानता. ये हमको जितेंगे, या हम इनको. वो अब सव तूंने प्रत्यक्ष देखलिया कि, वेसन्देह तूंही जीतेगा. द्रोणाचार्य १।२ और भीष्मपितामह ३।४ और जयद्रथ ५।६ कर्ण ७ तैसेही ८ औरोंको ९भी १०सि० कि जोजो ❋ योधा मुख्य हैं ११सि० इन सव ❋मेरे १२ मारे हुवोंको १३ तूं १४ मार १५ मतडर १६ सि० इनके साथ ❋ युद्ध कर १७ रणमें १८ वैरियोंको १९जीतेगा तूं २०।२१ ॥ ३४ ॥

मू० संजयउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वावचनंकेशवस्यकृताञ्जलिर्वेपमानःकिरीटी ॥ नमस्कृत्वाभूयएवाहकृष्णं सगद्गदंभीतभीतःप्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजयःउवाच. किरिटी १ केशवस्य २ एतत् ३ वचनम् ४ श्रुत्वा ५ कृतांजलिः ६ वेपमानः ७ नमः ८ कृत्वा ९ आह १० भूयः ११ एव १२ भीतभीतः १३ सगद्गदम् १४ कृष्णम् १५ प्रणम्य १६ ॥ ३५ ॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, हेराजन्. मुकुटवाला अर्जुन १ भगवानका २ यह ३ वचन ४ सुनकर ५ कीई है अंजली जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडे हुवे ६ कांपता हुवा ७ नमस्कार ८ करके ९ बोला १० फिर ११ भी १२ बहुत डरताहुवा १३ गदगदकंठ होरहा है जिसका १४श्रीकृष्णजीको १५प्रणामकरके १६ सि० यह बोला कि, जो आगे ग्यारह श्लोकोंमें कहना है ❋ तात्पर्य वारंवार नमोनमः नमोनारायणाय यह कहकर स्तुति करता है३५॥

मू० अर्जुनउवाच ॥स्थानेहृषीकेशतवप्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यतेच ॥ रक्षांसिभीतानिदिशोद्रवंतिसर्वेनमस्यन्तिचसिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

अर्जुनः उवाच. हृषीकेशः १ तव २ प्रकीर्त्या ३ जगत् ४प्रहृष्यति ५ अनुरज्यते ६ च ७ भीतानि ८ रक्षांसि ९ दिशः १० द्रवंति ११

सर्वे १२ च १३ सिद्धसंघाः १४ नमस्यंति १५ स्थाने १६ ॥ ३६॥ अ० हृषीक नाम इंद्रियोंका है. इन्द्रियोंका जो स्वामी याने प्रेरक, अंतर्यामी, उसको हृषीकेश कहते हैं १ सि० अर्जुन कहता है कि ❋ अर्थात् हेकृष्णचन्द्रजी १ आपके २ प्रकीर्त्तीकरके ३ अर्थात् आपका माहात्म्य कहनेसुननेसे ३ जगत् ४ आनन्दित होता है. ५ और अनुरागको प्राप्त होता है. अर्थात् आपमें जगत प्रीति करता है ६।७ सि० और ❋ डरते हुवे ८ राक्षस ९ पूर्वादि दिशाओंको १० दौडते हैं ११ सि० कोई पूर्वको कोई उत्तरको भागता है ❋ और सब १२।१३ सिद्धोंके समूह १४ सि० आपको ❋ नमस्कार करते हैं १५ यह सब युक्त है. १६ अर्थात् यह बात ऐसीही चाहिये १६ ॥३६॥

मू०कस्माच्चतेननमेरन्महात्मन्गरीयसेब्रह्मणोप्यादिकर्त्रे॥अनंतदेवेशजगन्निवासत्वमक्षरंसदसत्तत्परंयत् ॥ ३७॥

महात्मन् १ अनन्त २ देवेश ३ जगन्निवास ४ कस्मात् ५ ते ६ न ७ नमेरन् ८ ब्रह्मणः ९ अपि १० गरीयसे ११ च १२ आदिकर्त्रे १३ यत् १४ सत् १५ असत् १६ परम् १७ अक्षरम् १८ तत् १९ त्वम् २० ॥ ३७ ॥ अ० उ० आपको नमस्कार करनेमें ये ९ हेतु है. फिर यह कब होसक्ता है कि, यह सब जगत् आपको नमस्कार न करे. हेमहात्मन् १ हेअनन्त २ हेदेवेश ३ हे जगन्निवास ४ किस-हेतूसे ५ आपको ६ नहीं ७ नमस्कार करे. ८ सि० आपके सामने नम्र होनेमें चार हेतु तो मैंने कहे, कि आप महात्माहो, अनन्त, देवेश, जगतका आश्रा हो. और पांच सुनिये प्रथम यह कि आपं ❋ ब्रह्माजीसे ९ भी १० गुरुतर ११ सि०हो. दूसरा यह कि ब्रह्माजीके कर्ताभी आपही हो. इसीवास्ते आपको ❋ आदिकर्ता १३ सि०कहते हैं. तुम्हारे अर्थ नमस्कार हो, आदिकर्त्रे और गरीयसे ये दोनों ते

इस छठे अंकवाले पदके विशेषण हैं. तीनों पदोंमें चतुर्थी विभक्ति है, सोई अर्थ समझना चाहिये. तीसरा यहकि ❋जो १४ सत् याने व्यक्त १५असत् याने अव्यक्त १६सि०और इनदोनोंसे ❋परे १७सि० जो ❋ अक्षरब्रह्म १८ सो १९ आप २० सि० ही हो ❋ अर्थात् तीसरा यह कि जो व्यक्तमूर्तिमान् हो, सोभी आप हो १५ चौथा यहकि जो अव्यक्तस्वरूप आपका है सोभी आप हो १६ पांचवा यह कि जो व्यक्त और अव्यक्तसे परे अक्षरपूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानन्द है सोभी आप हो १८॥ ३७ ॥

मू०त्वमादिदेवःपुरुषःपुराणस्त्वमस्यविश्वस्य परंनिधानम्॥वेत्तासिवेद्यंचपरंचधामत्वयाततं विश्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

त्वम् १ आदिदेवः २ पुराणः ३ पुरुषः ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परंनिधानम् ८ वेत्ता ९ असि १० वेद्यम् ११ च १२ परम् १३ च १४ धाम १५ त्वया १६ विश्वम् १७ ततम् १८ अनंतरूप १९ ॥ ३८ ॥ अ० उ० और आपके सामने नम्र होनेमें सात हेतु औरभी ये हैं. प्रथम हेतु यह कि,आप १ आदिदेव २ पुराण ३ पुरुष ४ सि० हो. दूसराहेतु यहकि ❋ आप ५ इस विश्वके ६।७ लयका स्थान ८ सि० हो ❋ अर्थात् प्रलयसमय यह सब जगत् मायोपहित आपके स्वरूपमें ही लय होजाताहै ८ सि० तीसराहेतु यह कि सब पदार्थोंके ❋ जाननेवाले ९ हो आप १० सि० चौथाहेतु यहकि ❋ जाननेके योग्य ११ भी १२ सि० आपहीहो. अर्थात् आपकाही जानना श्रेष्ठ है. और सबपंडिताई वृथा है. पांचवाहेतु यह कि ❋ परंधामभी १३।१४।१५ अर्थात् परमहंसोंका पदभी आपही हो १३।१४।१५ सि० छठाहेतु यहकि ❋आपकरके १६सि० यह समस्त ❋ विश्व १७ व्याप्त १८ सि० होरहा हैं, सातवांहेतु

यहकि आप ❀ अनन्तरूप १९ सि हो. हेअनन्तदेव इनहेतुकरके आप हमको पूज्यहो, इसवास्ते हम आपको वारम्वार नमस्कार करते हैं ❀ ॥ ३८ ॥

मू०वायुर्यमोग्निर्वरुणःशशांकःप्रजापतिस्त्वंप्रपितामहश्च ॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्रकृत्वःपुनश्चभूयोपिनमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

वायुः १ यमः२अग्निः ३वरुणः ४ शशांकः ५ प्रजापतिः ६ प्रपितामहः ७ त्वम् ८ ते९नमः १० नमः ११ च१२ अस्तु १३ सहस्रकृत्वः १४ भूयः १५ च १६ अपि १७ पुनः १८ ते १९ नमः २० नमः २१ ॥ ३९ ॥ अ० उ० अनन्त इस सातवें हेतूका इस श्लोकमें विस्तारकरके कहता है पवन १ यमराज २ अग्नि ३ वरुण ४ चन्द्रमा५ब्रह्मा६ब्रह्माकेभी पितामह७आप८स्मि० हो अर्थात् आप असंख्यात रूप हो ❀ आपको ९ वारंवार नमोनमः १०।११।१२ हो १३ हजारवार १४ फिरभी १५।१६।१७ वारंवार १८ आपको १९ नमोनमः २०।२१ अर्थात् जैसे आप अनंतरूप हो वैसेही मेरे अनन्त नमस्कार हैं २१ तात्पर्य असंख्यात (वारंवार) नमस्कार करनेसे अतिश्रद्धाभक्ति श्रीमहाराजमें प्रकट करता है ॥ ३९ ॥

मू०नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोस्तुतेसर्वतएव सर्व॥अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वंसमाप्नोषि ततोसिसर्वः ॥ ४० ॥

सर्व १ पुरस्तात् २ ते ३ नमः ४ अथ ५ पृष्ठतः ६ ते ७ नमः ८ अस्तु ९ सर्वतः १० एव ११ अनन्तवीर्य १२ त्वम् १३ अमितविक्रमः १४ सर्वम् १५ समाप्नोषि १६ ततः १७ सर्वः १८ असि १९ ॥ ४० ॥ अ० उ० फिरभी और प्रकारसे नमस्कार करता हुवा श्रीमहाराजकी स्तुति करता है. हेसर्व १ अर्थात् सर्वरूप सबके आ-

त्मा १ पूर्वके ओरसे २ आपको ३ नमस्कार ४ और ५ पीछले त-फेंसे ६ आपको ७ नमस्कार ८ हो ९ सबतर्फसे १० ही ११ सि० आपको नमस्कार करता हूं. इत्यभिप्रायः ❋ हे अनन्तवीर्य १२ आप १३ बेमर्यादपराक्रमवाले १४ सि० हो ❋ सब १५ सि० जगतमें ❋ भलेप्रकार आप व्याप्त हो १६ तिसकारणसे १७ सर्वरूप १८ हो आप. १९ टी० कोईकोई वीर्यवान् अर्थात् बलवान् होते हैं, परंतु समयपर पराक्रम नहीं करते. वीर्य और विक्रमपराक्रमशब्दोंमें यह भेद इसजगे समझना, तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान् अनंतवीर्यभी हैं. और अनंतपराक्रमवालेभी हैं १२।१४ ॥ ४० ॥

मू० सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्णहेयादवहे सखेति ॥ अजानतामहिमानंतवेदंमयाप्रमादात्प्रणयेनवापि ॥ ४१ ॥

सखा १ इति २ मत्वा ३ प्रसभम् ४ यत् ५ उक्तम् ६ हेकृष्ण ७ हेयादव ८ हेसखे ९ इति १० अजानता ११ तव १२ इदम् १३ महिमानम् १४ मया १५ प्रमादात् १६ वा १७ प्रणयेन १८ अपि १९ ॥ ४१ ॥ अ० उ० अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजको पहले सदासे अपना सखा समझताथा. हँसीचौहलकेसमय जो चाहताथा सोई कहदेताथा. अब श्रीमहाराजकी यह महिमा देख उस अपराधको क्षमा कराता है, दोश्लोकोंमें. सि० आपको प्राकृतवत् अपना ❋ सखा १ ही २ समझकर ३ हठपूर्वक ४ जो ५ सि० मैंने ❋ कहा ६ सि० सो आप क्षमा कीजिये. क्या क्या कहा मैंने सो सुनो ❋ हेकृष्ण ७ सि० मेरा कहा नहीं मानता. इसप्रकार आधानाम लेकर आपको बोला ❋ हेयादव ८ सि० यहां नहीं आता ❋ हेसखा ९ तूं क्या करता है. इसप्रकार. १० सि० प्राकृतोंके तरह आपको संबोधन किया ❋ नहीं जाननेवाला मैं ११ आपके १२ इसमहिमाका १३।१४

सि० था ❋ अर्थात् इसआपके महिमाको मैं नहीं जानताथा ११ सि० इसहेतूसे ❋ मैंने १५ प्रमादसे १६ सि० आपको ऐसा कहा ❋ अथवा १७ सनेहसे १८ भी १९ सि० ऐसा कहना बनसक्ता है ❋ ॥ ४१ ॥

मू० यच्चावहासार्थमसत्कृतोसिविहारशय्यास-
नभोजनेषु ॥ एकोथवाप्यच्युततत्समक्षंत-
त्क्षामयेत्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

विहारशय्यासनभोजनेषु १ एकः २ अथवा ३ तत्समक्षम् ४ अपि ५ अवहासार्थम् ६ यत् ७ च ८ असत्कृतः ९ असि १० अच्युत ११ तत् १२ त्वाम् १३ अहम् १४ क्षामये १५ अप्रमेयम् १६ ॥ ४२ ॥ अ० उ० विहार शय्या आसन भोजनकेसमय १ अकेले २ अथवा ३ तिनमित्रोंके सामने ४ भी ५ आपके और अपने हंसानेके लिये ६ जो ७ जो ८ असत्कार किया है ९।१० सि० मैंने आपका ❋ हे निर्विकार ११ सो १२ आपसे १३ मैं १४ क्षमा कराता हूं १५ सि० आप क्षमा कीजिये. कैसे हैं आप ❋ नहीं है प्रमाण आपका १६ अर्थात् आप अप्रमेय हो. १६ तात्पर्य आपके महिमाका पारावार नहीं. इत्यभिप्रायः आपके लीलाचरित्रोंमें जो तर्क करते हैं, वे बडे मूर्ख हैं. आप अचिन्त्यशक्तिमान् हो. टी० सैलकरना खेलना, इत्यादि क्रियाको विहार कहते हैं. पलंगपर लेटना, उससमयको शय्याका समय कहते हैं. मसनदगद्दी तकिये लगेहुवे बिछोनोंपर बैठना उसको आसनका समय कहते हैं. भोजनका समय प्रसिद्ध स्पष्ट है. इन समयमें अर्जुन व्रजचन्द्रसे अकेलाभी और औरोंके सामने भी चौहलहँसी किया करताथा. श्रीमहाराज कभी चुप होजातेथे, कभी आपभी छेडछाडकरने लगतेथे. इसभक्तीके महिमाके प्रतापपर, और मेरे इससंक्षेप लिखनेपर

सोचना चाहिये, कि निर्भाग यह माहात्म्य भगवतका सुनते भी हैं. परन्तु संसारसे टूटकर नारायणके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं करते. न जानिये फिर कौनसा मुहूर्त आवेगा जिसदिन भगवतमें ऐसे श्रोताओंकी प्रीति होगी ॥ ४२ ॥

मू॰ पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥ नत्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

अस्य १ चराचरस्य२ लोकस्य३ त्वम् ४ पिता ५ असि ६ पूज्यः ७ च ८ गुरुः ९ गरीयान् १० त्वत्समः ११ न १२ अस्ति १३ अन्यः १४ अभ्यधिकः १५ कुतः १६ अप्रतिमप्रभाव १७ लोकत्रये १८ अपि १९ ॥ ४३ ॥ उ॰ अचिन्त्यप्रभावश्रीभगवानका निरूपण करता है. इस १ चराचर २ लोकके ३ आप ४ जनक ५ हो ६ और पूजनेके योग्य ७।८ गुरु ९ गुरुतर १० सि॰ भी आपहो. जिससे एक अक्षर भी सीखा जावे, उसको भी गुरु कहते हैं. या जिससे कोई लौकिक विद्या सीखी, या पुरोहितको याने संस्कार करानेवालेको भी गुरु कहते हैं. एक कुलगुरु होते हैं. जैसे इनदिनोंमें कंठी बांधनेका रिवाज है. कंठीबंध भी गुरु कहलाते हैं. और एक सद्गुरु होते हैं, कि जो जिज्ञासूका अज्ञान, संशय, विपर्यय, ये अपने ज्ञानके प्रतापसे दूर करके परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त करते हैं. ऐसे गुरुतर दुर्लभ हैं. श्रीसदाशिवजी कहते हैं कि, हे पार्वतीजी धनके हरनेवाले गुरु बहुत हैं शिष्यका सन्ताप हरनेवाले गुरुतर दुर्लभ हैं. तदुक्तं ॥ गुरवोबहवःसन्तिशिष्यवित्तापहारकाः ॥ दुर्लभःसगुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः ॥ अर्जुन कहता है कि महाराज. ❋ आपके समान ११ नहीं १२ है १३ सि॰ कोई भी फिर ❋ दूसरा १४ अधिक १५ कहांसे १६ सि॰ हो ❋ हेअनुपमप्रभाववाले १७ तीनलोकमें

१८ औ १९ सि० कोई न आपके सदृश, न आपसे अधिक. जैसा आ-पका प्रभाव है, ऐसा प्रभाववाला कोई उपमाकेवास्तेभी नहीं ॥ ४३

मू० तस्मात्प्रणम्यप्रणिधायकायंप्रसादयेत्वाम-
हमीशमीड्यम् ॥ पितेवपुत्रस्यसखेवसख्युःप्रि-
यःप्रियायार्हसिदेवसोढुम् ॥ ४४ ॥

तस्मात् १ त्वाम् २ अहम् ३ प्रसादये ४ ईशम् ५ ईड्यम् ६ कायम् ७ प्रणिधाय ८ प्रणम्य ९ पुत्रस्य १० पिता ११ इव १२ सख्युः १३ सखा १४ इव १५ प्रियः १६ प्रियायाः १७ देव १८ सोढुम् १९ अर्हसि २० ॥ ४४ ॥ अ० उ० अनजानमें मुझसे दोष हुवा तिसकारणसे १ आपको २ मैं ३ प्रसन्न करता हूं. ४ सि० आप ❋ ईश्वर ५ स्तुतिकरनेके योग्य हैं. ६ सि० इसवास्ते ❋ शरीरको ७ नीचे झुकाकर ८ बहुत नम्रहोकर ९ सि० आपसे यह प्रार्थना करता हूं, कि ❋ पुत्रका १० सि० अपराध ❋ पिता ११ जैसे, १२ मित्रका १३ सि० अपराध ❋ मित्र १४ जैसे, १५ पुरुष १६ स्त्रीका १७ सि० अपराध जैसे क्षमा करता है इसीप्रकार ❋ हेदेव १८ सि मेरा पीछला अपराध ❋ क्षमाकरनेको १९ योग्य हो आप. २० अर्थात् पीछे मुझसे जो जो दोष हुवे हैं, आप कृपाकरके उन अपराधोंकी अब क्षमा कीजिये. १९।२० तात्पर्य आपसे मैं इससमय बहुत डरता हूं. अब कभी आपकी हँसी न करूंगा न औरोंसे कराऊंगा. इत्यभिप्रायः ॥ ४४ ॥

मू० अदृष्टपूर्वंहृषितोस्मिदृष्ट्वाभयेनचप्रव्यथितं
मनोमे ॥ तदेवमेदर्शयदेवरूपंप्रसीददेवेश
जगन्निवास ॥ ४५ ॥

देव १ देवेश २ जगन्निवास ३ तत् ४ एव ५ रूपम् ६ मे ७ दर्शय ८ प्रसीद ९ अदृष्टपूर्वम् १० दृष्ट्वा ११ हृषितः १२ अस्मि

१३ भयेन १४ च १५ मे १६ मनः १७ प्रव्यथितम् १८ ॥ ४५ ॥ अ० उ० अपराध क्षमाकरके प्रार्थना करता है. इसप्रकार अब आज्ञा नहीं करता है कि, मेरे रथको दोनोंसेनाके बीचमें खडा करो हेदेव १ हेदेवेश २ हेजगन्निवास ३ सोई ४।५ रूप ६ मुझको ७ दिखाय्ये ८ सि० कि जो श्यामसुन्दररूप पहले मैं देखताथा ❋ आप प्रसन्न होजाय्ये ९ नहीं देखाथा पहले मैंनें १० सि० यह रूप आपका, इसवास्ते जो उसको ❋ देखकर ११ आनन्दित होता हूं मैं १२।१३ सि परंतु इसरूपसे ❋ भयकरके १४।१५ मेरा १६ मन १७ डरता है १८ सि० भय इसवास्ते लगता है, कि आप कालरूपभयंकर मूर्तिमान् होरहेहैं ❋ ॥ ४५ ॥

मू० किरीटिनंगदिनंचक्रहस्तमिच्छामित्वां द्रष्टुमहंतथैव ॥ तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनसहस्र-वाहोभवविश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

सहस्रबाहो १ विश्वमूर्ते २ तथा ३ एव ४ किरीटिनम् ५ गदिनम् ६ चक्रहस्तम् ७ त्वाम् ८ अहम् ९ द्रष्टुम् १० इच्छामि ११ तेन १२ एव १३ चतुर्भुजेन १४ रूपेण १५ भव १६ ॥ ४६ ॥ अ० उ० श्री महाराजका माधुर्यरूप अर्जुन जो उस देखताथा, उसीको देखने चाहता, है. हे सहस्रबाहो १ हेविश्वमूर्ते २ तैसे ३ ही ४ किरीटवाला ५ गदावाला ६ चक्र है हाथमें जिनके ७ सि० ऐसा ❋ आपको ८ मैं ९ देखनेके १० इच्छा करता हूं ११ तिसही १२।१३ चतुर्भुजरूपवाले १४।१५ सि० तस्मात् वैसेही ❋ होजाइये १६ सि० अब इसहजारों भुजावाले विश्वरूपकोशान्त कीजिये. अर्जुनको सदा श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज चतुर्भुज दिखाकरतेथे. अर्जुन उसीरूपका उपासक है. इसवास्ते अर्जुनको वोही रूप प्यारा लगता है ❋ ॥ ४६ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ मयाप्रसन्नेनतवार्जुनेदंरू-

पंपरंदर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयंविश्वमनंत-
माद्यंयन्मेत्वदन्येननदृष्टपूर्वम् ॥४७॥

श्रीभगवान् उवाच. अर्जुन १ मया २ प्रसन्नेन ३ आत्मयोगात् ४ तव ५ इदम् ६ यत् ७ मे ८ आद्यम् ९ अनन्तम् १० तेजोमयम् ११ परम् १२ विश्वम् १३ रूपम् १४ दर्शितम् १५ त्वदन्येन १६ न १७ दृष्टपूर्वम् १८ ॥ ४७ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन १ मैंने २ प्रसन्न होकर ३ अपने योगसे ४ तुझको ५ यह ६ जो ७ अपना ८ आदि ९ अनन्त १० तेजोमय ११ परम १२ विश्वरूप १३।१४ दिखाया १५ सि० कैसा है यह रूप ❋ सिवाय तेरे १६ अर्थात् सिवाय तुझसदृशभक्तोंके १६ नहीं १७ देखा है पहले १८ सि० किसी अभक्तने. योगमायादि अनेक अनन्त अचिन्त्यशक्ति हैं श्रीमहाराजव्रजचंद्रमें, उनशक्तियोंकरके जब चाहें विश्वरूप दिखासक्ते हैं ❋ ॥ ४७ ॥

मू० नवेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्नचक्रियाभिर्नतपोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपःशक्यअहंनृलोकेद्रष्टुंत्वदन्येनकुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

कुरुप्रवीर १ नृलोके २ त्वदन्येनं ३ एवम् ४ अहम् ५ रूपः ६ द्रष्टुम् ७ न ८ वेदयज्ञाध्ययनैः ९ न १० दानैः ११ नच १२ क्रियाभिः १३ न १४ उग्रैः १५ तपोभिः १६ शक्यः १७ ॥ ४८ ॥ अ० उ० यह मेरा विश्वरूप विनामेरेकृपाके वेदोक्तकर्मोंका अनुष्ठानकरनेसे कोई नहीं देखसक्ता. हेअर्जुन १ मर्त्यलोकमें २ सिवाय तेरे ३ इसप्रकार ४ मेरा ५ रूप ६ देखनेको ७ न ८ वेदयज्ञोंका अध्ययनकरके ९ न १० दानकरके न ११।१२ क्रिया करके १३ न १४ अत्यन्त तपकरके १५।१६ सि० कोई ❋ समर्थ १७ सि० हुवा नहोगा ❋ टी० यज्ञ एक विद्या है, उसविद्याका नाम यज्ञभी है ४८॥

मू० मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्ट्वारूपंघोरमी-
दृङ्ममेदम् ॥ व्यपेतभीःप्रीतमनाःपुनस्त्वंतदेव
मेरूपमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

ईदृक् १ मम २ इदम् ३ घोरम् ४ रूपम् ५ दृष्ट्वा ६ ते ७ व्यथा ८ मा ९ विमूढभावः १० च ११ मा १२ व्यपेतभीः १३ प्रीतमनाः १४ पुनः १५ त्वम् १६ मे १७ तत् १८ एव १९ रूपम् २० इदम् २१ प्रपश्य २२ ॥ ४९ ॥ अ० उ० श्रीभगवानने विश्वरूपकी बहुत स्तुतिभी कीई, परन्तु अर्जुनका डर न गया. तब श्रीमहाराजने अर्जुनसे कहा कि, हे अर्जुन क्यों डरता है. फिर वोही श्यामसुन्दर स्वरूप जो प्यारा लगता है देख. इसप्रकार १ मेरा २ यह ३ घोर ४ रूप ५ देखकर ६ तुझको ७ व्यथा ८ मत ९ सि० हो ❋ और मूढता १०।११ मत १२ सि० हो. मूढतासे दुःख और भय होता है ❋ भय दूर कर १३ मनमें प्रीतिकर १४ फिर १५ तूं १६ मेरा १७ सोई १८।१९ रूप २० यह २१ देख. २२ सि० यह कहकर श्रीभगवान् उसीसमय श्यामसुन्दरस्वरूप होयगे कि, जो अर्जुनको प्रिय लगताथा ❋ ॥ ४९ ॥

मू० संजयउवाच ॥ इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकंरूपंदर्शयामासभूयः ॥ आश्वासयामा-
सचभीतमेनंभूत्वापुनःसौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

संजयः उवाच. वासुदेवः १ इति २ अर्जुनम् ३ उक्त्वा ४ भूयः ५ तथा ६ स्वकम् ७ रूपम् ८ दर्शयामास ९ पुनः १० च ११ महात्मा १२ सौम्यवपुः १३ भूत्वा १४ एनम् १५ भीतम् १६ आश्वासयामास १७ ॥ ५० ॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, हे राजन्! श्रीकृष्णचंद्रमहाराजने फिर अपना वोही सुन्दर स्वरूप अर्जुनको दिखाया. वासुदेव १ इसप्रकार २ अर्जुनसे ३ कहकर ४ सि०

जैसे पहलेथे किरीटादियुक्त ❋ फिर ५ तैसेही ६ अपना ७ रूप ८ दिखाते भये. ९ और फिर करुणाकर १०।११।१२ शान्तप्रसन्नरूप १३ होकर १४ इस भयमानका १५।१६ अर्थात् अर्जुनका १६ आश्वासन करते भये. १७ तात्पर्य अर्जुनसे श्रीभगवानने कहाकि हे अर्जुन अब डर मतकर सावधान हो. ॥ ५० ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेदंमानुषंरूपंतवसौम्यं जनार्दन ॥ इदानीमस्मिसंवृत्तःसचेताःप्रकृतिंगतः ॥ ५१ ॥

अर्जुनः उवाच. जनार्दन १ तव २ इदम् ३ सौम्यम् ४ मानुषम् ५ रूपम् ६ दृष्ट्वा ७ इदानीम् ८ सचेताः ९ संवृत्तः १० अस्मि ११ प्रकृतिम् १२ गतः १३ ॥ ५१ ॥ अ० अर्जुन श्रीमहाराजसे कहता है कि, हेजनार्दन १ आपका २ यह ३ शान्त ४ मनुष्यरूप ५।६ देखकर ७ अब ८ प्रसन्नचित्त ९ हुवा १० हूं मैं. ११ सि० और अपने ❋ स्वभावको १२ प्राप्तहुवा १३ ॥ ५१ ॥

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ सुदुर्दर्शमिदंरूपंदृष्टवानसियन्मम ॥ देवाअप्यस्यरूपस्यनित्यंदर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् उवाच. इदम् १ यत् २ मम ३ रूपम् ४ दृष्टवान् ५ असि ६ सुदुर्दर्शम् ७ अस्य ८ रूपस्य ९ देवाः १० अपि ११ नित्यम् १२ दर्शनकांक्षिणः १३ ॥ ५२ ॥ अ० श्रीभगवान् कहते हैं सि० कि हे अर्जुन ❋ यह १ जो २ मेरा ३ रूप ४ देखा ५ है तुमने. ६ सि० इसका ❋ देखना बहुत कठिन है ७ इस ८ रूपके ९ देवता १० भी ११ सदा १२ दर्शनकी इच्छावाले १३ सि० रहते हैं ❋ अर्थात् देवताभी इसरूपके देखनेकी सदा इच्छा करते हैं ११। १३ सि० परन्तु यह विश्वरूप उनको दीखता नहीं ❋ ॥ ५२ ॥

मू० नाहंवेदैर्नतपसानदानेननचेज्यया ॥
शक्यएवंविधोद्रष्टुंदृष्टवानसिमांयथा ॥५३॥

यथा१ माम् २ दृष्टवान्३ असि ४ एवंविधः५ अहम् ६ न ७ वेदैः ८ न ९ तपसा १० न ११ दानेन १२ नच १३। १४ इज्यया १५ द्रष्टुम् १६ शक्यः १७ ॥ ५३ ॥ अ० उ० यह दर्शन बहुत दुर्लभथा कि, जो तुमने देखा सोई कहते हैं. जैसा १ मुझको २ देखा ३ है तुमने ४ इसप्रकारका ५ मुझको ६ न ७ वेदोंकरके ८ न ९ तपकरके १० न११ दानकरके १२ न यज्ञकरकेभी १३।१४।१५ दृष्टिगोचरकरनेकू १६ शक्यहै. १७ सि० कोई ❀ तात्पर्य भगवतके दर्शनमें भक्ति मुख्यसाधन है. तपदानादिगौणसाधन है ॥५३॥

मू० भक्त्यात्वनन्ययाशक्यअहमेवंविधोर्जुन ॥
ज्ञातुंद्रष्टुंचतत्त्वेनप्रवेष्टुंचपरंतप ॥ ५४ ॥

अर्जुन १ परंतप२ एवंविधः ३ अहम् ४ अनन्यया ५ भक्त्या ६ तु ७ तत्वेन ८ ज्ञातुम् ९ द्रष्टुम् १० च ११ प्रवेष्टुम् १२ च १३ शक्यः १४ ॥ ५४ ॥ अ० उ० अनन्यभक्तीकरके भगवतका स्वरूप देखा जाता है, जानाजाता है, प्राप्त होता है, सोई कहते हैं श्रीभगवान्. हे अर्जुन १ हे परंतप २ इसप्रकार ३ अर्थात् जैसा विश्वरूप पीछे दिखाया ३ मुझको ४ अनन्य५ भक्तीकरके ६ ता ७ परमार्थसे ८ जाननेको ९ और देखनेको १०।११ और १२ सि० मुझमें ❀ प्रवेशकरनेको १३ शक्य १४ सि० है. औरोंको अपने तपके सामने तपानेवाला. अर्थात् अर्जुनके तपको देखकर अन्यराजा मनमे तपाकरतेथे कि, हाय ऐसा तप हमारा नहीं कि, जैसा अर्जुनका है. कि जिसतपके प्रतापसे प्रभु अर्जुनको अपना परम प्यारा मित्र समझकर उसके इच्छाके अनुसार वर्तते हैं. परमार्थसे भगवतका जानना यह है कि परमेश्वर निराकार, नित्यमुक्त निर्विकार शुद्ध,

सच्चिदानन्दस्वरूप, पूर्णब्रह्म, मुझसे अभिन्न हैं. और देखना यह है कि, आत्माको पूर्वोक्तविशेषणोंकरके विशिष्टसाक्षात् अपरोक्ष देखना. अनुमानादि प्रमाणोंकरके देखना, और सावयवमूर्तिमानको देखना, देखना नहीं कहलाता. और प्रवेश होना यह है कि अविद्या कार्यके सहित नाश होजावे पीछे शुद्ध परमानन्दस्वरूप रहजाना यही परमेश्वरमें प्रवेश होना है. ऐसा नहीं समझना, कि जोतमें जोत जा मिलती हैं. जैसे थोडा जल समुद्रमें जाकर प्रविष्ट होजाता है, यह नहीं समझना ❋ ॥ ५४ ॥

मू० मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसंगवर्जितः ॥
निर्वैरःसर्वभूतेषुयःसमामेतिपांडव ॥ ५५ ॥

पांडव १ यः २ मद्भक्तः ३ मत्कर्मकृत् ४ मत्परमः ५ संगवर्जितः ६ सर्वभूतेषु ७ निर्वैरः ८ सः ९ माम् १० एति ११ ॥ ५५ ॥

अ० उ० सब शास्त्रसाधनोंका सार मुक्तीका साधन कहते हैं. हेअर्जुन १ जो २ मेरा भक्त ३ मेरेअर्थ कर्मकरता है, ४ मैंही हूं परम पुरुषार्थ जिसका. ५ सि० पुत्रादीमें ❋ आसक्तिरहित ६ सबभूतोंमें ७ निर्वैर ८ सो ९ मुझको १० प्राप्त होता है. ११ तात्पर्य जो कर्मकरना सो भगवतमें प्रीति बढनेकेलिये करना. प्राणिमात्रसे वैर नहीं करना. इतिसिद्धान्तः ॥ ५५ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनोनामैकादशोऽध्यायः ११ ॥

बारहवें अध्यायका प्रारंभ हुवा.

मू० अर्जुनउवाच ॥ एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वां पर्युपासते ॥ येचाप्यक्षरमव्यक्तंतेषांकेयोगवित्तमाः ॥ १ ॥

अर्जुनः उवाच. एवम् १ सततयुक्ताः २ ये ३ भक्ताः ४ त्वाम् ५ पर्युपासते ६ ये ७ च ८ अपि ९ अक्षरम् १० अव्यक्तम् ११ तेषाम् १२ के १३ योगवित्तमाः १४॥१॥ अ० अर्जुनकहता है. सि०कि हे नारायण ❀ इसप्रकार १ सदायुक्तहुवे २ जो ३भक्त ४ आपकी ५ उपासना करते हैं ६ और जो ७८ निश्चय ९ अक्षर १० अव्यक्त की ११ सि० उपासना करते हैं ❀ तिनमें १२ कौनसे १३ योगवित्तम है.१४टी० कोई तो आपको शिव विष्णु रामकृष्णादि मूर्तिमान समझते हैं, और कोई विश्वरूप विराट् हिरण्यगर्भ, और कोई कर्महीको आपका रूप समझते हैं.कोई अंशअंशी भावसे आपकी उपासना करता है, कोई पुरुष ईश्वरादि जानकर जिसप्रकार कि प्रथमअध्यायसे लेकर ग्यारहवेंतक आपने उपदेश किया इसप्रकार, सदा आपके उपदेशका अनुष्ठान करते हैं. इसीको उपासन कहते हैं. जो भक्त आपकी ऐसी उपासना करते हैं, अर्थात् किसीकी सांख्यपातंजलयोगमें निष्ठा है, किसीकी शांडिल्यविद्यामें निष्ठा है, अनुक्त ऐसेभी आपके उपासनाके बहुतमार्ग हैं. अर्थात् जो मैंने नहीं कहे, अब इसअध्यायमें. और यहभी निश्चयसे है कि,बहुत महात्मा आपको निर्गुण नित्यमुक्त अद्वैत, ऐसा समझकर आपकी उपासना करते हैं. और चतुर्थादिअध्यायोंमें आपने श्रीमुखसे निर्गुण उपासकोंको आर्तादि सब भक्तोंसे विशेष श्रेष्ठ कहा,और कर्मनिष्ठ योगियोंकी वैसीही सगुणब्रह्मके उपासकोंकीभी आपने बहुत स्तुति कीई पिछले आध्यायोंमें. अब मैं यह समझा चाहता हूं कि, कर्मी योगी सगुणब्रह्मके उपासक जो भक्त,और निर्गुणके जो उपासक, इन सबमें कौन भले प्रकार योगको जानते हैं योगका अक्षरार्थ एकता है.वित इसका अर्थ जानना यह है, योगको जो जानता है, उसको योगवित् कहते हैं.तर तम ये दोनोंशब्द विशेषार्थमें आते हैं अर्थात्

योगके जाननेवालोंमें विशेषश्रेष्ठ कौन है पूर्वोक्त इन सबमें. इत्यभिप्रायः॥ १॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्यमनोयेमां नित्ययुक्ताउपासते ॥ श्रद्धयापरयोपेता स्तेमेयुक्ततमामताः॥ २॥

श्रीभगवान् उवाच. ये १ परया २ श्रद्धया ३ उपेताः ४ मनः ५ मयि ६ आवेश्य ७ नित्ययुक्ताः ८ माम् ९ उपासते १० ते ११ मे १२ युक्ततमाः १३ मताः १४ ॥२॥ अ० उ० अर्जुनका प्रश्न और यह उसका उत्तर,ऐसे समझो कि जैसी ये दोकथा पुरानी हम लिखते हैं. राजाने सूरदासजीसे बूझा कि कविता आपकी अच्छी है,या तुलसी-दासजीकी. सुरदासजीने उत्तर दिया, कि मेरी. राजाने फिर बूझा कि तुलसीदासजीकी कविता कैसी हैं. सूरदासजीओंने उत्तर दिया कि तुलसीदासजीकी कविता नहीं, मंत्र हैं. आपका प्रश्न कविताके विषय है विचारो इसबोलीमें बडाई किसकी हुई.एक भक्तने सरस्व-तीदेवीसे बूझा,कि कवि कालिदासजी श्रेष्ठ है, या दंडीस्वामी. सर-स्वतीजीने उत्तर दिया कि दंडीस्वामी कवि श्रेष्ठ हैं.और इसवाक्य-का सरस्वतीजीने तीनवार उच्चार किया ॥ कविर्दंडीकविर्दंडीकविर्दं डीनसंशयः॥ वहां कालीदासभीथे. उनको यह आधा श्लोक सुनते ही क्रोध आया, और क्रोधयुक्त होकर सरस्वती देवीसे कालीदास-जीने बूझा. क्या दण्डीकवी है, मैं कवी नहीं. देविजीने कहा कि आपतो मेरा स्वरूपही हो. इसीप्रकार अर्जुनने उपासना और अनु-ष्ठान किया इन विषय प्रश्न किया है.ज्ञानी महात्मा क्रियावान् उपा-सक नहीं होते ॥ ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति ॥ ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मही है. अर्जुनसे श्रीभगवानने कहाकि, जो १ परम श्रद्धाकरकेर।३युक्त ४ मनको ५ मुझमें ६ प्रवेशितकरके ७ नित्ययुक्त हुवे ८ मुझ सगु-

णब्रह्मकी ९ उपासना करते हैं, १० वे ११ मुझको १२ युक्ततम १३ संमत १४ सि० हैं * अर्थात् उनको युक्ततम मानता हूं. १४ युक्त योगीका नाम है. योगियोंमें श्रेष्ठ हैं. इति तात्पर्यार्थः और जो कोई यह प्रश्नकरे कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं, या नहीं. इसका उत्तर पहलेही दोकथाओंके प्रसंगमें हो चुका, कि वे युक्तयोगी नहीं. श्रीभगवान् चौथेमंत्रमें कहेंगे कि वे तो मुझको प्राप्त ही हैं. उनका यहां क्या प्रसंग है. तीसरे चौथे मंत्रमें और तेरहवें मंत्रसे लेकर अध्यायके समाप्तिपर्यन्त निर्गुण उपासकोंके लक्षण कहेंगे. सगुणउपासकोंको जो कहनाथा सो कहा. यह उत्तर सूरदासजीके और देवीजीके उत्तरके सदृश समझना चाहिये. इसमंत्रमें यह अर्थ किसी प्रकार नहीं जानाजाता, कि निर्गुणउपासकोंसे सगुणब्रह्मकेउपासकोंको श्रीभगवानने श्रेष्ठ कहा. श्रेष्ठ वेसंदेह हैं. परन्तु किनसे श्रेष्ठ हैं, योगियोंसे, कर्मनिष्ठोंसे, विषयी ऐसे पामरोंसे श्रेष्ठ हैं. इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

मू० येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवम् ॥ ३ ॥
मू० संनियम्येन्द्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्धयः ॥
तेप्राप्नुवन्तिमामेवसर्वभूतहितेरताः ॥ ४ ॥

दोश्लोकोंका एक अन्वय है. सर्वत्रसमबुद्धयः १ सर्वभूतहिते २ रताः ३ इंद्रियग्रामम् ४ संनियम्य ५ ये ६ अनिर्देश्यम् ७ अव्यक्तम् ८ अक्षरम् ९ सर्वत्रगम् १० अचिन्त्यम् ११ च १२ कूटस्थम् १३ अचलम् १४ ध्रुवम् १५ पर्युपासते १६ ते १७ तु १८ माम् १९ प्राप्नुवंति २० एव २१ ॥ ३ ॥ ४ ॥ अ० उ० निर्गुणउपासकोंका माहात्म्य सुन. सब कालमें समानज्ञान रहता है जिनका १ सबभूतोंके भलेमें २ प्रीति रखते हैं, ३ अर्थात् सबका भला चाहते हैं. ३ इंद्रियोंके समूहका ४ निरोधकरके ५ जो ६ अर्थात् महात्मा निर्गुण उ

पासक. ६ अनिर्देश्य ७ अव्यक्त ८ अक्षर ९ सर्वत्रग १० अचिन्त्य ११ और १२ कूटस्थ १३ अचल १४ ध्रुवकी १५ उपासना करते हैं. १६ सि० ऐसा * अर्थात् आत्माको ऐसा जानकर, कि जैसा सातके अंकसे पंद्रहके अंकतक कहा, और संसारको इन्द्रजालवत् शुक्तीमें रजतवत् समझकर उसी परमानन्दस्वरूप आत्मामें मग्न रहते हैं.१६सि०अपने स्वरूपको यथार्थ जानलेना जैसा ऊपर कहा, यही उनकी उपासना है.जो ऐसी उपासना करते हैं *वे१७तो१८मुझको १९प्राप्त है.२० हि याने निश्चयसे २१अर्थात् जबकि उनका स्वरूप अनिर्देश्य हैं, कहनेमें नहीं आता. इस हेतूसे उनको योगवित्तम, और युक्ततम और श्रेष्ठादिशब्दोंकरके निर्देशकरना नहीं बनता. यही समझना चाहिये कि वे मेरा स्वरूप हैं. जैसा मैं मनवाणीका विषय नहीं ऐसेही वे हैं. २०।२१ सि० उनको उपासक कहना यह एक बोली है. * टी० सदा सुख दुःख इष्टानिष्टादीके प्राप्तिमें आत्माको एकरस जानते हैं ब्रह्मज्ञानी १ कहनेमें नहीं आता है कि वो ऐसा है७ रूपरसादिवत् वो प्रकट नहीं. ८ कभी कम नहीं होता ९ सबजगे प्राप्त है. १० उसका चिंतवन नहीं होसक्ता, क्योंकि वो चित्तसेभी सूक्ष्म परे है. ११ निर्विकार १२ निश्चल १४ नित्य १५ ॥ ३ ॥४॥

मू०क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखंदेहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

अव्यक्तासक्तचेतसाम् १ तेषाम् २ अधिकतरः ३ क्लेशः ४अव्यक्ता ५ हि ६ गतिः ७ देहवद्भिः ८ दुःखम् ९ अवाप्यते १० ॥ ५ ॥

अ० उ० जब कि निर्गुणब्रह्मके उपासक ब्रह्मरूप होते हैं, तो सगुणब्रह्मकी उपासना छोडकर निर्गुणब्रह्मकी उपासना करना चाहिये. यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं. अव्यक्तमें आसक्त है चित्त जिनका १ अर्थात् और उसउपासनोक योग्य वे अभी हुवे नहीं, १

तिनको २ बहुत अत्यंत ३ दुःख ४ सि० होता है. क्यों कि रूपरसादि विषयोंसे प्रीति दूर होना सहज नहीं ❋ अव्यक्ताहिगति५।६।७ अर्थात् अव्यक्तकी प्राप्ति ५।६।७ देहाभिमानियोंको ८ अर्थात् जो आत्माको क्रियावान् समझते, हैं, शुद्धसच्चिदानंदआत्माको पूर्णब्रह्म नहीं समझते, तिनको८दुःखसे ९ प्राप्त होती है.१० तात्पर्य उनको बहुत प्रयत्न करना पडता है. देहाभिमानियोंके वास्ते अन्योपाय श्रीभगवान् अभी इसमंत्रसे आगे सातश्लोकोंमें थाने बारहकेश्लोकतक कहेंगे. उसका अनुष्ठान करनेसे निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति उनको सुलभ होजायगी. निर्गुणब्रह्मके उपासकोंने भी पहले वोही अनुष्ठान किया है, जब उनको परमानन्दस्वरूपआत्माकी प्राप्ति हुई है.आत्मनिष्ठाको क्रिया समझना न चाहिये.सगुणब्रह्मके उपासनावत् सगुणब्रह्मके उपासनाका फल समझना. सगुणब्रह्मके उपासकका यावत् देहमें अध्यास बना रहै, देहइंद्रियादिकेसाथ ममता तादात्म्यता एकता बनी रहे,विवेकवैराग्यादि साधन न हों,तबतक वे निर्गुणब्रह्मके उपासनाके योग्य नहीं. जो निर्गुणब्रह्मकी महिमा सुनकर उस उपासनामें चित्तको आसक्त करेंगे, उनको प्रथम तो बहुत दुःख होगा, क्यों कि निर्गुणब्रह्म आत्मा अति सूक्ष्म, देहेन्द्रियादिसे विलक्षण है. देहाभिमानीको उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है. वो ब्रह्मको आत्मासे जूदा समझता है. इसप्रकरणका अर्थ जो हमने लिखा है सो तो श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशंकराचार्यमहाराजजीके भाष्यानुसार. और श्रीस्वामीआनंदगिरिजीने भाष्यपर जो टीका बनाई है, और श्रीशंकरानंदी और मधुसूदनी इत्यादि टीकाओंके अनुसार यथामति लिखा है कोई२ भेदवादी जानकर, या भूलकर, या अमर्ष ईर्षादिसे,जो इस प्रकरणका अनर्थ करते हैं सोभी संक्षेपकरके लिखा जाता है. लीलाविग्रह अतएव मूर्तिमान् ऐसे रामकृष्णादीकी उपासना पुराणोक्त है. मन्दमध्यमअधिकारियोंकेलिये अंतःकरणके शु-

द्धीका साधन है.इसहेतूसे साधनोंके प्रकरणमें जितनी उस उपासना-
की स्तुति महिमा वडाई लिखी जा वो सव सत्य अर्थात् प्रमाण है.
परंतु वे लोग निर्गुणउपासनाकी प्रत्यक्ष निंदा (असूया) करते हैं.
और कोई अर्थका अनर्थ करते हैं.अक्षरोंका अर्थ फेर देते हैं. क्या अनर्थ
करतेहैं वेइसप्रकरणका,सो सुनो.अर्जुनने श्रीकृष्णचंद्रजीसे प्रश्न किया
कि सगुणब्रह्मके उपासक श्रेष्ठ हैं, या निर्गुणब्रह्मके. श्रीभगवानने
उत्तर दिया कि सगुणब्रह्मके उपासक श्रेष्ठ हैं. यद्यपि निर्गुणब्रह्मके
उपासक भी मुझको ही प्राप्त होंगे. परंतु उनको उसपासनामें वहुत
दुःख होता है. क्यों कि देहधारीसे निर्गुणकी उपासना होना वहुत
कठिन है. और जो सगुणब्रह्मके उपासक हैं, उनको जलदी विना-
श्रम संसारसे मैं उद्धरूंगा यह अर्थ करते हैं वे लोग. तन्न अर्थात् सो
नहीं है अर्थ इस प्रकरणका. क्यों नहीं सो सिद्धांत कहते हैं. विचारो
कि अर्जुनका प्रश्न यह है, कि तिनमें योगवित्तम कौन है. योगवित्त-
मका अर्थ जो हमने किया, उसको विचारो. और जो वे कहते हैं, उ-
सको विचारो. श्रीभगवानने उत्तर दिया कि सगुणब्रह्मके उपासक
युक्ततम हैं, मेरे मतमें. और निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको प्राप्त
हैं ही, निश्चयसे. युक्ततमका अर्थ जो हमने कीया, सो विचारो. और
जो वे करते हैं, सो विचारो. यह अर्थ कैसा निकलता है, कि सगुण
ब्रह्मके उपासक निर्गुणब्रह्मोपासकोंसे श्रेष्ठ हैं. प्राप्नुवंति इस वर्तमान
क्रियाका अर्थ सगुणोपासक भविष्यत् अर्थ करदेते हैं. और तू इस
शब्दका भी यह अर्थ करते हैं. अर्थात् वे भी मुझको प्राप्त होंगे.
अव एक तो इस अर्थको विचारो, कि वे तो मुझको प्राप्त हैं निश्च-
यसे.और एक इसअर्थको विचारो, कि वेभी मुझको प्राप्त होंगे. कि-
तना अन्तर पडगया. और अर्थका अनर्थ हुवा या नहीं. मुक्तपुरु-
षोंको साधक कह दिया. और तू इस शब्दका तो यह अर्थ छोडकर
भी यह अर्थ करादिया कि, परमेश्वरके प्राप्तीमें भी यह शब्द सन्देह

उत्पन्नकरता है. और उसीजगे एव यह शब्द है, उसकाअर्थ निश्च-यसे और ही यह होता है, उसको छोडदेते हैं, उसका कुछ अर्थ करतेही नहीं. प्रकरणका अर्थ स्पष्ट है. निर्गुणब्रह्मके उपासक भगवतको जीतेही प्राप्त हैं,किंसीसाधनकी उनको अपेक्षा नहीं.और सगुण-ब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं. उत्तमयोगी साधकका नाम युक्ततम है. साधक योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, यह अर्थ है युक्ततमका. निर्गुण उपासकोंसे कभी श्रेष्ठ नहीं होसक्ते. क्योंकि ज्ञानीलोक भगवद्रूप हैं, चौथे अध्यायमें श्रीभगवानने स्पष्ट कहा है कि ज्ञानी मेरा आत्मा है, तीसरे अध्यायमें यह कहाहै कि मैंने दोनों निष्ठा कही हैं. विरक्तोंके वास्ते ज्ञाननिष्ठा, अज्ञानियोंकेलिये कर्मनिष्ठा. यह जो तूं बूझता है कि दोनोंमें श्रेष्ठ क्या है.यह प्रश्नही बेजोग है. क्योंकि अधिकारी प्रति दोनों श्रेष्ठ हैं. अर्थात् ज्ञाननिष्ठाके श्रेष्ठहोनेमें तो कुछ सन्देह है नहीं. क्योंकि वो कर्मनिष्ठाका फल है,मोक्षदाता है. विषयी बहिर्मुखोंके निष्ठासे कर्मनिष्ठा श्रेष्ठ है, कर्मनिष्ठामेंही उपासनाका अन्तर्भाव है. जैसा प्रश्न अर्जुनने तीसरे अध्यायमें किया कि ज्ञान-निष्ठा और कर्मनिष्ठा इन दोनोंमेंसे कौनसी निष्ठा श्रेष्ठ है. ऐसा ही यह प्रश्न किया कि उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है. प्रश्नअनजानमें होता है. अर्जुन ज्ञाननिष्ठाको भी साधन समझा. श्रीभगवानने यह तो न कहा कि यह प्रश्न बेजोग है. परन्तु उसीप्रश्नके अनुसार प्रकरणको पृथक् करके, ऐसा उत्तर देदिया कि किसीने अपनेको निकृष्ट न समझना. पांचवें मंत्रका वे यह अर्थ करते हैं कि निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंको दुःख बहुत होता है. यहभी असत्य है. क्योंकि दुःख साधकोंको होता हैं. निर्गुणब्रह्मके उपासक साक्षात् परमानन्दको प्राप्त हैं. श्रीभगवानने उसी मंत्रमें विशेषण दिया कि जिनको देहका अभिमान है, उनको दुःख होता है, विचारो देहाभिमानी ज्ञानी होते हैं, या उपासक. विनादेहाभिमान उपासना

नहीं बनसक्ती. और विनादेहाभिमानगये साक्षात् निर्गुणब्रह्मकी उपासना नहीं बनसक्ती. यह नियम है. और जिसको देहाभिमान है, उसको हम ज्ञानी, निर्गुणब्रह्मका उपासक, नहीं कहते. यहां प्रसंग सच्चेउपासकोंका है. जो कोईभेषधारीमें देहाभिमान की शंका करे. तो हम तिलकमालाधारीमें हजारशंका अभक्ति पापंडकी करसक्ते हैं, विचारो एकतो साक्षात् परमानन्दको प्राप्त हैं. परमानन्दरूपआत्माको अपरोक्ष समझकर, उपासना करते हैं. और एक आनन्दकी इच्छा करते हुवे आनन्दजनकरामकृष्णादिकी उपासना करते हैं. दृष्टान्तमें समझोकि एकतो भोजन कररहा है, और एक भोजन बनारहा है, दोनोंमें दुःख किसको है. और जो सगुणब्रह्मके उपासक यह कहें, कि हमारे इष्टदेवभी रामकृष्णादि आनन्दरूप मूर्तिमान् है. सो नहीं होसक्ता, आनन्दपदार्थ अमूर्तिमान् सदा निरवयव रहता है. लक्ष्यरूपरामकृष्णादिका आनन्दरूप है. सो उनको परोक्ष है. और वो ज्ञानियोंको अपरोक्ष है. और यही भेद भी है सगुणब्रह्मकी उपासना और निर्गुणब्रह्मकी उपासना इनमें. और जो वे यह कहें कि हमको भी आनन्दरूप अपरोक्ष है. तो हमउनको ज्ञानी निर्गुणब्रह्मके उपासक कहेंगे. यही सिद्धान्त है, कि जिनको परमानन्दके अपरोक्ष होनेमें यही परीक्षा है, कि जिनको देहाभिमान, वर्णाश्रम, जाति, इत्यादि दास स्वामी भावका अभिमान है. भेदभाव जिनमें प्रतीत होता है, ऐसे देहाभिमानियोंको परमानन्द अपरोक्ष कहां है. सगुणोपासक निर्गुणोपासनाका समूल खंडन करते हैं. क्यों कि परमानन्दकी प्राप्ती उन्होंने केवल सगुणोपासनासे मानी, कि जिसको परमपद मुक्ति कहते हैं, और निर्गुणउपासनाका फल दुःख बताया तो निर्गुणोपासना आपही खंडित होगई. और निर्गुणोपासक सगुणोपासनाका खंडन नहीं करते, न उनको बुरा कहते हैं. जब सगुणोपासक वृथा निर्गु

णोंपासकोंसे तकरार वाद करने लगते हैं तब निर्गुणोपासक यथार्थ व्यवस्था कहदेते हैं. इसीहेतुसे यह प्रसंग हमनेभी लिखा है. समझो और विचारोकि जो निर्गुण ब्रह्मके उपासनामें दुःख होता तो वे सगुणोपासनाको छोडकर क्यों अंगीकार करते.दूसरा यह कि निर्गुणोपासक तो दोनों उपासनाका आनंद जानत है, सगुणोपासक एकका ही जानते हैं, जो अनुभव कीईहुई, वरतीहुई बात कहे. उसके वाक्यमें श्रद्धा होती है. तिसरा यह कि जो ज्ञानी होगा, वो बेसन्देह विद्यावान् होगा. विनाब्रह्मविद्या भगवतकी पहचान नहीं होसक्ती. चौथा निर्गुणउपासनामें प्रवृत्ति नहीं, सगुणउपासनामें अत्यन्त प्रवृत्ति है. जहां प्रवृत्ति होगी और जहां द्रव्य गहने और वस्त्रादीका जहां सम्बन्ध होगा, वहां सब अनर्थ होंगे, पांचवां सगुणोपासक बहुत सगुणोपासनाको छोड निर्गुणोपासना करने लगते हैं. निर्गुणोपासकनें (कभी न सुनाहोगा कि उसने) अपनी उपासना छोडकर सगुणोपासना कीईहो. मूर्खोंका यहां प्रसंग नहीं. आनन्दको छोड दुःखमें कोई नहीं प्रवृत्त होता. दुःखको छोड आनन्दमें सब प्रवृत्त होते हैं. इस हेतुसे विचारकरो कि दुःख किस उपासनामें है. और आनन्द किसउपासनामें हैं. छटाँ भगवद्गीता अद्वैतामृतवर्षिणी है, इसमें जो द्वैतासिद्धांत समझते हैं. वे अद्वैतामृतवर्षिणीका अर्थ करें. तात्पर्य सगुणोपासना साधन है, निर्गुणोपासना फल है. इत्यभिप्रायः॥ ५॥

मू० येतुसर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्पराः॥
अनन्येनैवयोगेनमांध्यायंतउपासते॥ ६ ॥

सर्वाणि १ कर्माणि २ तु ३ मयि ४ संन्यस्य ५ ये ६ मत्पराः ७ अनन्येन ८ योगेन ९ एव १० माम् ११ ध्यायंतः १२ उपासते १३ ॥ ६ ॥ अ० उ० सगुणब्रह्मोपासकोंकेवास्ते निर्गुणब्रह्मके प्राप्तीका उपाय अधिकारभेदसे कै प्रकारका कहते हैं छह श्लोकोंमें. भगवद्भक्त

जैसा अपना सामर्थ्य जानें सोई उपाय करें. सब कर्मोंका १।२तो ३ मुझमें ४ संन्यासकरके ५ जो ६ मुझपरायण ७ अनन्ययोगकरके ८।९ निश्चय१० मेरा ध्यान करते हुवे १२ उपासना करते हैं १३ सि० मेरी. तिनका मैं उद्धार करूंगा. इसश्लोकका अगलेश्लोकके-साथ संबंध है ❋ तात्पर्य इसश्लोकमें उनभक्तोंका प्रसंग है, कि जि-न्होंने इस जन्ममें, या पिछले जन्मोंमें अग्निहोत्रादिकर्मोंका अनुष्ठान करके अंतःकरण शुद्ध करलिया है. उन कर्मोंका तो संन्यास करके दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् सगुणब्रह्मका ध्यान करते हैं. सिवाय परमे-श्वरके और कुछ अपनेको आश्रा नहीं जानते, भगवद्भक्तीकोही सार सिद्धान्त समझते हैं. दूसरेमतको बुरा कहना न भला कहना. यह लक्षण उत्तमसगुणब्रह्मके उपासकोंका है. ऐसे भक्तोंका ब्रह्मविद्याद्वा-रा अनायास जल्द परमेश्वर उद्धार करते हैं ॥ ६ ॥

मू०तेषामहंसमुद्धर्तामृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामिनचिरात्पार्थमय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

पार्थ १ मयि २ आवेशितचेतसाम् ३ तेषाम् ४ मृत्युसंसारसा-गरात् ५ न ६ चिरात् ७ समुद्धर्ता ८ अहम् ९ भवामि १० ॥ ७ ॥

अ०उ० भक्तोंको धीरज बंधानेकेलिये अपने छातीपर हस्तकमल रखकर प्रतिज्ञा करते हैं कि. हे अर्जुन १ मुझमें २ लगरहा है चित्त जिनका ३ तिनका ४ मृत्युसंसारसमुद्रसे ५ जलदी ६।७ उद्धारकर-नेवाला ८ मैं ९ हूं १० तात्पर्य जो श्रीकृष्णचन्द्ररामचंद्रादिसदाशि-वादिके भक्त हैं, वे जलदी संसारसमुद्रसे पार होंगे. जैसे कोई मणीके प्रभाको मणी समझकर लेनेके लिये दौडता है. प्रभातो मणी नथा. परंतु उसजगे सच्चामणी दीखपडता है, जब उसमणीका मिलना स-हज होजाता है. इसी प्रकार सगुणब्रह्मकी उपासना करते करते शु-द्धसच्चिदानन्दका ज्ञान होजाता है. भगवतका जानना यही संसारसे उद्धार होना है. फिर उसको जन्ममरण नहीं होता. श्रीभगवान् यह

प्रतिज्ञा पूर्ण होनेकेलिये अपना यथार्थ स्वरूप तेरहवें अध्यायमें निरूपण करेंगे, जिसके जाननेसे जल्द उद्धार होजावे ॥ ७ ॥

मू०मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिंनिवेशय ॥
निवसिष्यसिमय्येवअतऊर्ध्वंनसंशयः ॥ ८ ॥

मयि १ एव २ मनः ३ आधत्स्व ४ मयि ५ बुद्धिम् ६ निवेशय ७ अतः ८ ऊर्ध्वम् ९ मयि १० एव ११ निवसिष्यसि १२ न १३ संशयः १४ ॥ ८ ॥ अ० उ० जिनका मन मुझमें आसक्त है, उनका मैं उद्धार करूंगा. यह मैंने प्रतिज्ञा कीई है. इसवास्ते हे अर्जुन तूं भी. मुझमें १ मनको ३ स्थितकर ४ मुझमें ५ बुद्धीका ६ प्रवेशकर. ७ इससे ८ पीछे ९ मुझमें १० ही ११ वासकरेगा तूं. १२ नहीं १३ संशय १४ सि० है इसवाक्यमें ❋ तात्पर्य वेदकी यह श्रुति है ॥ देहान्तेदेवःपरंब्रह्मतारकंव्याचष्टे ॥ इति अर्थात् देहके अन्तसमय परब्रह्म अपने इष्टदेव तारकमंत्रका (ओंकारका) उपदेश करते हैं. उसीसमय ब्रह्मज्ञान होकर परमानन्दको प्राप्त होजाता है. यही परमेश्वरमें वास करना है ॥ ८ ॥

मू०अथचित्तंसमाधातुंनशक्नोषिमयिस्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेनततोमामिच्छाप्तुंधनंजय ॥ ९ ॥

धनंजय १ अथ २ मयि ३ चित्तम् ४ समाधातुम् ५ न ६ शक्नोषि ७ स्थिरम् ८ ततः ९ अभ्यासयोगेन १० माम् ११ आप्तुम् १२ इच्छ १३ ॥ ९ ॥ अ० उ० पूर्वोक्तउपायसेभी सुगम उपाय कहते हैं. हेअर्जुन १ और जो २ मुझमें ३ चित्त ४ समाधान करनेको ५ नहीं ६ समर्थ है तूं. ७ स्थिर ८ सि० नहीं करसक्ता है मनको ❋ तो ९ अभ्यासयोगकरके १० मेरे ११ प्राप्तीकी १२ इच्छाकर. १३ सि० मूर्तिमान् परमेश्वरमें. या विश्वरूपमें, जो दिनरात चित्तस्थिर रहे, तो वारंवार यह अभ्यास करना कि, जब मन दूसरे पदार्थमें जावें,

उसीसमय वहांसे हटाकर उसीस्वरूपमें समाधान करे. इसीको अ-भ्यासयोग कहते हैं ❀ तात्पर्य अभ्यास करते करते अवश्य मन एकजगे निश्चलहोजाता है. अभ्यासमें जलदी न करे. असंख्यातव-र्षोंसे मन भगवतसे विमुख होरहा है. अवभी जो दोचारवर्षमें अभ्या-सके बलसे भगवतके सन्मुख होजा, तोभी बडी बात है. अभ्यासमें प्रथम दुःख प्रतीत होता है, दुःख समझकर अभ्यास नहीं छोडदेना॥९

मू० अभ्यासेप्यसमर्थोसिमत्कर्मपरमोभव ॥
मदर्थमपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

अभ्यासे १ अपि २ असमर्थः ३ असि ४ मत्कर्मपरमः ५ भव ६ मदर्थम् ७ अपि ८ कर्माणि ९ कुर्वन् १० सिद्धिम् ११ अवाप्स्यसि १२ ॥ १० ॥ अ० उ० उससे भी सुगम उपाय कहते हैं. अभ्या-समें १ भी २ असमर्थ ३ है तूं. ४ सि० तो ❀ मत्कर्मपरायण ५ हो तूं ६ अर्थात् साधुओंके सिर आँखोंसें टहलना, दिनरात्रि उनके सेवामें लगेरहना, शिवालय केशवालय बनाना मंदिरोंमें बुहारी देना लीपना, ठाकुरसेवाके वर्तन मांजना, शुद्धजल अपने हाथसे लाना, वहुत क्रियाके साथ रसोई बनाना, प्रथम परमेश्वरको भोग लगाना, और ढूंढकर साधूको जिमाना, ऐसे ऐसे वहुत कर्म साधु महात्मा वतासक्ते हैं, ऐसे कर्मोंमें तत्पर होना चाहिये ६ सि० श्रीभगवान् कहते हैं, कि ❀ मेरे अर्थ ७ भी ८ कर्मोंको ९ करता हुवा १० सि० अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर ❀ मोक्षको ११ प्राप्त होगा तूं १२ तात्पर्य भगवद्भजनसंबंधी और भगवत्सेवासंबंधी जो कर्म हैं, वे सब अंतःकरणको शुद्ध करसक्ते हैं. ॥ १० ॥

मू० अथैतदप्यशक्तोसिकर्तुंमद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागंततःकुरुयतात्मवान् ॥ ११ ॥

अथ १ एतत् २ अपि ३ कर्तुम् ४ अशक्तः ५ असि ६ ततः

७ मद्योगम् ८ आश्रितः ९ सर्वकर्मफलत्यागम् १० कुरु ११ यतात्मवान् १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० उससे भी सुगम उपाय कहते हैं. जो १ यह २ भी ३ करनेको ४ असमर्थ ५ है तूं, ६ तो ७ भक्तियोगका ८ आश्रयकरके ९ सबकर्मोंके फलका त्याग १० कर् तूं ११ मनको जीतकर. १२ अर्थात् अब तूं फिर संकल्प विकल्प कुछ मत कर. जो कुछ नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्तादि कर्मोंका अनुष्ठान होसके, वोही कर. उसके फलमें आसक्ति मत कर. यह समझ कि,मैं तो तनमनधनकरके भगवतको शरण हूं.मैं तो उनका दास हूं, वे महाराज अंतर्यामी हैं. जैसा चाहें मुझसे शुभाशुभ कर्म करावें, और जैसा चाहें उनकर्मोंका फल दें, मुझको तो सिवाय परमेश्वरके और कुछ किसीतरहका आश्रा नहीं परंतु यह प्रकट रहे कि, धनादिके प्राप्तिके लिये जहाँ तक होसके राजादिमनुष्योंका दास जानबूझकर न बने. व्यवहारका भार तो परमेश्वरको सौंपदेना. और परमार्थमें मोक्षके लिये जहांतक बनसके प्रयत्न करना चाहिये. उलटा ऐसा नहीं समझना कि, परलोकका भार तो परमेश्वरको सौंपदेना. अर्थात् यह समझना कि, परमेश्वर जो चाहें सो करें, मेरे करनेसे क्या होता है. यह मोक्षमार्ग में नहीं समझना. व्यवहारमें यह समझना कि, मेरे करनेसे कुछ नहीं होता, जो प्रारब्धमें लिखागया है वोही होगा. मोक्षमार्गमें पुरुषार्थ मुख्य है. व्यवहारमें प्रारब्ध मुख्य हैं. इत्यभिप्रायः १२ ॥ ११ ॥

मू० श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥ १२ ॥

अभ्यासात् १ ज्ञानम् २ श्रेयः ३ हि ४ ज्ञानात् ५ ध्यानम् ६ विशिष्यते ७ ध्यानात् ८ कर्मफलत्यागः ९ त्यागात् १० अनन्तरम् ११ शान्तिः १२ ॥ १२ ॥ अ० उ० सबकर्मोंके फलका त्याग इसहेतुसे

श्रेष्ठ है. अभ्याससे १ ज्ञान २ श्रेष्ठ है ३ निश्चयसे. ४ शास्त्रीयज्ञानसे ५ ध्यान ६ विशेष हैं. ७ ध्यानसे ८ कर्मोंके फलका त्याग ९ सि० श्रेष्ठ है ❋ त्यागसे १० पीछे ११ शान्ति १२ सि० होती है ❋ टी० विनाभलेप्रकार वेदोंका तात्पर्य जाने हुवे जो किसीकर्मके अनुष्ठानमें अभ्यास करना, उससे प्रथम वेदोंका तात्पर्य समझना जानना यह ज्ञानश्रेष्ठ है. २।३ क्यों कि, जिसको परोक्षज्ञान यथार्थ होगया वो अवश्यही कभी न कभी उसका अनुष्ठान भी करेगा. अविद्यावानके अनुष्ठानकरनेसे विद्यावान् विना अनुष्ठान कियेभी श्रेष्ठ है. क्यों कि, वो एक मार्गपर है. अविद्यावान् मूर्खकूं कहां विचार है कि, मुझको किसकर्मका अधिकार है. जो उसको प्रिय लगता है. वोही करने लगता है. इसीहेतुसे कर्मोंका फल उनको प्रत्यक्ष नहीं होता. और पंडित ज्ञानियोंसे, अर्थात् परोक्षज्ञानियोंसें विद्यावान् रामकृष्णादिका ध्यान करनेवाले श्रेष्ठ हैं. ६।७मूर्तिमान्परमेश्वरके ध्यान करनेवालोंसे भी जो विद्यावान् कर्मोंका निष्काम अनुष्ठान करते हैं, अर्थात् श्रौतस्मार्तकर्म, और भगवदाराधन, और हिरण्यगर्भ सूर्यादिकी उपासना, औरभी भगवत्संबंधी जो कर्म, इन सबकर्मोंके फलका त्यागकरते हैं, वे श्रेष्ठ हैं. ९ क्यों कि, शान्ति कर्मोंका फल त्यागनेसे होती है. विना त्याग संसारसे चित्त उपराम नहीं होता. लौकिक और वैदिक दोनोंकर्मोंके फलसे जब चित्त उपराम होता है, दोनोंकर्मोंके फलसे जब वैराग्य होता है, तब शान्ति और उपरति होती है. १२ वैराग्य और उपरति ये दोनों ज्ञाननिष्ठाके अंतरंग मुख्य साधन हैं, और फिर ज्ञाननिष्ठ होकर कृतार्थ होता है. अर्थात् परमानन्दको प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥

मू० अद्वेष्टासर्वभूतानांमैत्रःकरुणएवच ॥
निर्ममोनिरहंकारःसमदुःखसुखःक्षमी ॥ १३ ॥

सर्वभूतानाम् १ अद्वेष्टा २ मैत्रः ३ करुणः ४ एव ५ च ६ निर्ममः ७ निरहंकारः ८ समदुःखसुखः ९ क्षमी १० ॥ १३ ॥ अ० उ० शान्तपुरुष और ज्ञाननिष्ठमहापुरुषोंके लक्षण श्रीभगवान् सात श्लोकोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहेंगे. सि० ज्ञानीजन ❀ सर्वभूतोंके १ सि० साथ (इसप्रकार वर्तते हैं, जो कि आपसे जातिरूप और धनादिमें बडे हैं.) ❀ द्वेष नहीं करते २ सि० बहुवचन आदरके लिये लिखते हैं. बराबरके साथ ❀ मित्रता ३ सि० रखते हैं. छोटोंपर ❀ दयाही ४ । ५ । ६ सि० करते हैं. यह चाहते हैं, कि जैसे हम विद्यावान् धनवाले हैं. परमेश्वर करें यह भी ऐसे ही होजावें. और जहांतक होसके यथाशक्ति उनके ऊपर उपकार करते हैं. और दुष्टजन चोर जार, और पापी जनोंकी उपेक्षा करते हैं. अर्थात् उनको न बुरा कहना, न भला कहना, न उन्होंपर उपकार करना, न अपकार करना "खलपरिहारियेश्वानकीनांई" दुष्टोंको कुत्तेके सदृश समझते हैं. कुत्तेको टूक डालनेमें क्षती नहीं. इत्यभिप्रायः. पुत्र, स्त्री, मित्र, धन, और मन्दिर, इत्यादिमें ❀ ममतारहित ७ सि० यह समझते हैं कि, शरीर और मन यह भी तो हमारे हैं नहीं फिर पुत्रादि हमारे क्या होंगे. ऐसा होकर फिर ❀ अहंकाररहित ८ सि० कभी वाणीसे तोक्या कहना कि, हम ऐसे हैं चित्तमें अनुसंधान भी न रखना. और ❀ सम हैं दुःखसुख जिनको ९ सि० यही समझते हैं कि सुख और दुःख दोनों अनित्य हैं. जैसे दुःख विनासंकल्प और विनायत्न आता है. ऐसा ही सुख आता है. और जैसा सुख चला जाता है वैसाहीदुःख भी चलाजाता है. दुःखके निवृत्तीके लिये, और सुखके प्राप्तीके लिये कुछ यत्न नहीं करते. और जो कोई बेप्रयोजनभी अपने स्वभावके अनुसार उनको वाणी और शरीरादिकरके दुःख देता है उसकी ❀ क्षमाकरते हैं. सि० तात्पर्य यह समझते हैं कि यह प्रारब्धका भोग है. आध्यात्मि-

क आधिदैविकतापभी तो सहने पडते हैं. जैसे उनको सहते हैं, ऐसे ही इसको सहना चाहिये. उनही तीनोंतापोंमें एक यह भी आधिभौतिक ताप है, हमारे ही कर्मोंका फल है. कोई दुःखदेनेवाला नहीं, हमारा मनही कारण है दुःख सुख देनेमें. ऐसे क्षमावान् ॥ १३ ॥

मू० संतुष्टःसततंयोगीयतात्मादृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तःसमेप्रियः ॥ १४ ॥

सततम् १ संतुष्टः २ योगी ३ यतात्मा ४ दृढनिश्चयः ५ मयि ६ अर्पितमनोबुद्धिः ७ यः ८ मद्भक्तः ९ सः १० मे ११ प्रियः १२ ॥ १४ ॥ अ० सदा १ सन्तुष्ट २ अर्थात् कभी किसीकालमें किसीपदार्थकी चाह नहोना, सदा छके रहना २ अष्टांगयोगवान् ३ अर्थात् यमनियमादिपरायण १ जीता है स्वभाव जिसने ४ तात्पर्य पूर्वावस्थामें जो प्राकृतवत् स्वभाव था, उसको जीतकर सौम्य शान्त स्वभाव करलिया हैं जिसने, उसको यतात्मा कहते है. दृढनिश्चय है जिसका ५ सि० आत्मामें वेदशास्त्रोंमें कभी जिनको सशयका वा विपर्ययका उदय होता ही नहीं. वेदोक्त आत्माको शुद्ध सच्चिदानन्द वेसन्देह जानता है ❋ मुझआत्मामें ६ अर्पित किया है मन और बुद्धि जिसने ७ अर्थात् अंतःकरणके वृत्तियोंके आत्माकार करदिया है जिसने ७ सि० ऐसा ❋ जो ८ मेरा भक्त ९ सो १० मुझको ११ प्यारा १२ सि० है चौथेअध्यायमें श्रीभगवान्ने कहाथा कि, ज्ञानी मुझको वहुत प्यारा है, उसीका इन सातश्लोकोंमें उपसंहार करते हैं. जिसश्लोकमें प्रिय यह पद नहीं तो भी वहांसमझलेना चाहिये. तेरहवे. और अठारहवे मंत्रमें यह पद नहीं और पांचोंमंत्रोंमें है ❋ ॥ १४ ॥

मू० यस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयःसचमेप्रियः ॥ १५ ॥

यस्मात् २ लोकः १ न ३ उद्विजते ४ यः ५ च ६ लोकात् ७ न उद्विजते ९ हर्षामर्षभयोद्वेगैः १० च ११ यः १२ मुक्तः १३ सः १४ मे १६ प्रियः १५ ॥ ११ अ० जिससे १ जीव २ सि० मात्र ❀ न ३ उद्वेगकरे ४ अर्थात् किसीप्रकार जिससे अपनी हानी समझ-कर चित्तमें कोई प्राणी क्षोभ न करे ४ और जो ५।६ किसीजीवसे ७ न ८ उद्वेग करे ९ हर्ष आमर्ष भय और उद्वेग इनचारोंसे १०। ११ जो १२ छूटा हुवा १३ सो १४ मुझको १५ प्रिय १६ सि० है ❀ टी० इष्टवस्तूके देखने सुननेसे रोमांचका खडा होजाना, मनमें रंजन होनेलगना, इसको हर्ष कहते हैं. दूसरेको विद्यावान्, वा रुपये वाला देखकर और सुनकर मन मैला या उदास हो जाना, इसको आमर्ष कहते हैं.किसीप्रकारकी मनमें शंका होना उसको भय कहतेहैं चित्तका एकजगे स्थिर न होना उसको उद्वेग कहते हैं. १८ तात्पर्य ऐसा व्यवहार (चालचलने) जिनमहापुरुषोंका है, कि जिनसे कोई किसीप्रकार बुरा न माने. वेही भगवतको प्यारे हैं ॥ १५ ॥

मू०अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः ॥
सर्वारंभपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः ॥ १६ ॥

अनपेक्षः १ शुचिः २ दक्षः ३ उदासीनः ४ गतव्यथः ५ सर्वारंभप-रित्यागी ६ यः ७ मद्भक्तः ८ सः ९ मे १० प्रियः ११ ॥१६॥ अ०जो पदार्थ अपने आप प्राप्त हो उनकी भी इच्छा नहीं करता उपेक्षा करता है १ पवित्र २ सि० रहते हैं. बाहर भीतरसे. बाहरजलमृत्ति-कादिकरके शुद्धरहना वस्त्रादि निर्मलरखना, भीतर रागद्वेषादि नहीं रखना ❀ चतुर ३ सि०व्यवहार और परमार्थके बातोंमें व्यवहारके समय व्यवहारकी बात करना परमार्थके समय परमार्थकी. प्रथम व्यवहार शुद्ध करना चाहिये, तब परमार्थ सिद्ध होता है. व्यवहार-की जिनको समझ नहीं, उनका परमार्थ कभी नहीं सुधरेगा. परमार्थ-

में जीवका कुछनहीं बिगाडा. व्यवहार बिगडगया है. उसीको सुधारना चाहिये. व्यवहारमें परमार्थ और परमार्थमें व्यवहार नहीं मिलाते हैं चतुरमहात्मा. ❋ उदासीन ४ अर्थात् किसीमतका अन्यपक्षका खंडन वा प्रतिपादन नहीं करना आनंद मतरखना जिसमें सबका सम्मत है. ४ मनमें किसीप्रकारका खेद नहींरखते ५ जितने इसलोकके वा परलोककनिमित्त आरंभ है उन सबकात्यागकरनेवाला ६ सि० ऐसा ❋ जो ७ मेराभक्त ८ सो ९ मुझको १० प्यारा ११ सि० है १० ॥ १६ ॥

मू० योनहृष्यतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागीभक्तिमान्यःसमेप्रियः १७॥

यः १ न २ हृष्यति ३ न ४ द्वेष्टि ५ न ६ शोचति ७ न ८ कांक्षति ९ शुभाशुभपरित्यागी १० यः ११ भक्तिमान् १२ सः १३ मे १४ प्रियः १५ ॥ १७ ॥ अ० उ० जो १ न २ हर्षकरता है ३ न ४ द्वेष करता है ५ न ६ शोचकरता है ७ न ८ इच्छा करता है ९ शुभ और अशुभ इनदोनोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका १० सि० ऐसा ❋ जो ११ भक्तिमान् १२ सो १३ मुझको १४ प्यारा है. १५ टी० इष्टपदार्थके मिलनेसे आनन्द नहीं होता, अनिष्टपदार्थोंसे द्वेष नहीं करता, पिछले बातोंका शोच नहीं करता, आगेको कुछ चाहता नहीं. शुभ और अशुभ ये दोनों पदार्थ अज्ञानके कार्य हैं, दोनोंको अनित्य समझकर, दोनोंको त्यागकर, शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपआत्मामें भक्ति (प्रीति) जो रखता है, श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा महापुरुष मुझको प्रिय है. शुभवैदिकमार्गका त्याग उनकेवास्ते अच्छा है कि जो आत्मनिष्ठ हैं. जैसे लक्षण ऊपर कहे येभी सब हों. विनाज्ञान शुभमार्गको त्यागदेना मूर्खोंका काम है. विनाज्ञान हुवे शुभमार्गको कभी नहीं त्यागना. और ज्ञान हुवे पीछे सिवाय आत्माके किसीको उत्तम शुभ वा श्रेष्ठ नहीं समझना. सबको त्यागदेना ॥ १७ ॥

मू०समःशत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुसमःसंगविवर्जितः ॥ १८॥

शत्रौ १ च २ मित्रे ३ च ४ समः ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ शीतोष्णसुखदुःखेषु ८ समः ९ संगविवर्जितः १० ॥ १८॥ अ० उ० शत्रुमें और मित्रमें १।२।३।४ बराबर ५ तैसेही ६ मानमें और अपमानमें ७ सि० समान ❋ शीतगरमीमें और दुःखसुखमें ८ समान ९ सि० शरीर, इंद्रिय, प्राण, और अंतःकरण, इनका जो ❋ संग उसकरके वर्जित १० तात्पर्य शरीर, इंद्रिय, प्राण, और अंतःकरण, इनकेसाथ जब आत्माका संग होता है. तब आत्माकी शरीरादिमें आसक्ती होती है, फिर शीतादिमें इष्टानिष्टकी भ्रान्ति होती है. शत्रुमित्रके समतामें संगवर्जित यही हेतु है. आत्मनिष्ठ जो महापुरुष हैं, वे शरीरादिमें अध्यास नहीं रखते, इसी हेतुसे शत्रुमित्रादिमें उनकी विषमता दूर होजाती है. जैसे उनको मानादि. वैसेही अपमानादि. मानापमानादि यह सब अंतःकरणका धर्म है. आत्मनिष्ठ अपनेको सबसे पृथक् जानते हैं. विना आत्मनिष्ठाके देहाभिमानियोंसे पूर्वोक्त लक्षणोंका अनुष्ठान नहीं होसक्ता. यह सब लक्षण ज्ञाननिष्ठोंहीमें बनसक्ते हैं ॥ १८॥

मू०तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनीसंतुष्टोयेनकेनचित् ॥
अनिकेतःस्थिरमतिर्भक्तिमान्मेप्रियोनरः॥१९॥

तुल्यनिन्दास्तुतिः १ मौनी २ येनकेनचित् ३ संतुष्टः ४ अनिकेतः ५ स्थिरमतिः ६ भक्तिमान् ७ नरः ८ मे ९ प्रियः १० ॥१९॥ अ० समान है निंदा और स्तुति जिसको १ चुप रहना या वेदांतशास्त्रका मनन करना उसको मौनी कहते हैं २ जो पदार्थ प्रारब्धवशात् विनायत्न थोडा बहुत प्राप्त होजावे, उसीकरके ३ संतोष मानना ऐसे पुरुषको संतुष्ट कहते हैं ४ एकजगह रह-

नेका नियम नहीं करना, उसको अनिकेत ५ सि० कहते हैं. अपने स्वरूपमें ❋ निश्चल है बुद्धि जिसकी ६ सि० ऐसा ❋ भक्तिमान् ७ पुरुष ८ मुझको ९ प्यारा है. १० येनकेनचिदाच्छन्नोयेनकेनचिदाशिनः॥ यत्रकुत्रशयायीस्यात्तंदेवाब्राह्मणंविदुः॥ महाभारत का यह श्लोक है. तात्पर्य पूर्वोक्तलक्षण ब्रह्मनिष्ठज्ञानीभक्तोंके हैं. अर्जुनने बूझाथा किं अक्षरब्रह्मके उपासक कैसे हैं. श्रीमहाराजने उत्तर दिया कि ऐसे होते हैं. ऐसे नहीं होते कि रासलीलामें तमाशा तो आप देखें राधाकृष्णको बेसमझ लोग (अन्यमतवाले) बुरा कहैं और अच्छेपदार्थोंका मोहनभोग नाम रखकर आपही चटकरजाना साधुअभ्यागतको न देना. इसअध्यायमें भक्तोंके लक्षण जैसे श्रीमहाराजने कहे हैं, जिनमें ये होंगे वोही भक्त भगवतको प्राप्त होगा, अन्य नहीं. इत्यभिप्रायः॥ १९॥

मू०येतुधर्म्यामृतमिदंयथोक्तंपर्युपासते॥
श्रद्दधानामत्परमाभक्तास्तेतीवमेप्रियाः॥२०॥

मत्परमाः १ ये २ श्रद्दधानाः ३ भक्ताः ४ इदम् ५ धर्म्यामृतम् ६ यथा ७ उक्तम् ८ पर्युपासते ९ ते १० तु ११ अति १२ इव १३ मे १४ प्रियाः १५॥ २०॥ अ० मैं हूं परेसे परे जिनको ऐसे १ जो २ श्रद्धावान् ३ भक्त ४ इसधर्मकरके युक्त ऐसे इस अमृतको ५। ६ जैसे ७ कहा है ८ सि० पीछे मैनें. उसका ❋ अनुष्ठान करते हैं. ९ वे १० सि० भक्त ❋ तो ११ बहुतही १२ ।१३ मुझको १४ प्यारे हैं, १५ अर्थात् भक्त जिनका नामभी है, जो नाममात्र भक्त हैं, वे भी भगवतको प्यारे हैं, और अद्वेष्टादिलक्षणोंकरके जो सम्पन्न हैं. वे तो अत्यंत प्यारे हैं॥ प्रियोहिज्ञानिनोत्यर्थमहंसचममप्रियः॥ १५ तात्पर्य यह जो सातवें अध्यायमें उपक्रम कियाथा, उसीका उपसंहार है, पुनरुक्ति नहीं. सबधर्मोंक

सार सिद्धान्त अमृतरूप यह उपदेश है. विचारना चाहिये कि ये लक्षण अनिकेतमौनादिनिवृत्तिमार्गवालेज्ञाननिष्ठसंन्यासी महापुरुषोंमें पाते हैं या जो घंटा घडचाल बजाते हैं, नृत्य देखते हैं उनमें पाते हैं. वास्ते उदाहरणके श्रीस्वामी पूर्णाश्रमजी महाराज संन्यासी परमहंस ज्ञाननिष्ठ नग्न मौन होकर श्रीभागीरथीगंगाजीकेतरेही विचरते रहते हैं जितने लक्षण सातश्लोकोंमें श्रीभगवानने कहे, सब उन महाराजमें प्रत्यक्ष हैं. जो चाहे दरशन करो. (चैत्रसुदीनौमी रामनौमी सम्वत् १९२१ में इस श्लोकका अर्थ मुझआनंदगिरीनें लिखा है.) श्रीमहाराज पूर्वोक्त परमहंसजी विद्यमान हैं. और भी बहुत महात्माहैं. सिवाय संन्यासियोंके कोई तो बतावे कि ऐसा कौन हुवा है, पहले भी और अब आंखोंसे तो कौन देखा सक्ता है, इतने पर भी जो विरक्तोंका माहात्म्य न समझेगा, तो वो बेसंदेह प्रवृत्तलोकोंके पंजेमें फँसेगा ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवें अध्यायका प्रारम्भ हुवा ॥

क्षे०अर्जुनवाच ॥ ॥ प्रकृतिंपुरुषंचैवक्षेत्रंक्षेत्रज्ञमेवच ॥
एतद्वेदितुमिच्छामिज्ञानंज्ञेयंचकेशव ॥ १ ॥

अर्जुनःउवाच केशव१ प्रकृतिम् २ पुरुषम् ३च ४ एव ५ क्षेत्रम् ६ क्षेत्रज्ञम् ७ एव ८ च ९ ज्ञानम् १० ज्ञेयम् ११ च १२ एतत् १३ वेदितुम् १४ इच्छामि १५ ॥ १ ॥ यह श्लोक किसीराजाने बनाकर श्रीभगवद्गीताके पोथियोंमें लिखवादिया है. जो अनजान हैं, वे इसश्लोकको भी व्यासकृत समझते हैं. व्यासजीने सातसो ७०० श्लोक बनाये हैं. यह मिलकर सातसो एक होजाते हैं. अर्थ इसका

यह है कि हे केशव १ प्रकृति २ और पुरुष ३ । ४ । ५ क्षेत्र ६ और क्षेत्रज्ञ ७ । ८ । ९ ज्ञान १० और ज्ञेय ११ । १२ इनके १३ जाननेकी १४ इच्छा करताहूं मैं १५ तात्पर्य क्षेत्रादिपदोंका अर्थ जाना चाहता हूं. इसप्रश्नकी कुछ आकांक्षा न थी. क्योंकि श्रीभगवानने बारहवें अध्यायमें आप यह कहा है कि, भक्तोंका मैं शीघ्र उद्धार करूंगा. जो इसप्रश्नमें पद है विना उनके अर्थ जाने ज्ञाननिष्ठा नहीं होसक्ती. और विना ज्ञाननिष्ठाके संसारसे उद्धार नहीं होता इसवास्ते ये सब पदार्थ श्रीमहाराजने विनाप्रश्न कहे. जो टीकासहित पोथी हैं उनमें यह श्लोक नहीं. और बहुत विद्वान् मूल पोथियोंमें भी नहीं लिखते. कोई कोई मूलपोथियोंमें लिखदेते हैं, इसयंत्रके अनुसार सातसो श्लोक हैं गीताके अठारह अध्यायोंमें ॥१॥

अध्याय.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	जोड	समस्त जोड ७०० श्लो.
श्लो. सं.	४७	७२	४३	४२	२९	४७	३०	२८	३४	३७२	
अध्याय.	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	जोड	
श्लो. सं.	४२	५५	२०	३४	२७	२०	२४	२८	७८	३२८	

मू०श्रीभगवानुवाच॥ इदंशरीरंकौंतेयक्षेत्रमित्यभिधीयते ॥ एतद्योवेत्तितंप्राहुःक्षेत्रज्ञमितितद्विदः॥१॥

श्रीभगवान् उवाच. कौंतेय १ इदम् २ शरीरम् ३ क्षेत्रम् ४ इति ५ अभिधीयते ६ यः ७ एतत् ८ वेत्ति ९ तम् १० तद्विदः ११ क्षेत्रज्ञम् १२ इति १३ प्राहुः १४॥ १ ॥ अ० उ० बारहवें अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने कहाथा कि मैं भक्तोंका उद्धार संसारसे शीघ्र करूंगा जो कि विना आत्मज्ञानके उद्धार नहीं होता. इसवास्ते इसअध्यायमें ब्रह्मज्ञान साधनसहित कहते हैं. हेअर्जुन १ इस २ शरीरको ३ क्षेत्र ४।५ कहते हैं. ६ जो ७ इसको ८ जानता है, ९ तिसको १० तिनके ज्ञाता ११ अर्थात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञके जाननेवाले ११ क्षेत्रज्ञ

१२।१३ कहते हैं. १४तात्पर्य स्थूलशरीर क्षेत्र खेतके बराबर है. पापपुण्य इसमें उत्पन्न होते हैं, इसी हेतुसे इसको क्षेत्र कहते हैं. जो इसका अभिमानी उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं. क्षेत्रज्ञ वास्तव शुद्ध, सच्चिदानन्द, असंग, नित्य, मुक्त, ऐसा है. अविद्योपहित होकर व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंका अभिमानी बनकर विश्व, तैजस, और प्राज्ञ, कहाजाता है. और मायोपहित होकर समष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंका अभिमानी बनकर विराट्, हिरण्यगर्भ, और ईश्वर, कहाजाता है. और वोही माया अविद्यारहित, शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त है. अध्यारोपापवादन्यायकरके सिद्धान्त यही है ॥ १ ॥

मू०क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धिसर्वक्षेत्रेषुभारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानंयत्तज्ज्ञानंमतंमम ॥ २ ॥

भारत १ सर्वक्षेत्रेषु २ क्षेत्रज्ञम् ३ माम् ४ च ५ अपि ६ विद्धि ७ यत् ८ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ९ ज्ञानम् १० तत् ११ ज्ञानम् १२ मम १३ मतम् १४ ॥ २ ॥ अ० उ० तत् और त्वम् इनदोपदोंका अर्थ पीछले मंत्रमें पृथक् पृथक् निरूपण किया अब महावाक्यार्थ निरूपण करते हैं. श्रीभगवान् स्पष्ट जीव और ईश्वर इनकी लक्ष्यार्थमें एकता दिखाते हैं. हेअर्जुन १ सबक्षेत्रोंमें २ क्षेत्रज्ञ ३ मुझकोही ४।५।६ जान तूं ७ सि० औरजगे मत ढूंढ. इसप्रकार ❀ जो ८ क्षेत्रक्षेत्रज्ञका ९ ज्ञान १० सो ११ ज्ञान १२ मेरा १३ मत १४ सि० है. ❀ तात्पर्य तत् और त्वम् इनपदोंके लक्ष्यार्थका ग्रहणकरके वाच्यार्थको त्यागकर, आधेय अधिकरणभाव, विशेषणविशेष्यभाव, लक्ष्यलक्षणभाव, इन तीन संबंधकरके और भागत्यागलक्षणाकरके सो यह देवदत्त है. इसलौकिकवाक्यवत् क्षेत्रज्ञ और माम् इनपदोंकी लक्ष्यार्थमें एकता है. इसबातको इसजगे स्पष्ट करनेमें बहुत विस्तार होता है. आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें विशेष लिखा है. वेदांतशा-

स्त्रके जितने ग्रंथ हैं सब इसीकी टीका हैं. ऐसा ज्ञान जिसको हुवा वोही ज्ञानी परमपदका भागी होगा. इसलोकमें अनेक विद्या हैं.सब लोक किसी न किसी विद्याके जाननेवाले, नाई, धोबी, वेश्यादि, एक-प्रकारके ज्ञानी हैं. विनाब्रह्मविद्याके सबलौकिकविद्या, लोगोंको रि-झानेके लिये, शिश्नोदरके तृप्तीकेलिये, वाहवाहकेलिये हैं. जिनका फल दुःख (श्रम) है. जो इसशरीरमें सच्चिदानन्दक्षेत्रज्ञ है यही वासु-देव है. आप श्रीमहाराज अपने मुखारविन्दसे कहते हैं. ॥ २ ॥

मू० तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्चयद्विकारियतश्चयत् ॥
सचयोयत्प्रभावश्चतत्समासेनमेशृणु ॥ ३॥

तत् १ क्षेत्रम् २ यत् ३ च ४ यादृक् ५ च ६ यद्विकारि ७ यतः ८ च ९ यत् १० सः ११ च १२ यः १३ यत्प्रभावः १४ च १५ तत् १६ समासेन १७ मे १८ शृणु १९ ॥ ३ ॥ अ० उ० प्रथमद्वितीयमंत्रोंमें जो संक्षेप-करके कहा है उसीको विस्तारकरके फिर श्रीभगवान् कहाचाहते हैं. महाराजनें यह जाना कि अभी अर्जुनके समझमें नहीं आया, इसवा-स्ते अर्जुनसे फिरकहते हैं. ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंके अपेक्षासे फिरभी संक्षेपही करके कहते हैं. श्रीभगवान् इसमंत्रमें प्रतिज्ञाकरते हैं, कि हे अर्जुन! इतने शब्दोंका अर्थ तुझसे कहूंगा वे शब्द ये हैं. सो १ स्थू-लशरीर २ जडदृश्यस्वभाववाला ३ और ४ इच्छादिधर्मवाला ५ और ६ इंद्रियादिविकारकरके युक्त ७ प्रकृतिपुरुषके संयोगसे होता है. ८ और ९ स्थावरजंगमभेदकरके भिन्न १० क्षेत्रज्ञ ११।१२ स्वरू-पसे १३ और अचिन्त्यैश्वर्ययोगशक्तिआदि प्रभावकरके युक्त १४। १५ इनसबका अर्थ १६ संक्षेपसे १७ मुझसे १८ सुन १९ ॥ ३ ॥

मू० ऋषिभिर्बहुधागीतंछंदोभिर्विविधैःपृथक् ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैवहेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

ऋषिभिः १ बहुधा २ गीतम् ३ छन्दोभिः ४ विविधैः ५ पृथक् ६

हेतुमद्भिः ७ ब्रह्मसूत्रपदैः ८ च ९ एव १० विनिश्चितैः ११ ॥ अ० उ० जो ज्ञान मैं तुझसे कहता हूं, यही ज्ञान अनादि वेदोक्त है और विद्वानोंने भी यही निश्चयकिया है. ऋषीश्वरोंने १ बहुतप्रकारसे २ सि० इसीज्ञानको ❀ निरूपण किया है ३ वेदोंने ४ सि० भी ❀ पृथक्पृथक् करके ५ पृथक् ६ सि० कहा है और ❀ हेतुवाले ब्रह्मसूत्रपदोंकरके ७।८।९।१० सि० कहागया है. कैसे हैं वे सूत्रपद कि ❀ बहुत भलेप्रकार निश्चयकियेगये हैं ११ टी० वसिष्ठादिने ध्यानधारणादिसाधनोंसे और प्रकृतिपुरुषके विवेकसे ब्रह्मकी प्राप्ती होती है. इसप्रकार ऋषियोंने भी निरूपण किया है. और कर्मही फलदाता है. यज्ञादिकरनेसे, देवतोंका पूजन करनेसे, परमपदस्वर्गकी प्राप्ति होती है. बहुतजगे वेदोंमें इसप्रकार निरूपण किया है. और व्यासजीने ब्रह्मसूत्रपदोंका संक्षेपकरके सूत्र बनाये हैं, कि जिनसे यथार्थ प्रभूका स्वरूप जानाजाता है. ब्रह्मजानाजावे, तटस्थलक्षणा, और स्वरूपलक्षणाकरके जिनसे उनको ब्रह्मसूत्र कहते हैं॥४॥

मू० महाभूतान्यहंकारोबुद्धिरव्यक्तमेवच ॥
इन्द्रियाणिदशैकंचपंचचेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥

महाभूतानि १ अहंकारः २ बुद्धिः ३ अव्यक्तम् ४ एव ५ च ६ दश इन्द्रियाणि ७।८ एकम् ९ च १० पंच ११ च १२ इंद्रियगोचराः १३ ५ अ० उ० क्षेत्रका लक्षण दोश्लोकोंमें कहते हैं. आकाशादिपंच पंचीकृत १ भूतोंका कारण २ महत्तत्व ३ मूलाज्ञान ४।५।६ दश इन्द्रिय ७।८ एक ९ मन १० और ❀ इन्द्रियोंके विषय शब्दादिपंच १३ सि० इनसबका भेद और अर्थ आनन्दामृतवर्षिणी के द्वितीयअध्यायमें लिखाहै ❀ ॥ ५ ॥

मू० इच्छाद्वेषःसुखंदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥
एतत्क्षेत्रंसमासेनसविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

इच्छा १ द्वेषः २ सुखम् ३ दुःखम् ४ संघातः ५ चेतना ६ धृतिः ७ एतत् ८ क्षेत्रम् ९ समासेन १० सविकारम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ ६ ॥ अ० इसलोक वा परलोकके पदार्थोंकी चाह १ अपने इष्टमें जो विघ्नकारी प्रतीत होता हैं उसमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति २ सुख ३ सि० तीन प्रकारका अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगा ❋ विक्षेप, (प्रतिकूल) जिसकू दुःख कहते हैं ४ स्थूलशरीर ५ चेतना ६ अर्थात् ज्ञानात्मिका अंतःकरणकी वृत्ति, कि जिसके प्रकटहोनेसे सब अनर्थोंकी निवृत्ति होजाती है. संसारकार्यकारणसहित अत्यन्ताभावको प्राप्त होजाता है ६ धृति ७ सि० तीनप्रकारकी अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगी. ❋ यह ८ क्षेत्र ९ संक्षेपकरके १० विकारवान् ११ कहा है. १२ तात्पर्य क्षेत्र विकारवान्है, क्षेत्रज्ञ निर्विकार है. मूलाज्ञानसे क्षेत्रज्ञ भी विकारवान् प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

मू० अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

अमानित्वम् १ अदंभित्वम् २ अहिंसा ३ क्षांतिः ४ आर्जवम् ५ आचार्योपासनम् ६ शौचम् ७ स्थैर्यम् ८ आत्मविनिग्रहः ९ ॥ ७॥ अ० उ० आगे क्षेत्रज्ञका लक्षण कहना है उसके समझनेकेलिये सत्त्वगुणी अंतर्मुखसूक्ष्मवृत्ति चाहिये. इसवास्ते उसका साधन कहते हैं पांचश्लोकोमें. जिसके ये बीस साधन होंगे, उसके समझमें क्षेत्रज्ञका स्वरूप आवेगा. प्रथम इन साधनोंमें प्रयत्न करना योग्य है. मानरहित १ दंभरहित २ हिंसारहित ३ क्षमा ४ कोमलता ५ सद्गुरुकी सेवा ६ पवित्र (बाहरभीतर) ७ सि० सन्मार्गमें ❋ स्थिरता ८ शरीरका निग्रह ९ सि० इनसबसाधनोंका अर्थ आनन्दामृतवर्षिणीके चतुर्थाध्यायमें भलेप्रकार लिखा है. और उनका पृथक् पृथक् माहात्म्य और फल जैसा शास्त्रोंमें लिखा है वोही प्रत्यक्षहोता

है. इनसाधनोंका ऐसा फल नहीं कि जैसा एकादशीका फल परोक्ष है. और ये साधन साधारण है. ब्राह्मणसेलेकर चांडालपर्यन्त इनमें सबका अधिकार है. ❋ ॥ ७ ॥

मू० इंद्रियार्थेषुवैराग्यमनहंकारएवच ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इन्द्रियार्थेषु १ वैराग्यम् २ अनहंकारम् ३ एव ४ च ५ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ६ ॥ ८ ॥ अ० इन्द्रियोंके अर्थोंमें १ वैराग्य २ अहंकाररहित ३।४।५ जन्म, मृत्यु, जरा, और व्याधि, इनचारोंमें दुःखको, और दोषोंको सदा देखते रहना ॥ ६ ॥ ८ ॥

मू० असक्तिरनभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यंचसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

पुत्रदारगृहादिषु १ असक्तिः २ अनभिष्वंगः ३ इष्टानिष्टोपपत्तिषु ४ नित्यम् ५ समचित्तत्वम् ६ च ७ ॥ ९ ॥ अ० पुत्रस्त्रीगृहादिमें सक्त न होना २ पुत्रादिके दुःखसुखमें अपनेको सुखी दुःखी नहीं मानना ३ इष्टअनिष्टके प्राप्तीमें ४ सदा ५ समचित्त रहना ६।७ ॥ ९ ॥

मू० मयिचानन्ययोगेनभक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मयि १ च २ अनन्ययोगेन ३ अव्यभिचारिणी ४ भक्तिः ५ विविक्तदेशसेवित्वम् ६ जनसंसदि ७ अरतिः ८ ॥ १० ॥ अ० मुझमें १।२ अनन्ययोगकरके ३ अव्यभिचारिणी ४ भक्ति ५ विविक्तदेशमें रहनेका स्वभाव ६ प्राकृतजनोंके सभामें ७ प्रीतिरहित ८ ॥ १० ॥

मू० अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानंयदतोन्यथा ॥ ११ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् १ तत्वज्ञानार्थदर्शनम् २ एतत् ३

ज्ञानम् ४ इति ५ प्रोक्तम् ६ यत् ७ अतः ८ अन्यथा ९ अज्ञानम् १० ॥११॥ अ० वेदान्तशास्त्रको नित्य पढे सुने विचारे १ तत्वंपदोंके अर्थ जाननेमें सदा निष्ठा रखना २ यह ३ ज्ञान ४ यहांतक ५ कहा ६ सि० जो येभी साधनकहे उनको ज्ञान कहते हैं. इसजगे ज्ञानका अर्थ यह है कि सच्चिदानन्दस्वरूप जानाजावे जिसकरके उसको ज्ञान कहते हैं. ब्रह्मज्ञानके ये अन्तरंगसाधन हैं इसवास्ते उनकोभी ज्ञान कहा ❋ जो ७ इससे ८ उलटा है ९ सि० तिसको ❋ अज्ञान १० सि० कहते हैं ❋ अर्थात् जिसमें ये साधन नहीं वो अज्ञानी है. मानदंभादीको अज्ञानका कार्य होनेसे उनकोभी अज्ञानही कहते हैं १० ॥ ११ ॥

मू० ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परंब्रह्मनसत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

यत् १ ज्ञेयम् २ तत् ३ प्रवक्ष्यामि ४ यत् ५ ज्ञात्वा ६ अमृतम् ७ अश्नुते ८ अनादिमत् ९ परम् १० ब्रह्म ११ तत् १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ उच्यते १७ ॥ १२ ॥ अ० उ० क्षेत्रज्ञपरमानन्दस्वरूपब्रह्मात्माका लक्षण कहते हैं. जो १ सि० पूर्वोक्तसाधनोंकरके ❋ जाननेके योग्य २ तिसको ३ भलेप्रकार कहूंगा. ४ जिसको ५ जानकर ६ अमृतको ७ प्राप्त होता है. ८ अर्थात् जन्ममरणसे छूटकर सच्चिदानंदस्वरूपको प्राप्त होता है ७।८ सि० फलनिरूपणकरके स्वरूपका वर्णन करते हैं. ❋ अनादि ९ परेसेपरे १० बडोंसे बडा ११ सो १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ कहा जाता है. १७ तात्पर्य जो उसको सत् कहें तो असत् एक पदार्थ अर्थसे प्रतीत होता है, और मनवाणीका विषयभी प्रतीत होता है. जो जो पदार्थ मनवाणीके विषय हैं, सब अनित्य हैं. यह दोष ब्रह्ममें भी आता है. और इसबोलीसे अद्वैत सिद्ध

नहीं होता. और जो असत् कहें तो यह अनर्थ है. क्यों कि उसके सत्तासचोटीसे झूंटेपदार्थ सच्चे प्रतीत होते हैं. और जो कुछभी न कहें तो अज्ञानियोंका संसार कैसा निवृत्त हो. तात्पर्य वो ऐसा अचिन्त्यशक्तिमान् है कि वास्तव वो मनवाणीका विषय नहीं. परंतु उसके भक्त तो उसको निरूपण करते हैं ॥ १२ ॥

मू०सर्वतःपाणिपादंतत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतःश्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्यतिष्ठति ॥ १३ ॥

तत् १ सर्वतःपाणिपादम्२सर्वतोक्षिशिरोमुखम्३सर्वतः श्रुतिमत् ४ लोके ५ सर्वम् ६ आवृत्य ७ तिष्ठति ८ ॥ १३ ॥ अ० उ० अचिन्त्याद्भुतशक्ति ब्रह्मको निरूपण करते हैं. सो १ सि० ब्रह्म ऐसा है कि ❋ सवतर्फ हाथ पैर हैं जिसके २ सब तर्फ आंख सीर और मुख हैं जिसके ३ सवतर्फ कान हैं. जिसके ४ जगतमें ५ सबको ६व्याप्तकर ७ स्थित है. ८ अर्थात् सबप्राणियोंके अंतःकरणके वृत्तीमें प्राणादिके क्रियामें नखसे शिखापर्यन्त व्याप्त है. जिसको कूटस्थ कहते हैं. हस्तचरणादीसे जो क्रिया किई जाती है, यह उसीकी सत्ता है. आंख, कान नाक और इनसे क्रमसे जो देखा सुना और सूंघा जाता है यह उसीकी चैतन्यता है. अन्तःकरणमें जो सुख प्रतीत होता है यह उसी आनंदकी छाया है. जैसे दर्पणमें अपना मुख देखकर अपना ज्ञान होता है. ऐसेही अन्तःकरणके वृत्तीमें उसआनंदकी छाया देख वास्तव सच्चिदानंदका ज्ञान होता है. इसप्रकार वो विषय भी है ॥ १३ ॥

मू०सर्वेन्द्रियगुणाभासंसर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥
असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच ॥ १४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् १ सर्वेन्द्रियविवर्जितम् २ असक्तम् ३ सर्वभृत् ४ च ५ एव ६ निर्गुणम् ७ गुणभोक्तृ ८ च ९ ॥ १४ ॥

अ० सर्वइंद्रियोंके शब्दादिविषयोंमें विषयाकार होकर प्रतीत होता है. १ सि० और वास्तव ❋ सर्वइंद्रियोंकरके रहित २ सि० वास्तव ❋ असक्त ३ सि० हैं. परन्तु ❋ सबका आधार पालनेवाला ४।५।६ सि० कहा जाता है. वास्तव ❋ सत्वादिगुणोंकरके रहित ७ सि० है. परंतु ❋ गुणोंका भोक्ता ८।९ सि० प्रतीत होता है. विषयजन्यसुखदुःखादिका अनुभव करता हुवा प्रतीत होता है ❋ ॥ १४ ॥

मू० बहिरन्तश्चभूतानामचरंचरमेवच ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत् ॥१५॥

भूतानाम् १ अंतः २ बहिः ३ च ४ अचरम् ५ चरम् ६ एव ७ च ८ सूक्ष्मत्वात् ९ तत् १० अविज्ञेयम् ११ च १२ अंतिके १३ दूरस्थम् १४ च १५ तत् १६ ॥ १५ ॥ अ० भूतोंके १ भीतर २ और बाहर ३।४ सि० भी है, जैसी चांदनी सबजगे व्याप्त है. उपाधीके संबंधसे किसी किसी जगे दीख पडती है. कहीं कहीं नहीं दीखती इसीप्रकार ज्ञानचक्षुरहितपुरुषोंको नहीं प्रतीत होता है, ज्ञानियोंको प्रतीत होता है ❋ अचर ५ सि० भी है. और ❋ चर ६ भी ७।८ सि० है. जंगमोंकेसाथ संबंध होनेसे चर प्रतीत होता है. स्थावरोंके साथ संबंध होनेसे अचर प्रतीत होता है. या वो वास्तव अचर है ऐसा कहो ❋ सूक्ष्म होनेसे ९ सि० साकार प्रमेय नहीं इसहेतुसे ❋ सो १० नहीं जाननेके योग्य है. ११।१२ सि० बहिर्मुखस्थूलबुद्धिवालोंको ❋ समीप १३ सि० भी है ❋ और दूरस्थित है. १४।१५ सो १६ सि० क्षेत्रज्ञपरमात्मा जो उसको अपना आत्माही जानते हैं, कि क्षेत्रज्ञपरमानंदस्वरूप हमारा आत्माही है, आत्मासे पृथक् कोई पदार्थ नहीं, उनको समीप है. और जो बहिर्मुख विषयी उसको रूपादिमान्, वा बुद्ध्यादिका विषय अपनेसे पृथक् जानकर उसके प्राप्ती-

के लिये दोडधूप करते हैं, उनको कभी नहीं मिलेगा. जैसे मृग कस्तूरीके गंधके वास्ते भटकता फिरता रहता है, वेसेही अज्ञानी भटकते रहेंगे ❋ ॥ १५ ॥

मू० अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचास्थितम् ॥
भूतभर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥ १६ ॥

तत् १ ज्ञेयम् २ अविभक्तम् ३ च ४ भूतेषु ५ विभक्तम् ६ इव ७ च ८ स्थितम् ९ भूतभर्तृ १० च ११ ग्रसिष्णु १२ च १३ प्रभविष्णु १४ ॥ १६ ॥ अ० सो १ क्षेत्रज्ञ २ सि० वास्तव ❋ पृथक्पृथक् नहीं ३ और ४ भूतोंमें ५ पृथक्पृथक्वत् ६।७।८ स्थित ९ सि० है ❋ भूतोंका पालने वाला १० सि० स्थितिकालमें विष्णुरूपहोकर ❋ और ११ सि० प्रलयकालमें ❋ नाशकरनेवाला १२ सि० रुद्ररूपहोकर ❋ और १३ सि० उत्पत्तिकालमें ❋ उत्पत्तिकरने वाला १४ सि० ब्रह्मरूपहोकर ❋ तात्पर्य सो क्षेत्रज्ञ सब भूतोंमें एक है. उपाधीके सम्बंधसे पृथक्पृथक् प्रतीतहोता है, वास्तव सो निर्विकार है ॥ १६ ॥

मू० ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते ॥
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्यधिष्ठितम् ॥ १७ ॥

तत् १ ज्योतिषाम् २ अपि ३ ज्योतिः ४ तमसः ५ परम् ६ उच्यते ७ ज्ञानम् ८ ज्ञेयम् ९ ज्ञानगम्यम् १० सर्वस्य ११ हृदि १२ धिष्ठितम् १३ ॥ १७ ॥ अ० सो १ ज्योतीका २ भी ३ ज्योति ४ सि० है ❋ अर्थात् चन्द्रसूर्यादिकाभी प्रकाशक आत्माही है. इसी हेतुसे ❋ अज्ञानसेपरे ६ कहा है ७ सि० अज्ञानका कार्य बुद्ध्यादिका विषय नहीं. अज्ञानके कार्यसे जाननेमें नहीं आता है. वो अपने आप. ❋ ज्ञानस्वरूप है ८ सि० और अमानित्वादिसाधनोंकरके ❋ जाननेके योग्यहै, ९ तत्त्वज्ञानसेही जानाजाता है. १० सबके ११ हृदयमें १२ विराजमान है १३ ॥ १७ ॥

मू०इतिक्षेत्रंतथाज्ञानंज्ञेयंचोक्तंसमासतः ॥
मद्भक्तएतद्विज्ञायमद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

इति १ क्षेत्रम् २ तथा ३ ज्ञानम् ४ ज्ञेयम् ५ च ६ समासतः ७ उक्तम् ८ मद्भक्तः ९ एतत् १० विज्ञाय ११ मद्भावाय १२ उपपद्यते १३ ॥ १८ ॥ अ० यह १ क्षेत्र २ और ३ ज्ञान ४ और ज्ञेय ५। ६ संक्षेपकरके ७ सि० तुझसे ❋ कहा ८ मेरा भक्त ९ इसको १० जानकर ११ मेरे भावको १२ प्राप्तहोताहै. १३ तात्पर्य अमानित्वादिसाधनसम्पन्न,तत् त्वम् पदोंके अर्थको जानकर कृतार्थ होकर सच्चिदानन्द ऐसे अपने स्वरूपको प्राप्त होजाता है ॥ १८ ॥

मू०प्रकृतिंपुरुषंचैवविद्ध्यनादीउभावपि ॥
विकारांश्चगुणांश्चैवविद्धिप्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

प्रकृतिम् १ पुरुषम् २ च ३ एव ४ उभौ ५ आपि ६ अनादी ७ विद्धि ८ विकारान् ९ च १० गुणान् ११ च १२ एव १३ प्रकृतिसंभवान् १४ विद्धि १५ ॥ १९ ॥ अ० ईश्वरकी अचिन्त्यशक्तिमाया १ और सच्चिदानन्द ब्रह्मआत्मा २। ३ ये ४ दोनों ५ ही ६ अनादि ७ सि० हैं. यह ❋ जानतूं. ८ देहेन्द्रियादि ९ और सुखदुःखमोहादिको १०। ११। १२। १३ प्रकृतीसे उत्पन्न हुवा १४ जानतूं. १५ सि० यह सृष्टिप्रकार आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें भलेप्रकार लिखाहै ❋ ॥ १९ ॥

मू०कार्यकारणकर्तृत्वेहेतुःप्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषःसुखदुःखानांभोक्तृत्वेहेतुरुच्यते ॥ २० ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे १ हेतुः २ प्रकृतिः ३ उच्यते ४ सुखदुःखानाम् ५ भोक्तृत्वे ६ हेतुः ७ पुरुषः ८ उच्यते ९ ॥ २० ॥ अ०कार्यकारणके करनेमें १ अर्थात् शरीरादिके उत्पत्तीमें १ हेतु २ प्रकृ-

ति ३ कही है. ४ सुखदुःखोंके ५ भोगनेमें ६ हेतु ७ पुरुष ८ कहा है. ९ टी॰ अंतःकरणविशिष्टचैतन्यपुरुष भोक्ता कहाजाता है. यद्यपि प्रकृति जड है, उसको शरीरादिके उत्पत्तीमें केवल हेतु कहना बेजोग है, परन्तु चैतन्यके सम्बंधसे उसको जगत का उपादानकारण कहते हैं. और पुरुषनिर्विकार है, उसको सुखादिके भोगमें हेतु कहना बेजोग है, परन्तु प्रकृतिसम्बन्धसे वो भोक्ता प्रतीत होता है. जैसे चुम्बकके सन्निधीसे लोहा चेष्टा करता है, ऐसीही प्रकृतिपुरुषकी व्यवस्थाहै. और जैसे मित्रपुत्रादिके साथ स्नेहममताकरनेसे उनके सुखदुःखमें आपभी सुखदुःखका भोक्ता होजाता है. ऐसेही जीवपुरुष देहेन्द्रियादिके साथ अध्यास (आसक्ति) करके दुःखादिका भोक्ता प्रतीत होने लगताहै. वास्तव वो शुद्धपरमानन्दरूपहै २०

मू॰ पुरुषःप्रकृतिस्थोहिभुङ्क्तेप्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणंगुणसंगोस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

पुरुषः १ प्रकृतिस्थः २ हि ३ प्रकृतिजान् ४ गुणान् ५ भुंक्ते ६ सदसद्योनिजन्मसु ७ अस्य ८ कारणम् ९ गुणसंगः १० ॥ २१ ॥

अ॰ आत्मा १ देहादिके साथ तादात्म्याध्यासकरके २ ही ३ प्रकृतीसे उत्पन्न हूवे ४ सुखदुःखादिको ५ भोक्ता है. ६ सि॰ वास्तव अभोक्ता है ❋ देवतामनुष्यादियोनियोंके विषय जो इसका जन्म ७ इसका ८ कारण ९ गुणोंका संग १० सि॰ सतोगुणके सम्बन्धसे देवता, रजोगुणके संबधसे मनुष्य, तमोगुणके संबंधसे पशु, कहा जाता है ❋ ॥ २१ ॥

मू॰ उपद्रष्टानुमंताचभर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥
परमात्मेतिचाप्युक्तोदेहेस्मिन्पुरुषःपरः ॥ २२ ॥

अस्मिन् १ देहे २ पुरुषः ३ परः ४ उपद्रष्टा ५ अनुमन्ता ६ च ७ भर्ता ८ भोक्ता ९ महेश्वरः १० परमात्मा ११ इति १२ च १३ अपि

१४ उक्तः १५ ॥ २२॥ अ० उ० जो आत्मा है वोही परमात्मा है. और जिसको परमात्मा परमेश्वर कहते हैं वो यही आत्मा है. जीव-ब्रह्मकी एकता स्पष्ट श्रीव्रजराज इसश्लोकमें दिखाते हैं. इसदेहमें १।२ सि० जो ❋ जीव ३ सि० है. सोई ❋ परेसे परे ४ द्रष्टवत् द्रष्टा ५ सि० है. साक्षात्द्रष्टा नहीं क्योंकि दृश्यपदार्थ जब सच्चे हों, तब उसको द्रष्टाभी वास्तव कहाजावे. दृश्यपदार्थ आविद्यक है, इस वास्ते मायोपहित होनेसे उसको उपद्रष्टा कहते हैं और कर्मजन्य-सुखमें सुख मानकर आनन्दको प्राप्त होता है. वास्तव आप आनन्द-स्वरूप है. इसवास्ते उसको ❋ अनुमन्ता कहते हैं ६।७ सि० और मायोपहित हुवा यही सच्चिदानन्द अविद्योपहित सच्चिदानन्द जीवका ❋ पालन पोषण करनेवाला है. ८ सि० और वोही ❋ भोक्ता है ९ महेश्वर १० और परमात्मा यहभी ११।१२।१३।१४ कहा जाता है १५ तात्पर्य शुद्ध सच्चिदानन्दको मायाके संबंधसे ई-श्वर कहते हैं और अविद्याके संबंधसे जीव कहते हैं. जब दोनों उ-पाधि ब्रह्मज्ञानसे नष्ट होजातीहैं, फिर केवल शुद्धसच्चिदानन्द एकही रहजाता है. ॥ २२ ॥

मू० यएवंवेत्तिपुरुषंप्रकृतिंचगुणैःसह ॥
सर्वथावर्त्तमानोपिनसभूयोभिजायते ॥ २३ ॥

यः १ एवम् २ पुरुषम् ३ वेत्ति ४ प्रकृतिम् ५ च ६ गुणैः ७ सह ८ सः ९ सर्वथावर्तमानः १० अपि ११ भूयः १२ न १३ अभिजायते १४ ॥ २३ ॥ अ० जो १ इसप्रकार २ आत्माको ३ जानता है ४ और प्रकृतीको ५। ६ गुणोंके साथ ७। ८ सि० जानताहै ❋ अर्थात् प्रकृतीके स्वरूपको सत्त्वादिगुण और इन्द्रियार्थके सहित जो जानता है ७।८ सो ९ सर्वथा वर्तमान १० भी ११ फिर १२ नहीं १३ जन्मलेता है. १४ टी० वेदोक्तमार्गपर चलो, अथवा प्रारब्धव-

शात् जैसी उसकी इच्छा हो बरतो, मुक्तीमें सन्देह नहीं. यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें स्पष्टलिखी है ॥ २३ ॥

मू० ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मानमात्मना ॥
अन्येसांख्येनयोगेनकर्मयोगेनचापरे ॥ २४ ॥

केचित् १ आत्मनम् २ आत्मना ३ आत्मनि ४ ध्यानेन ५ पश्यंति ६ अन्ये ७ सांख्येन ८ योगेन ९ च १० अपरे ११ कर्मयोगेन १२ ॥ २४ ॥ अ० कोई १ आत्माको २ अन्तर्मुखनिर्मलअन्तःकरणकी वृत्ति करके ३ इसदेहमें ४ आत्माकारवृत्तीकरके ५ अर्थात् ॥ अहंब्रह्मास्मि ॥ इसका गंगावत् प्रवाह सदा बनारहे इसको ध्यान कहते हैं ५ सि० इसध्यान करके ❋ देखते हैं ६ कोई ७ सांख्ययोग करके ८ अर्थात् प्रकृतिपुरुषविवेकद्वारा, अथवा वेदान्तशास्त्रद्वारा ८ सि० और कोई ❋ अष्टांगयोगकरके ९।१० अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि, इनके द्वारा ९।१० सि० और ❋ कोई ११ कर्मयोगकरके. १२ सि० देखते हैं. यह क्रिया सबके साथ लगती है. कर्म दोप्रकारके हैं, गौण और मुख्य. स्नानश्राद्धादिबहिरंगकर्म गौण हैं. शमदमादि अंतरंगकर्म मुख्य हैं. मुख्यसाधनोंमें सबका अधिकार है ❋ ॥ २४ ॥

मू० अन्येत्वेवमजानंतःश्रुत्वान्येभ्यउपासते ॥
तेपिचातितरंत्येवमृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्ये १ तु २ एवम् ३ अजानन्तः ४ अन्येभ्यः ५ श्रुत्वा ६ उपासते ७ ते ८ अपि ९ च १० मृत्युम् ११ अतितरंति १२ एव १३ श्रुतिपरायणाः १४ ॥ २५ ॥ अ० और कोई १।२ इसप्रकार ३ सि० ध्यानरहित आत्माको ❋ नहीं जानते हुवे ४ सद्गुरुमहापुरुषोंसे ५ श्रवणकरके ६ उपासना करते हैं. ७ अर्थात् आत्माको साक्षात् अपरोक्ष तो नहीं जानते, परन्तु वेदशास्त्रसद्गुरुद्वारा यह सुना है, कि मैं

ब्रह्म हूं ॥ अहंब्रह्मास्मि यही जप करते हुवे आत्माकी उपासना करते हैं ७ वे ८ भी ९।१० संसारको ११ उलंघ जाते हैं १२ निश्चयसे. १३ सि० क्योंकि वे ❋ श्रवणपरायण हैं. १४ सि० कमसमझ यह कहा करते हैं. कि विनाब्रह्मके जाने आपको ब्रह्म कहना न चाहिये, इसमें पाप होता है. तुम्हारेमें ब्रह्मकी क्या शक्ति है. प्रतीत होता है कि येलोग या तो ईर्षाआमर्षसे कहते हैं, या भगवतवाक्यमें उनकी किंचित् श्रद्धा नहीं, या मूर्ख हैं. क्यों कि इसमंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं. कि अनजान ब्रह्मका उपासक जो अहंब्रह्मास्मि यह उपासना करता है. वो परमगतीको प्राप्त होता है. फ़िर न जानिये मूर्ख इसश्लोकका क्या अनर्थ करते हैं. जबकि अनजानअवस्थामें यह उपासना न कीई. तो ज्ञानावस्थामें वे क्यों करेंगे. उपासना साधन है. और वो फलके प्राप्तीके वास्ते करते हैं. मूर्ख साधनसे पहलेही फल चाहते हैं. यह कहते हैं, कि जब हमको ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष होगा तब हम अहंब्रह्मास्मि ऐसा कहेंगे. विचारना चाहिये कि विनासाधन कहीं फल मिलता है. कर्म और भेद उपासना ज्ञानके गौण साधन हैं. ज्ञाननिष्ठाका मुख्य साधन यही है कि ॥ अहंब्रह्मास्मि ॥ यह महावाक्यश्रवणकरके इसीका सदा जप किया करे वेदवाक्यभी इसमें प्रमाण हैं ❋ ॥ २५ ॥

मू० यावत्संजायतेकिंचित्सत्वंस्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धिभरतर्षभ ॥ २६ ॥

यावत् १ किंचित् २ सत्त्वम् ३ स्थावरजंगमम् ४ संजायते ५ भरतर्षभ ६ तत् ७ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् ८ विद्धि ९ ॥ २६ ॥ अ० जहांतक १ जो कुछ २ पदार्थ ३ स्थावरजंगम ४ उत्पन्न होता है. ५ हे अर्जुन ६ तिसको ७ क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संजोगसे ८ जान तूं ९ ॥ २६ ॥

मू० समंसर्वेषुभूतेषुतिष्ठंतंपरमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतंयःपश्यतिसपश्यति २७ ॥

सर्वेषु १ भूतेषु २ विनश्यत्सु ३ परमेश्वरम् ४ समम् ५ अविनश्यन्तम् ६ तिष्ठन्तम् ७ यः ८ पश्यति ९ सः १० पश्यति ११॥२७॥ अ० उ० विनाविवेक संसार है यह पीछे कहा. अब उसके निवृत्तीके लिये विवेकबुद्धि बताते हैं, कि ऐसे आत्माका स्वरूप जानना चाहिये: तब जानना कि अबज्ञान हुवा. सबभूतोंमें १।२सि० भूतोंका ❋नाश हुवे संतेभी ३ आत्माको ४ सम ५ अविनाशी ६ स्थित ७ जो ८ देखता है, ९ सो १० देखता है. ११ तात्पर्य आत्माको जो अविनाशी पूर्णब्रह्म परमेश्वर जानते हैं, ऐसा देहादिके नाशमेंभी उसको अविनाशी जानते हैं, वे आत्माको यथार्थ जानते हैं ॥ २७ ॥

मू०समंपश्यन्हिसर्वत्रसमवस्थितमीश्वरम् ॥
नहिनस्त्यात्मनात्मानंततोयातिपरांगतिम् २८

ईश्वरम् १ समवस्थितम् २ सर्वत्र ३ समम् ४ पश्यन् ५ हि ६ आत्मना ७ आत्मानम् ८ न ९ हिनस्ति १० ततः ११ पराम् १२ गतिम् १३ याति १४॥२८॥ ईश्वरको १ निश्चल २ सर्वत्र ३ समदेखता हुवा ४।५।६ आत्माकरके ७ आत्माको ८ नहीं ९ मारता है. १० फिर ११ परमगतीको १२।१३ प्राप्त होता है. १४ तात्पर्य जो ईश्वरको या जीवको विकारवान् ऐसा विषम देखता है, सो भेदवादी अपनेआप अपना नाश करता है. और ईश्वरकोभी आत्मासे जूदा समझकर परिच्छन्न अल्पप्रमेय करता है, और आत्माकोभी. इस हेतुसे महाहत्यामें आत्महत्यामें जो पाप होता है सो पाप भेदवादीको लगता है. इसी अर्थको व्यतिरेकमुखकरके भगवानने इसमें कहा है. अर्थात् जो आत्माको सर्वत्रईश्वर ऐसा देखता है, सो आत्महत्यारा नहीं. जो आत्माको विषमप्रमेय अल्प देखता है वो आत्महा है. इत्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

मू०प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥
यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥ २९ ॥

सर्वशः १ क्रियमाणानि २ कर्माणि ३ प्रकृत्या ४ एव ५ च ६ यः ७ पश्यति ८ तथा ९ आत्मानं १० अकर्तारम् ११ सः १२ पश्यति १३ ॥ २९ ॥ अ० सबप्रकार १ क्रियमाण २ कर्मोंको ३ प्रकृतीकरके ४ ही ५।६ जो ७ देखता है, ८ तैसेही ९ आत्माको १० अकर्ता ११ वो १२ देखता है. १३ तात्पर्य बुरे भले सबकर्म शरीर, इंद्रिय, अंतःकरण, इन करके किये जाते हैं. आत्मा अकर्ता है, इसप्रकार जो आत्माको अकर्ता देखता है वोही आत्माको भले प्रकार पहचानता है ॥ २९ ॥

मू० यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
ततएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेसदा ॥ ३० ॥

यदा १ भूतपृथग्भावम् २ एकस्थम् ३ अनुपश्यति ४ ततः ५ एव ६ च ७ विस्तारम् ८ तदा ९ ब्रह्म १० सम्पद्यते ११ ॥ ३० ॥ जिसकालमें १ भूतोंके पृथग्भावको २ आत्माके विषय ३ देखता है, ४ और तिससेही ५।६।७ विस्तारको. ८ तिसकालमें ९ ब्रह्मको १० प्राप्त होता है. ११ तात्पर्य आपने अज्ञानसेही सब जगद्विस्तार प्रतीत होता है. और जब आत्माकारवृत्ति होती है, उसकालमें सबजगत् अत्यंत अभावको प्राप्त हो जाता है. एक जीववादको जो जानते हैं, वे इसबातको समझ सक्ते हैं, कि अपने अज्ञानका नाश हुवेसे समस्त जगतका अभाव होजाता है ॥ ३० ॥

मू० आनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥
शरीरस्थोपिकौंतेयनकरोतिनलिप्यते ॥ ३१ ॥

कौन्तेय १ अयम् २ परमात्मा ३ शरीरस्थः ४ अपि ५ अनादित्वात् ६ निर्गुणत्वात् ७ अव्ययः ८ न ९ करोति १० न ११ लिप्यते १२ ॥ ३१ ॥ अ० हेअर्जुन १ यह २ परमात्मा ३ शरीरमें स्थित ४ भी ५ अनादि होनेसे, ६ निर्गुण होनेसे ७ निर्विकार ८

सि° है. ❀ न ९ करता है. १० न ११ लिपायमान होता है. १२ तात्पर्य देहादिके क्रियामें आत्मा कर्ता नहीं, और कर्मोंके न करनेसे अज्ञानीवत् पापके साथ स्पर्श नहीं करता ॥ ३१ ॥

मू°यथासर्वगतंसौक्ष्म्यादाकाशंनोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितोदेहेतथात्मानोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

यथा १ आकाशम् २ सर्वगतम् ३ सौक्ष्म्यात् ४ न ५ उपलिप्यते ६ तथा ७ आत्मा ८ सर्वत्र ९ देहे १० स्थितः ११ न १२ उपलिप्यते १३ ॥ ३२ ॥ अ° जैसा १ आकाश २ सबजगे व्याप्त है, ३ सूक्ष्म होनेसे ४ सि° किसीजगे ❀ नहीं ५ लिपायमान होता है ६ तैसा ७ आत्मा ८ सबजगे ९ देहमें १० स्थित है. ११ सि° कर्मोंके साथ और कर्मोंके फलकेसाथ. ❀ नहीं १२ लिपायमान होता है १३ ॥ ३२ ॥

मू°यथाप्रकाशयत्येकःकृत्स्नंलोकमिमंरविः ॥
क्षेत्रंक्षेत्रीतथाकृत्स्नंप्रकाशयतिभारत ॥ ३३ ॥

यथा १ एकः २ रविः ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ लोकम् ६ प्रकाशयति ७ तथा ८ क्षत्री ९ कृत्स्नम् १० क्षेत्रम् ११ प्रकाशयति १२ भारत १३ ॥ ३३ ॥ अ° जैसा एक १।२ सूर्य ३ इस ४ संपूर्ण ५ लोकको ६ प्रकाशितकररहा है. ७ तैसेही ८ क्षेत्रज्ञ ९ समस्तक्षेत्रको १० प्रकाशितकररहा है. ११ तात्पर्य जो ज्ञानानंद देहमें प्रतीत होता है, सब उसीज्ञानानंदकी छाया है ॥ ३३ ॥

मू°क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरंज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षंचयेविदुर्यांतितेपरम् ॥ ३४ ॥

ये १ एवम् २ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ३ अंतरम् ४ ज्ञानचक्षुषा ५ भूतप्रकृतिमोक्षम् ६ च ७ विदुः ८ ते ९ परम् १० यान्ति ११ ॥ ३४ ॥ अ° जो १ इसप्रकार २ सि° पूर्वोक्तरीतिकरके ❀ क्षेत्रक्षेत्रज्ञका ३

भेद ४ ज्ञानचक्षूकरके ५ सि० देखते हैं. और * भूतोंकी जो प्रकृतिध्यानविवेकादि, तिनके सकाशसे मोक्षको ६।७ जानते हैं. ८ वे ९ परमानंदस्वरूपआत्माको १० सि० प्राप्तवत् *प्राप्त होते हैं. ११ तात्पर्य बंधका हेतु भी प्रकृति है. और मोक्षमेंभी हेतु प्रकृति है. तमोगुणरजोगुणकेसाथ संबंध करनेसे बंधको प्राप्त होता है सतोगुणकेसाथ संबंध करनेसे मोक्षको प्राप्त होता है. इसी अर्थको चतुर्दशाध्यायमें श्रीभगवान् स्पष्ट निरूपण करेंगे. ३४

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चौदहवें अध्यायका प्रारम्भ हुवा ॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ परंभूयःप्रवक्ष्यामिज्ञानानांज्ञानमुत्तमम् ॥ यज्ज्ञात्वामुनयःसर्वे परांसिद्धिमितोगताः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच. भूयः १ ज्ञानानाम् २ उत्तमम् ३ ज्ञानम् ४ परम् ५ प्रवक्ष्यामि ६ यत् ७ ज्ञात्वा ८ सर्वे ९ मुनयः १० पराम् ११ सिद्धिम् १२ इतः १३ गताः १४ ॥ १ ॥ अ० उ० सतोगुणके बढानेसे, रजोगुण और तमोगुण कमकरनेसे ज्ञानद्वारा परमानन्दकी प्राप्ति होती है इसवास्ते इसअध्यायमें सत्वादीका भेद कहते हैं. हेअर्जुन! फिर १ सि० भी * ज्ञानोंमें २ सि० जो * उत्तम ज्ञान ३।४ परमार्थनिष्ठ ५ तिसको मैं कहूंगा ६ सि० इसअध्यायमें तुझसे. * जिसको ७ जानकर ८ सबमुनीश्वर ९।१० परमसिद्धीको ११।१२ इसदेहसे पीछे १३ प्राप्तहुवे. १४ तात्पर्य ज्ञान के प्रकारका है. कर्मउपासनादिका अर्थ जानाजाता है जिनज्ञानकरके उनकोभी ज्ञानकहतेहैं. और आत्माका परमानन्दपरमस्वरूप साक्षा-

त् (अपरोक्ष) होता है जिसज्ञानकरके. एक यह उत्तम आत्मज्ञान हैं, सब ज्ञानोंमें. आत्मज्ञान क्यों उत्तम हैं वह साक्षात् मुक्तीका मुख्य हेतु है और परब्रह्मकी निष्ठा प्राप्त करनेवाला है. इसीज्ञानकरके वहुत साधुमहात्मा स्थूलदेहको त्यागकर परमानन्दस्वरूपआत्माको प्राप्त हुवे हैं. हे अर्जुन! तूं मेरा प्यारा है, इसवास्ते यह उत्तम ज्ञान फिरभी तुझसे कहूंगा. यद्यपि पहले कहा है.परन्तु अब अन्य रीतिसे कहूंगा, वास्ते शीघ्र समझमें आनेके ॥ १ ॥

मू०इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥
सर्गेपिनोपजायंतेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ उपाश्रित्य ३ मम ४ साधर्म्यम् ५ आगताः ६ सर्गे ७ अपि ८ न ९ उपजायन्ते १० प्रलये ११ च १२ न १३ व्यथंति १४ ॥ २ ॥ अ० इस १ ज्ञानका २ आश्रयकरके ३ अर्थात् ये जो ज्ञान साधनसहित इस अध्यायमें कहते हैं तिसका अनुष्ठानकरके ३ मेरे स्वरूपको ४।५ प्राप्त हुवे. ६ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप हुवे. ६ सृष्टिसमय ७ भी ८ अर्थात् जब यह जगत्प्रलयहोकर फिर उत्पन्न होगा उससमयभी ८ नहीं ९ उत्पन्न होंगे. १० तात्पर्य मायासंबंधी स्थूलादिदेहोंको नहीं प्राप्त होंगे. क्योंकि मायाके संबंधसे दुःख होता है. मायाका ज्ञानसे नाश होजाता है ॥ २ ॥

मू०ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम् ॥
संभवःसर्वभूतानांततोभवतिभारत ॥ ३ ॥

मम १ योनिः २ महद्ब्रह्म ३ तस्मिन् ४ गर्भम् ५ दधामि ६ अहम् ७ भारत ८ ततः ९ सर्वभूतानाम् १० सम्भवः ११ भवति १२ ॥ ३ ॥ अ० उ० श्रोताको सन्मुख करके सोई ज्ञान कहते हैं मेरी १ योनि याने बीज धारणकरनेका स्थान २ अर्थात् सबभूतोंका कारण २ प्रकृति (माया) ३ तिसमें ४ अर्थात् उसत्रिगुणात्मिकामा-

यामें ४ चिदाभासको ५ धारणकरता हूं मैं. ६।७ हे अर्जुन ८मायोपहितब्रह्मसे ९ सबभूतोंका १० आविर्भाव ११ होता है. १२ अर्थात् मायामें जब सच्चिदानन्दकी छायावत् छाया पडती है, तब सबभूत (सूक्ष्मस्थूल) प्रकट होते हैं. १२ तात्पर्य प्रभु जगतके आभिन्ननिमित्तोपादानकारण हैं. नहीं है भिन्न निमित्त और उपादानकारण जिन्होंसे ॥ ३ ॥

मू० सर्वयोनिषुकौंतेयमूर्तयः संभवंतिया: ॥
तासांब्रह्ममहद्योनिरहंबीजप्रदःपिता ॥ ४ ॥

कौन्तेय १ सर्वयोनिषु २ याः ३ मूर्तयः ४ संभवन्ति ५ तासाम् ६ योनिः ७ महत् ८ ब्रह्म ९ अहम् १० बीजप्रदः ११ पिता १२ ॥४॥
अ० हे अर्जुन १ सबभूतोंमें २ जो३मूर्ति ४ उत्पन्नहोती हैं ५ तिनकी ६ योनि ७ प्रकृति ८।९ सि० है. और ❋ मैं १० बीजदेनेवला ११ पिता. १२ तात्पर्य जोजो मूर्ति ब्रह्माजीसे ले चीटीपर्यन्ता (जंगमस्थावर) जिसजिसजगे उत्पन्नहोती हैं, तिनकी प्रकृति उपादानकारण है, ईश्वर निमित्तकारण हैं ॥ ४ ॥

मू०सत्त्वंरजस्तमइतिगुणाःप्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंतिमहाबाहोदेहेदेहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

सत्वम् १ रजः २ तमः ३ इति ४ गुणाः ५ प्रकृतिसंभवाः ६ महाबाहो ७ देहे ८ अव्ययम् ९ देहिनम् १० निबध्नन्ति ११ ॥ ५ ॥
अ० उ० सत्वादिगुणोंने आत्माको बन्धनकर रक्खा है, यह कहते हैं. सत्व १ रज २ तम ३ यह ४ गुण ५ प्रकृतीसे प्रकट होते हैं. ६ हे अर्जुन ७ सि० इस ❋ देहमें ८ निर्विकार ९ सि० ऐसे ❋ जीवको १० बंधन करते हैं. ११ तात्पर्य जीवके स्वरूपको भुला देते हैं. आनन्दको अपनेसे जूदा पदार्थजन्य जानकर जीव भ्रान्त होजाता है. गुणोंके संबंधसे अपने आनंदस्वरूपको भूलजाता है ॥ ५ ॥

मू०तत्रसत्वंनिर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेनबध्नातिज्ञानसंगेनचानघ ॥ ६ ॥

अनघ १ तत्र २ सत्वम् ३ निर्मलत्वात् ४ प्रकाशकम् ५ अनामयम् ६ सुखसंगेन ७ ज्ञानसंगेन ८ च ९ बध्नाति १० ॥ ६ ॥ अ० उ० सतोगुणका लक्षण और बंधनप्रकार कहते हैं. हे अर्जुन १ तीनों गुणोंमें २ सतोगुण ३ निर्मल होनेसे ४ प्रकाशरूप ५ शान्तरूप ६ सि० है ❋ सुखकेसाथ ७ और ज्ञानके साथ ८।९ बंधन करता है १० सि० आत्माको सत्वगुण. ❋ तात्पर्य सुख, और ज्ञान, ये दोनों अंतःकरणकी वृत्ति है, वे मिथ्या (अनात्मा) मायाका कार्य हैं. मैं सुखी मैं ज्ञानी यह समझकर जीव वृथा भ्रान्तीमें फँसता है. जिसकालमें सत्वगुण तिरोधान हो जाता है तमोगुण और रजोगुण प्रकट होजाते हैं, तब यह ज्ञानसुख भी जाता रहता है. दुःखशोकादिमें फँस जाता है ॥ ६ ॥

मू०रजोरागात्मकंविद्धितृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नातिकौन्तेयकर्मसंगेनदेहिनम् ॥ ७ ॥

कौन्तेय १ रजः २ रागात्मकम् ३ विद्धि ४ तृष्णासंगसमुद्भवम् ५ तत् ६ देहिनम् ७ कर्मसंगेन ८ निबध्नाति ९ ॥ ७ ॥ अ० उ० रजोगुणका लक्षण, और बन्धनप्रकार कहते हैं. हेअर्जुन १ रजोगुणको २ रागात्मक ३ जान तूं. ४ अर्थात् जिससमय स्त्रीमित्रादिपदार्थोंका श्रवण, स्मरण, और दर्शन इत्यादि करके अंतःकरणके वृत्तीमें स्नेह उत्पन्न होता है, और मनरंजन होने लगता है, इसीको रागात्मक कहते हैं. और रजोगुणका यही स्वरूप है. ३। ४ तृष्णासंगकी उत्पत्ति है जिससे ५ अर्थात् जब रजोगुणका आविर्भाव होताहै, तब जोजो पदार्थ देखनेमें, या सुननेमें आता है, उनसबमें अभिलाष होने लगता है. मनमें ये संकल्पविकल्प उत्पन्न होने लगते हैं. कि अमुकपदार्थ जो हमको मिलेगा, तो, उसमें हमको यहयह आनन्द मिलेगा

जब वो पदार्थ मिलजाता है, तब उनमें आसक्ति होजाती है उसके वियोगमें दुःख होताहै ऐसेऐसे रजोगुणके कार्यसे रजोगुणका ज्ञान होता है ५ सो ६ सि० रजोगुण ❋ जीवको ७ कर्मोंमें आसक्त करके ८ बंधन करता है. ९ सि० वेदोक्तकर्मोंमें और उनके फलमें फँस जाता है जीव. रजोगुणज्ञानके सन्मुख नहीं होने देता है ❋ ॥ ७ ॥

मू० तमस्त्वज्ञानजंविद्धिमोहनंसर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नातिभारत ॥ ८ ॥

भारत १ तमः २ तु ३ अज्ञानजम् ४ सर्वदेहिनाम् ५ मोहनम् ६ विद्धि ७ तत् ८ प्रमादालस्यनिद्राभिः ९ निबध्नाति १० ॥ ८ ॥ अ० उ० तमोगुणका लक्षण और बंधनप्रकार कहते हैं. हे अर्जुन १ तमोगुणको २ । ३ आवरणशक्तिप्रधान ४ सब जीवोंको ५ भ्रान्त करनेवाला ६ जान तूं. ७ सो ८ निद्राआलस्यप्रमादकरके ९ बंधन करता है १० ॥ ८ ॥

मू० सत्वंसुखेसंजयतिरजःकर्मणिभारत ॥
ज्ञानमावृत्यतुतमःप्रमादेसंजयत्युत ॥ ९ ॥

भारत १ सत्वम् २ सुखे ३ संजयाति ४ रजः ५ कर्माणि ६ तमः ७ तु ८ ज्ञानम् ९ आवृत्य १० प्रमादे ११ संजयाति १२ उत १३ ॥ ९ ॥ अ० उ० सत्वादि अपने अपने आविर्भावमें जो करते हैं उनका सामर्थ्य दिखाते हैं. हे अर्जुन १ सतोगुण २ सुखमें ३ लगाता है. ४ अर्थात् जिससमय सत्वगुणका आविर्भाव होता है, उससमय वो सुखके सन्मुखकरता है. ४ सि० और ❋ रजोगुण ५ कर्मोंमें ६ सि० लगाता है ❋ और तमोगुण ७ । ८ ज्ञानको ९ ढाँककर १० प्रमादमें ११ जोडता है. १२ आनंदामृतवर्षिणीके पाँचवे अध्यायमें ये सब अर्थ स्पष्ट लिखा है ॥ ९ ॥

मू० रजस्तमश्चाभिभूयसत्वंभवतिभारत ॥
रजःसत्वंतमश्चैवतमःसत्वंरजस्तथा ॥ १० ॥

रजः १ तमः २ च ३ अभिभूय ४ सत्वम् ५ भवति ६ भारत ७ सत्वम् ८ तमः ९ च १० एव ११ रजः १२ सत्वम् १३ रजः १४ तथा १५ तमः १६ ॥ १० ॥ अ० उ० एक गुण प्रकट रहताहै, दोनोंका तिरोभाव रहताहै. यह नियम है सोई इसमंत्रमें कहते हैं. रज और तमको २ । ३ दबाकर ४ सत्व ५ प्रकट होता है. ६ हेअर्जुन ७ सत्व ८ और तमको ९।१०।११ सि० दबाकर ❋ रजोगुण १२ सि० प्रकट होता है ❋ और सत्वरजको १३।१४।१५ सि० दबाकर ❋ तमोगुण १६ सि० प्रकट होता, है. ❋ तात्पर्य जिससमय जो गुण प्रकट होगा, उससमय वैसीही बात प्यारी लगेगी. दूसरेगुणका कार्य उससमय अच्छा नहीं लगेगा जैसे रजोगुणके आविर्भावमें नाच, तमाशा, स्त्री, और शब्दादि प्रिय लगते हैं, निद्रा, आलस्य, शम, दम इत्यादि अच्छे नहीं लगते. सतोगुणके आविर्भावमें स्त्र्यादिपदार्थ अच्छे नहीं लगते, सत्यदयासंतोषादि अच्छे लगते हैं ॥ १० ॥

मू० सर्वद्वारेषुदेहेस्मिन्प्रकाशउपजायते ॥
ज्ञानंयदातदाविद्याद्विवृद्धंसत्वमित्युत ॥ ११ ॥

यदा १ अस्मिन् २ देहे ३ सर्वद्वारेषु ४ प्रकाशः ५ ज्ञानम् ६ उपजायते ७ तदा ८ सत्वम् ९ विवृद्धम् १० विद्यात् ११ इति १२ उत १३ ॥ ११ ॥ अ० उ० जब शरीरमें सतोगुण बढा रहता है उसका लक्षण यह है. जिसकालमें १ इसदेहके विषय २।३ सर्वद्वारोंमें याने श्रोत्रादिमें ४ प्रकाश ५ ज्ञानात्मक ६ उत्पन्न होता है ७ तिसकालमें ८ सतोगुण ९ बढा हुवा १० जान. ११ इत्यभिप्रायः १२।१३ ॥ ११ ॥

मू०लोभःप्रवृत्तिरारंभःकर्मणामशमःस्पृहा ॥
रजस्येतानिजायंतेविवृद्धेभरतर्षभ ॥ १२ ॥

कुरुनन्दन १ रजसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ लोभः ६ प्रवृत्तिः ७ आरंभः ८ कर्मणाम् ९ अशमः १० स्पृहा ११ ॥ १२ ॥

अ० उ० जब शरीरमें रजोगुण बढा रहता है, उसका लक्षण यह है हे अर्जुन १ रजोगुण २ बढनेसे ३ ये ४ सि० लोभादि ❋ उत्पन्न होते हैं ५ ज्योंज्यों धनादिकी प्राप्ती हो त्योंत्यों शिवाय अभिलाप बढ़ता है. ६ धनादिकी प्राप्तीकेलिये ऐसे तन्मय होकर प्रयत्न करते रहना कि, स्वप्नमें भी चित्तशान्त नहो ७ मंदिर उपवनादिका जो प्रारम्भ कररक्खा है सोतो पूरा हुवा नहीं. दूसरा और प्रारंभ कर दिया ८ कर्मोंका ९ अशम १० अर्थात् यह कामकरके वो काम करूंगा. १० बुरा भला कुछ न स्मरण करना जैसे बने यही इच्छा रखना किसीप्रकार धनादि प्राप्त हों. ११ ॥ १२ ॥

मू०अप्रकाशोप्रवृत्तिश्चप्रमादोमोहएवच ॥
तमस्येतानिजायन्तेविवृद्धेकुरुनन्दन ॥ १३ ॥

कुरुनन्दन १ तमसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ अप्रकाशः ६ अप्रवृत्तिः ७ च ८ प्रमादः ९ मोहः १० एव ११ च १२ ॥ १३ ॥

अ० उ० जब शरीरमें तमोगुण बढा रहता है उसका लक्षण यहहै हे अर्जुन १ तमोगुण बढनेमें २।३ ये ४ सि० अप्रकाशादि ❋ उत्पन्न होतेहैं ५ अविवेक ६ और इसलोकपरलोकके निमित्त प्रयत्न न करना ७।८ सि० और करना तो यह करनाकि ❋ द्यूतादिखेल खेलना ९ और अपने उलटे समझसे ऐसा काम करनाकि उसका न इसलोकमें फल, नपरलोकमें. जैसा क्रोधादि षड्वैरियोंके प्रेरणासे अन्यके हानीके लिये यत्न करना किसीको बुरा कहना, इत्यादि १० । ११ । १२ ॥ १३ ॥

मू०यदासत्त्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभृत् ॥
तदोत्तमविदांलोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

सत्वे १ प्रवृद्धे २ तु ३ यदा ४ देहभृत् ५ प्रलयं ६ याति ७ तदा ८ अमलान् ९ उत्तमविदाम् १० लोकान् ११ प्रतिपद्यते १२ ॥ १४ ॥ अ० उ० मरणसमय जो गुण बढा होगा उसका फल वह होगा कि, जो अब दोश्लोकोंमें कहते हैं. सतोगुण बढे हुवेसन्ते १।२। ३ जिसकालमें ४ जीव ५ मृत्यूको ६ प्राप्त होता है, ७ तिसफलमें ८ निर्मल उपासकोंके ९ । १० लोकोंको ११ प्राप्त होता है. १२ तात्पर्य हिरण्यगर्भादिके उपासक जिन निर्मल लोकोंमें जाते हैं, उसीलोकको वो प्राप्त होता है, कि जिसका अन्तकालमें सतोगुण बढा रहे ॥ १४ ॥

मू०रजसिप्रलयंगत्वाकर्मसंगिषुजायते ॥
तथाप्रलीनस्तमसिमूढयोनिषुजायते ॥ १५ ॥

रजसि १ प्रलयम् २ गत्वा ३ कर्मसंगिषु ४ जायते ५ तथा ६ तमसि ७ प्रलीनः ८ मूढयोनिषु ९ जायते १० ॥ १५॥ अ० रजोगुणमें १ मृत्यूको २ प्राप्त होकर ३ कर्मसंगीमनुष्योंमें ४ उत्पत्ति होती है. ५ तैसेही ६ तमोगुणमें ७ मराहुवा ८ पशुपक्षी इत्यादिमूढयोनियोंमें ९ जन्म लेता है १० ॥ १५ ॥

मू०कर्मणःसुकृतस्याहुःसात्त्विकंनिर्मलंफलम् ॥
रजसस्तुफलंदुःखमज्ञानंतमसःफलम् ॥ १६ ॥

सुकृतस्य १ कर्मणः २ निर्मलम् ३ सात्विकम् ४ फलम् ५ आहुः ६ रजसः ७ तु ८ फलम् ९ दुःखम् १० तमसः ११ फलं १२ अज्ञानम् १३ ॥ १६ ॥ अ० उ० इसदेहमें अपने आप विनायत्न सत्त्वादि जिसहेतुसे वर्तते हैं, उसका कारण यह है. सतोगुणीकर्मका १।२ सि० कि जिसका लक्षण अठारहवें अध्यायमें कहेंगे. अर्थात्

पिछले जन्ममें जो सतोगुणीकर्मकिये हैं उन शुभकर्मोंका ❋ निर्मल ३ सतोगुण ४ फल ५ कहते हैं. ६ और रजोगुणीका फल ७।८।९ दुःख १० सि० है ❋ तमोगुणका फल ११।१२ अज्ञान १३ सि० है ❋ तात्पर्य कोई प्रयत्नकरके सतोगुणको वढाते हैं किसीके स्वाभाविकशमदमादि देखनेमें आते हैं, सो पिछले सतोगुणीकर्मका फल समझना चाहिये. इसप्रकार रजोगुणतमोगुणकी व्यवस्था है॥१६॥

मू०सत्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥
प्रमादमोहौतमसोभवतोज्ञानमेवच ॥ १७॥

सत्वात् १ ज्ञानम् २ संजायते ३ रजसः ४ लोभः ५ एव ६ च ७ प्रमादमोहौ ८ तमसः ९ भवतः १० अज्ञानम् ११ एव १२ च १३ ॥ १७ ॥ अ० सतोगुणसे १ ज्ञान २ उत्पन्न होता है ३ रजोगुणसे ४ लोभ ५ उत्पन्न होता है६।७प्रमादमोह ८ तमोगुणसे ९सि० उत्पन्न ❋ होते हैं. १० और अज्ञानभी ११।१२।१३ सि० तमोगुणसे होता है ❋तात्पर्य ज्ञान, लोभ, अज्ञान, प्रमाद, मोह, ये उपलक्षण हैं ज्ञानादि कहनेमें सत्वादि तीनोंगुणोंका समस्तकार्य समझलेना चाहिये ॥ १७ ॥

मू०ऊर्ध्वंगच्छंतिसत्वस्थामध्येतिष्ठंतिराजसाः॥
जघन्यगुणवृत्तिस्थाअधोगच्छंतितामसाः ॥ १८॥

सत्वस्थाः १ ऊर्ध्वम् २ गच्छन्ति ३ राजसाः ४ मध्ये ५ तिष्ठंति ६ जघन्यगुणवृत्तस्थाः ७ तामसाः ८ अधः ९ गच्छन्ति १० ॥१८॥ अ० उ० मरकर सत्वादिगुणोंके तारतम्यताके लेखेसे फल होता है. यह इसमंत्रमें कहते हैं. सतोगुणी १ ऊपरकेलोकोंको २ प्राप्त होते हैं, ३ रजोगुणी ४ मध्यमें ५ स्थितरहते हैं, ६ निकृष्टगुणमें वर्तनेवाले ७ तमोगुणी ८ अधः याने नीचेको ९ प्राप्त होते हैं. १०

सि° इसजगे तारतम्यताका जो विचार है सो आनंदामृतवर्षिणीके पंचमाध्यायमें लिखा है. ❋ ॥ १८ ॥

मू° नान्यंगुणेभ्यःकर्तारंयदाद्रष्टानुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्चपरंवेत्तिमद्भावंसोधिगच्छति ॥ १९ ॥

यदा १ द्रष्टा २ गुणेभ्यः ३ अन्यम् ४ कर्तारम् ५ न ६ अनुपश्यति ७ गुणेभ्यः ८ च ९ परम् १० वेत्ति ११ सः १२ मद्भावम् १३ अधिगच्छति १४ ॥ १९ ॥ अ° उ° गुणोंके संबंधमें संसार है, यह बात पीछे कही. अब यह कहते हैं कि, विवेकी गुणोंसे पृथक् है. जिसकालमें १ विवेकी २ गुणोंसे ३ पृथक् ४ कर्ताको ५ नहीं ६ देखता है. ७ अर्थात् गुणही कर्ता है. आत्मासाक्षीमात्र है, ७ सि° जो ❋ गुणोंसे ८।९ परे १० सि° आत्माको ❋ जानता है ११ सो १२ मेरे भावको १३ प्राप्त होता है. १४ अर्थात् शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपको प्राप्त होता है. १३।१४ ॥ १९ ॥

मू° गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते ॥ २० ॥

देही १ समुद्भवान् २ एतान् ३ त्रीन् ४ गुणान् ५ अतीत्य ६ जन्ममृत्युजरादुःखैः ७ विमुक्तः ८ अमृतम् ९ अश्नुते १० ॥ २० ॥ अ° जीव १ देहाकारको प्राप्त हुए २ इन ३ तीन ४ गुणोंको ५ उलंघकर ६ जन्ममृत्युजराव्याधिसे ७ छूटा हुवा ८ नित्यानंदस्वरूपको ९ प्राप्त होता है. १० तात्पर्य यही तीनों गुण देहाकार होरहे हैं. इनके साथ ममता, संग, और अध्यास, ये छोड देना, यही इनका उलंघन करना है, और जन्ममृत्युजराव्याधि इनकेही संबंधसे होते हैं. ये और इनके संबंधमें अपने शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपको भूल जाता है, इनके त्यागमें प्रयत्न है, परमानंदके प्राप्तिमें कुछ यत्न नहीं ॥ २० ॥

मू०अर्जुनउवाच ॥ कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवतिप्रभो ॥ किमाचारःकथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

अर्जुनःउवाच. प्रभो १ कैः २ लिंगैः ३ एतान् ४ त्रीन् ५ गुणान् ६ अतीतः ७ भवति ८ किमाचारः ९ कथम् १० च ११ एतान् १२ त्रीन् १३ गुणान् १४ अतिवर्तते १५ ॥ २१ ॥ अ० अर्जुन प्रश्नकरता है, कि हे समर्थ १ किनचिह्नकरके २।३ इनतीनगुणोंसे ४।५।६ अतीत७होता है. ८ सि० यह लक्षणप्रश्नहै ❋ अर्थात् कैसे प्रतीत हो क अमुकगुणातीत है, वा मैं गुणातीत हूं. वे कौनसे लक्षण है. और ६।७।८ क्या आचार है उसका ९ अर्थात् उसका व्यवहार, चाल, चलन, कैसी होती है. ९ सि० यह आचारप्रश्न है ❋ और किसप्रकार १०। ११ इनतीनगुणोंका १२।१३।१४ उलंघन करता है. १५ सि० यह उपायप्रश्न है ❋ अर्थात् वो क्या साधन है कि, जिसकरके पुरुष गुणातीत होजावे ॥ २१ ॥

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकाशंचप्रवृत्तिंचमोहमेवचपांडव ॥ नद्वेष्टिसंप्रवृत्तानिनानेवृत्तानिकांक्षात ॥ २२ ॥

श्रीभगवान् उवाच. प्रकाशम् १ च २ प्रवृत्तिम् ३ च ४ मोहम् ५ एव ६ ज्ञात ७ पांडव ८ संप्रवृत्तानि ९ न १० द्वेष्टि ११ निवृत्तानि १२ न १३ कांक्षति १४ ॥ २२ ॥ अ० उ० द्वितीयाध्यायमेंभी अर्जुननें यही प्रश्न कियाथा, और उसका अन्यरीतिकरके श्रीमहाराजनें उत्तरभी दियाथा. अब श्रीमहाराजनें यह जाना कि, उसरीतीसे अर्जुनके समझमें नहीं आया. अब अन्यरीतिसे कहना चाहिये. इसवास्ते इसबातको संक्षेपकरके अन्यरीतिसे कहते हैं, जिससे जलदी समझमें आजावे. ऐसे करुणाकरको छोड जो अन्यउपायसे मोक्ष

चाहते हैं, उनके अन्तःकरणमें रजोगुणी तमोगुणी वृति बढी हुई है. प्रकाश १ और प्रवृत्ति २।३ और मोह ४।५।६।७ सि० ये तीन तीनोंगुणोंके कार्य हैं. ये तीनों उपलक्षण हैं. अर्थसे सत्वादिगुणोंका जितना कार्य है, सब समझलेना. जो ये अपनेआप ❋ हेअर्जुन ८ भलेप्रकार वर्तते रहे हो ९ सि०तो इनसे ❋ न १० वैर करताहै, ११अर्थात् उनके प्रवृत्तिनिवृत्तीका कुछ उपाय नहीं करता है. ११ सि० और फिर जब अपनेआप दूर होजाते हैं. तब ❋ निवृत्तोंकी १२ नहीं १३ चाह करता है. १४ सि० यह लक्षणप्रश्नका उत्तर है. ❋ तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी न किसीगुणमें प्रीति करता है, न वैर करता है. सतोगुणमें प्रीति,और रजोगुणतमोगुणमें द्वेष जिज्ञासूका होता है. यह लक्षण स्वसंवेद्य है, परसंवेद्य नहीं. अर्थात् ऐसे महात्माको दूसरा नहीं पहचान सक्ता. क्योंकि वे आपअपनेको छिपाये रखते हैं ॥२२॥

मू०उदासीनवदासीनोगुणैर्योनविचाल्यते ॥
गुणावर्तंतइत्येवंयोवतिष्ठतिनेंगते ॥ २३ ॥

यः १ उदासीनवत् २ आसीनः ३ गुणैः ४ नविचाल्यते ५।६ गुणाः ७ वर्तंते ८ इति ९ एवम् १० यः ११ अवतिष्ठति १२ न १३ इंगते १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० गुणातीतका क्या आचार है, इसप्रश्नका उत्तर देते हैं. यह लक्षण ज्ञानीका परसंवेद्यभी है. जो १ उदासीनवत् २ स्थित ३गुणोंकरके ४ नहीं ५ विचलता है,६ गुणवर्त रहे हैं. ७।८ यह ९ सि० समझता है कि मेरा गुणोंसे क्या सबंध है ❋ इसप्रकार १० जो ११ स्थित, १२ सि० अपने स्वरूपसे ❋ नहीं १३ विचलता है. १४ सि० उसको गुणातीत कहते हैं ❋ ॥ २३ ॥

मू०समदुःखसुखःस्वस्थःसमलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

समदुःखसुखः १ स्वस्थः २ समलोष्टाश्मकांचनः ३ तुल्यप्रिया-

प्रियः ४ धीरः ५ तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ६ ॥ २४ ॥ अ० सुखदुःखमें सम १ अर्थात् सुख दुःखका प्रतीत होना यह अंतःकरणका धर्म है, यावत् अंतःकरण है तावत् बेसंदेह धर्मीको अपना धर्म प्रतीत होगा. जिसधर्मसे वो धर्मी कहा जाताथा जो वो धर्म नवर्ते तो फिर उसको उसधर्मवाला क्यों कहेंगे. दुःखसुख ज्ञानीको अवश्य प्रतीत होता है. समताका यह अर्थ नहीं कि यह दुःखसुख प्रतीत न होवे, तात्पर्य यह है, कि दुःखसुख परमानंदस्वरूपआत्माको कमसिवाय नहीं करसक्ते. १ अपने स्वरूपमें स्थित २ सम है लोहा पत्थर सोना जिसको ३ सम है प्रिय और अप्रिय जिसको ४ धैर्यवाला ५ सम है अपनी निंदा और स्तुति जिसको ६ सि० उसको गुणातीत कहते हैं. ❀ टी० जो आत्माकी निंदा करता है, वो अपनी पहले करता है. और जो शरीरोंकी करता है तो सहाय करता है. और जो निंदा करता है वो अवगुणोंकी करता है. इसहेतुसे उसको सहायक जानना योग्य है. क्यों कि अवगुणोंको सब बुरा कहते हैं. सिवाय इसके अवगुण कहनेसे दूर होजाता है. इसबातको इतिहाससे स्पष्ट करते हैं. इतिहास एकराजाने बहुतब्राह्मणोंको एकदिन जिमाया. भोजन किये पीछे वे ब्राह्मण सब मर गये. मरजानेका कारण यह हुवा, कि मैदानमें खीर होरहीथी. आकाशमें चील सर्पको लेजातीथी. सर्पके मुखमेंसे विषटपक खीरमें जा पडा, वो किसीको नदीखा. नगरमें यह चर्चा हुई, कि राजाने ब्राह्मणोंको विषदेदिया. बहुत लोगोंका इसमें संशय न हुवा. तब एक दुष्टनें यह बारीकी निकाली कि राजा अमुकब्राह्मणके स्त्रीसे प्रीति रखता है. अकेला उसब्राह्मणको मरवानाराजा योग्य न समझा. बहुतोंके साथ उसकोभी न्योतकर विष देदिया. इसबातमें बहुत लोगोंका निश्चय होगया. जगेजगे यही चर्चा होने लगी. राजा बिचारा अकु-

तदोष इसनिन्दाका सारा नगरको छोड वनमें चलागया. वनमे आकाशवाणी हुई, कि हे राजन्! तेरा कुछ दोष नहीं. यह व्यवस्था ऐसी है. चीलसर्पविषकी सब कथा सुनाई कि इसकथाको उननिंदक दुष्टोंनेभी सुना सो हत्या राजाको छोड परमेश्वरके पास पहुंचकर परमेश्वरसे कहा कि मुझको अब जगे बतलाय्ये, प्रभूनें कहा कि जिन्होंने राजाको दोष लगाया, और कहा, या सुना, तुझको वहां रहना योग्य है. इसमें न राजाका दोष न चीलका, न सर्पका. न रसोय्याका. राजा इसमें निमित्तथा, सो उसको फल होगया. राजा अपने घर आया, और हत्या निन्दकोंके मुखपर पहुंची. उसदिनसे हत्या निन्दकोंके मुखपर, और जो किसीकी बुराई मनलगाकर सुनते हैं, उनके मुखपर वास करती है. प्रत्यक्षदेखलो कि जिससमय किसीकी कोई निन्दा करता हो, या सुनता हो, दोनोंकी सुरत हत्यारोंकेसी होगी ॥ २४ ॥

मू० मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

मानापमानयोः १ तुल्यः २ तुल्यः ३ मित्रारिपक्षयोः ४ सर्वारंभपरित्यागी ५ गुणातीतः ६ सः ७ उच्यते ८ ॥ २५ ॥ अ० मानमें और अपमानमें १ सम २ मित्रके पक्षमें और अरीके पक्षमें सम, ३।४ सबशुभ और अशुभ इनकर्मोंके आरंभका त्यागी ५ सि० सो ॐ गुणातीत ६।७ कहा है. ८ तात्पर्य जीवन्मुक्तज्ञानीको गुणातीत कहते हैं. सम होनेसे शान्ती होती है, शान्ति, सुखका कारण है ॥ २५ ॥

मू० मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

यः १ च २ माम् ३ अव्यभिचारेण ४ भक्तियोगेन ५ सेवते ६ सः ७ एतान् ८ गुणान् ९ समतीत्य १० ब्रह्मभूयाय ११ कल्पते १२ ॥ २६ ॥ अ० उ० गुणातीत होनेका उपाय श्रीमहाराज कहते हैं. जो १।२ मेरा ३ अव्यभिचारीभक्तियोगकरके ४।५ सेवन करता है, ६ अर्थात् परमेश्वरकी ऐसी उपासना करे कि वो दिनादिनप्रति बढे, कम न होने पावे. कोई अन्यकाम बीचमें न हो, उसीको अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं. ४।५।६ सो ७ इनगुणोंको ८।९ उलंघके १० ब्रह्मभावको ११ प्राप्त होता है. १२ तात्पर्य परमानन्दस्वरूपआत्माके प्राप्तीका उपाय जैसा भक्ति है, और विशेष इससमयमें ऐसा अन्य उपाय शीघ्र प्रत्यक्ष जीते जी फलका देनेवाला नहीं. यह. अवतार श्रीव्रजचन्द्रमहाराजका इसीसमयके लोगोंका उद्धार करनेके लिये हुवा है. जैसे इससमयके पाप बलवान् हैं, ऐसाही श्रीभगवानका यह अवतार इनपापोंके नाश करनेमें समर्थ है ॥ २६ ॥

मू० ब्रह्मणोहिप्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्यच ॥
शाश्वतस्यचधर्मस्यसुखस्यैकांतिकस्यच ॥ २७ ॥

अव्ययस्य १ अमृतस्य २ ब्रह्मणः ३ हि ४ अहम् ५ प्रतिष्ठा ६ च ७ शाश्वतस्य ८ च ९ धर्मस्य १० च ११ ऐकांतिकस्य १२ सुखस्य १३ ॥ २७ ॥ अ० निर्विकार १ अविनाशी २ ब्रह्मकी ३ ही ४ मैं ५ मूर्त्ति ६।७ हूं. और सनातन धर्मकी ८।९।१० भी ११ अखंडसुखकी १२।१३ सि० भी मैं मूर्त्ति हूं. ❋ तात्पर्य जो निराकारब्रह्मको और धर्मको और परमानन्दको नहीं जानते हैं, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी दिनरात उपासना करते हैं, वे ब्रह्मको अवश्य प्राप्त होते हैं, गुणातीत होनेका उपाय अर्जुननें जो बूझाथा उसका उत्तर यह दोश्लोकोंकरके दिया. अर्थात् श्रीव्रजचन्द्रकी भक्ति करना यही गु-

णातीत होनेका उपाय है. यावत् निराकारनिर्गुणपरमानन्दस्वरूप-आत्माका साक्षात्कार नहो, तावत् साकारमूर्त्तिका आश्रय रखना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ २७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पन्द्रहवें अध्यायका प्रारंभ हुवा.

मू० श्रीभगवानुवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधः शाख मश्वत्थंप्राहुरव्ययम् ॥ छन्दांसियस्यपर्णानि यस्तंवेदसवेदवित् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच. ऊर्ध्वमूलम् १ अधःशाखम् २ अश्वत्थम् ३ अव्ययम् ४ प्राहुः ५ यस्य ६ छन्दांसि ७ पर्णानि ८ यः ९ तम् १० वेद ११ सः १२ वेदवित् १३ ॥ १ ॥ अ० उ० वैराग्यविना ज्ञान नहीं होता, इसवास्ते संसारको वृक्षवत् वर्णन करते हैं. मायोपहितब्रह्म जड है जिसकी १ सि० क्योंकि मायोपहितसे अन्यपदार्थ संसारमें ऊर्ध्व (ऊंचा) वडा नहीं. और शुद्धब्रह्म तो संसारसे पृथक् है, सो मनवाणीका विषय नहीं ❋ हिरण्यगर्भादि शाखा है जिसकी २ सि० क्योंकि हिरण्यगर्भादि मायोपहित ब्रह्मसे पीछे हैं संसारको ❋ अश्वत्थ ३ अव्यय ४ कहते हैं. ५ सि० विनाज्ञान इसका नाश नहीं होता. इसवास्ते तो इसको अव्यय कहते हैं. और भगवतके कृपासे जो ज्ञान होजावे तो यह ऐसाभी नहीं कि कलतक ठहरा रहे. अश्वत्थमें अकार नकारके जगे है, श्व इसशब्दका अर्थ कलका वाचक है जो कलतक नठहरे, उसको अश्वत्थ कहते हैं. अश्वत्थका अर्थ इसजगे पीपल नहीं समझना. और यहभी

नहीं समझना. कि इसकी जड ऊपरको है वृक्षवत्, और शाखा नीचे हैं. ऐसा अर्थ समझना चाहिये कि जो ऊर्ध्वअधः इनका अर्थ ऊपर लिखा है ❀ जिसके ६ वेद ७ पत्र ८ सि० हैं क्योंकि वृक्षकी शोभा पत्रोंसेही होतीहै और पत्रोंको ही देख वृक्षमें राग उत्पन्न होता है. ऐसे वेदोक्तकर्मोंके फल सुन सुन संसारमें राग बढता चलाजाता है. वेदोंका तात्पर्य समझमें नहीं आता. रोचकवाक्योंका सिद्धान्त समज बैठते हैं ❀ जो ९ तिसको १० जानता है ११ सो १२ वेदका जाननेवाला है. १३ तात्पर्य जो वेदमार्गको एकसाधन समझता है. और फल उसको परमानंदस्वरूप आत्मा है, सो वेदका अर्थ जानता है. द्वितीयाध्यायमें श्रीभगवान् कहचुके हैं कि वेद अज्ञानियोंके वास्ते हैं, कि जो सत्वादिगुणोंमें मोहको प्राप्त होरहे हैं. ॥ १ ॥

मू० अधश्चोर्ध्वंप्रसृतास्तस्यशाखागुणप्रवृद्धा
विषयप्रवालाः॥ अधश्चमूलान्यनुसंतता
निकर्मानुबंधीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

तस्य १ शाखाः २ अधः ३ च ४ ऊर्ध्वम् ५ प्रसृताः ६ गुणप्रवृद्धाः ७ विषयप्रवालाः ८ अधः ९ च १० मनुष्यलोके ११ कर्मानुबन्धीनि १२ मूलानि १३ अनुसंततानि १४ ॥ २ ॥ अ० तिससंसारवृक्षकी १ शाखा २ नीचे ३ और ऊपर ४।५ फैल रही हैं ६ सत्वादि गुणोंकरके बढी हुई हैं ७ विषय इसलोकपरलोकके पत्ते हैं उसवृक्षके ८ और नीचे ९।१० सि० भी ❀ मनुष्यलोकमें ११ कर्मोंके फल रागद्वेषादि १२ उसकी जड १३ फैलरही हैं १४ अर्थात् बहुत दृढ होरही हैं. जैसे रज्जूसे गठडीको पेंचपरपेंच देकर बांधते हैं. चारोंतर्फ तैसेही संसारकी जड मनुष्यलोकमें नीचे ऊपर अनुस्यूत ओतप्रोत हो रही हैं. १३।१४ तात्पर्य कर्मकरनेका अधिकार मनुष्यलोकमेंही है, और कर्मोंका जो अनुबन्ध अर्थात् पश्चात्भा-

वीरागद्वेषादिकर्मोंका फल यहभी संसारकी जड है. वास्तव संसार-की जड मायोपहितब्रह्म है. इसहेतुसे उसको ऊर्ध्व जड कहा. मनुष्यलोकमें कर्म इसकी जड है. मायोपहितब्रह्मके अपेक्षामें मर्त्यलोक नीचा है. इसवास्ते इसजगे कहा कि, इसकी नीचे मनुष्यलोकमें भी कर्मकांड जड है. ब्रह्मलोक वैकुंठादि, और मायोपहितब्रह्म, सूक्ष्मउपाधि करके उपहित, हिरण्यगर्भ स्थूल उपाधिकरके उपहित, विराट् और उसके अन्तर्गत ब्रह्मादिदेवता यह तो ऊपरको संसारकी शाखा फैल रही है. और मर्त्यलोकमें पशु, पक्षी, मनुष्यादि और यज्ञादि कर्म, यह नीचे संसारकी शाखा फैल रही है, जैसेजैसे सत्वादिगुणोंमें प्रीतिकरते हैं. तैसेतैसे ही शाखामेंसे शाखा बढती चलीजाती है.इसीहेतुसे नकुछ परलोकसावयपलोकोका पतालगता है, कि चौदहलोक हैं या वैकुंठादि कितने लोक हैं. और एकएक देवताके उपासनामें अनेकअनेक भेद हैं और अबतक अनेक भेद (शाखा) निकलती चलीजाती हैं और नीचेमनुष्योंका जो व्यवहार है, इसका कुछ प्रमाण नहीं. न जातीका प्रमाण न कुलके व्यवहारोंका प्रमाण है. संसारवृक्षमें शब्दादिविषय कोमलसुन्दर पत्र लगरहे हैं देवतामनुष्यपश्वादि सब प्राणियोंने विषयोंका आश्रा ले रक्खा है कोई साक्षात् भोक्ते हैं, कोई उनकेलिये वेदोक्तकर्म कर रहे हैं इस संसारकी व्यवस्था इसजगे बहुत संक्षेपकरके लिखी गई है. वैराग्यवान् पुरुषोंसे, और योगवासिष्ठादिग्रंथोंसे इसकी व्यवस्था श्रवण करना योग्य है, कि यह कैसे अनर्थोंकामूल है ॥ २ ॥

मू०नरूपमस्येहतथोपलभ्यतेनांतोनचादिर्नचसंप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनंसुविरूढमूलमसंगशस्त्रेणदृढेनछित्त्वा ॥ ३ ॥

इह १ अस्य २ रूपम् ३ तथा ४ न ५ उपलभ्यते ६ न ७ अ-

न्तम् ८ नच ९ आदिः १० च ११ न १२ संप्रतिष्ठा १३ सुविरूढमूलम् १४ एनम् १५ अश्वत्थम् १६ दृढेन १७ असंगशस्त्रेण १८ छित्वा १९ ॥ ३ ॥ अ० संसारमें १ सि० जैसा * इससंसारका २ रूप ३ सि० वर्णनकरते हैं * तैसा ४ मि० बेसन्देह * नहीं ५ प्रतीत होता है. ६ सि० इसका * न ७ अन्त ८ और न आदि ९ । १० । ११ न १२ स्थिति १३ सि० इसकी प्रतीत होती है कि, यह कैसा उत्पन्न हुवा, कैसा लीनहोगा, कैसा ठहर रहाहै. क्षणभंगुर स्वप्नवत् या इन्द्रजालवत् इसकेपदार्थ प्रतीत होते हैं. अनर्थोंका मूल और दुःखोंका स्थान है जो पदार्थ नरकका कारण उसके विनानिर्वाहनहीं होता. जो उसका अशेषत्याग किया जावे तो यह असम्भव है. इस प्रकार * बन्धीहुई है भलेप्रकार जडजिसकी १४ इस १५ अश्वत्थको १६ दृढ ऐसे असंगशस्त्रसे १७। १८ छेदन करके १९ सि० परमपदपरमानन्दस्वरूपआत्माको ढूंढना चाहिये. अगले मंत्रके साथ इसमंत्रका संबंधहै. * तात्पर्य इस संसारकी व्यवस्था सबमतवाले जूदीजूदी कहते हैं. अपने मतको सब बडा कहते हैं, दुसरेको बुरा कहते हैं. कोई बेसन्देह समन्वय नहीं करता कि वास्तव संसारकी यह व्यवस्था है. और अमुक अमुक जो यह कहते हैं, उनका तात्पर्य यह है. मुमुक्षूका कैसा निश्चय हो की अमुकमत सच्चा है. जो निर्णय करो तो एकघटका निर्णय नहीं हो सक्ता एकघटके चर्चामें समस्त अवस्था समाप्त होजावे, परन्तु घटका निर्णय नहो. न्यायशास्त्रवाले चर्चाके बलसे कुछकाकुछ सिद्धकरदें. विद्याकि तो यह व्यवस्था है. एकमत नहीं कि जिसपर निश्चय बना रहे तात्पर्य यह है कि सब प्रकार संसार दुःखरूप है. इसका कभी निर्णय न करे इसके दूर होनेका यत्नकरे, कभी इसमें प्रीति न करे सदा संसारसे ग्लानि बनी रहे, तब परमानन्दस्वरूपआत्माकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३ ॥

मू०ततःपदंतत्परिमार्गितव्यंयस्मिन्गतानिनि
वर्तंतिभूयः ॥ तमेवचाद्यंपुरुषंप्रपद्येयतः
प्रवृत्तिःप्रसृतापुराणी ॥ ४ ॥

ततः १ तत् २ पदम् ३ परिमार्गितव्यम् ४ यस्मिन् ५ गताः ६ भूयः ७ न ८ निवर्तंति ९ तम् १० एव ११ च १२ आद्यम् १३ पुरुषम् १४ प्रपद्ये १५ यतः १६ पुराणी १७ प्रवृत्तिः १८ प्रसृता १९ ॥ ४ ॥ अ० सि० असंग शस्त्रसे संसारका छेद करके ❋ पीछे १ सो २ पद ३ ढूंढना योग्य है ४ जिसमें ५ प्राप्त होकर ६ फिर ७ न ८ लौटना पडे ९ सि० उसके ढूंढनेका भक्तिमार्ग कहते हैं ❋ तिसही १०।११।१२ आदिपुरुषको १३।१४ मैं शरण हूं १५ सि० कि ❋ जिससे १६ अनादि १७ प्रवृत्ति १८ फैली है. १९ तात्पर्य संसारके किसीपदार्थमें नीचे ऊपर प्रीति नकरे. वैराग्यके पीछे वो पद ढूंढेकि जहाँ जाकर फिर जन्म लेना नपडे. यत्न उसपदके प्राप्तीका यह है कि तटस्थ लक्षण जो परमात्माका है. उसलक्षणसे उसको लक्ष्य करके उसकी भक्ति करना चाहिये. भक्तीका स्वरूप यह है, कि जिस परमात्मासे यह अनादि अनिर्वाच्य संसारवृक्ष नीचे ऊपर फैला है. सोई आदि पुरुष मुझको आश्रय है, उसको मैं शरण हूं. वोही मेरी रक्षा करनेवाला है. वो अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजमान समर्थ है. इससंसारवनके पार मुझको वोही लगावेगा ऐसा चितवन सदा बना रहे. इसीको भक्ति कहते हैं. ॥ ४ ॥

मू०निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मनित्या
विनिवृत्तकामाः॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसं
ज्ञैर्गच्छंत्यमूढाःपदमव्ययंतत् ॥५॥

निर्मानमोहाः १ जितसंगदोषाः २ अध्यात्मनित्याः ३ विनिवृत्तकामाः ४ सुखदुःखसंज्ञैः ५ द्वंद्वैः ६ विमुक्ताः ७ अमूढाः ८ तत् ९

अव्ययम् १० पदम् ११ गच्छन्ति १२ ॥ ५ ॥ अ० उ० और-भी आत्माके प्राप्तीके साधन कहते हैं दूर होगये हैं, मान मोह जिनके १ जीता है संगका दोष जिन्होंने २ वेदांतशास्त्रके श्रवणमनन विचारमें नित्य लगे रहते हैं ३ समस्तकामना (इसलोककी था परलोककी) जाती रही हैं जिनकी ४ सुखदुःख यहहै नाम जिनका ५ सि० इत्यादि ❋ द्वंद्वकरके ६ छूटे हुवे७ ज्ञानी आत्मतत्वके जाननेवाले ८ जिस ९ निर्विकार १० पदको ११ प्राप्त होते हैं, १२सि० कि जिसपदके विशेषण अगले मंत्रमें हैं ❋ तात्पर्य मुमुक्षूको चाहिये कि प्रवृत्तिमार्गवालोंका संग नकरे, और जिनग्रन्थोंमें प्रवृत्तिमार्गका विशेष निरूपण है, उनका कभी श्रवण नकरे जिसपदार्थको जिह्वासे कहेगा, कानोंसे सुनेगा, अवश्य उसके गुणसंस्कार अंतःकरणमें प्रविष्ट होंगे. प्रवृत्तिशास्त्रमें स्त्रीपुत्रराजसंयोगवियोगादिपदार्थोंका वर्णन विशेष है. इसहेतुसे मुमुक्षूको कहना सुनना निषिद्ध है. ब्रह्मविद्यामें केवल वैराग्य, उपराति, शान्ति,शम, दम, इत्यादि साधनोंका निरूपण है. स्त्र्यादिपदार्थोंका संबंध ऐसा अनर्थ नहीं करता कि जैसा जो उनके गुण वर्णन करता है उसका संग अनर्थ करता है ॥ ५ ॥

मू० नतद्भासयतेसूर्योनशशांकोनपावकः ॥
यद्गत्वाननिवर्तंतेतद्धामपरमंमम ॥ ६ ॥

तत् १ सूर्यः २ न ३ भासयते ४ न ५ शशांकः ६ न ७ पावकः ८ यत् ९ गत्वा १० न ११ निवर्तंते १२ तत् १३ मम १४ परमम् १५ धाम १६ ॥ ६ ॥ अ० उ० पूर्वोक्तपदके विशेषण कहते हैं. जिसको १ सूर्य २ नहीं ३ प्रकाशितकरसक्ता है, ४ न ५ चंद्रमा, ६ न ७ अग्नि, ८ सि० और ❋ जिसको ९ प्राप्त होकर १० नहीं ११ लौटकर आते हैं १२ सि० जन्ममरणमें ❋ सो १३ मेरा १४ परंधाम १५।१६ सि० हैं. ❋ तात्पर्य सूर्यादि जड पदार्थ अज्ञान-

का कार्य ज्ञानस्वरूपआत्माको कैसे प्रकाशित करसक्ते हैं, आत्माहीको परमपद परंधाम ऐसा कहते हैं, तैजससावयवमंदिरोंको वैकुंठादि नाम हैं जिनके, उनके धाम इसजगे नहीं समझना, क्यों कि वहां सूर्यादि सब प्रकाश करसक्ते हैं. जैसे सूर्यादितेजका कार्य हैं, ऐसेही वे लोक हैं. प्रभूका धाम प्रभूसे जूदा नहीं. यह बात आठवें अध्यायमें स्पष्टकरचुके हैं ॥ ६ ॥

मू०ममैवांशोजीवलोकेजीवभूतःसनातनः ॥
मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति ॥७॥

जीवलोके १ सनातनः २ जीवभूतः ३ मम ४ एव ५ अंशः ६ प्रकृतिस्थानि ७ इंद्रियाणि ८ कर्षति ९ मनःषष्ठानि १० ॥ ७ ॥

अ० संसारमें १ अनादि २ जीव ३ मेरा ४ ही ५ सि० घटाकाश, अंशवत् ❋ अंश ६ सि० है, जैसे महाकाशका अंश घटाकाश पर्वतवत् चिद्घनका अंश चित्कण जीवको समझना न चाहिये, क्यों कि परमात्मा निरवयव आकाशवत् है, सावयव पर्वतवत् नहीं, जैसे पर्वतका अंश पत्थरका टूका होता है, ऐसा जीव अंश नहीं. आकाशका दृष्टान्त या बिंबप्रतिबिंबका दृष्टान्त समझना चाहिये, सो जीव सुषुप्तिकाल और प्रलयकालमें ❋ प्रकृतीमें स्थित रहता है ७ सि० जो इंद्रिय, तिन ❋ इंद्रियोंको ८ खैंचता है ९ सि० कैसी हैं वे इंद्रिय ❋ मन है छटा जिनमें १० अर्थात् पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पंचप्राण अंतःकरणचतुष्टय ये सब कारण अविद्यामें सूक्ष्म अविद्यारूप हुवे रहते हैं, सुषुप्तिप्रलयमेंसे इनसबको वोही अविद्योपहित चिदाभास (जीव) स्थूलसूक्ष्म भोगोंके लिये अपने साथ ले लेता है ॥ ७ ॥

मू०शरीरंयदवाप्नोतियच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानिसंयातिवायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

ईश्वरः १ यत् २ शरीरम् ३ अवाप्नोति ४ यत् ५ च ६ अपि ७ उ-त्क्रामति ८ एतानि ९ गृहीत्वा १० संयाति ११ वायुः १२ गंधान् १३ आशयात् १४ इव १५ ॥ ८ ॥ अ० देहका स्वामी जीव १ जिसकालमें २ देहको ३ प्राप्त होता है ४ और जिसकालमें ५।६।७ एकदेहसे दूसरेदेहमें जाता है ८ सि० तिसकालमें ❋ इनका ९ ग्रहण करके १० प्राप्त होता है ११ सि० दूसरे देहमें दृष्टान्त कहते हैं ❋ वायु १२ गंधको १३ पुष्पादिसे १४ जैसे १५ सि० लेजाता है ❋ तात्पर्य इंद्रियादिको साथ लेकर जाता है ॥ ८ ॥

मू० श्रोत्रंचक्षुःस्पर्शनंचरसनंघ्राणमेवच ॥
अधिष्ठायमनश्चायंविषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

श्रोत्रम् १ चक्षुः २ स्पर्शनम् ३ च ४ रसनम् ५ घ्राणम् ६ एव ७ च ८ मनः ९ च १० अयम् ११ अधिष्ठाय १२ विषयान् १३ उपसेवते १४ ॥ ९ ॥ अ० श्रोत्र १ चक्षु २ त्वक् ३ और ४ रसना ५ और नासिका ६।७।८ और मन इनका ९।१० यह ११ सि० जीव ❋ आश्रयकरके १२ विषयोंको १३ भोक्ता है. १४ तात्पर्य बुद्धीमें चैतन्यका प्रतिबिंब जो सो भोक्ता जीव, मनमें प्रतिबिंब जो उसी चैतन्यका सो अंतःकरण. इंद्रियोंमें प्रतिबिंब जो चैतन्यका सो बहिःकरण, शब्दादिविषयोंमें जो प्रतिबिंब चैतन्यका सो कर्म. कर्त्ताको प्रमाता चैतन्य, कर्मको प्रमेय चैतन्य कहते हैं. प्रमाता और प्रमेय ये दोनोंचैतन्य जब एक होते हैं. उसको प्रत्यक्ष भोग कहते हैं. ॥ ९ ॥

मू० उत्क्रामंतंस्थितंवापिभुंजानंवागुणान्वितम् ॥
विमूढानानुपश्यंतिपश्यंतिज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

विमूढाः १ उत्क्रामंतम् २ स्थितम् ३ वा ४ अपि ५ भुंजानम् ६ वा ७ गुणान्वितम् ८ न ९ अनुपश्यंति १० ज्ञानचक्षुषः ११ पश्यंति १२ ॥ १० ॥ अ० उ० यथार्थ जीवका स्वरूप ज्ञानीहि जानते

हैं, बहिर्मुख विषयी नहीं जानते. यह कहते हैं. बहिर्मुख १ सि० जीवको ❋ एक देहसे दूसरेदेहमें जाते हुवेको २ और देहमें स्थित हुवे को ३।४ भी ५ और भोक्ते हुवेको ६ और इंद्रियादिके साथ संयुक्त हुवे को ७।८ नहीं ९ देखते हैं. १० ज्ञाननेत्रवाले ११ देखते हैं. १२ तात्पर्य अविवेकी यह भी नहीं जानते, कि जीव किसीप्रकारविषयोंको भोक्ता है. अकेलाही भोक्ता है, या इंद्रियादिके संबंधसे भोक्ता है. और यह शरीरमें कैसा स्थित है. शरीरादि इसका आश्रा है या आत्मा देहादिका आश्रा है. या कुछ अन्यप्रकार है. यह कैसे इसदेहमेंसे छूट दूसरे देहमें जाता है ॥ १० ॥

मू० यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोप्यकृतात्मानोनैनंपश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

यतंतः १ योगीनः २ च ३ एनम् ४ आत्मनि ५ अवस्थितम् ६ पश्यंति ७ अचेतसः ८ अकृतात्मानः ९ यतंतः १० अपि ११ एनम् १२ न १३ पश्यंति १४ ॥ ११ ॥ अ० उ० यह नहीं समझना कि आत्माको तो सबही जानते हैं. ऐसा कौन है कि जो आपको न जाने. अपना आप जानना यही ज्ञानकी अवधि है. सब प्राणी तो आत्माको क्या जानेंगे, जो बहुत विद्यावान् वेदोक्त अनुष्ठान करनेवालेभी नहीं जानते. ज्ञानयोगमें यत्न करनेवाले १ योगी २।३ आत्माको ४ देहमें ५ स्थित ६ सि० और देहसे विलक्षण ❋ देखते हैं ७ मन्दमति ८ मलिनअंतःकरणवाले ९ यत्न करते हुवे १० भी ११ आत्माको १२ नहीं १३ देखते. १४ तात्पर्य वैदिकमार्गवालेभी कोईकोई जो आत्माको नहीं जानते उसमें हेतु यह हैं, कि वे वेदान्तमें श्रद्धा नहीं करते, जीवको परिछिन्न समझते है, और एक यह बडा आश्चर्य है कि वेदके दृष्टीसे अदृष्ट सूतकादि उनको लगजावे, और आत्मामें यह निश्चय न हो कि मैं ब्रह्म हूं ॥ ११ ॥

मू॰ यदादित्यगतंतेजोजगद्भासयतेखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजोविद्धिमामकम् ॥ १२ ॥

आदित्यगतम् १ यत् २ तेजः ३ अखिलम् ४ जगत् ५ भासयते ६ यत् ७ चन्द्रमसि ८ यत् ९ च १० अग्नौ ११ तत् १२ तेजः १३ मामकम् १४ विद्धि १५ ॥ १२ ॥ अ॰ सूर्यमें १ जो २ तेज ३ समस्त ४ जगतको ५ प्रकाशित करता है. ६ जो ७ चन्द्रमामें ८ और जो ९।१० सि॰ तेज ❀ अग्निमें ११ सो १२ तेज १३ मेराही १४ जान १५ ॥ १२ ॥

मू॰ गामाविश्यचभूतानिधारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामिचौषधीःसर्वाःसोमोभूत्वारसात्मकः॥१३॥

गाम् १ आविश्य २ च ३ भूतानि ४ धारयामि ५ अहम् ६ ओजसा ७ रसात्मकः ८ च ९ सोमः १० भूत्वा ११ सर्वाः १२ ओषधीः १३ पुष्णामि १४ ॥ १३ ॥ अ॰ पृथिवीमें १ प्रवेश करके २।३ भूतोंको ४ धारण करता हूं ५ मैं ६ बलकरके. ७ और रसवाला ८।९ चन्द्र १० होकर ११ सब औषधियोंको १२।१३ पुष्ट करता हूं १४ ॥१३ ॥

मू॰ अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नंचतुर्विधम् ॥१४॥

प्राणिनाम् १ देहम् २ आश्रितः ३ अहम् ४ वैश्वानरः ५ भूत्वा ६ प्राणापानसमायुक्तः ७ चतुर्विधम् ८ अन्नम् ९ पचामि १० ॥१४॥ अ॰ जीवनके १ शरीरमें २ स्थितहुवा ३ मैं ४ जाठराग्नि ५ होकर ६ प्राणापानादिके साथ मिलकर ७ चारप्रकारके ८ अन्नको ९ पचाता हूं. १० ॥ टी॰ पूरीआदिको भक्ष्य, खीरआदिको भोज्य, चटनीआदिको लेह्य, पौंडे आदिको चोष्य कहते हैं. तात्पर्य सूर्य, चन्द्रमा पृथिवी, इत्यादि पदार्थोंमें जोजो गुण हैं, यह सब चैतन्य देवकी सत्ता है. वे सब जड हैं. चैतन्य सबका प्रेरक है ॥ १४ ॥

मू०सर्वस्यचाहंहृदिसंनिविष्टोमत्तःस्मृतिर्ज्ञानम-
पोहनंच ॥ वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्योवेदांतकृद्वेदवि-
देवचाहम् ॥ १५ ॥

सर्वस्य १ हृदि २ अहम् ३ संनिविष्टः ४ मत्तः ५ च ६ स्मृतिः ७ ज्ञानम् ८ अपोहनम् ९ च १० सर्वैः ११ वेदैः १२ च १३ अहम् १४ एव १५ वेद्यः १६ वेदांतकृत् १७ च १८ वेदवित् १९ एव २० अहम् २१ ॥ १५ ॥ अ० सबके १ बुद्धीमें २ मैं ३ प्रविष्ट हूं ४ और मुझसे ५ । ६ स्मृति ७ ज्ञान ८ सि० और इन दोनों का ❋ भूलजाना ९ भी १० सि० मुझसे होता है ❋ और सब वेदोंकरके ११।१२।१३ मैं १४ ही १५ जाननेके योग्य १६ सि० हूं ❋ अर्थात् सब वेद मेराही प्रतिपादन करते हैं. १६ वेदान्तकरनेवाला १७ और वेदोंका जाननेवालाभी १८।१९।२० मैं २१ सि० ही हूं ❋ तात्पर्य जहांजहां प्रभु अपनी विभूति कहते हैं, उनका अभिप्राय जीवब्रह्मकी एकता याने पूर्णता इसमें है. ज्ञानशक्तिक्रिया करके उपहित जो चैतन्य उससे ज्ञानस्मृति होती है. आवरणशक्तिप्रधान जो चैतन्य उससे भूल (अज्ञान) होता है ॥ १५ ॥

मू०द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षरएवच ॥
क्षरःसर्वाणिभूतानिकूटस्थोक्षरउच्यते ॥ १६ ॥

इमौ १ द्वौ २ पुरुषौ ३ लोके ४ क्षरः ५ च ६ अक्षरः ७ एव ८ च ९ सर्वाणि १० भूतानि ११ क्षरः १२ कूटस्थः १३ अक्षरः १४ उच्यते १५ ॥ १६ ॥ अ० उ० कहे हुवे पिछले अर्थको फिर संक्षेपकरके कहते हैं जिससे जल्द समझमें आजा. ये १ दो २ पुरुष ३ लोकमें ४ सि०प्रसिद्ध हैं❋क्षर ५ और अक्षर६।७।८।९ सब भूतोंको १०।११ क्षर १२ कूटस्थको १३ अक्षर १४ कहते हैं १५ टी० लौकिकबोलीमें देहकोभी पुरुष कहते हैं, इसवास्ते दोनोंको पुरुष

कहा. देहेन्द्रियादिपदार्थोंको क्षर कहते हैं और इसजगे मायाका नाम अक्षर है. कूटकपटमें जिसकी स्थिति है, सो माया. कूटस्थका अर्थ इसजगे अक्षरार्थसे माया समझना. यावत् ब्रह्मज्ञान नहीं होता, तावत् माया अक्षर स्पष्ट प्रतीत होती है, इत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

मू०उत्तमःपुरुषस्त्वन्यःपरमात्मेत्युदाहृतः ॥
योलोकत्रयमाविश्यबिभर्त्यव्ययईश्वरः ॥१७॥

उत्तमः १ पुरुषः २ तु ३ अन्यः ४ परमात्मा ५ उदाहृतः ६ इति ७ यः ८ अव्ययः ९ ईश्वरः १० लोकत्रयम् ११ आविश्य १२ बिभर्ति १३ ॥ १७ ॥ अ० उ० शुद्धसच्चिदानन्दपरमात्मा नित्यमुक्त, क्षर और अक्षर, इनदोनोंसे विलक्षण है यह समझ. इसको आत्मज्ञान कहते हैं. उत्तम १ पुरुष २ तो ३ अन्य ४ सि० ही है, घटपटवत् अन्यभेदवाला नहीं. बिम्बप्रतिबिम्बवत् अन्य है, उसीको ❋ परमात्मा ५ कहा है ६ यह ७ सि० समझ. अर्थात् वो यही आत्मा है, कि जिसको वेदोंमें ऋषीश्वर मुनीश्वरोंने परमात्मा कहा है ❋ जो ८ निर्विकार ९ ईश्वर १० त्रैलोक्यमें ११ प्रविष्ट होकर १२ धारण करता है. १३ अर्थात् उसकी ऐसी अचिन्त्यशक्ति है कि वो वास्तव निर्विकार ईश्वर है परन्तु त्रिलोकको धारणकर रहा है ॥ १३ ॥ १७ ॥

मू०यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तमः ॥
अतोस्मिलोकेवेदेचप्रथितःपुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

यस्मात् १ क्षरम् २ च ३ अक्षरात् ४ अपि ५ अहम् ६ उत्तमः ७ अतीतः ८ अस्मि ९ अतः १० लोके ११ वेदे १२ च १३ पुरुषोत्तमः १४ प्रथितः १५ ॥ १८ ॥ अ० जिसहेतुसे १ क्षरअक्षरसे २ ३।४ भी ५ मैं ६ उत्तम ७ अर्थात् मनवाणीका अविषय ७ सि० और इनदोनोंसे ❋ अतीत नित्यमुक्त ८ हूं. ९ इसीहेतुसे १० शास्त्रमें ११

और वेदमे १२।१३ सि० मुझको ❋ पुरुपोत्तम १४ कहा है. १५ तात्पर्य नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्द, परिपूर्ण, ऐसे आत्माको पुरुषोत्तम कहते हैं. कभी किसीकालमें जहां बन्ध, मोक्ष, सत, असत् इनशब्दोंका कुछ प्रसंग भी नहीं ॥ १८ ॥

मू०योमामेवमसंमूढोजानातिपुरुषोत्तमम् ॥
ससर्वविद्भजतिमांसर्वभावेनभारत ॥ १९ ॥

भारत १ यः २ असंमूढः ३ एवम् ४ माम् ५ पुरुषोत्तमम् ६ जानाति ७ सः ८ सर्ववित् ९ सर्वभावेन १० माम् ११ भजति १२ ॥ १९ ॥ अ० उ० जो आत्मासे अभिन्न परमात्माकोही पुरुपोत्तम जानता है उसका माहात्म्य कहते हैं. हे अर्जुन १ जो २ मूलाज्ञानरहित ऐसा विद्वान् ३ इसप्रकार ४ सि० मैं क्षर और अक्षर इन दोनोंसे अन्य नित्यमुक्त शुद्ध सच्चिदानन्द हूं. ❋ मुझ ५ पुरुपोत्तमको ६ जानता है ७ सो ८ सर्वज्ञ विद्वान् ९ सर्वभाव करके १० मुझको ११ भजता है. १२ तात्पर्य जिसको आत्मज्ञान हुवा वो सदा भजनही करता रहता है ॥ १९ ॥

मू०इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयानघ ॥
एतद्बुद्ध्वाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत ॥ २० ॥

अनघ १ मया २ इदम् ३ गुह्यतमम् ४ शास्त्रम् ५ उक्तम् ६ इति ७ भारत ८ एतत् ९ बुद्ध्वा १० बुद्धिमान् ११ कृतकृत्यः १२ च १३ स्यात् १४ ॥ २० ॥ अ० उ० इसअध्यायमें समस्तवेद शास्त्रोंका सिद्धान्त श्रीनारायणने निरूपण करादिया. जो इस अध्यायके अर्थको जानगया वो कृतकृत्य हुवा, उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं रहा. और जिसका मन पापपुण्यमें खटकता है, और जिसने आत्माको असंग अकर्त्ता नहीं जाना उसको इसअध्यायका अर्थभी नहीं समझा. क्योंकि श्रीमहाराज स्पष्ट कहते हैं कि इस अ-

ध्यायके अर्थको जानकर कृतकृत्य होजाता हैं. हेअर्जुन १ मैंने २ यह ३ गुप्ततम ४ शास्त्र ५ कहा ६ इति इसशब्दका यह तात्पर्यार्थ है कि समस्तगीताशास्त्र गुप्ततम है, और गीताहीको शास्त्र कहते हैं. परंतु इसजगे शास्त्रशब्दका तात्पर्य इसीअध्यायसे है ७ हे अर्जुन ८ इसको ९ अर्थात् इसीअध्यायके अर्थको ९ जानकर १० ब्रह्मज्ञानी ११ कृतकृत्यही १२।१३ होजाता है. १४ तात्पर्य फिर उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं. वो कर्मबन्धनसे मुक्त हुवा ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवें अध्यायका प्रारंभ हुवा.

मू०श्रीभगवानुवाच ॥ अभयंसत्त्वसंशुद्धि-
र्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः॥ दानंदमश्चयज्ञश्च
स्वाध्यायस्तपआर्जवम् ॥ १ ॥

अभयम् १ सत्त्वसंशुद्धिः २ ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ३ दानम् ४ दमः ५ च ६ यज्ञः ७ च ८ स्वाध्यायः ९ तपः १० आर्जवम् ११ ॥ १ ॥ अ० जु० दैवीसम्पतके २६ लक्षण कहते हैं ढाईश्लोकोंमें. भय न होना १ अंतःकरणमें रागद्वेषादिका न होना २ ज्ञानयोगमें स्थित रहना ३ दान करना ४ सि० इसका लक्षण सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❋और इंद्रियोंका दमन करना ५।६ और यज्ञ करना ७।८ सि० इसका लक्षणभी सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❋ वेदशास्त्रोंका पढना पाठ करना ९ तप दोप्रकारका है. एक सदा नित्यानित्यपदार्थोंका विचार करना, दूसरा चान्द्रायणादिव्रत करना १०सीधापन ११ ॥१॥

मू० अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागःशान्तिरपैशुनम् ॥
दयाभूतेष्वऽलोलुप्त्वंमार्दवंह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

अहिंसा १ सत्यम् २ अक्रोधः ३ त्यागः ४ शान्तिः ५ अपैशुनम् ६ भूतेषु ७ दया ८ अलोलुप्त्वम् ९ मार्दवम् १० ह्रीः ११ अचापलम् १२ ॥ २ ॥ अ० मनवाणीशरीरकरके किसीको दुःख नहीं देना १ सत्य बोलना २ क्रोध न करना ३ त्याग (समस्तपदार्थोंका) ४ अंतःकरणका उपशम याने निरोध ५ पीछे किसीका अवगुण नहीं कहना ६ सि० यथार्थ पापका कहनेवाला बराबरका पापी होता है. और जो बढाकर कहे तो दूना पापी होता है ❋ प्राणियोंमें ७ दया ८ नीचोंके सामने दीनता न करना ९ कोमलता १० लज्जा रखना खोटे कामोंमें ११ चपल न होना १२ ॥ २ ॥

मू० तेजःक्षमाधृतिःशौचमद्रोहोनातिमानिता ॥
भवंतिसंपदंदैवीमभिजातस्यभारत ॥ ३ ॥

तेजः १ क्षमा २ धृतिः ३ शौचम् ४ अद्रोहः ५ अतिमानिता ६ न ७ भारत ८ दैवीम् ९ संपदम् १० अभिजातस्य ११ भवन्ति १२ ॥ ३ ॥ अ० प्रागल्भ्यता १ अर्थात् दृष्टिमात्रसे दूसरा दबजाय बालकस्त्रीमूर्खादि सहसा हँसी चोहल न कर बैठें. जैसी राजाकी दृष्टि रहती है. ऐसेही पुरुषोंको तेजस्वी कहते हैं १ सहना २ धैर्य ३ पवित्र रहना ४ वैर नहीं करना ५ अतिमानी ६ नहीं होना ७ हे अर्जुन ८ दैवी ९ सम्पतके १० सि० जो सन्मुख ❋ जन्मा है ११ सि० तिसमें ये लक्षण ❋ होते हैं १२ सि० कि जो पीछे ढाईश्लोकमें कहे ❋ तात्पर्य देवतोंका पद जिसको प्राप्त होता है, उसको ये लक्षण होते हैं. जिसमें ये लक्षण स्वाभाविक नहो, उसको यत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

मू० दंभोदर्पोऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥
आज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरीम् ॥४॥

दंभः १ दर्पः २ अभिमानः ३ च ४ क्रोधः ५ पारुष्यम् ६ एव ७ च ८ अज्ञानम् ९ च १० पार्थ ११ आसुरीम् १२ संपदम् १३ अभिजातस्य १४ ॥४॥ अ० उ० इस मंत्रमें असुरोंके लक्षण संक्षेपकरके कहते हैं, आगे फिर विस्तार सहित कहेंगे. जो अपनेमें कोई तनकसाभी गुण हो, तो उसको एक भागका अनेकभाग बनाकर वारंवार लोगोंके सामने अनेकयुक्तियोंके साथ प्रकट करना १ धनविद्याजातिवर्णाश्रमादिकी मनमें घमंड रहना २ और महात्मासाधुहरिभक्तोंके सामने नम्र न होना ३।४ द्वेष (वैर) करना ५ और कठोरता ६।७।८ अर्थात् आपतो छिप छिप मेवा मिसरी खावे, घरके लोगोंको गुडभी नहीं. साधुहरिभक्तोंको देखकर दुष्टोंका हृदय भस्म होजाय. और वाणीसे दुर्वाक्य कहनेलगे ६।७।८ सि० ऐसा कठोर ❋ और मूलाज्ञान ९।१० हे अर्जुन ११ आसुरीसम्पतको १२।१३ सि० जो प्राप्त होगा, असुरपदके सामने मुखकरके जो ❋ उत्पन्न हुवा है, १४ सि० उसमें ऐसे लक्षण होते हैं, कि दंभादि जो इसमंत्रमें कहे, ❋ तात्पर्य ऐसे प्राणी असुरपदको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

मू०दैवीसंपद्विमोक्षायनिबंधायासुरीमता ॥
माशुचःसंपदंदैवीमभिजातोसिपांडव ॥ ५ ॥

दैवीसम्पत् १ विमोक्षाय २ आसुरी ३ निबंधाय ४ मता ५ पांडव ६ माशुचः ७ दैवीम् ८ संपदम् ९ अभिजातः १० असि ११ ॥५॥ अ० उ० दैवीसंपतका और आसुरीसंपतका फल कहते हैं. दैवीसंपत् १ मोक्षको लिये २ आसुरी ३ बंधकेलिये ४ मानी ५ सि० है महात्मा महापुरुषोंने. ❋ हे अर्जुन ६ तूं मत शोचकर ७

दैवीसंपतके सन्मुख ८।९ जन्मा १० है तूं. ११ सि० दैवीसंपतके लक्षणोंके तर्फ तेरी वृत्ति है, देवतोंके पदको तूं प्राप्त होगा ❃ तात्पर्य ज्ञानद्वारा मोक्ष होगा. दैवीसंपतके लक्षण जिनमें है, उनकाही ज्ञानमें अधिकार है. असुरोंका नहीं ॥ ५ ॥

मू० द्वौभूतसर्गौलोकेस्मिन्दैवआसुरएवच ॥
दैवोविस्तरशःप्रोक्तआसुरंपार्थमेशृणु ॥ ६ ॥

अस्मिन् १ लोके २ भूतसर्गौ ३ द्वौ ४ दैवः ५ आसुरः ६ एव ७ च ८ पार्थ ९ दैवः १० विस्तरशः ११ प्रोक्तः १२ आसुरम् १३ मे १४ शृणु १५ ॥ ६ ॥ अ० इसजगतमें १।२भूतोंकी सृष्टि ३ दोप्रकारकी ४ सि० है. एक ❃ दैव ५ सि० देवसंबंधिनी. दूसरी ❃ आसुर ६।७।८ सि० असुरसंबंधिनी ❃ हे अर्जुन ९ दैव १० अर्थात् देवतोंका लक्षण १० विस्तापूर्वक ११ सि० मैंने ❃ कहा. १२ असुरोंका लक्षण १३ मुझसे १४ सि० विस्तारपूर्वक अब ❃ सुन. १५ सि० असुरस्वभावको त्यागना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

मू० प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचजनानविदुरासुराः ॥
नशौचंनापिचाचारोनसत्यंतेषुविद्यते ॥ ७ ॥

प्रवृत्तिम् १ च २ निवृत्तिम् ३ च ४ आसुराः ५ जनाः ६ न ७ विदुः ८ तेषु ९ न १० शौचम् ११ न १२ अपि १३ च १४ आचारः १५ न १६ सत्यम् १७ विद्यते १८ ॥ ७ ॥ अ० प्रवृत्तिको १।२ और निवृत्तिको ३।४ असुरजन ५।६ नहीं ७ जानते हैं. ८ तिनमें ९ न १० शौच ११ और न आचार १२।१३।१४।१५ न १६ सत्य १७ होता है. १८ सि० कोई प्रवृत्ति ऐसी होती है, कि उसका फल निवृत्ति है. और कोई निवृत्ति ऐसी होती है, कि उसका फल प्रवृत्ति है. यह समझ असुरोंको नहीं. और वेदोक्त आचार तो पृथक् रहा, दुष्ट स्नानतक नहीं करते. और विनाहाथपैरधोये भोजन करने

लगते हैं. कोईकोई यह कहते हैं कि विना झूंठ व्यवहार चलता ही नहीं. जैसा जूँठ खानेमें उनको ग्लानि नहीं, ऐसा झूंठ बोलनाभी एक व्यवहार समझ रक्खा है. सत्यसम धर्म नहीं, असत्यसम अधर्म नहीं. इति सिद्धान्तः ॥ ७ ॥

मू० असत्यमप्रतिष्ठंतेजगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतंकिमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८॥

ते १ जगत् २ अनीश्वरम् ३ आहुः ४ असत्यम् ५ अप्रतिष्ठम् ६ अपरस्परसंभूतम् ७ कामहैतुकम् ८ अन्यत् ९ किम् १० ॥ ८ ॥

अ० वे १ अर्थात् असुर १ जगतको २ अनीश्वर ३ कहते हैं. ४ अर्थात् कर्मोंके फलका देनेवाला कोईभी नहीं. सब ३।४ झूंट ५ सि० है. जैसे आप झूंटे है ऐसेही जगतको झूंटा समझते हैं. कहते हैं कि जगतकी कुछ व्यवस्था नहीं. ऐसे ही गोलमोल चला आता है. वेदपुराणादिधर्मकी ❋ प्रतिष्ठा नहीं ६ सि० समझते. वेदादिको बडा नहीं समझते. यह जानते हैं, जैसी विद्या मनुष्योंकी बनाई हुई है. वेदभी किसी मनुष्यके बनाये हुवे हैं. धर्मके उपदेशको बहकाना समझते हैं. इसप्रकार जगतको अप्रतिष्ठ अव्यवस्थित कहते हैं. (असत्यंअप्रतिष्ठं) ये दोनों जगतके विशेषण हैं. जो कोई उन्होंसे बूझे कि क्योंजी यह जगत कैसा उत्पन्न हुवा है, इसका क्या हेतु है, तो उत्तर यह देते हैं कि अजी ❋ परस्परस्त्रीपुरुषोंके संबंधसे हुवा है, ७ कामदेव इसका हेतु है. ८ अन्य ९ क्या १० सि० हेतु होता ❋ ॥ ८ ॥

मू० एतांदृष्टिमवष्टभ्यनष्टात्मानोल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणःक्षयायजगतोहिताः ॥ ९ ॥

नष्टात्मानः १ अल्पबुद्धयः २ उग्रकर्माणः ३ अहिताः ४ एताम् ५ दृष्टिम् ६ अवष्टभ्य ७ जगतः ८ क्षयाय ९ प्रभवंति १० ॥ ९ ॥ अ०

मलिनचित्तवाले १ मंदमति २ हिंसात्मककर्मवाले ३ सि० धर्मके * वैरी ४ इसदृष्टीका ५।६ आश्रय करके ७ जगतको ८ भ्रष्ट करनेकेलिये ९ हुवे हैं. १० टी० जगतः अहिताः अर्थात् जगतके वैरी हैं. यहभी अर्थ होसक्ता है. दुष्टलोग साधु हरिभक्तोंके वैरी होते हैं. साधु जगतके रक्षक हैं. जबकि उनसे वैरी होते हैं. जबकि उनसे वैर किया तो सब जगतसे उनका वैर हुवा. जो लौकिकव्यवहार है सोई सत्य है. यह दृष्टि रखते हैं ॥ ९ ॥

मू० काममाश्रित्यदुष्पूरंदंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।१०।

दंभमानमदान्विताः १ दुष्पूरम् २ कामम् ३ आश्रित्य ४ अशुचिव्रताः ५ मोहात् ६ असद्ग्राहान् ७ गृहीत्वा ८ प्रवर्तन्ते ९ ॥१०॥ अ० दंभमानमदकरकेयुक्त १ जिसका पूर्ण होना कठिन ऐसे २कामनाका३ आश्रयकरके ४ अपवित्र आचार है जिनका५बेहूदेपनसे६ दुराग्रहका ७ अंगीकारकरके ८ सि० निन्दितमार्गमें * वर्तते हैं.९ तात्पर्य यह मंत्र जपकर असुकभूतप्रेतको सिद्ध करेंगे. फिर उससे यह काम लेंगे. इसप्रकार बेहूदी बात सुनसुन, सीखसीख, कि जिन बातोंमें सिवाय दुःखविक्षेपके कभी कुछ अन्यसुखादि फल नहीं. दंभादिकरके अंधे होरहे हैं. किसीकी सुन्तेभी नहीं. जो अंगीकार करलिया उसमें कितनीही निन्दाक्षतीहो त्यागना नहीं. और यही आशा रखना कि यह कर्तव्य हमारा हमको अवश्य सुख देगा॥१०॥

मू०चिंतामपरिमेयांचप्रलयान्तामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमाएतावदितिनिश्चिताः॥ ११ ॥

अपरिमेयाम् १ च २ प्रलयांताम् ३ चिन्ताम् ४ उपाश्रिताः ५ कामोपभोगपरमाः ६ एतावत् ७ इति ८ निश्चिताः ९ ॥ ११॥अ० बे प्रमाण १ और २ मरण है अन्त जिसका ३ सि० ऐसे * चिन्ता-

का ४ आश्रय कियेहुवे ५ अर्थात् सदा ऐसे चिंतामें लगे हुवे कि जो मरनेसे तो समाप्ति हो. जीतेजी सदा बनी रहे ३।४।५सि०काम और भोगोंसे श्रेष्ठ कुछ अन्य नहीं ❋ यह ८ निश्चय है जिनका ९ सि० ऐसे लोग अन्यायकरके पदार्थोंको संचय करते हैं. अगले मंत्रके साथ इसमंत्रका अन्वय है ❋ ॥ ११ ॥

मू०आशापाशशतैर्बद्धाःकामक्रोधपरायणाः॥
ईहन्तेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्॥१२॥

आशापाशशतैः १ बद्धाः २ कामक्रोधपरायणाः ३ अन्यायेन ४ अर्थसंचयान् ५ कामभोगार्थम् ६ ईहन्ते ७ ॥ १२ ॥ अ० आशाके सैकरों फांसीकरके १ बंधेहुवे हैं २ अर्थात् असंख्यात आशामें फँसे हुवे हैं छूट नहीं सक्ते १।२ कामक्रोधकोही परम स्थान बना रक्खा है ३ अर्थात् सदा कामक्रोधपरायण रहते हैं ३ अनीतिकरके ४ द्रव्य मकान गांव इकट्ठे करते हैं. ५ भोगोंकेलिये ६ सि०यही सदा ❋ चेष्टा करते हैं, ७ तात्पर्य पदार्थोंके छीनलेनेमें तत्पर रहते हैं जैसे बने इत्यादि अनीतिकरके अपने भोगके अर्थ परायामाल छीनलेना और फिरभी असंख्यात आशामें फँसे रहना. सदा कामक्रोध बनेही रहते हैं. एसे पुरुष नरकमें पडेंगे वहां इसश्लोकका अन्वय है ॥ १२ ॥

मू०इदमद्यमयालब्धमिदंप्राप्स्येमनोरथम्॥
इदमस्तीदमपिमेभविष्यतिपुनर्धनम्॥१३॥

अद्य १ इदम् २ मया ३ लब्धम् ४ इदम् ५ प्राप्स्ये ६ मनोरथम् ७ इदम् ८ मे ९ अस्ति १० इदम् ११ अपि १२ धनम् १३ पुनः १४ भविष्यति १५ ॥ १३ ॥ अ० उ० दुष्टजनोंका मनोराज्य चारमंत्रोंमें कहते हैं. अब १ यह २ सि०तो ❋ मुझको ३ प्राप्त है ४ सि० और ❋ यह ५ प्राप्त करूंगा ६ सि० यह मेरा ❋ मनोरथ ७ सि०

है ❀ यह ८ सि॰ धनतो ❀ मेरा ९ है १० सि॰ और ❀ यह ११ भी १२ धन १३ फिर १४ सि॰ अवश्यही ❀ प्राप्त होगा. १५ सि॰ ऐसे पुरुष अपवित्रनरकमें पडेंगे, यह सोलहवें मंत्रमें श्रीमहाराज कहेंगे ❀ ॥ १३ ॥

मू॰ असौमयाहतःशत्रुर्हनिष्येचापरानपि ॥
ईश्वरोहमहंभोगीसिद्धोहंबलवान्सुखी ॥ १४ ॥

मया १ असौ २ शत्रुः ३ हतः ४ च ५ अपरान् ६ अपि ७ हनिष्ये ८ अहम् ९ ईश्वरः १० अहम् ११ भोगी १२ अहम् १३ सिद्धः १४ बलवान् १५ सुखी १६ ॥ १४ ॥ अ॰ मैंने १ वो २ शत्रु ३ सि॰ तो ❀ मारा ४।५ सि॰ और अमुकअमुक ❀ औरोंको ६ भी ७ मारूंगा. ८ मैं ९ समर्थ १० मैं ११ भोगी, १२ मैं १३ सिद्ध १४ बलवाला १५ सुखी १६ सि॰ हूं ❀ टी॰ लोगोंके मारनेमें समर्थ हूं १० अच्छा खाता पीता हूं १२ कृतकृत्य हूं १४ मैंने बडेबडे काम किये हैं कि वे मेरेही करनेके योग्यथे, अन्यसे नहीं हो सक्ते. ॥ १४ ॥

मू॰ आढ्योभिजनवानस्मिकोन्योस्तिसदृशोमया॥
यक्ष्येदास्यामिमोदिष्यइत्यज्ञानविमोहिताः॥ १५ ॥

आढ्यः १ अभिजनवान् २ अस्मि ३ मया ४ सदृशः ५ कः ६ अन्यः ७ अस्ति ८ यक्ष्ये ९ दास्यामि १० मोदिष्ये ११ इति १२ अज्ञानविमोहिताः १३ ॥ १५ ॥ अ॰ धनवान् साहुकार १ कुलीन २ हूं मैं, ३ मेरे ४ बराबर ५ कौन ६ अन्य दूसरा ७ है. ८ सि॰ अब मैं एक ❀ यज्ञ करूंगा ९ सि॰ उसमें बहुत कुछ ❀ देऊँगा १० आनन्दको प्राप्त हूंगा. ११ इसप्रकार १२ अज्ञानकरके मोहित हुवे १३ सि॰ झूंटा वृथा मनोराज्य करते हुवे, अवस्था व्यतीत करते हैं धनजातीके अभिमानमें जलेही जाते हैं. यज्ञकरनेका

जो मनोराज्य है उसमें उनका यह तात्पर्य है कि थोडा-बहुत रजोगुणी तमोगुणी अन्न ऐसे वैसे ब्राह्मणोंको जिमाकर औरों-की बुराई किया करेंगे, और दोचार पैसे देनेकोही बडा दान सम-झते हैं. जबकभी किसी फकीरको, वा खुशामदीलोगोंको या नट-वेश्यादीको, अपने बडाईके लिये कुछ देदेते हैं, तो अपनेको बडा दाता समझते हैं. बहुत प्रसन्न होते हैं. ❋ ॥ १५ ॥

मू० अनेकचित्तविभ्रांतामोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताःकामभोगेषुपतन्तिनरकेशुचौ ॥ १६ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ताः १ मोहजालसमावृताः २ कामभोगेषु ३ प्रसक्ताः ४ अशुचौ५नरके६पतंति७ ॥१६॥ अ०उ० ऐसे लोगोंकी जो गति होती है उसको सुन. अनेकमनोराज्यमें चित्तविभ्रान्त हो-रहा है जिनका १ मोहके जालमें फंसे हुवे २ कामभोगोंमें ३ आस-क्त ४ सि० है जो सो ❋ अपवित्र ५ नरकोंमें ६ पडेंगे. ७ ॥१६॥

मू० आत्मसंभाविताःस्तब्धाधनमानमदान्विताः ॥
यजंतेनामयज्ञैस्तेदंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

आत्मसंभाविताः १ स्तब्धाः २ धनमानमदान्विताः ३ ते ४ दं-भेन ५ अविधिपूर्वकम् ६ नामयज्ञैः ७ यजंते ८ ॥ १७ ॥ अ० अ-पने आपही आपको बडा समझकर अपनेको बडा प्रतिष्ठित जानते हैं १ अनम्र २ सि० किसीमहात्माके सामने नम्र नहीं होते ❋ ध-नकरके जो उनका मान होता है, उसमानके मदमें भरे रहते हैं ३ अर्थात् धनके चाहनेवाले मूर्ख धनीलोगोंकाही मान किया करतेहैं३ सि० जो ऐसे उन्मत्त हैं ❋ वे ४ दंभकरके ५ शास्त्रविधिरहित ६ नामयज्ञकरके ७ यजन करते हैं ८. अर्थात् वास्तव वो यज्ञ नहीं कि जो वे करते हैं, उसका यज्ञनाम बना रक्खाहै, या नामके वा-स्ते यज्ञ करते हैं. विधिरहित. इत्यभिप्रायः ॥ १७ ॥

मू० अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंचसंश्रिताः॥
मामात्मपरदेहेषुप्रद्विषन्तोभ्यसूयकाः॥ १८॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ च ६ संश्रिताः ७ आत्मपरदेहेषु ८ माम् ९ प्रद्विषंतः १० अभ्यसूयकाः ११ ॥ १८॥ अ० अहंकार १ बल २ दर्प ३ काम ४ और क्रोध इनका ५।६ आश्रय किये हुवे ७ अपने देहके विषय और दूसरे देहके ८ सि० जो मैं सच्चिदानंद विराजमान हूं * मुझसे ९ द्वेष करते हैं. १० सि० मेरी * निंदाकरते हैं ११ सि० अपने देहमें या पराये देहमें जो आत्माको पूर्ण ब्रह्म नहीं समझते वे भगवतके निन्दक हैं. और जो दूसरेसे द्वेषकरते हैं वेभी प्रभूके द्वेषी हैं. और जो मनुष्य देहपाकर आत्मज्ञानकेलिये यत्न नहीं करते, वेभी प्रभूके वैरी हैं *इत्यभिप्रायः॥ १८॥

मू० तानहंद्विषतःक्रूरान्संसारेषुनराधमान्॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु॥ १९॥

संसारेषु १ नराधमान् २ द्विषतः ३ क्रूरान् ४ तान् ५ अहम् ६ अशुभान् ७ आसुरीषु ८ योनिषु ९ एव १० अजस्रम् ११ क्षिपाभि १२ ॥ १९ ॥ अ० उ० ऐसे दुष्टोंको जी मैं दंडकरता हूं सो सुन दोमंत्रोंमें. संसारमें १ आदमियोंके विषय जो अधम नर २ सि० साधु महापुरुषोंसे * वैर रखते हैं ३ निर्दय याने दया रहित ४ तिनको ५ मैं ६ अशुभ लोकमें ७ अर्थात् रौरवादिनरकमें ७ और आसुरीयोनियोंमें ८।९ निश्चय १० सदाकेलिये ११ फेंकूंगा १२ अर्थात् पहले तो बडेबडे नरकोंमें डालूंगा ऐसे दुष्टोंको कि जो मेरे भक्तसाधुजनोंको दुर्वाक्य बोलते हैं. और जिनके लक्षण ऊपर कहे, उनको सदा इसीचक्रमें रक्खूंगा॥ १२॥ १९॥

मू०आसुरींयोनिमापन्नामूढाजन्मनिजन्मनि ॥
मामप्राप्यैवकौंतेयततोयांत्यधमांगतिम्॥२०॥

मूढाः १ आसुरीम् २ योनिम् ३ आपन्नाः ४ जन्मनि ५ जन्मनि ६ मां ७ अप्राप्य ८ एव ९ कौन्तेय १० ततः ११ अधमाम् १२ गतिम् १३ यांति १४ ॥ २०॥ अ० उ० ऐसे दुष्टोंको मेरे प्राप्तीका मार्गभी नहीं मिलेगा. क्योंकि मेरे प्राप्तीका मार्ग मेरे भक्त साधु जानते हैं. वे ऐसे दुष्टोंको न दरशन देते हैं, न संभाषण करते हैं. और जो लालचसे ऐसे दुष्टोंको उपदेश करते हैं वे साधु भक्त नहीं. वर्णसंकर कमीना कोई नीचजात है. मूढ १ आसुरी २ योनियोंको ३ प्राप्त हुवे ४ जन्मजन्ममें ५।६ मुझको ७ नहीं प्राप्तहोकर ८ निश्चय ९ हे अर्जुन १० पीछे ११ अधम १२ गतीको १३ प्राप्तहोंगे. १४ तात्पर्य हेअर्जुन। किसीयुगमेंभी मेरे भक्तोंके कृपाविना मेरी प्राप्ती नहीं होती. जो मुझको बुरा कहते हैं, वो तो मैं सहजाताहूं. परंतु जो मेरे भक्तका याने साधूका अपराध करे वो मुझसे नहीं सहाजाता. उसको मैं तुरत काठिनसे काठिन तीव्र दंड करताहूं. हिरण्यकशिपूने बहुत मुझसे द्वेष किया, परन्तु मुझको क्षोभ न हुवा. जिसकालमें मेरे भक्तके साथ (प्रह्लादका) द्वेष किया. एक पल न सहसका. जो कुछ कि मैंने किया सो भागवतादिमें प्रसिद्ध है. इत्यभिप्रायः ॥ २० ॥

मू०त्रिविधंनरकस्येदंद्वारंनाशनमात्मनः ॥
कामःक्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत्२१॥

कामः १ क्रोधः २ तथा ३ लोभः ४ इदम् ५ त्रिविधम् ६ नरकस्य ७ द्वारम् ८ आत्मनः ९ नाशनम् १० तस्मात् ११एतत्१२ त्रयम् १३ त्यजेत् १४ ॥ २१ ॥ अ० उ० जितने दोष आसुरीसंपतवाले पुरुषोंके कहे, उनमें काम क्रोध और लोभ ये तीन सबके कारण हैं. प्रथम उनको अवश्य त्यागना चाहिये. काम १ क्रोध २ और ३ लो-

भ४ यह५तीन प्रकारका ६ नरकका७द्वार८आत्माको९नरकमें और पशुआदिदुष्टयोनियोंमें प्राप्त करनेवाला १० सि०है ❋तिसकारणसे ११ इन १२ तीनको१३त्यागना१४सि०चाहिये. ❋तात्पर्य कामादितीनोंही नरकके द्वार हैं. इनमेंसे जो एकभी होगा तो वोही एक नरकको प्राप्त करेगा. और जिसमें ये तीनों होंगे वो तो जीतेजी नरकमें हैं,मरकर उसको नरक प्राप्त हो तो इसमें क्या कहना है२१॥

मू०एतैर्विमुक्तःकौन्तेयतमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः॥
आचरत्यात्मनःश्रेयस्ततोयातिपरांगतिम्२२॥

कौंतेय १ एतैः २ त्रिभिः ३ तमोद्वारैः ४ विमुक्तः५ नरः ६ आत्मनः ७ श्रेयः ८ आचराति ९ ततः १० परां ११ गतिम् १२ याति १३ ॥ २२ ॥ अ० उ० कामादिके त्यागका फल कहते हैं. हे अर्जुन १ इनतीन नरकके द्वारोंसे २।३।४ छूटा हुवा ५ सि० जो ❋ पुरुष ६ आत्माका ७ भला ८ करता है. ९ अर्थात् कामादिको प्रथम त्यागकर पीछे आत्मप्राप्तीके लिये शुभाचरण करता है, ९ तव १० परमगतीको ११।१२ प्राप्त होता है. १३ तात्पर्य जैसे औषधी तव गुण करती है कि, जव प्रथम खटाई मिठाई आदि पदार्थोंका त्यागकरदे.तैसेही शुभकर्म जपपाठादि तव फल देंगे,जव प्रथम कामादिका त्याग होगा. कामादिके त्यागनेसे अंतर्मुख वृत्ति होती है.विनाअंतर्मुख हुवे विचार नहीं होसक्ता,विनाविचार ज्ञान नहीं होता, विनाज्ञान मुक्ति नहीं. इसवास्ते कामादिका त्याग अवश्य होना चाहिये ॥ २२ ॥

मू० यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकामकारतः॥
नससिद्धिमवाप्नोतिनसुखंनपरांगतिम्॥ २३ ॥

यः १ शास्त्रविधिम् २ उत्सृज्य ३ कामकारतः ४ वर्तते ५ सः ६ न ७ सिद्धिम् ८ अवाप्नोति ९ न १० सुखम् ११ न १२ पराम् १३ गतिम् १४ ॥ २३ ॥ अ० उ० कामादिका त्याग जो लोगोंसे नहीं

होसक्ता, उसमें हेतु यह है कि, शास्त्रके विधिको छोड इच्छापूर्वक वर्तते हैं. जो १ शास्त्रविधिको २ उलंघकर ३ इच्छापूर्वक ४ वर्तता है, ५ सो ६ न ७ सिद्धिको ८ प्राप्त होता है ९ न १० सुखको ११ न १२ परमगतीको. १३।१४ तात्पर्य उसको न इसलोकमें सुख होता है न सद्गति (मुक्ति) होती है. और इसलोकमें किसीप्रकारकी उसको सिद्धिभी नहीं होती. इसजगे उन लोगोंका प्रसंग है, कि, जिनका शास्त्रमें अधिकार है, जानवूझ शास्त्रके विधिका उलंघन करते हैं. ज्ञानीजन कृतकृत्य हैं, उनका यहां प्रसंग नहीं. और अनजानलोग, या अन्यद्वीपनिवासी, या शास्त्रसे अन्यमतवाले, शास्त्रविधिको उलंघकर अपने मतके अनुसार या स्वाभाविक इच्छापूर्वक वर्तते हैं. उनकाभी यहां प्रसंग नहीं. क्यों कि उनकेलिये अर्जुन सत्रहवें अध्यायमें प्रश्न करेंगे और श्रीमहाराज स्पष्ट उत्तर देंगे ॥ २३ ॥

मू० तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंतेकार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि॥२४ ॥

तस्मात् १ कार्याकार्यव्यवस्थितौ २ ते ३ शास्त्रम् ४ प्रमाणम् ५ शास्त्रविधानोक्तम् ६ कर्म ७ ज्ञात्वा ८ इह ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ ॥ २४ ॥ अ० तिसकारणसे १ यह करना चाहिये और यह न करना चाहिये इसव्यवस्थामें २ तुझको ३ शास्त्र ४ प्रमाण ५ सि० है. ❋ शास्त्रमें जो करना कहा है उसकर्मको ६।७ जान करके ८ इसकर्मके अधिकारभूमीमें ९ अर्थात् इसमनुष्यदेहसे मर्त्यलोकमें ९ सि० कर्म ❋ करनेको १० योग्य है तूं. ११ तात्पर्य जो शास्त्रने कहा सोई कर. और जिसकर्मको बुरा कहा सो नकर. यहां शास्त्रही प्रमाण है, बुद्धीका काम नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पत्तिवर्णनयोगोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवे अध्यायका प्रारम्भ हुवा.

उ० सोलहवें अध्यायमें श्रीभगवाननें कहा कि, जो शास्त्रके विधिका उलंघन करके वर्तते हैं, (अपनी इच्छापूर्वक) उनको न इसलोकमें सुख होता है, न उनको सद्गति होती है. इसमें कम समझोंको यह शंका प्रतीत होती है कि, जिन्होंनें श्रीमहाराजका तात्पर्य नहीं जाना. वो शंका यह है कि असंख्यात अन्यद्वीपके लोक, और इसद्वीपमेंभी वेदोक्तमतसे अन्यमतवाले, और ग्रामनिवासी वहुत अनजानलोक शास्त्रके विधीका उलंघन करके वर्तते हैं, उनको इसलोकमें तो जैसा सुख अपने कर्मोंके अनुसार वेदोक्तकर्मकरनेवालोंको होता है, वैसाही उनको अपने अपने कर्मोंके अनुसार प्रत्यक्ष दीखता है. और परलोकमें सबकी दुर्गति हो, यह बात अयुक्त है.क्योंकि सब प्रजा एक ईश्वरकी है.वो ईश्वर ऐसा नहीं कि सब अन्यद्वीपनिवासियोंकी दुर्गति करे. यह शका एक नाममात्र संक्षेपकरके लिखी गई है. उत्तरभी इसका संक्षेपकरके लिखा जाता है. प्रथम यह कि, श्रीभगवानने चौदहवें अध्यायमें स्पष्ट कहा है, कि सतोगुणी पुरुष ऊपरके लोकोंको प्राप्त होते हैं, रजोगुणी मध्यमें स्थित रहते हैं, और तमोगुणी अधोगतीको प्राप्त होते हैं. ये तीनों गुण यत्न करनेसे भी वर्तते हैं, और स्वाभाविकभी वर्तते हैं. सबलोग अपने गुणोंके तारतम्यतासे सद्गतीको और दुर्गतीको प्राप्त होंगे. वे किसी जातीमें वा किसी मतमें वा अनजान हों, शास्त्रोक्त जो कर्म करते हैं, जिनकी शास्त्रमें श्रद्धा है, जो वे यत्न करें, तो रजोगुणी तमोगुणी ऐसे अपने स्वभावको पलट सक्ते हैं. और जिनकी वेदशास्त्रमें श्रद्धा नहीं, वे नहीं पलट सक्ते. वे अपने स्वभावके अनुसार रहेंगे. वैदिकअवैदिकमतमें इतना अन्तर है. दूसरी एक सूक्ष्म वात यह है, कि वेदोक्तकर्मधर्म ईश्वराराधनादि सब अध्या-

रोप है. और जो शास्त्रके विधिका उलंघनकरके अपने मतके अनुसार कर्म करते हैं,वो अध्यारोप है.विद्वानोंके दृष्टीमें अध्यारोप कल्पित है.विनाज्ञान सब सम हैं.ज्ञानमें सतोगुणीका अधिकार है. सो सतोगुण स्वाभाविक हो वा प्रयत्न करके किसीने संपादन किया हो.ज्ञानी सतोगुणको देखकर ज्ञानका उपदेश बेसन्देह करेंगे, कि जिससे परमगति होती है. सोलहवें अध्यायमें श्रीमहाराजनें उनलोगोंके वास्ते ऐसा कहा है. उनको न इसलोकमें सुख होगा न परलोकमें. कि जिनका शास्त्रमें अधिकार है, और वे शास्त्रार्थको जानबूझ शास्त्रके विधिका उलंघन करते हैं. क्योंकि उनको कुछभी आश्रा न रहा ज्ञाननिष्ठोंका यहां प्रसंग नहीं. वे विधिनिषेधसे मुक्त हैं.

मू॰ अर्जुनउवाच ॥ येशास्त्रविधिमुत्सृज्य
यजंतेश्रद्धयान्विताः ॥ तेषांनिष्ठातुकाकृष्ण
सत्वमाहोरजस्तमः ॥ १ ॥

कृष्ण १ ये २ श्रद्धया ३ अन्विताः ४ शास्त्रविधिम् ५ उत्सृज्य ६ यजन्ते ७ तेषाम् ८ निष्ठा ९ तु १० का ११ सत्वम् १२ रजः १३ आहो १४ तमः १५ ॥ १ ॥ अ॰ उ॰ यह पूर्वोक्तशंका करके अर्जुन प्रश्नकरताहै. हेभगवन् १ सि॰ बहुतलोग ❋ जो २ श्रद्धाकरके ३ युक्त ४ शास्त्रके विधिको ५ उलंघकर ६ सि॰ अपने बुद्धीके अनुसार वा वेदशास्त्ररहित अपने गुरुमतके अनुसार ईश्वराराधनादि कर्म ❋ करते हैं ७ तिनकी ८ निष्ठा ९।१० क्याहै. ११ अर्थात् उनका तात्पर्य सिद्धान्त क्या है ११ सि॰ उनकी निष्ठा ❋ सतोगुणी १२ सि॰ वा ❋ रजोगुणी १३ वा १४ तमोगुणी. १५ तात्पर्य जो लोग शास्त्रके अर्थको जानकर शास्त्रोक्त अनुष्ठान नहीं करते, प्रत्युत अनादर करते हैं, उनका और ज्ञानियोंका तो यहां

प्रसंग नहीं अनजानपुरुष जो देखादेखी वा नास्तिकादि जो शास्त्र-के विधीको उलंघकर वर्तते हैं. उनकी क्या निष्ठा समझना चाहिये. उनकी क्या गति होती है. यह अर्जुनके प्रश्नका तात्पर्य है ॥ १ ॥

मू०श्रीगवानुवाच ॥त्रिविधाभवतिश्रद्धादेहिनां
सास्वभावजा ॥ सात्विकीराजसी
चैवतामसीचेतितांशृणु ॥ २ ॥

देहिनाम् १ स्वभावजा २ त्रिविधा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ सा ६ सात्विकी ७ राजसी ८ च ९ एव १० तामसी ११ च १२ इति १३ ताम् १४ शृणु १५ ॥ २ ॥ अ० जीवोंके १ स्वाभाविक २ अर्थात् अपने आप पूर्व संस्कारसेही २ तीन प्रकारकी ३ श्रद्धा ४ है. ५ सो ६ सि०श्रद्धा ❋ सतोगुणी ७ और रजोगुणी ८।९।१० और तमो-गुणी ११।१२।१३ तिनको १४ सुन १५ सि० कहते हैं अगले श्लोकमें. और कार्यभेदसे औरभी आगे बहुत श्लोकोंमें कहेंगे. ❋ ता-त्पर्य शास्त्रमें जिनकी श्रद्धा यथाशक्ति शास्त्रोक्त जो अनुष्ठान करते हैं, उनकी श्रद्धा निष्ठा केवल सतोगुणी समझना. क्योंकि शास्त्रमें यह सामर्थ्य है कि स्वभावको पलट सक्ता है.जिनकी शास्त्रमें श्रद्धा नहीं उनकी श्रद्धा तीनप्रकारकी समझना. जो पूर्वसंस्कारसे वे रजो-गुणी तमोगुणी हैं, तो विनावेदोक्तकर्म किये उनका स्वभाव नहीं पलटेगा ॥ २ ॥

मू०सत्वानुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥
श्रद्धामयोयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ॥ ३ ॥

भारत १ सर्वस्य २ सत्वानुरूपा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ अयम् ६ पुरुषः ७ श्रद्धामयः ८ यः ९ यच्छ्रद्धः १० सः ११ एव १२ सः १३ ॥ ३ ॥ अ० उ० तीनप्रकारकी श्रद्धा ऐसे जानो जैसे अब कहते हैं. हे अर्जुन १ सबके २ अंःतकरणके अनुसार ३ श्रद्धा ४ है ५ यह

६ जीव ७ श्रद्धावान् है ८ जो ९ जिसकी जैसी श्रद्धा है १० अर्थात् जो जिसश्रद्धाकरके युक्त है, १० सो ११ निश्चयसे १२ सोई १३ सि० है. ❋ तात्पर्य जिसकी श्रद्धा जैसे कर्मोंमें. (सतोगुणी आदिमें) है उसको वैसाही समझना चाहिये. आगे आहारादिका भेद (सत्वादि) कहेंगे. उसनिष्ठा और अनुमानसे जानलेना कि यह पुरुष ऐसा है, और इसकी यह निष्ठा है. यह इसकी गती होगी. ऐसा कोई पुरुष नहीं कि जिसकी किसीजगे श्रद्धा नहो. इसवास्ते सबको श्रीभगवाननें श्रद्धावान् कहा. जिनके अंतःकरण शुद्ध है, उनकी सतोगुणी श्रद्धा है. जिनके मलिन अन्तःकरण है, उनकी तमोगुणी रजोगुणी श्रद्धा है. पुरुपके संवन्धसे श्रद्धाकोभी तीनप्रकारकी कही. मोक्षमें जो हेतु है. और साधनचतुष्टयमें उसकी संख्या है, वो केवल सतोगुणीवृत्ति श्रद्धा है. परमार्थमें जिसको श्रद्धा कहते हैं. यह व्यवहारमें तीनप्रकारकी श्रद्धा है, कि जो कही ज्ञानमें अधिकार सतोगुणीश्रद्धावानका है ॥ ३ ॥

मू०यजन्तेसात्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ॥
प्रेतान्भूतगणांश्चान्येयजन्तेतामसाजनाः ॥ ४ ॥

सात्विकाः १ देवान् २ यजंते ३ राजसाः ४ यक्षरक्षांसि ५ तामसाः ६ जनाः ७ प्रेतान् ८ भूतगणान् ९ च १० एव ११ यजंते १२ ॥ ४ ॥ अ० उ० सत्वादिगुणोंको कार्यभेदकरके दिखाते हैं. सतोगुणी १ देवतोंका २ यजन करते हैं ३ रजोगुणी ४ यक्षराक्षसोंको ५ सि० पूजते हैं ❋ तमोगुणीजन ६।७ प्रेत ८ और भूतगणोंकोही ९।१०।११ पूजते हैं १२ ॥ ४ ॥

मू०अशास्त्रविहितंघोरंतप्यन्तेयेतपोजनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताःकामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

ये १ जनाः २ अशास्त्रविहितम् ३ घोरम् ४ तपः ५ तप्यंते ६

दंभाहंकारसंयुक्ताः ७ कामरागबलान्विताः ८ ॥ ५ ॥ अ० जो १ जन २ शास्त्रविधिरहित ३ मैला ४ तप ५ करते हैं, ६ सि० उसमें कारण यह है कि ॐ दंभअहंकारकरके युक्त हैं. ७ सि० फिर कैसे हैं कि ॐ कामरागबलकरके युक्त हैं. ८ तात्पर्य कोईकोई ऐसा तप करते हैं कि वो कर्म स्वरूपसेही मैला है. अर्थात् उसकर्मके करनेमें ग्लानी आती है, और उसके करनेमें शास्त्रकी विधिभी कोई नहीं. उसकर्मका नाम तप रखकर वृथा तपते हैं. हेतु इसमें यह है. प्रथम यह कि लोगोंको दिखानेकेलिये. दूसरा यह कि जैसा हम कर्म करते हैं, ऐसा किसीसे कब होसक्ता है. तीसरा किसी कामनाकेलिये. चौथा रजोगुणके वशसे उसकर्ममें प्रीति होगई है, त्याग नहीं सक्ता. वा पुत्रमित्रादिके प्रीतीसे मित्रादिके रिझानेकेलिये करता है. पांचवाँ बलवाला होनेसे जो चाहता है सो करता है ॥ ५ ॥

मू० कर्षयन्तःशरीरस्थंभूतग्राममचेतसः ॥
मांचैवान्तःशरीरस्थंतान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

अचेतसः १ शरीरस्थम् २ भूतग्रामम् ३ कर्षयन्तः ४ च ५ अंतः ६ शरीरस्थम् ७ माम् ८ एव ९ तान् १० आसुरनिश्चयान् ११ विद्धि १२ ॥ ६ ॥ अ० अज्ञानी १ शरीरमें जो स्थित २ इंद्रियादि ३ सि० तिनको ॐ पीडादेते हैं. ४ और ५ भीतर ६ शरीरकेस्थित ७ सि० जो मैं हूं ॐ मुझको ८ भी ९ सि० दुःख देते हैं ॐ तिनको १० असुरवत् ११ जान. १२ तात्पर्य जो विनाविचार इंद्रियादिको दुःख देते हैं, और पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानन्द ऐसे आत्माको दास और अस्थिचर्मादिका पुतला समझते हैं, वे लोग असुरवत् हैं. जो असुरोंका निश्चय है, सो उनका प्रसिद्ध है. तपका फल शांति है. शांतिकेलिये उपवासादि तप करते हैं. जिसकर्म करनेसे उलटा तमोगुण रजोगुण बढे, और उसकर्मका नाम तप कहा जावे, यह दंभी कपटी पुरुषोंका काम है. ॥ ६ ॥

मू० आहारस्त्वपिसर्वस्यत्रिविधोभवतिप्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथादानंतेषांभेदमिमंशृणु ॥ ७ ॥

आहारः १ तु २ अपि ३ सर्वस्य ४ त्रिविधः ५ प्रियः ६ भवति ७ तथा ८ यज्ञः ९ तपः १० दानम् ११ तेषाम् १२ भेदम् १३ इमम् १४ शृणु १५ ॥ ७ ॥ अ० उ० सतोगुण बढानेके लिये, और रजोगुण तमोगुण कर्मकरनेकेलिये, आहार तप यज्ञ दानको सत्वादि तीनतीनभेदकरके कहते हैं. और इसभेदसे सतोगुणीआदिपुरुषोंकी परीक्षाभी होसक्ती है. अर्थात् जो सतोगुणी आहार यज्ञ तप और दान करता है, उसको सतोगुणी जानना चाहिये. इसीप्रकार तमोगुणरजोगुणमें कल्पना करना. आहार १ भी २।३ सबको ४ तीनप्रकारका ५ प्रिय ६ है ७ और ८ यज्ञ ९ तप १० दान ११ सि० भी सबको तीनप्रकारका प्रिय है. हे अर्जुन ❋ तिनका १२ भेद १३ यह १४ सि० है, कि जो अगलेश्लोकोंमें कहूंगा वो ❋ सुन. १५ तात्पर्य जो तुझमें रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति हों. उनको त्याग, सतोगुणीवृत्ति बढाव, कि जिससे तेरी ज्ञाननिष्ठा दृढ हो ॥ ७ ॥

मू० आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ॥
रस्याःस्निग्धाःस्थिराहृद्याआहाराःसात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः १ रस्याः २ स्निग्धाः ३ स्थिराः ४ हृद्याः ५ आहाराः ६ सात्विकप्रियाः ७ ॥ ८ ॥ अ० उ० सतोगुणी आहारका लक्षण और फलभी एकही श्लोकमें कहते हैं. अवस्था, चित्तकी स्थिरता, वा वीर्य, वा उत्साह, बल, आरोग्यता,उपशमात्मकसुख प्रभूमें प्रीति इन छह पदार्थोंको बढानेवाला १ रसवाला २ कोमलतर ३ खानेके पीछे शरीरमें उसका रस

चिरकाल ठहरे ४ जिसके देखनेसेही मन प्रसन्न होजाय. ५ सि० यह चारप्रकारका ❀ आहार ६ सतोगुणीको प्रिय लगता है. ७ सि० जैसे मोहनभोगतस्मैइत्यादि ❀ ॥ ८ ॥

मू० कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः १ आहाराः २ राजसस्य ३ इष्टाः ४ दुःखशोकामयप्रदाः ५ ॥ ९ ॥ अ० उ० रजोगुणी आहारको कहते हैं. अतिचरचरा, खट्टा, नमका, गरम, तीक्ष्ण, रूखा, दाहकरनेवाला, १ आहार २ रजोगुणीको ३ प्रिय है ४ दुःख शोकरोगका देनेवाला है. ५ सि० अतिशब्द सबकेसाथ लगाना, अतिखट्टा, अतिनमका, अतिगरम, अतितीक्ष्ण, अतिरूखा, अतिदाहकरनेवाला, ऐसा भोजन रजोगुणीको प्रिय है ॥ ९ ॥

मू० यातयामंगतरसंपूतिपर्युषितंचयत् ॥
उच्छिष्टमपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियम् ॥१०

यातयामम् १ गतरसम् २ पूति ३ पर्युषितम् ४ च ५ तत् ६ उच्छिष्टम् ७ च ८ अमेध्यम् ९ अपि १० भोजनम् ११ तामसप्रियम् १२॥१०॥ अ० उ० तमोगुणीआहारका लक्षण कहते हैं जो बनकर एक प्रहर बीत जावे १ ठंडा हो जावे, याने सूख जावे, २ दुर्गंध जिसमें आवे, ३ बासी ४ और ५ जो ६ जूंठा ७ और ८ अभक्ष्य ९ भी १० भोजन ११ तमोगुणीको प्रिय है १२ ॥ १० ॥

मू० अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयइज्यते॥
यष्टव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्विकः ॥ ११ ॥

अफलाकांक्षिभिः १ यः २ यज्ञः ३ विधिदृष्टः ४ इज्यते ५ यष्टव्यम् ६ एव ७ इति ८ मनः ९ समाधाय १० सः ११ सात्विकः १२

॥ ११ ॥ अ० उ० सतोगुणी यज्ञ कहते हैं. फलेच्छारहित पुरुष १ जो २ यज्ञ ३ विधीको देखकर ४ करते हैं, ५ यज्ञका करना अवश्य है ६ निश्चय ७ इसप्रकार ८ मनका ९ समाधान करके १० सि० करते हैं ❋ सो ११ सि० यज्ञ ❋ सतोगुणी १२ ॥ ११ ॥

मू० अभिसंधायतुफलंदंभार्थमपिचैवयत् ॥
इज्यतेभरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्धिराजसम् ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ १ फलम् २ अभिसंधाय ३ तु ४ दंभार्थम् ५ अपि ६ च ७ एव ८ यत् ९ इज्यते १० तम् ११ यज्ञम् १२ राजसम् १३ विद्धि १४ ॥ १२ ॥ अ० उ० रजोगुणीयज्ञ कहते हैं. हेअर्जुन १ फलको २ अंतःकरणमें धारणकरके ३ वा ४ लोगोंको दिखानेकेलिये ५ भी ६।७।८ जो ९ सि० यज्ञ ❋ किया जाता है, १० तिस ११ यज्ञको १२ रजोगुणी १३ जान तूं १४ ॥ १२ ॥

मू० विधिहीनमसृष्टान्नंमंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितंयज्ञंतामसंपरिचक्षते ॥ १३ ॥

विधिहीनम् १ असृष्टान्नम् २ मंत्रहीनम् ३ अदक्षिणम् ४ श्रद्धाविरहितम् ५ यज्ञम् ६ तामसम् ७ परिचक्षते ८ ॥ १३ ॥ अ० उ० तमोगुणी यज्ञ कहते हैं. वेदविधिरहित १ सुंदर अन्न नहीं है जिसमें २ मंत्ररहित ३ दक्षिणारहित ४ श्रद्धारहित ५ यज्ञ ६ तमोगुणी ७ कहा है. ८ तात्पर्य देखादेखी लोकोंकी लौकिक एक रीति समझकर प्रसिद्धीकेलिये कुपात्रोंको न्योतकर, ठंडा बासा कच्चा पक्का अन्न जिमादेना, न उनके सामने खडा होना, न उनके चरणोंको स्पर्श करना, न सुंदरप्रकार बोलना, न पीछे दक्षिणा देना, ऐसा यज्ञ तमोगुणी कहलाता है. ऐसे निर्भागोंके घर जो साधुब्राह्मण भोजन करनेको जाते हैं, वे उससेभी निर्भाग हैं. क्योंकि सेरभर आटेकेलिये मूर्खोंको दाता लालाजी कहना पडता है ॥ १३ ॥

मू० देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनंशौचमार्जवम्॥
ब्रह्मचर्य्यमहिंसाचशारीरंतपउच्यते॥ १४॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् १ शौचम् २ आर्जवम् ३ ब्रह्मचर्यम् ४ अहिंसा ५ च ६ शारीरम् ७ तपः ८ उच्यते ९॥ १४॥ अ०उ० शरीरका तप कहते हैं. देवता, ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ, कोई जातिविद्वान, भक्त, ज्ञानी, इनका पूजन करना, १ पवित्र रहना, २ नम्र रहना, ३ ब्रह्मचर्यसे रहना, ४ सि० ब्रह्मचर्यका लक्षण आनन्दामृतवर्षिणीके पांचवें अध्यायमें लिखा है. आठप्रकारका मैथुन है उससे वर्जित रहना, ❋ हिंसा नकरना ५।६ सि० इसको ❋ शरीरका ७ तप ८ कहते हैं. ९ तात्पर्य देश, मकान, वस्त्र, पात्र, सब पवित्र हों जब शरीरकी पवित्रता है.और अन्न,जल,वीर्य, कुलादिभी पवित्र हों॥१४॥

मू० अनुद्वेगकरंवाक्यंसत्यंप्रियहितंचयत्॥
स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते॥१५॥

यत् १ वाक्यम् २ अनुद्वेगकरम् ३ सत्यम् ४ प्रियम् ५च ६हितम् ७ च ८ स्वाध्यायाभ्यसनम् ९ एव १० वाङ्मयम् ११ तपः १२ उच्यते १३॥ १५॥ अ० उ० वाणीका तप यह है. जो १ वाक्य २ सि० अन्यको ❋ उद्वेग नकरे ३ सत्य ४ प्रिय ५ और ६ हितकरनेवाला७और ८ वेदशास्त्र पढनेका अभ्यास भी९।१०वाणीका ११ तप १२ कहा है. १३ तात्पर्य जो बात सच्ची शास्त्रविहित और हितकरनेवालीभी है परंतु जो कहनेके समय किसीको प्रिय न लगे, ऐसी बात कहनेमें भी दोष है.और ऐसी बात न कहनेमें भी दोष है कि श्रवणसमय तो प्रिय प्रतीत हो, परंतु वेदविरुद्ध हो. अनुद्वेगकरं सत्यं प्रियं हितं और चकारसे मितम् अर्थात् बहुत अर्थकूं संक्षेपकरके थोडे अक्षरोंमें कहना यह पांचवा विशेषणवाक्यका चकारसे जानना चाहिये॥ १५॥

मू० मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तमोमानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनःप्रसादः१ सौम्यत्वम्२ मौनम् ३ आत्मविनिग्रहः४भावसंशुद्धिः ५ इति६एतत्७तपः८मानसम्९उच्यते १० ॥१६॥ अ० उ० मनका तप कहते हैं. मन प्रसन्न रहना १ सि० सतोगुणीवृत्तीमें मन प्रसन्न रहता है. तमोगुणीरजोगुणीवृत्तीमें विक्षेप और मोहको प्राप्त होता है ❋सरलता याने सीधापन २ मनन करना ३ विषयोंसे मनको रोकना ४ व्यवहारमें छल नहीं करना, ५ अर्थात् बाहर भीतर समवृत्ति रखना ५ यह ६।७ तप ८ मनका ९ कहा है १० ॥ १६ ॥

मू० श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तत्रिविधंनरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्विकंपरिचक्षते॥१७॥

अफलाकांक्षिभिः १ युक्तैः २ नरैः ३ परया ४ श्रद्धया ५ तत् ६ त्रिविधम् ७ तपः ८ तप्तम् ९ सात्विकम् ११ परिचक्षते ११ ॥१७॥ अ० उ० शरीरमनवाणीकरके तीनप्रकारका तप है, यह भेद तो पीछे कहा. अब तपको सात्विकादि भेद करके तीनप्रकारका कहते हैं. इसमंत्रमें सतोगुणी तपका लक्षण है. फलेच्छारहित १ एकाग्रचित्तवाले २ पुरुषोंनें ३ परमश्रद्धाकरके ४।५ सो ६ तीनप्रकारका ७ तप ८ सि० मनवाणीशरीरकरके जो तप ❋ किया है ९ सि० सो तप, ❋सतोगुणी१०कहा है. ११ तात्पर्य परमश्रद्धाके साथ चित्तको भलेप्रकार एकाग्रकरके फलेच्छारहितपुरुषोंनें शरीरमनवाणीकरके जो तप किया है सो सतोगुणी है ॥ १७ ॥

मू० सत्कारमानपूजार्थंतपोदंभेनचैवयत् ॥
क्रियतेतदिहप्रोक्तंराजसंचलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

यत् १ दंभेन २ सत्कारमानपूजार्थम् ३ च ४ एव ५ तपः ६ क्रियते ७ तत् ८ इह ९ राजसम् १० प्रोक्तम् ११ चलम् १२ अध्रु-

वम् १३ ॥ १८ ॥ अ० जो १ दंभकरके २ सि० अथवा *सत्कारसानपूजाके लिये३।४।५तप६कियाहै ७ सो८ शास्त्रमें ९ रजोगुणी १० कहा है. ११ सि० क्योंकि * अचल नहीं १२ अनित्य है. १३ तात्पर्य अच्छेकर्म अपनी स्तुति करानेकेवास्ते,लोगोंको दिखानेकेवास्ते, अपने सन्मानपूजाकेलिये, धनादिके प्राप्तीकेलिये, और स्वर्गादि पुत्रमित्रादिकी प्राप्ति होनेकेलिये जो करते हैं, वे पुरुषभी रजोगुणी हैं.और वे कर्मभी सब रजोगुणी हैं. ऐसे कर्मोंका फल तुच्छ अनित्य होगा ॥ १८ ॥

मू०मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडयाक्रियतेतपः॥
परस्योत्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम्॥ १९॥

यत् १ तपः२ मूढग्राहेण ३ आत्मनः ४ पीडया ५ क्रियते ६ परस्य ७ उत्सादनार्थम् ८ वा ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ १९ ॥ अ० जो १ तप २ दुराग्रह करके ३ सि० अविवेकपूर्वक *इंद्रियोंको ४ दुःखदेकर ५ कियाहै, ६ दूसरेके ७ नाशार्थ ८वा ९ सो १० सि० तप *तमोगुणी ११ कहाहै १२ ॥ १९ ॥

मू०दातव्यमितियद्दानंदीयतेऽनुपकारिणे॥
देशेकालेचपात्रेचतद्दानंसात्विकंस्मृतम् ॥२०॥

दातव्यम् १ इति २ यत् ३ दानम् ४ दीयते ५ देशे ६ काले ७ च ८ पात्रे ९ च१० अनुपकारिणे ११ तत् १२ दानम् १३ सात्विकम् १४ स्मृतम् १५॥२०॥अ० उ० दान तीनप्रकारका है.प्रथम सतोगुणीदान कहते हैं. सि० आवश्य हमको दान * देना चाहिये १ इसप्रकार २ सि० मनमें विचारकर * जो ३ दान ४ दिया है ५ सि० सुन्दर*देशमें ६ और उत्तमकालमें ७।८.सुपात्र अनुपकारीको ९।१०।११ सो १२ दान १३ सात्विक १४ कहा है.

१५ टी० गंगादितीर्थोंमें सुंदरजगे लीपीपोतीहुइमें जिसजगे बैठे हुवे बुरी वस्तु न दीखे, दुर्गन्ध न आवें ६ पूरणमासी व्यतीपातादिमें, भूकके समय, वा किसी सज्जनका काम अटक रहा है उससमय, भोजनकराना, मध्याह्नसे पहले. ७ जिसको देना उससे उपकार किसी प्रकारका न चाहना, जहांतक बनसके अनजानपुरुषको छिपाकर देना. ११ विद्वान् साधु ब्राह्मण दानपात्र हैं, वा भूका कोई जातिभी हो. ९ इसदानके व्यवस्थामें, एकपोथी जिसका नाम राजदूतोंकी कथा है. नागरी अक्षरोंमें, मुनशी शिवनारायण कायस्थ माथुर, कि जो आगरेमें श्रीमान् ऐश्वर्यवान् सद्गुणोंकी खान ब्रह्मविद्या और अंगरेजी फारसी छायाकी तसबीर अद्भुतबनाना इत्यादि लौकिकविद्यामें नागर प्रभुता पाकर अमानी, दयावान्, परोपकारी प्रसिद्धहैं. उनकी बनाई हुई है. और प्राकृत (उरदुविद्यामें) भी उन्होंनेही बनाई है. जिसका नाम कासदानशाही है. उसपोथीके पढने सुननेसे विचारनेसे दानकी व्यवस्था भलेप्रकार प्रतीत होती हैं. तात्पर्य जो नौकरी, खेती बनज करते हैं. वा जिनके पास किसीप्रकार द्रव्य है. उनको अवश्य दान करना चाहिये. क्योंकि पन्द्रह अनर्थ द्रव्यमें रहते हैं. जो वो वेदोक्त दान न कियागया तो पन्द्रह अनर्थोंमें जो पाप होता है सो द्रव्यग्राहीको लगेगा. दान करनेसे उसपापकी निवृत्ति होती है. और दान करनेके लिये द्रव्यसंचय करना यह शास्त्रकी आज्ञा नहीं. उसका यह फल है, कि जैसे कीचमें हात साना फिर धोया. इससमयमें दान देना तो पृथक्‌रहा जो किसीको देता देखते सुनते हैं, तो जहांतक उनसे यत्न होसक्ता है, हँसी तर्ककरके उसकोभी वर्जित करते हैं मुमुक्षूको चाहिये कि ऐसे दुष्टोंका मुखभी न देखे. यह विचारकरले, कि दिनकी महीनेकी या वर्षकी कमाई इसमेंसे इतनाभाग दान करूंगा उस द्रव्यका, वा अन्नवस्त्रादिमोललेकर, दिनदिनप्रति वावर्षमें महीनेमें जहांतक होसके गुप्तसुपात्रको देदिया करे. जोप्रवृत्तीमें रहकर

दान नहीं करते. केवल माला तिलक घंटा घडयालसे मुक्ति चाहते हैं, परमेश्वर उनपर कभी प्रसन्न न होंगे. ॥ २० ॥

मू० यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः ॥
दीयतेचपरिक्लिष्टंतद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

यत् १ तु २ प्रत्युपकारार्थम् ३ पुनः ४ वा ५ फलम् ६ उद्दिश्य ७ परिक्लिष्टम् ८ च ९ दीयते १० तत् ११ राजसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥२१॥ अ० उ० रजोगुणीदान कहते हैं. जो १ प्रत्युपकारके लिये २।३ वा ४।५ फलका ६ उद्देशकरके ७वा क्लेशकलहसहित८। ९ दिया है १० सो ११ रजोगुणी १२ कहा है. १३ टी० दानपात्रसे यह इच्छा रखनाकि किसी समय किसी प्रकार यह हमको सहाय करेगा ३ यह चितवनकरके कि सन्तमहन्तोंकी टहल करनेसे धन-पुत्रादि मिलते हैं ६।७ क्याकरेंजी हमारे पिताका आज श्राद्ध है, एक ब्राह्मण तो अवश्यही नौतना चाहिये. इसप्रकार लौकिक लज्जासे दान करके मनमें दुःख मानना. तात्पर्य महात्मा जो यह कहते हैं. कि दाता कलियुगमें नहीं हैं. यदि हैं भी तो सेवा कराकर देते हैं. तदुक्तम्॥ दातारोऽपिनसन्तिसन्तिय दिचेत्सेवानुकूलाःकलौ॥ तात्पर्य उनका यह है. कि कलियुगमें सतोगुणी दाता कम हैं विशेष रजोगुणी हैं. बहुतलोग दाता प्रसिद्ध हैं. उनके दानकी यह व्यवस्था है, कि एकपुरुष राजाका नौकर है, प्रजापर उसका हुकम है. किसीकी कथा कहलादेना वा शुभकामके नामसे चन्दाकरके कुछ उनको देदेना, कुछ आप रखलेना. कोईकोई सुपात्रोंकोभी देते हैं अपने सुयशकेलिये. कोई साधूको अपने मकानपर ठहराय रखते हैं मकानके रक्षाकेलिये. कोई साधु ब्राह्मणकी टहल करते हैं दूसरे साधूब्राह्मणको दुःखदेनेकेलिये. कोई लौकिकलज्जासे देखादेखी करते हैं. कोई इसप्रकार दान करते हैं. कि ब्राह्मणको नौकर रखलेते हैं वो उसको

जिमा देता है. और खिचरीवस्त्रादिभी इसीप्रकार बांटते हैं. कोई ऐसे दानी प्रसिद्ध हैं कि छलदंभपाखंडकरके किसीका द्रव्य दबा लिया, वह दोष दबनेकेलिये दान करते हैं. उनकी वो व्यवस्था है "अहरनकी चोरी करें, करें सुईका दान। ऊंचेचढके देखन लगे, कितनी दूर बिमान,, ऐसे दाता सद्गतीकी कदाचित् भी आशा न रक्खें ॥२१॥

मू० अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

यत् १ दानम् २ अपात्रेभ्यः ३ अदेशकाले ४ च ५ दीयते ६ असत्कृतम् ७ अवज्ञातम् ८ तत् ९ तामसम् १० उदाहृतम् ११ ॥ २२ ॥ अ० जो १ दान २ कुपात्रोंको ३ और निषिद्धदेशकालमें ४।५ दिया है ६ सि० अथवा सुपात्रोंकोभी जो ❋असत्कारपूर्वक ७ अवज्ञापूर्वक ८ सि० दिया है ❋सो ९ तमोगुणी १० कहा है. ११ टी० जिससमय महात्मा दैवयोगसे अपनेघर आवें, हाथजोडकर अभ्युत्थान न करे, और ऐसा न बोले कि आपने बडी कृपा कीई ७ किसीआदमीसे कहदेना कि फकीर आया है, रोटी आटा देकर टालो. ८ चौकेसे बाहर बैठाकर अपवित्रजगेमें न्योतकर मध्यान्हसे पीछे जिमाना. ४ नट बाजीगर, वेश्या, इनको देना इत्यादि तमोगुणीदान है. ३ तात्पर्य द्रव्य बडे बडे दुःखपापोंसे प्राप्त होता है. बंधकाभी यह साधन, है, मोक्षकाभी साधन है. इसको पाकर मोक्ष संपादन करे, एकदिन इससे अवश्य वियोग होगा. या तो द्रव्य पहले छोड देगा, या द्रव्य रक्खाही रहेगा, आपचले जावेंगे. श्रीभगवाननें यह तीनप्रकारका भेद इसीवास्ते कहा है, कि दान सतोगुणी करना चाहिये. क्यों कि उससे परंपराकरके मोक्षकी प्राप्ति होती है. जो यह कहते हैं, कि अजी वेदोक्तसाधुब्राह्मण कहां हैं, यह उनकी समझ और श्रद्धा पुरुषार्थ यत्न मान बडाई इसमें दोष है; कि जो उनको सुपात्र

नहीं मिलते. महात्मा जो यह कहते हैं, कि पृथिवीपर असंख्यात अमोल रत्न प्रसिद्ध हैं, जिनमें किसीकी ममता नहीं. निर्भागोंको नहीं दीखते. उनका तात्पर्य सुपात्रोंसेही है. घरसे बाहर पैर नहीं रखते, कौवेकेसी दृष्टि है, महात्माके भजन, पाठ, पूजा, विवेक विद्यादि, सहस्रशः उनमें जो गुण हैं, उनको तो देखते नहीं. कहते हैं कि अजी महात्मा किसीके घर क्यों जाते हैं. उसनिर्भागसे बूझना चाहिये कि जो घर आवें, वे तो असाधु हैं, और तूं मलमूत्रके पात्र स्त्रीपुत्रादिको छोडकर बाहर पैर न रक्खे तो फिर सुपात्र कैसे मिले. निर्भागोंके घर महात्मा नहीं जाते, यह बात सत्य है ॥ २२ ॥

मू०ओंतत्सदितिनिर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधःस्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेनवेदाश्चयज्ञाश्चविहिताःपुरा ॥ २३ ॥

ओम् १ तत् २ सत् ३ इति ४ ब्रह्मणः ५ निर्देशः ६ त्रिविधः ७ स्मृतः ८ तेन ९ ब्राह्मणाः १० वेदाः ११ च १२ यज्ञाः १३ च १४ पुरा १५ विहिताः १६॥२३॥अ०उ०जो मुमुक्षु यह चाहते हैं, कि प्रभूके आज्ञासे यज्ञदानादिकर्म वेदोक्त सतोगुणी करें. परन्तु देशकालवस्तूके संबंधसे वा किसी अन्यप्रतिबन्धसे सतोगुणी वेदोक्त अनुष्ठान नहीं होसक्ता, इसहेतूसे दुःख पाते हैं.उनकेलिये परमकरुणाकर व्रजचंद्र उत्तम उपाय परमपवित्र गुप्त बतलाते हैं इसमंत्रमें. ओम् १ तत् २ सत् ३ यह ४ ब्रह्मका ५ उच्चारण ६ तीनवेर ७ कहा है ८ सि० ब्रह्मविदोंने. ❋तिसने ९ अर्थात् ओंतत्सत् इसमंत्रनेही ९ ब्राह्मण १० और वेद ११।१२ और यज्ञ १३।१४ पहले १५ उत्तमपवित्र किये हैं. १६ तात्पर्य स्नान, दान, भोजन पाठ, इत्यादि करनेसे पहले और पीछे यह मंत्र ओंतत्सत् तीनवार कहे. अंगहीनक्रियाभी सतोगुणी होके वेदोक्त फल देगी. यह विधी अनादि है.महात्मा जानते हैं.इसके प्रतापसे सदा निर्दोष रहते हैं.श्रीभग-

वान् अगले मंत्रोंमें ओंतत्सत् इनतीनों नामोंका माहात्म्य पृथक् पृथक् कहेंगे. यह परमात्माका एकएक नाम पवित्र करके ब्रह्मको प्राप्त करता है. जो तीनों नामोंका उच्चारण करेगा उसके पवित्र होनेमें क्या सन्देह है. इसमें यही कैमुतिक न्याय है. वेदोंमें यह मंत्र सार है जिसमंत्रमें इनतीनोंनामोंमेंसे एकभी नाम होगा, उसमंत्रका फल शीघ्र अवश्य होगा. मंत्रोंमें इनही नामोंकी शक्ति है. पोथियोंके और मंत्रोंके आदिमें इनतीनोंनामोंमेंसे एकदोनाम अवश्य होते हैं. जब कि वेद ब्राह्मणादिकी बडाई इसमंत्रके प्रतापसे है, फिर विनाइ-समंत्रके जपे कोई क्रिया कब श्रेष्ठ होसक्ती है. इसहेतूसे क्रियाके आदि अन्तमें इसमंत्रका तीनबेर अवश्य उच्चारण करना योग्य है ॥ २३ ॥

मू०तस्मादोमित्युदाहृत्ययज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्तन्तेविधानोक्ताःसततंब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

तस्मात् १ ओम् २ इति ३ उदाहृत्य ४ यज्ञदानतपःक्रियाः ५ विधानोक्ताः ६ सततम् ७ ब्रह्मवादिनाम् ८ प्रवर्तन्ते ९ ॥२४॥ अ० सि० अब पृथक् पृथक् नामका माहात्म्य कहते हैं. इसमंत्रमें ओम् इसनामका माहात्म्य है जब कि वेदादि इननामोंसेही श्रेष्ठ पवित्र किये गये हैं ❋ तिसहेतूसे १ ओम् २ऐसा ३ उच्चारकरके ४ यज्ञदानतपरूप-क्रिया ५ वेदोक्त ६ सदा ७ ब्रह्मनिष्ठोंकी ८ होती हैं. ९ ॥ २४ ॥

मू०तदित्यनभिसंधायफलंयज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्चविविधाःक्रियन्तेमोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

मोक्षकांक्षिभिः १ तत् २ इति ३ फलम् ४ अनभिसंधाय ५ यज्ञतपःक्रियाः ६ दानक्रियाः ७ च ८ विविधाः ९ क्रियन्ते १०॥२५॥ अ० मोक्षेच्छावाले १ तत् २ यह ३ सि० नामउच्चारणकरके और ❋ फलका ४ चितवन न करके ५ यज्ञतपरूपाक्रिया ६

और दानक्रिया ७।८ नानाप्रकारकी ९ करते हैं. १० सि० महावाक्यमें यही नाम है. ❀ ॥ २५ ॥

मू०सद्भावेसाधुभावेचसदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्तेकर्मणितथासच्छब्दःपार्थयुज्यते ॥ २६ ॥

पार्थ १ सद्भावे २ साधुभावे ३ च ४ सत् ५ इति ६ एतत् ७ प्रयुज्यते ८ तथा ९ प्रशस्ते १० कर्मणि ११ सत् १२ शब्दः १३ युज्यते १४ ॥ २६ ॥ अ० हेअर्जुन १ सद्भावमें २ और साधुभावमें ३।४ सत् ५ यह ६।७ सि० नाम ❀ कहाजाता है. ८ और ९ सि० विवाहादि ❀ मंगलकर्ममें १०।११ सत् १२ शब्द १३ कहा जाता है. १४ ॥ २६ ॥

मू०यज्ञेतपसिदानेचस्थितिःसदितिचोच्यते ॥
कर्मचैवतदर्थीयंसदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

यज्ञे १ तपसि २ दाने ३ च ४ स्थितिः ५ सत् ६ इति ७ च ८ उच्यते ९ तदर्थीयम् १० कर्म ११ च १२ एव १३ सत् १४ इति १५ एव १६ अभिधीयते १७ ॥ २७ ॥ अ० उ० इसमंत्रमेंभी सतनामका माहात्म्य है. यज्ञमें १ तपमें २ और दानमें ३।४ सि० जो ❀ स्थिति ५ सि० उसको ❀ सत् ६ ऐसा ७।८ कहते हैं. ९ ईश्वरार्थ १० कर्मको ११ भी १२।१३ सत्ही १४।१५।१६ कहते हैं. १७ तात्पर्य जो पुरुष यज्ञादि परमेश्वरार्थ सदा करते रहते हैं, उनको सत्फल प्राप्त होगा, जिसका कभी नाश नहीं. ॥ २७ ॥

मू०अश्रद्धयाहुतंदत्तंतपस्तप्तंकृतंचयत् ॥
असदित्युच्यतेपार्थनचतत्प्रेत्यनोइह ॥ २८ ॥

अश्रद्धया १ हुतम् २ दत्तम् ३ तपः ४ तप्तम् ५ च ६ यत् ७ कृतम् ८ इति ९ असत् १० उच्यते ११ पार्थ १२ तत् १३ प्रेत्य १४ नच १५ नो १६ इह १७ ॥ २८ ॥ अ० उ० श्रद्धापूर्वक जो

दानादि नहीं करते, केवल लौकिक लज्जासे करते हैं, उनको फल न यहां होता है, न मरकर परलोकमें. यह अर्थ इसमंत्रमें प्रकट करते हुवे अश्रद्धावानकी निंदा करते हैं. अश्रद्धासे १ हवनकिया २ दिया ३ तप किया ४।५ और जो किया ६।७।८ यह ९ सि० सब ❋ असत् १० कहाहै. ११ अर्थात् निष्फल, निंदित झूंटा, वृथा ऐसा है ११ हे अर्जुन १२ सो १३ न मरकरके १४।१५ न १६ इसलोकमें. १७ तात्पर्य मोक्षमार्गमें सब कर्मोंसे प्रथम श्रद्धा है. जिसकी वेदब्राह्मणादिमें श्रद्धा है, सो मुक्त होगा. इत्यभिप्रायः ॥ २८॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवें अध्यायका प्रारंभ हुवा.

मू० अर्जुनउवाच ॥ संन्यासस्यमहाबाहोतत्त्वमिच्छामिवेदितुम् ॥ त्यागस्यचहृषीकेशपृथक्केशिनिषूदन ॥ १

अर्जुनः उवाच। महाबाहो १ हृषीकेश २ केशिनिषूदन ३ संन्यासस्य ४ च ५ त्यागस्य ६ तत्त्वम् ७ पृथक् ८ वेदितुम् ९ इच्छामि १०॥१॥ अ० उ० इसअध्यायमें समस्तगीताका सार संक्षेपसे है. अर्जुन कहता है हे महाबाहो १ हे हृषीकेश २ हे केशिनिषूदन ३ संन्यास ४ और ५ त्यागके ६ तत्त्वको ७ पृथक् ८ जाननेकी ९ मैं इच्छा करता हूं. १० टी० १।२। ३ ये तीनोंनाम श्रीकृष्णचन्द्रके हैं. तात्पर्य हे भगवन् त्यागशब्दका और संन्यास शब्दका अर्थ मुझसे कहो. दोनोंपदोंका अर्थ पृथक् पृथक् मैं जानाचाहता हूं. त्याग और संन्यास इनदोनोंपदोंका अर्थ श्रीभगवान् भलेप्रकार अगले मंत्रमें कहेंगे. प्रसंगसे चतुर्थाश्रम संन्यासका अर्थ संक्षेपकरके यहां लिखदेते हैं. त्याग और संन्यासका

अर्थ वास्तव एकही है.संन्यास दोप्रकारका है.अंतरंग१और बहिरंग २संन्यास ज्ञाननिष्ठाका अंग है. अंतरंगसंन्यासका अर्थ तो श्रीभगवान् भले प्रकार इसअध्यायमें कहेंगे. बहिरंग संन्यासका अर्थ यहां लिखजाता है, सो बहुत प्रकारका है. कुटीचक १ क्षेत्र २ बहूदक ३ विविदिषा ४विद्वत्५हंस ६ परमहंस७और भी बहुत भेद हैं. इनका अर्थ अंकके क्रमसे लिखते हैं.वाणिज्यादिव्यवहार छोड ग्रामसे बाहर, शरीरयात्रामात्र कुटीमें बैठ भगवद्भजन ब्रह्मविचार करना अपने संबंधी और औरोंको सम समझना कोई घरका वा बाहरका भोजन देजावे, उसीसे देहका निर्वाह करलेना. यह कुटीचकसंन्यासीका लक्षण है. और कनिष्ठ अंग उसका यह भी है कि देहयात्रामात्र कुछ आजीविकाका यत्न करके एकान्तमें निवास करना १ जैसे कुटीचकका लक्षण कहा वैसाही कुटीशब्दके जगे क्षेत्र समझ लेना चाहिये. क्षेत्रमें देहयात्राकेलिये माधुकरी मांगखानेमें दोष नहीं २ घरको त्यागकर विचरता रहे, एकजगे न रहे. ३ वेदान्तशास्त्र श्रवण करनेकेलिये गृहस्थाश्रमको त्यागना और त्यागके पीछे दिनरात्रि सदा श्रवण मनन निदिध्यासन करते रहना. ४ जीवन्मुक्तीका जो आनन्द उसकेलिये गृहस्थाश्रमका त्याग करना. इससंन्यासको वे धारण करतेहैं,जिनको गृहस्थाश्रममें संशयविपर्ययरहितसाक्षात्कार ब्रह्मज्ञानका होगया है. ५ जिसप्रकार हंस दूध और जलको जूदा करके दूधही पान करता है, इसीप्रकार परमहंस महात्मा देहादिपदार्थोंसे अपने स्वरूपको पृथक् विलक्षण समझकर सदा स्वरूपमेंही निष्ठा रखते हैं. इसीको हंससंन्यास कहते हैं. ६ वस्त्रादिकाभी त्याग करके मौन रहना इसको परमहंससंन्यास कहते हैं. ७ यह अर्थसंन्यासका एक नाममात्र लिखदिया है. जो किसीको कुटीचकादिसंन्यास करना हो, तो वो उसकी विधि मन्वादिधर्मशास्त्र और उपनिषदोंमेंसे श्रवण करके संन्यास करे. दंडधारणपूर्वकसंन्यासमें तो कर्मकां-

डके विधिसे ब्राह्मणशरीरकोही अधिकार है. क्योंकि कर्मकांडमें वेदोक्तकर्मकरनेवाले ब्राह्मणजातीकोही वडा कहते हैं. और उपासक भगवद्भक्तकोही वडा कहते हैं. भगवद्भक्त व्यवहारमें कोई जाति हो, सबसे वडा है. और जो व्यवहारमेंभी ब्राह्मणजाती हो, तो क्या कहना है. विदुरजी, गुह, निषाद, शबरी, इत्यादि हजारोंकी कथा साक्षी है. और ज्ञानी ब्रह्मवितको वडा कहते हैं. ब्राह्मणशब्दका अर्थ यही है, "ब्रह्मजानातिसब्राह्मणः" जो व्यवहारमें ब्राह्मणजाती कहेजाते हैं, उनको वैराग्य नभी हो, तोभी अवस्थाके चतुर्थभागमें. उनको गृहस्थाश्रम छोडना चाहिये. नहीं तो पाप प्रायश्चित्तका भागी होना पडेगा. और जो वैराग्य होतो वो कोईजाति सब अवस्थामें उसको संन्यासका अधिकार है. "यदहरेवविरजेत्तदहरेवप्रव्रजेत्" अर्थ इसश्रुतीका यह है कि जिसदिन वैराग्यहो, उसीदिन संन्यास करे. त्याग (संन्यास)में सबको अधिकार है. हजारों विरक्तमहात्मा कि जो व्यवहारमें ब्राह्मणजाती नहीं, लेकिन ब्रह्मवित्, ज्ञानी, दर्शनीय, पूजनीय, हैं, और हजारों होगये. विनासंन्यास और विरक्तताके मुक्ती नहोगी. परमेश्वरका अनुग्रह और पूर्वसंस्कार तो दूसरीवात है. गृहस्थाश्रममें जिसको ज्ञान हुवा यह पूर्वसंस्कार और परमेश्वरकी कृपा समझना चाहिये. नहीं तो निवृत्तिमार्गकी वडाई क्या हुवी. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों बरावर होगये. साधुमहात्माविरक्तोंका माहात्म्य वेदशास्त्र और अवतारोंने क्या वृथाही कहा है. तात्पर्य विरक्त अवश्य होना चाहिये. विरक्तीमें और निवृत्तीमें सबको अधिकार है. देशकालवस्तूका नियम प्रवृत्तिमार्गमें है, निवृत्तिमार्गमें नहीं. ॥ १ ॥

मू॰श्रीभगवानुवाच ॥ काम्यानांकर्मणांन्यासं संन्यासंकवयोविदुः ॥ सर्वकर्मफलत्यागंप्राहुस्त्यागंविचक्षणाः॥२॥

कवयः १ काम्यानाम् २ कर्मणाम् ३ न्यासम् ४ संन्यासम् ५ विदुः ६ विचक्षणाः ७ सर्वकर्मफलत्यागम् ८ त्यागम् ९ प्राहुः १० ॥ २ ॥ अ० सि० कोईकोई * पंडित १ काम्य २ कर्मोंके ३ न्यासको ४ संन्यास ५ जानते है. ६ सि० कोईकोई * पंडित ७ सव-कर्मोंके फलत्यागको ८ त्याग ९ कहते हैं. १० टी० काम्यशब्दका अर्थ कोई तो ऐसा करते हैं, स्त्रीधनादिके निमित्त जो कर्म वो त्यागना योग्यहै. नित्यप्रायश्चित्तकर्म करना चाहिये. इसीका नाम संन्यास है. और कोई महात्मा काम्यशब्दका अर्थ यह करते हैं, कि समस्तकर्मोंका त्याग करना योग्य है, इसका नाम संन्यास है. सकामकर्मोंके त्यागमें दोनोंका सम्मत है. और कुछ न करनेसे सकामकर्मभी अच्छा है. पुत्रस्वर्गादिकी इच्छाकरनेवाला यज्ञकरे. ऐसा वेदमें सुनाजाता है. परन्तु इसजगे काम्यशब्दका अर्थ यही है. कि सवकर्मोंके त्यागका नाम संन्यास है. नहीं तो दोनोंजगे कर्मका विधि रहता है. जब कि एककर्मका विधि है. और वो किसीहेतूसे नबना तो कर्ताको प्रायश्चित्तभी अवश्यक है. और जबकि उसको पाप लगा, और प्रायश्चित्त करना पडा, फिर मुक्त कैसा होगा. सदा बन्धनमें रहा इसहेतूसे अधिकार भेदकरके इस श्लोकका तात्पर्य यह समझना चाहिये. शुद्धांतःकरणवाले निष्काम पुरुष सवकर्मोंके त्यागको संन्यास जानते हैं. और इसभूमिकाके इच्छावाले सवकर्मोंके केवल फलत्यागको संन्यास जानते हैं. सवकर्मोंके फलका त्याग इसीका नाम संन्यास जो कहते हैं तो चतुर्थाश्रम जो संन्यास है, उसका विधि क्या वृथाही रहा. तात्पर्य सवकर्मोंके फलका त्यागकरना और कर्म करना इसको कोईकोई पंडित त्याग कहते हैं. और सवकर्मोंको स्वरूपसे त्याग देना, इसीको पंडित संन्यास कहते हैं. जबतक अन्तःकरण शुद्ध नहो, तबतक कर्म करना, उसका

फल त्यागदे. और जब अन्तःकरण शुद्ध होजाय, तब सबकर्मोंका त्याग करदेना इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

मू०त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यमितिचापरे ॥ ३ ॥

एके १ मनीषिणः २ इति ३ प्राहुः ४ दोषवत् ५ कर्म ६ त्याज्यम् ७ च ८ अपरे ९ इति १० यज्ञदानतपःकर्म ११ न १२ त्याज्यम् १३ ॥ ३ ॥ अ० एक १ पंडित २ यह ३ कहते हैं ४ सि० कि ❋ दोषवाला ५ कर्म ६ त्यागना योग्य है ७ और ८ अपर ९ अर्थात् कोईएकपंडित ९ यह १० सि० कहते हैं. कि ❋ यज्ञ दान तप कर्म ११ नहिं १२ त्यागना चाहिये. १३ तात्पर्य सबकर्मोंके त्यागमें अन्यमतवालोंकाभी सम्मत है. इसीबातके दृढ करनेकेलिये सांख्यशास्त्रवालोंका मत दिखाया. सांख्यशास्त्रवाले कहते हैं कि यज्ञादिकर्मोंमें हिंसाअसमतादिदोष हैं., इसवास्ते उनको त्यागना योग्य है. और पूर्वमीमांसावाले यह कहते हैं कि वेदके आज्ञामें शंकाकरना न चाहिये. यज्ञादिकर्म करना योग्यहै, जो वेदोंनें कहा. यदि उसमें हिंसाभी प्रतीत होती हो, तोभी वो कर्म श्रेष्ठ है. अधिकारीप्रति दोनोंका कहना सत्य है. प्रवृत्तिमार्गवाला अवश्य यज्ञादिकर्म करे. और निवृत्तिमार्गवाला कर्मोंमें विक्षेप समझकर कर्मको त्याग दे, शमदमादिका अनुष्ठान करे. ॥ ३ ॥

मू० निश्चयंशृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ॥
त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधःसंप्रकीर्त्तितः ॥ ४ ॥

भरतसत्तम १ तत्र २ त्यागे ३ निश्चयम् ४ मे ५ शृणु ६ पुरुषव्याघ्र ७ हि ८ त्यागः ९ त्रिविधः १० संप्रकीर्तितः ११॥४॥ अ०उ० आस्तिकमार्गवालोंमेंभी जो भेद प्रतीत होता है. कि जो पीछले श्लोकमें कहा. इसके निवृत्तीकेलिये दोनोंका सिद्धांत तात्पर्यार्थ कहते हैं.

हे अर्जुन १ तिस २ त्यागकेविषय ३ निश्चय ४ मेरे ५ सि० वचनसे ❋सुन ६ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ७ सि० त्यागका अर्थ जानना कठिन है ❋ क्यों कि ८ त्याग ९ तीनप्रकारका १० कहा है. ११ तात्पर्य हे अर्जुन त्याग तीनप्रकारका है इसहेतूसे त्यागका अर्थ कठिन है. त्याग और संन्यास इनदोनोंशब्दोंका एकही अर्थ है, सो मुझसे सुन. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग ये दोनों अनादि हैं. वेदोंमें जहां कर्मका त्याग कहा है. वो निवृत्तविरक्तमहापुरुषोंकेलिये कहा है. और जहां कर्मका अनुष्ठान कहा है, वो प्रवृत्तरागीजनोंकेलिये कहा है. ऐसा तात्पर्य वेदोंका सत्पुरुषोंके कृपासे जानाजाता है. शास्त्रोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं, अपने समझका भेद है ॥ ४ ॥

मू० यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥
यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञः १ च २ दानम् ३ तपः ४ एव ५ मनीषिणाम् ६ पावनानि ७ एव ८ तत् ९ यज्ञदानतपःकर्म १० न ११ त्याज्यम् १२ कार्यम् १३ ॥ ५ ॥ अ० उ० तीनप्रकारका त्याग श्रीभगवान् अभी आगे कहेंगे, प्रथम दोश्लोकोंमें अपना सिद्धांत कहते हैं. यज्ञ १ और २ दान ३ तप ४ निश्चय ५ पंडितोंको ६ पवित्र करनेवाले ७ सि० हैं ❋इसवास्ते ८ सोई ९ यज्ञदानतपकर्मको १० नहीं ११ त्यागना योग्य है. १२ करनेको योग्य है. १३ तात्पर्य यज्ञदानादिकर्म अंतःकरणको शुद्ध करते हैं, इसवास्ते ज्ञानके प्रथम भूमिकावालेको कर्म त्यागना न चाहिये. स्पष्टार्थ है कि पवित्रकी विधि अपवित्रवस्तूमें होती है. अपवित्रवस्तूमें पवित्रविधि नहीं होती. जिनको संसारसे वैराग्य नहीं, और भगवद्भक्त जिनको प्राणोंके बराबर प्यारे नहीं, वे निश्चयकरें कि हमारा अंतःकरण शुद्ध नहीं. विरक्तोंकी सेवापूजासे हमारा अंतःकरण शुद्ध होगा. ॥ ५ ॥

मू० एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाफलानिच ॥
कर्त्तव्यानीतिमेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमम् ॥६॥

पार्थ १ एतानि २ कर्माणि ३ संगम् ४ च ५ फलानि ६ त्यक्त्वा ७ अपि ८ तु ९ कर्तव्यानि १० इति ११ मे १२ निश्चितम् १३ उत्तमम् १४ मतम् १५ ॥६॥ अ० हे अर्जुन १ ये २ सि० तपदानादि ❋ कर्म ३ आसक्ति ४ और ५ फलका ६ त्यागकरके ७ निश्चयसे ८।९ करनेको योग्य हैं. १० यह ११ मेरा १२ निश्चयसे १३ उत्तम १४ मत १५ सि० है. ❋ तात्पर्य हे अर्जुन तपदानादि अंतःकरणको शुद्ध करते हैं. इसवास्ते मुमुक्षूको अवश्य करना चाहिये. मेराभी यही उत्तम मत है, और औरोंकाभी कर्मके विधीमें यही तात्पर्य है. विना अंतःकरण शुद्ध हुवे जो वेदोक्तबहिरंगकर्मोंका त्याग करदेते हैं अवैदिकमार्गवालोंकी बात सुनकर, या निवृत्तिमार्गवालोंकी श्रुतिस्मृतिप्रमाण देकर. वे पापके भागी होते हैं. क्योंकि शास्त्रार्थ उन्होंने उलटा समझा. ॥ ६ ॥

मू० नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणोनोपपद्यते ॥
मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्त्तितः ॥७॥

नियतस्य १ कर्मणः २ संन्यासः ३ न ४ उपपद्यते ५ तु ६ मोहात् ७ तस्य ८ परित्यागः ९ तामसः १० परिकीर्त्तितः ११ ॥७॥ अ० उ० पीछे भगवाननें कहाथा कि त्याग तीनप्रकारका है. उसको कहते हैं. नित्यसन्ध्यादि १ कर्मका २ त्याग ३ न ४ करना चाहिये ५ और ६ मोहसे ७ तिसका ८ त्याग ९ सि० करदेना ❋ तमोगुणी त्याग १० कहा है. ११ तात्पर्य जिज्ञासु याने मुक्तीकी इच्छा है जिसको, वो नित्यकर्मोंका त्याग न करे. और जो भूली या मूर्खतासे त्याग करेगा, तो वो त्याग तमोगुणी कहा जायगा. ऐसे त्यागका फल मोक्ष नहीं. पीछे ऐसा त्याग महाक्लेश देता है. ॥ ७ ॥

मू०दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत्॥
सकृत्वाराजसंत्यागंनैवत्यागफलंलभेत्॥८॥

यत् १ कर्म २ कायक्लेशभयात् ३ त्यजेत् ४ दुःखम् ५ इति ६ एव ७ सः ८ राजसम् ९ त्यागम् १० कृत्वा ११ त्यागफलम् १२ न १३ लभेत् १४ एव १५ ॥८॥ अ० जो १ कर्म २ कायक्लेशके भयसे ३ त्यागता है. ४ सि० उसमें ❋ दुःख ५।६।७ सि० समझकर ❋ सो ८ रजोगुणी. ९ सि० ऐसे ❋ त्यागकू १० करके ११ त्यागके फलको १२ नहीं १३ प्राप्त होता है १४ निश्चयसे. १५ तात्पर्य रजोगुणीपुरुष मैला अन्तःकरणहोनेसे स्नानदानादिकर्मोंको दुःखरूप जानता है. यह नहीं समझता कि इन कर्मोंसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध होकर मुझको ज्ञान प्राप्त होगा. कि जिससे सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है. इसवास्ते विनाआत्मबोध हुवेही या कायाक्लेशके भयसे कर्मोंको त्याग देता है. विनाअन्तःकरण शुद्ध हुवे त्यागका फल (ज्ञाननिष्ठा) उसको प्राप्त नहीं होता. ॥८॥

मू०कार्यमित्येवयत्कर्मनियतंक्रियतेऽर्जुन॥
संगंत्यक्त्वाफलंचैवसत्यागःसात्विकोमतः ॥९॥

अर्जुन १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ कार्यम् ५ इति ६ एव ७ संगम् ८ च ९ फलम् १० त्यक्त्वा ११ क्रियते १२ सः १३ त्यागः १४ एव १५ सात्विकः १६ मतः १७ ॥९॥ अ० उ० सतोगुणी त्याग यह है. हे अर्जुन १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ सि० है, सो ❋ करना चाहिये ५ यह निश्चय है. ६।७ संगको ८ और ९ फलको १० त्याग कर ११ सि० जो त्याग ❋ किया जाता है १२ सो १३ त्याग १४ निश्चयसे १५ सतोगुणी १६ माना है. १७ तात्पर्य हे-अर्जुन जो नित्यकर्म है, उसको ब्रह्मजिज्ञासु अवश्य करे, परंतु उसमें संग न करे. और उसके फलका त्याग करे. सो त्याग सतोगुणी है.

इसप्रकार जो कर्म करते हैं, उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है. फिर साधनचतुष्टयसंपन्न होकर, ब्रह्मविद्याका श्रवण करके अपने स्वरूपको जानकर कृतकृत्य होजाते हैं. उनको फिर कुछ कर्तव्य नहीं रहता. ॥ ९ ॥

मू०नद्वेष्ट्यकुशलंकर्मकुशलेनानुषज्जते ॥
त्यागीसत्वसमाविष्टोमेधावीछिन्नसंशयः॥१०॥

अकुशलम् १ कर्म २ न ३ द्वेष्टि ४ कुशले ५ न ६ अनुषज्जते ७ त्यागी ८ सत्वसमाविष्टः ९ मेधावी १० छिन्नसंशयः ११ ॥ १० ॥

अ० उ० जिसका शुद्ध अन्तःकरण होजाता है, उसका लक्षण यह है. बुरा १ सि० जो ❋ कर्म २ सि० उसके, साथ ❋ नहीं ३ वैर करता है. ४ अच्छेकर्ममें ५ नहीं ६ प्रीति करता है. ७ बुरेभले दोनोंकर्मोंका फल त्याग देता है. ८ आत्मा और अनात्माका जो विवेक उसकरके ९ अर्थात् विचारवान् ९ आत्मनिष्ठ १० संदेहरहित ११सि० ऐसा होता है. ❋ तात्पर्य जबतक प्राणीको इच्छा रहती है, तबतक अच्छे कर्मोंमें प्रीति रखता है. और उसके वास्ते नानाप्रकारके यत्न करता है. अच्छे कर्म और बुरे कर्मोंका साथ है. बुरे कर्मपर वश होजाते हैं. इच्छारहितपुरुषको बुरा भला कर्म नहीं लगता. जो भलेकर्मोंका फल चाहेगा उसको बुरेकर्मोंका फल परवश होगा. विवेकी विचारवान् शुद्धान्तःकरणवाला सन्देहरहित सदा आत्मनिष्ठ रहता है. ज्ञानीको परमानन्दस्वरूप आत्माके सामने सबकर्मोंके फल तुच्छ प्रतीत होते हैं. ॥ १० ॥

मू०नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुंकर्माण्यशेषतः ॥
यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते॥११॥

देहभृता १ अशेषतः २ कर्माणि ३ त्यक्तुम् ४ नहि ५ शक्यम् ६ यः ७ तु ८ कर्मफलत्यागी ९ सः १० त्यागी ११ इति १२ अ-

भिधीयते १३ ॥ ११ ॥ अ० उ० जो कोई यह समझे कि कर्मों-
का फल त्यागनेसे कर्मोंकोही त्यागदेना अच्छाहै.इसवास्ते श्रीभगवा-
न् कहते हैं,कि अज्ञानी जीव समस्तकर्मोंको नहीं त्यागसक्ता. फल-
हीका त्याग करसक्ता है. कर्मोंका फल त्यागनेसे अन्तःकरण शुद्ध
होता है.यह परम फल है और इसीसे ज्ञान होता है.ज्ञानी समस्तकर्म
त्यागसक्ता है क्योंकि कर्मोंका फल जो अज्ञानकी निवृतिथी सो
हुवी. जबतक अज्ञान दूर नहो तबतक कर्मोंका त्याग नचाहिये.वर्णा-
श्रमाभिमानी अज्ञानी जीव १ समस्त २ कर्म ३ त्यागनेको ४ नहीं
५ समर्थ है. ६ जो ७।८ कर्मके फलका त्यागी ९ सि० है ❀ सो १०
त्यागी ११।१२ कहा है. १३ तात्पर्य अज्ञानीजीव कर्मोंके त्यागनेसे
बन्धनको प्राप्त होता है.क्योंकि अन्तःकरणके शुद्धीका उपाय उसने
छोड दिया और ज्ञानी कर्म करता हुवाभी अकर्ताही है. क्योंकि आ-
त्मा सदा असंग अक्रिय ऐसाहै इसज्ञानके प्रतापसे मुक्त होताहै ११॥

मू० अनिष्टमिष्टंमिश्रंचत्रिविधंकर्मणःफलम् ॥
भवत्यत्यागिनांप्रेत्यनतुसंन्यासिनांक्वचित् ॥ १२॥

अनिष्टम् १ च २ इष्टम् ३ मिश्रम् ४ त्रिविधम् ५ कर्मणः ६ फलम्
७ प्रेत्य ८ अत्यागिनाम् ९ भवति १० तु ११ संन्यासिनाम् १२
क्वचित् १३ न १४॥१२॥ अ० उ० जो कर्मोंका फल त्याग देते हैं,
उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर उनको परमानन्दपरमफलकी प्राप्ती
होती है. और जो सकामकर्म करते हैं, उनको इष्ट और अनिष्ट और
इष्टानिष्ट. अर्थात् मिलाहुवा यह तीनप्रकारका फल होता है. और
जो विना अन्तःकरणशुद्धहुवे कर्म छोड देते हैं, वे सदा नरक और
पशुपक्षियोंके योनियोंमें जन्मलेकर वारंवार मरते हैं. इसवास्ते श्री-
भगवान् वारंवार जिज्ञासूको निष्कामकर्मका उपदेश फलके सहित
करते हैं नरकादि १ और २ स्वर्गादि ३ सि० और ❀ मर्त्यलोकमें

मनुष्यादिदेहोंकी प्राप्ती ४ सि० यह ❋ तीनप्रकार ५ कर्मका ६ फल ७ मरकरके ८ सकामोंको ९ होता है. १० और ११ संन्यासियोंको १२ कभी १३ नहीं १४ सि० होता है. ❋ तात्पर्य स्वर्गादि अनित्य और दुःखदायी पदार्थ हैं. भगवद्भजनकरके जो अनित्यफलकी प्राप्ति हुई तो क्या हुवा नित्यएकरसपरमानन्दकी प्राप्ति होना चाहिये, सो संन्यासियोंकोही होतीहै. श्रीभगवान् स्पष्ट वेसन्देहकहतेहैं. १२

मू० पंचैतानिमहाबाहोकारणानिनिबोधमे ॥
सांख्येकृतांतेप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्मणाम् ॥ १३

महाबाहो १ सर्वकर्मणाम् २ सिद्धये ३ एतानि ४ पंच ५ कारणानि ६ सांख्ये ७ कृतान्ते ८ प्रोक्तानि ९ मे १० निबोध ११ ॥ १३ ॥ अ० उ० कर्म और कर्मोंके फलका तब त्याग होसक्ता है कि जब कर्मोंके जडका ज्ञान हो. इसवास्ते कर्मोंके जो कारण हैं तिनको बताते हैं. हेअर्जुन १ सबकर्मोंके २ सिद्धीकेवास्ते ३ ये ४ पांच ५ कारण ६ सांख्यकृतान्तमें ७।८ कहे हैं. ९ मुझसे १० सुन ११ सि० तिनको. ❋ टी० भले प्रकार परमात्माका स्वरूप जानाजावे जिसशास्त्रमें, उसको सांख्य कहते हैं. ब्रह्मविद्या वेदान्तशास्त्रका नाम सांख्य है. और कर्मोंका अन्त है जिसमें उसको कृतान्त कहते हैं. यह उसी सांख्यका विशेषण है. ॥ १३ ॥

मू० अधिष्ठानंतथाकर्ताकरणंचपृथग्विधम् ॥
विविधाश्चपृथक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमम् ॥ १४ ॥

अधिष्ठानम् १ तथा २ कर्ता ३ करणम् ४ च ५ पृथग्विधम् ६ विविधाः ७ च ८ पृथक्चेष्टा ९ दैवम् १० च ११ एव १२ अत्र १३ पंचमम् १४ ॥ १४ ॥ अ० उ० कर्म करनेमें ये पांच हेतु हैं. स्थूलशरीर भौतिक इन्द्रियादिका आश्रा १ चैतन्य और जडकी ग्रन्थि अहंकार २।३ अर्थात् सोपाधिक चैतन्य २।३ और इन्द्रिय ४।५ पृ-

थक्स्वरूपवाली. ६ और कैप्रकारकी ७।८ सि० ये दोनों चौथापद करण याने इन्द्रिय इसके विशेषण हैं. मूलमें करणं, यह पद है चौथा और ❋ प्राणापानादि ९ और दैव १०।११।१२ इनमें १३ पांचवां. १४ अर्थात् इन्द्रियोंकी देवता. तात्पर्य शरीर इन्द्रिय प्राण अन्तःकरण अज्ञान इनके साथ मिलाहुवा चैतन्य कर्ता है. पृथक् अकर्ता है ॥ १४ ॥

मू०शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥
न्याय्यंवाविपरीतंवापंचैतेतस्यहेतवः ॥ १५ ॥

नरः १ शरीरवाङ्मनोभिः २ यत् ३ कर्म ४ प्रारभते ५ वा ६ न्याय्यं ७ वा ८ विपरीतम् ९ तस्य १० एते ११ पंच १२ हेतवः १३ ॥ १५ ॥ अ० प्राणी १ शरीरवाणीमनकरके २ जो ३ कर्म ४ प्रारंभ करता है, ५ या ६ अच्छा ७ या ८ बुरा ९ तिसके १० ये ११ पांच १२ हेतु १३ सि० हैं जो पिछले श्लोकमें शरीरादिं कहे. ❋शरीर १ सोपाधिचैतन्य २ इन्द्रिय ३ प्राण ४ दैव ५ अर्थात् आदित्यादिदेवता यही पांच करण हैं. केवल आत्माकारण, कर्ता नहीं. अगले मंत्रमें भगवान् स्पष्ट कहेंगे ॥ १५ ॥

मू०तत्रैवंसतिकर्तारमात्मानंकेवलंतुयः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः ॥१६॥

तत्र १ एवम् २ सति ३ तु ४ यः ५ आत्मानम् ६ केवलम् ७ कर्तारम् ८ पश्यति ९ अकृतबुद्धित्वात् १० सः ११ दुर्मतिः १२ न १३ पश्यति १४ ॥१६॥ अ०उ० जबकि सबकर्मोंमें ये पांच हेतु हैं.तो फिर केवल आत्माको कर्ता समझना मूर्खता है. तहां १ अर्थात् सबकर्मोंमें १ इसप्रकारहुवे सन्ते २।३ फिर ४ जो ५ आत्माको ६ केवल ७ कर्ता ८ देखता है, ९ सि० इसमें हेतु यह है कि सच्छास्त्रसद्गुरूपदेशरहित होनेसे अर्थात् गुरूने उसको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं

किया इसवास्ते ❋ अकृतबुद्धिहोनेसे १०अर्थात् ब्रह्मज्ञान न होनेसे १० सो ११ मंदमति १२ सि० आत्माको यथार्थ ❋ नहीं १३ देखता है. १४ टी० जैसे पिछले मंत्रमें कहा इसप्रकार वास्तव आत्मा शुद्ध सच्चिदानंद निर्विकार अक्रिय है. शरीरेन्द्रियादिभ्रान्तिके सम्बन्धसे जलचन्द्रवत् आत्मा कर्त्ता प्रतीत होता है अज्ञानियोंको, जिन्होंने वेदान्तशास्त्र श्रद्धापूर्वक नहीं श्रवण किया. ॥ १६ ॥

मू० यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥
हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहंतिननिबध्यते ॥ १७ ॥

यस्य १ अहंकृतः २ भावः ३ न ४ यस्य ५ बुद्धिः ६ न ७ लिप्यते ८ सः ९ इमान् १० लोकान् ११ अपि १२ हत्वा १३ न १४ हन्ति १५ न १६ निबध्यते १७ ॥ १७ ॥ अ० उ० सुमति याने श्रद्धावाले जो आत्माको अक्रिय जानते हैं, वे कर्मकरते हुवे भी अकर्ताही हैं. इसबातको कैमुतिकन्यायसे श्रीभगवान दृढकरते हैं. अर्थात् जब बुरेकर्म हिंसादि उसको बन्धन नहीं करते, तो भलेकर्म यज्ञादि उसको कैसे बन्धन करेंगे. जिसको १ अहंकृत २ भाव ३ नहीं ४ अर्थात् यह कर्म मैंने नहीं किया, इसकर्म करनेमें शरीरादि पंच हेतु हैं. मैं शुद्ध असंग अविद्यारहित हूं. ऐसे जो समझता है. ४ सि० और ❋ जिसकी ५ बुद्धि ६ नहीं ७ लिपायमान होती है. ८ अर्थात् किसीप्रकारका कर्म शुभाशुभ प्रारब्धवशात् होजावे, किंचिन्मात्र हर्ष शोक न होवे जिसको ८ सो ९ इन १० लोगोंको ११ भी १२ मारकरके १३ नहीं १४ मारता है १५ न १६ बन्धनको प्राप्त होता है. १७ तात्पर्य जो मुमुक्षु दिनरात मुक्तीकेलिये यथाशक्ति यत्न करते हैं, जहांतक होसके देशकालवस्तूके अनुसार भगवद्भजन पूजा, पाठ, जप, तीर्थस्नानादिकर्म करते रहते हैं. परलोकमें आस्तिक्यबुद्धि है, और शुभकर्मोंके प्रतापसे शुद्धान्तःकरण

होकर, आत्मज्ञान प्राप्त हुवा है. जो कदाचित् किसी पिछले पापका उदय होनेसे प्रारब्ध वशात् कोई जाने वा विनाजाने बुरा बनजावे, ऐसे मुमुक्षुसे कि जिसका लक्षण ऊपर कहा. तो उसकर्मका दोष कभी उसमहात्माको नहीं लगेगा. जो उसको दोष समझेंगे वो फल उनको होगा. वेदशास्त्रईश्वरका इसबातमें संमत है ॥ १७ ॥

मू० ज्ञानंज्ञेयंपरिज्ञातात्रिविधाकर्मचोदना ॥
करणंकर्मकर्तेतित्रिविधःकर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

परिज्ञाता १ ज्ञानम् २ ज्ञेयम् ३ त्रिविधा ४ कर्मचोदना ५ कर्ता ६ कर्म ७ करणम् ८ इति ९ त्रिविधः १० कर्मसंग्रहः ११ ॥ १८ ॥ अ० उ० अब अन्यप्रकारसे आत्माको अकर्ता सिद्ध करते हैं. ज्ञाता १ ज्ञान २ ज्ञेय ३ तीनप्रकार ४ कर्मकी प्रेरणा है. ५ सि० और ❋ कर्ता ६ कर्म ७ करण ८ यह ९ तीनप्रकार १० कर्मसंग्रह ११ सि० है ❋ टी० जाननेवाला १ जिसकरके जानाजावे २ जाननेकेयोग्य ३ कर्मके प्रवृत्तिमें हेतु ५ क्रियाका आश्रय ११ तात्पर्य चिदाभास और अन्तःकरणकी वृत्ति, और श्रोत्रादिइन्द्रिय, यही कर्मके प्रवृत्तीमें हेतु हैं. आत्मा कूटस्थ निर्विकार है. बन्धमोक्ष चिदाभासकोही है. आत्मा बन्धमोक्षशब्दोंका विषयभी नहीं ॥ १८ ॥

मू० ज्ञानंकर्मचकर्ताचत्रिधैवगुणभेदतः ॥
प्रोच्यतेगुणसंख्यानेयथावच्छृणुतान्यपि ॥ १९ ॥

कर्ता १ च २ कर्म ३ च ४ ज्ञानम् ५ गुणभेदतः ६ गुणसंख्याने ७ त्रिधा ८ एव ९ प्रोच्यते १० तानि ११ अपि १२ यथावत् १३ शृणु १४ ॥ १९ ॥ अ० उ० कर्ताकर्मादि सब त्रिगुणात्मकहैं. आत्मा त्रिगुणरहित है. कर्ता १ और २ कर्म ३ और ४ ज्ञान ५ गुणोंके भेदसे ६ सांख्यशास्त्रमें ७ तीनप्रकारके ८।९ कहे हैं. १० तिनको ११।१२ यथार्थ १३ सुन. १४ तात्पर्य कर्ता-

दिमें तीनतीन भेद हैं वे यह सत्व रज तम और यह तीनोंगुण अ-ज्ञानकरके कल्पित हैं. अज्ञानके दूर होनेसे परमानन्दस्वरूप नित्य प्राप्त आत्माकी प्राप्ति होती है. तमोगुणको रजोगुणसे दूर करे, रजोगुणको सत्वगुणसे, सत्वगुणको ब्रह्मविद्यासे दूरकरे. इसीवास्ते यह तीनप्रकारका भेद दिखाकर आत्माको इन तीनों गुणोंसे पृथक् दिखलाया है. ॥ १९ ॥

मू० सर्वभूतेषुयेनैकंभावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तंविभक्तेषुतज्ज्ञानंविद्धिसात्विकम् ॥ २० ॥

विभक्तेषु १ सर्वभूतेषु २ येन ३ अविभक्तम् ४ एकम् ५ भावम् ६ अव्ययम् ७ ईक्षते ८ तत् ९ ज्ञानम् १० सात्विकम् ११ विद्धि १२ ॥ २० ॥ अ० उ० सात्विकज्ञान यह है. पृथक् पृथक् सबभूतोंमें १।२ जिसज्ञानकरके ३ अनुस्यूत ४ एक ५ भाव ६ निर्विकार ७ सि० परमात्माको ❋ देखता है ८ सो ९ ज्ञान १० सतोगुणी ११ जान तू. १२ तात्पर्य जैसा वस्त्रमें सूत अनुस्यूत है, इसीप्रकार ब्रह्माजीसे ले चींटीतक सबभूतोंमें सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध निर्विकार परमात्मा एकही है. देहोंके उपाधीसे पृथक् पृथक् देवता मनुष्य पश्वादि, कहाजाता है. इसप्रकार जो आत्माको जानते हैं जिसज्ञानकरके, सोज्ञान सतोगुणीहै. अद्वैतवादियोंका यहीज्ञानहै ॥ २० ॥

मू० पृथक्त्वेनतुयज्ज्ञानंनानाभावान्पृथग्विधान् ॥
वेत्तिसर्वेषुभूतेषुतज्ज्ञानंविद्धिराजसम् ॥ २१ ॥

पृथक्त्वेन १ तु २ यत् ३ ज्ञानम् ४ तत् ५ ज्ञानम् ६ राजसम् ७ विद्धि ८ सर्वेषु ९ भूतेषु १० नाना ११ भावान् १२ पृथक् विधान् १४ वेत्ति १५ ॥ २१ ॥ अ० उ० भेदवादियोंके रजोगुणी ज्ञानको कहते हैं. पृथग्भावकरके १।२ जो ३ ज्ञान ४ तिसज्ञानको ५।६ रजोगुणी ७ तूं जान. ८ सि० इसीबातको फिर स्पष्ट करके कहते है ❋

सबभूतोंमें ९।१० नानाप्रकारके ११ पदार्थोंको १२ पृथक् १३ प्रकार १४ जो जानताहै १५ सि० जिसज्ञानकरके, तिसज्ञानको रजोगुणी जान तूं. ❋ तात्पर्य निरवयवपदार्थसच्चिदानन्दस्वरूपपरमात्मासे आत्माको पृथग्भाव करके जानना. अर्थात् परमात्मा चित्घन है.और आत्मा चित्कण है. इसप्रकार भेदवादी आत्मदृष्टीकरके भी अर्थात् निरवयव आत्मामें भी भेदको सिद्धान्त जानते हैं अविद्याके उपाधिसे देहदृष्टीकरके भ्रान्तिजन्यभेद व्यवहारमें प्रतीत होता है, कि जिसको रजोगुणी भेदवादी सिद्धान्त समझते हैं. इसी हेतुसे ज्ञान रजोगुणीभेदवादियोंका है. ॥ २१ ॥

मू० यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिन्कार्येसक्तमहैतुकम्॥
अतत्वार्थवदल्पंचतत्तामसमुदाहृतम्॥ २२॥

यत् १ तु २ एकस्मिन् ३ कार्ये४कृत्स्नवत् ५सक्तम् ६ अहैतुकम् ७ च ८ अतत्वार्थवत् ९ अल्पम् १० तत् ११ तामसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥ २२ ॥ अ० उ० तमोगुणीज्ञानको कहते हैं. जो १।२ सि० ज्ञान ❋ एक ३ कार्यमें ४ संपूर्णवत् ५ सक्त ६ सि० है ❋ अर्थात् एककार्यमें संपूर्णवत् जो ज्ञान है, जैसे आपको देहदृष्टीसे ब्राह्मणसंन्यासी इतनेही स्थूलशरीरको जानना.और पाषाणके मूर्तिहीको और श्रीरामचन्द्रादि सावयवमूर्त्तीकोही परमार्थमें परमात्मा जानना. अर्थात् इनसे परे कुछ अन्य निरवयव सच्चिदानन्द शुद्धतत्त्व नहीं है. मूर्तिमान्ही परमात्मा हैं. यह शरीरही ब्राह्मणसंन्यासी है. यही मूर्तिपाषाणकी परमेश्वर है. यह ज्ञान. ६ हेतुरहित ७ अर्थात् ऐसे ज्ञानमें कोई युक्ति नहीं ७ और ८ परमार्थ (सिद्धान्त) नहीं है ९ सि० परमतत्त्वसिद्धांतके प्राप्तीका एक साधन है. फिर कैसा है कि ❋ तुच्छ है. १० सि० क्योंकि इसका फल अल्प है.

वैराग्यादिसाधनोंकी अपेक्षाकरके इस ज्ञानसे चिरकालमें अन्तःकरण शुद्ध होता है. इसप्रकारका जो ज्ञान * सो ११ तमोगुणी १२ कहा है. १३ तात्पर्य यह है कि ज्ञानीभी तीनप्रकारके हैं, विना सात्विकब्रह्मज्ञानहुवे रजोगुणी तमोगुणीज्ञानमें अटक जाना, इसीज्ञानसे मोक्ष समझ लेना मूर्खता है. जो साधनको सिद्धान्त समझते हैं जिस समझसे, वोही तमोगुणीज्ञान है. ॥ २२ ॥

मू० नियतंसंगरहितमरागद्वेषतःकृतम् ॥
अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्विकमुच्यते ॥२३॥

अफलप्रेप्सुना १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ संगरहितम् ५ अरागद्वेषतः ६ कृतम् ७ तत् ८ सात्विकम् ९ उच्यते १० ॥ २३ ॥
अ० उ० कर्म तीन प्रकारका है. प्रथम सतोगुणी कहते हैं. नहीं फलकी चाह है जिसको तिसने १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ संगरहित ५ विनारागद्वेषके ६ किया सो सतोगुणी ७।८।९ कहा है. १० तात्पर्य स्नान, ध्यान, पाठ, पूजा तीर्थ, साधुसेवा इत्यादि कर्म करना शास्त्रकी आज्ञा है. कर्ममें आसक्ति (प्रीति) करनेसे फलकी चाह करनेसे बन्धन होता है. इसवास्ते कर्ममे प्रीति द्वेष आसक्ति इनका त्याग करना कि जो वो कर्म अन्तःकरणको शुद्ध करके परमानन्दस्वरूपआत्माको प्राप्त करे. आसक्ति प्रीति उसपदार्थमे चाहिये कि जो नित्य एकरस हो. और ऐसेही फलकी चाह न करना. फल प्राप्त होनेके पीछेभी साधनोंसे रागद्वेष न चाहिये ॥ २३ ॥

मू० यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहंकारेणवापुनः ॥
क्रियतेबहुलायासंतद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

कामेप्सुना १ यत् २ कर्म ३ साहंकारेण ४ क्रियते ५ वा ६ तु ७ पुनः ८ बहुलायासम् ९ तत् १० राजसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥२४॥ अ० उ० रजोगुणी कर्म कहते हैं. फलकी कामना है जिसको

उसने १ जो २ कर्म ३ अहंकारकेसहित ४ किया है. ५ और ६।७ ८ बहुत श्रम हो जिसमें ९ सो १० सि० कर्म * रजोगुणी ११ कहा है. १२ तात्पर्य पुत्रस्त्रीधनस्वर्गादिभोगोंके निमित्त, वा यह अहंकारकरके कि हमारे बराबर अग्निहोत्री कौन है.जितने हमने तीर्थ किये कि उतने किसीसे होसक्ते हैं. ब्रह्मज्ञानसे क्या होता है, जो है सो कर्महीं है. अब हम चारों धाम करचुके, इसहेतुसे हम कृतकृत्य हैं. और कर्म करनेमें इतना श्रम करना कि विचार किंचित् न होसके. जैसे कि तीर्थयात्रामें चार गौकोस चलना चाहिये. प्रातःकालसे सायंकालतक ब्राह्ममुहूर्त और प्रदोषकालमें भी रस्ता मापना. इसप्रकारके कर्म सब रजोगुणी है ॥ २४ ॥

मू० अनुबन्धंक्षयंहिंसामनवेक्ष्यचपौरुषम् ॥
मोहादारभ्यतेकर्मतत्तामसमुदाहृतम् ॥ २५ ॥

अनुबंधम् १ क्षयम् २ हिंसाम् ३च ४ पौरुषम्५अनवेक्ष्य ६ मोहात् ७ कर्म ८ आरभ्यते ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ २५ ॥ अ० उ० तमोगुणीकर्म कहते हैं. पश्चाद्भावि १ द्रव्यादीका खर्च २ हिंसा ३ और ४पुरुषार्थ५ सि० इन चारोंको * न देखके ६ मोहसे ७ सि० जो * कर्मका ८ आरंभ किया ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है. १२ तात्पर्य औरोंके देखादेखी या सुनकर विचार न करके, अर्थात् जो मैं यह कर्म करूंगा, तो मुझको पीछे इसका फल क्या होगा. कितना इस कर्ममें द्रव्यव्यय होगा, मुझको वा औरोंको कितना दुःख होगा, यह काम मुझसे होसकेगा वा नहीं, यह न विचारकर मूर्खतासे कर्मका प्रारंभ करदेना, तमोगुणी कहा है. क्योंकि विनाविचारके शब्दबोलनेमें भी किसीजगे न्योता वैर होजाता है. इसीप्रकार विनाविचार तीर्थव्रतमंदिरादिके आरंभकरदेनेमें सिवाय दुःख और पापके कुछ नहीं मिलता. खोटेकर्मोंका तो

कुछ प्रसंगही नहीं. वे तो विचारपूर्वक और विनाविचार किये हुवे अनर्थकी मूल हैं ॥ २५ ॥

मू०मुक्तसंगोनहंवादीधृत्युत्साहसमन्वितः॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारःकर्तासात्विकउच्यते २६

मुक्तसंगः १ अनहंवादी २ धृत्युत्साहसमन्वितः ३ सिद्ध्यसिद्ध्योः ४ निर्विकारः ५ कर्ता ६ सात्विकः ७ उच्यते ८ ॥ २६ ॥

अ० उ० कर्ता तीनप्रकारका है. प्रथम सतोगुणी कर्ताको कहते हैं. संगरहित १ अहंकाररहित २ धैर्यउत्साहकरके युक्त ३ सिद्धीमें और असिद्धीमें ४ निर्विकार ५ सि० ऐसा ❋ कर्ता ६ सतोगुणी ७ कहा है. ८ तात्पर्य कर्मोंमें आसक्त नहोना चाहिये, क्योंकि अन्तःकरण-शुद्धीके पीछे कर्मोंको त्यागना होगा. जिसपदार्थसे एकदिन जूदा होना है, उसमें प्राप्तिसमयभी प्रीति न रखना. अथवा संगरहितका अर्थ यह समझना चाहिये, कि मैं असंग हूं. अहंकार न करना कि मैं ऐसा वेदोक्तकर्म करता हूं. कर्मकरनेमें धैर्य उत्साह रखना जो धैर्य उत्साह नहोगा, तो कभी कर्ममें प्रवृत्ति और स्थिति न होगी. उत्साहसे कर्ममें प्रवृत्ति होती है, और धैर्यसे कर्ममें स्थिति रहती है. और कर्मके सिद्धीमें और असिद्धीमें निर्विकार रहना. दैवयोगसे जो कर्म प्रत्यक्षफल देवे, कि जैसा फल शास्त्रमें लिखा है. या वैसा फल नहो तो दोनोंमें निर्विकार रहना. जो पदार्थ नाशशील है वो हुवा नहुवा सम है. प्रत्युत होकर नाश होनेसे नहोना श्रेष्ठ है. परम फल अन्तःकरणशुद्धिद्वारा परमानंदस्वरूपआत्मापर दृष्टि चाहिये. सतोगुणीकर्मोंको जो सतोगुणीकर्ता पुरुष करेगा, तो वेसंदेह उसका अंतःकरण शुद्ध होगा ॥ २६ ॥

मू०रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्मकःशुचिः॥
हर्षशोकान्वितःकर्ताराजसःपरिकीर्त्तितः॥२७॥

रागी १ कर्मफलप्रेप्सुः २ लुब्धः ३ हिंसात्मकः ४ अशुचिः ५ हर्षशोकान्वितः ६ कर्ता ७ राजसः ८ परिकीर्तितः ९ ॥ २७ ॥ अ० उ० रजोगुणीकर्ताको कहते हैं. प्रीतीवाला १ अर्थात् पुत्रादीके प्रीत्यर्थं कर्म करनेवाला, कर्मोंके फलको चाहने वाला २ लोभी याने परायेधनकी इच्छा करनेवाला ३ दूसरेको दुःख देनेवाला ४ अपवित्र ५ हर्षशोककरके युक्त ६ सिं० ऐसा * कर्ता ७ रजोगुणी ८ कहा है. ९ तात्पर्य जो पुरुष पुत्रमित्रादिकोंको प्रसन्न करनेकेलिये, अर्थात् यह जो मैं कर्मकरता हूं इसकर्मके देखने सुननेसे मेरे मित्रादि आनन्दित होंगे, इसदृष्टीसे कर्म करना. कर्मोंमें राग रखना, फलको चाहना, पराईस्त्रीधनादिकी इच्छा रखना, अर्थात् हमको अच्छा कर्मकरता हुवा देख सुनकर राजा प्रजा दान देंगे. कर्मकरनेके समय दूसरेके दुःखपर दृष्टि न देना. भीतर बाहरसे अपवित्र रहना, कर्मके सिद्धीमें हर्ष करना. असिद्धीमें शोक करना, इसप्रकारका कर्ता रजोगुणी है. जो इसप्रकार वेदोक्तकर्म भी करता है, तो वो कर्म मोक्षका हेतु नहोगा ॥ २७ ॥

मू०अयुक्तःप्राकृतःस्तब्धःशठोनैष्कृतिकोलसः ॥
विषादीदीर्घसूत्रीचकर्तातामसउच्यते ॥ २८॥

अयुक्तः १ प्राकृतः २ स्तब्धः ३ शठः ४ नैष्कृतिकः ५ अलसः ६ विषादी ७ दीर्घसूत्री ८ च ९ कर्ता १० तामसः ११ उच्यते १२ ॥ २८ ॥ अ० उ० तमोगुणीकर्ताको कहते हैं. कर्मकरनेके समय कर्ममें चित्त न रखना १ विवेकरहित २ अर्थात् यह न समझना कि कर्म करनेका यथार्थफल क्या है २ अनम्र ३ मायावी ४ अर्थात् कर्म तो वेदोक्त करना और मनमें यह रखना कि दूसरेको धोखा देकर उसका धन छीन लेना चाहिये इस बातको छिपानेवाला. ४ दूसरेके आजीविकाका नाश करनेवाला अपमान करने वाला ५

आलसी ६ सदा रोती सूरत, याने अप्रसन्न रहनेवाला ७ जो काम घडीके करनेका है उसको दोचार पहर या महीना लगा देनेवाला ८।९ अर्थात् तनकसें कामका बहुत विस्तार करदेनेवाला ८।९ सि० ऐसा ❋ कर्ता १० तमोगुणी ११ कहा है. १२ टी० अपनेको कर्मनिष्ठ समझकर ज्ञाननिष्ठभगवद्भक्तोंको शूद्रादि समझकर उनको नमस्कार न करना ॥ २८ ॥

मू०बुद्धेर्भेदंधृतेश्चैवगुणतस्त्रिविधंशृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेणपृथक्त्वेनधनंजय ॥ २९ ॥

धनंजय १ बुद्धेः २ धृतेः ३ च ४ भेदम् ५ गुणतः ६ त्रिविधम् ७ पृथक्त्वेन ८ प्रोच्यमानम् ९ अशेषेण १० एव ११ शृणु १२ ॥ २९ ॥ अ० हे अर्जुन १ बुद्धीका २ और धैर्यका ३ । ४ भेद ५ गुणोंसे ६ तीन प्रकारका ७ जूदाजूदा ८ कहना है. ९ सि० जो अगले छः श्लोकोंमें उसको. ❋ विस्तारसेही १० । ११ सुन. १२ तात्पर्य संसारमें रजोगुणीतमोगुणीबुद्धीवालेभी बुद्धिमान् कहेजाते हैं. सो वो समझ उनकी मोक्षकेलिये नहीं. परमार्थकी बात तमोगुणी रजोगुणी बुद्धिवाले नहीं जानते. उनको बुद्धिमान् समझकर परमार्थमें उनके समझऊपर विश्वास रखकर अनुष्ठान करना न चाहिये. इसीवास्ते बुद्धीका भेद श्रीभगवान् दिखाते हैं ॥ २९ ॥

मू०प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्याकार्येभयाभये ॥
बंधंमोक्षंचयावेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्विकी॥३०॥

पार्थ १ या २ बुद्धिः ३ प्रवृत्तिम् ४ च ५ निवृत्तिम् ६ च ७ कार्याकार्ये ८ भयाभये ९ बंधम् १० च ११ मोक्षम् १२ वेत्ति १३ सा १४ सात्विकी १५ ॥३०॥ अ० उ० बुद्धि तीनप्रकारकी है. प्रथम सतोगुणी बुद्धीको कहते हैं. हेअर्जुन १ जो २ बुद्धि ३ प्रवृत्तीको ४ और ५ निवृत्ती को ६ और ७ कार्य अकार्य ८ भयअभय ९ बन्ध १० और ११ मोक्षको

१२ जानती है १३ सो १४ सि० बुद्धि * सतोगुणी. १५ तात्पर्य प्रवृत्ति बंधको हेतु है.निवृत्ति मोक्षमें हेतु है. इस देशकालमें ऐसे पुरुषने यह करना योग्य है, यह अयोग्य है, खोटे कामकरनेमें भय होगा, भगवद्भजनविवेकवैराग्यादिशुभकर्मोंमें भय नहीं, इसप्रकार कर्मकरनेसे बन्ध होता है. इसप्रकार कर्मोंके करनेसे मुक्ति होती है.ऐसी जिसकी बुद्धि है वो सतोगुणी है. बहुतकर्म ऐसे हैं, कि वे किसीकेलिये अच्छे हैं, किसीकेलिये बुरे हैं. एककाम किसीदेशकालमें कोई करसक्ता है, किसीदेशकालमें वो काम नहीं होसक्ता. किसीको एककर्म करनेका अधिकार है,किसीको उसीको त्यागनेका अधिकार है. ऐसीऐसी बहुत बातों हैं वो निवृत्ति सतोगुणीमहापुरुष जानते हैं.केवल वेदशास्त्रके पढनेसुननेसे तात्पर्यार्थ नहीं जाना जाता. एकएक बात समझानेको नानाप्रक्रिया याने रीति हैं. महात्मा अनेकदृष्टांतयुक्तियोंसे समझासक्ते हैं, यदि वे प्रसन्न होजावें तो ॥ ३० ॥

मू० ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥
अयथावत्प्रजानातिबुद्धिःसापार्थराजसी ॥३१॥

पार्थ १ यया २ धर्मम् ३ अधर्मम् ४ च ५ कार्यम् ६ च ७ अकार्यम् ८ एव ९ च १० अयथावत् ११ प्रजानाति १२ सा १३ बुद्धिः १४ राजसी १५ ॥ ३१ ॥ अ० उ० रजोगुणीबुद्धीको कहते हैं. हेअर्जुन १ जिसबुद्धीकरके २ धर्मको ३ और अधर्मको ४।५ कार्य और अकार्यको ६।७।८।९।१० संदेहसहित ११ जानता है, १२ अर्थात् यथावत् जैसेका तैसा नहीं जानता है १२ सि० उसकी * सो १३बुद्धि १४ रजोगुणी. १५ तात्पर्य धर्माधर्ममें, कार्याकार्यमें जिसको संदेह बनाही रहता है, उसकी बुद्धि रजोगुणी है. यह जीव सच्चिदानंदस्वरूपपूर्णब्रह्म है वा नहीं, वेदशास्त्रमें अद्वैतसिद्धान्त सत्य है वा नहीं, कर्मोंके संन्याससे मोक्ष होता है वा नहीं, निष्कामकर्म करनेसे अन्तः

करण शुद्ध होता है वा नहीं, वेदशास्त्रप्रमाण हैं वा नहीं, इसप्रकार संदेह रहना यह रजोगुणीबुद्धिका दोप है ॥ ३१ ॥

मू० अधर्मंधर्ममितियामन्यतेतमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्चबुद्धिःसापार्थतामसी ॥ ३२ ॥

सर्वार्थान् १ या २ बुद्धिः ३ तमसावृता ४ अधर्मम् ५ धर्मम् ६ इति ७ मन्यते ८ च ९ सर्वार्थान् १० विपरीतान् ११ सा १२ तामसी १३ ॥ ३२ ॥ अ० उ० तमोगुणीबुद्धि कहते हैं. हे अर्जुन १ जो २ बुद्धि ३ तमोगुणकरके ढकी हुई ४ सि० इसबुद्धीकरके ❋ अधर्मकोही धर्म ५।६।७ मानता है, ८ और ९ सब अर्थोंको १० विपरीत ११ सि० जिसबुद्धीकरके समझता है. ❋ सो १२ तमोगुणी १३ सि० बुद्धि है. ❋ तात्पर्य जो पुरुप सनातन ऐसे श्रौतस्मार्तधर्मको छोड इसकलियुगमें मनुष्योंने जो संप्रदाय और पन्थ अपने नामसे चलाये हैं, उनको धर्म समझकर उस रस्तेपर चलते हैं. तो विचार करना चाहिये कि श्रौतस्मार्तमार्गमें क्या दोषथा जो उसको त्यागकर कल्पितमार्गको धर्म समझा. यही तमोगुणीबुद्धीका दोष है. और श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ अपने मतके अनुसार करना यही विपरीत अर्थ है, तात्पर्य यह है कि श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्यमार्ग सनातन धर्म है. और कलियुगमें जो मत चले हैं. वे श्रुतिस्मृतीसे विरुद्ध हैं. क्यों कि जो वे श्रुतिस्मृतीके अनुसार होते तो उससंप्रदाय और पन्थका जूदा एकनाम क्यों बनाया. स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ श्रुतिस्मृतियोंका आशय लिया, कुछ श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ उलटा किया, कुछ अपने बुद्धीसे लिखदिया, और कह दिया कि यह ग्रंथ श्रुतिस्मृतियोंके अनुसार है. यही दोष तमोगुणीबुद्धीका है ॥ ३२ ॥

मू० धृत्यायययाधारयतेमनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्त्विकी ॥ ३३ ॥

पार्थ १ यया २ धृत्या ३ मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ४ धारयते ५ सा ६ धृतिः ७ सात्विकी ८ योगेन ९ अव्यभिचारिण्या १० ॥ ३३ ॥
अ०उ० अंतःकरणकी वृत्ति सत्वादिभेदसे तीनतीन प्रकारकी है. उनसबवृत्तियोंमेंसे एकवृत्ति धृतीको सत्वादिभेदसे तीनप्रकारकी दिखाते हैं. प्रथम सतोगुणीधीरजको कहते हैं. हे अर्जुन १ जिस-धृतीकरके २।३ मनप्राणइंद्रियोंके क्रियाको ४ धारण करता है ५ सो ६ धृति ७ सतोगुणी. ८ सि० कैसी है धृति * कर्म योगकरके अव्यभिचारिणी, ९।१० तात्पर्य स्वभावके वशसे अंतःकरणादि अपने अपने धर्ममें प्रवृत्त होते हैं. धैर्यसे सबको वश करना चाहिये, क्षुत्पिपासादिसमय व्याकुल न होना, यह नहोसके तो जानना कि कर्मयोगमें अभी कचाई है. अभी अन्तःकरणकी वृत्ति सतोगुणी नहीं हुई. सतोगुणप्रधानवृत्तिके परीक्षाके लिये यह धृतीका भेद श्रीभगवानने दिखाया है. जबतक इंद्रिय, प्राण, अन्तःकरण, इनका निरोध न होसके तबतक रजतम प्रधानवृत्तीको जानना. और उस-को निवृत्तीकेलिये कर्मयोगका अनुष्ठान करना चाहिये. केवल धृति तीनप्रकारकी है यह जानलेनेसे, मुक्ति न होगी. ॥ ३३ ॥

मू०ययातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेर्जुन ॥
प्रसंगेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥ ३४ ॥

अर्जुन १ यया २ धृत्या ३ धर्मकामार्थान् ४ धारयते ५ तु ६ पार्थ ७ असंगेन ८ फलाकांक्षी ९ सा १० धृतिः ११ राजसी १२ ॥३४॥
अ० उ० रजोगुणीधृतीको कहते हैं. अर्जुन १ जिस धृतीकरके २ ३ धर्मकामअर्थको ४ धारण करता है. ५ अर्थात् धर्मअर्थकामहीमें तत्पर रहता है, मोक्षमें वृत्ति नहीं करता. ५ और ६ हे अर्जुन! सि० धर्मादिके प्रसंग करके धृति * चाहवाली है. ९ सो १० धृति ११ रजोगुणी. १२ तात्पर्य शास्त्रश्रवणसे तो यह निश्चय किया

कि कर्म निष्काम करना चाहिये. फिर उसकर्मके प्रसंगसे पुत्र धन स्वर्ग वैकुंठादिकी इच्छा करनेलगे तो जानना चाहिये कि अंतःकरणकी वृत्ति रजप्रधान है. जबतक कर्मयोगका फल स्वर्गादि समझता रहेगा, परंपराकरके आत्माको फल न समझेगा, तबतक वृत्तीको रजप्रधान जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

मू०ययास्वप्नंभयंशोकंविषादंमदमेवच ॥
नविमुंचतिदुर्मेधाधृतिःसापार्थतामसी ॥ ३५ ॥

पार्थ १ दुर्मेधाः २ यया ३ स्वप्नम् ४ च ५ भयम् ६ शोकम् ७ विषादम् ८ मदम् ९ एव १० न ११ विमुंचति १२ सा १३ धृतिः १४ तामसी १५ ॥ ३५ ॥ अ० उ० तमोगुणीधृतीको कहते हैं. हे अर्जुन १ तमोगुणीबुद्धीवाला २ जिसधृतीकरके ३ स्वप्न ४ और ५ भय ६ शोक ७ विषाद ८ मदको ९।१० न ११ त्यागसक्ता है. १२ सो १३ धृतिः १४ तमोगुणी १५ तात्पर्य जागने समय ब्रह्मादिमुहूर्तमें भी न जागे सोताही रहे. और कर्म करनेके समय भी भय, शोक विषाद, मद ये बनेही, रहें. तो जानना चाहिये कि अन्तःकरणकी वृत्ति तमप्रधान है. यावत् वृत्ति तमोगुणी रहे. तावत् स्नान ध्यान साधुसेवादिकर्मोंको अवश्य करे ॥ ३५ ॥

मू०सुखंत्विदानींत्रिविधंशृणुमेभरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमतेयत्रदुःखांतंचनिगच्छति ॥३६॥

भरतर्षभ १ इदानीम् २ तु ३ सुखम् ४ त्रिविधम् ५ मे ६ शृणु ७ यत्र ८ अभ्यासात् ९ रमते १० दुखांतम् ११ च १२ निगच्छति १३ ॥ ३६ ॥ अ० उ० कर्ताकर्मकरणादिका भेद सत्वादिभेदसे तीनतीनप्रकारका कहा अब उनसबका फल तीनप्रकारका है यह कहते हैं. चतुर्दशाध्यायमें जो सत्त्वरजतमका भेद कहा, तो वहां यह दिखाया कि ये तीनोंगुण आत्माको बन्धन करते हैं. और

सत्रहवें अध्यायमें जो भेद कहा तो वहां यह दिखाया कि तपयज्ञादि रजोगुणीतामसी न करना, सात्विकी करना. क्योंकि सतोगुणीपुरुषका ज्ञानमें अधिकार है. और इसजगे (अठारहवें अध्यायमें) जो यह भेद कार्यकारणका सत्वादिभेदकरके कहा. और सत्वका फल (सुख) तीनप्रकारका कहते हैं. यहां यह दिखाते हैं. कि कर्ताकर्मकरणादि फलसहित सब त्रिगुणात्मक हैं. आत्माका किसीसे कीसीप्रकारका, वास्तव कुछ संबंध नहीं, आविद्यकसंबंध है. इसश्लोकके आधे मंत्रमें प्रतिज्ञा है, और आधेमें सतोगुणीसुखका लक्षण है. हे अर्जुन १ अब २ तो ३ सुखको ४ तीनप्रकारका ५ मुझसे ६ सुन ७ सि०प्रथम सतोगुणीसुखको डेढश्लोकमें कहता हूं ❋ जिंससात्विकसुखमें ८ सि० वृत्तीको ❋ अभ्याससे ९ अर्थात् शनैःशनैः नित्यप्रतिदिन बढता हुवा ९ रमता है. १० सि० जो, सो ❋ दुःखोंके अन्तको ११।१२ प्राप्त होता है १३ अर्थात् उसको फिर दुःखनहीं होता ११।१२ तात्पर्य दुःखके पार होजाता है. सबशास्त्रोंके पढनेका, सुननेका, और कर्मोंके अनुष्ठान करनेका यही फल है, कि सतोगुणीवृत्तिप्रधान होकर सदा सतोगुणीसुख बना रहे इसीसुखमें रमनेसे जलदी अनिर्वाच्य, अप्रमेय, परात्पर, परमानन्दस्वरूप, ऐसे आत्माकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

मू०यत्तदग्रेविषमिवपरिणामेमृतोपमम् ॥
तत्सुखंसात्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥३७॥

यत् १ अग्रे २ विषम् ३ इव ४ तत् ५ परिणामे ६ आत्मबुद्धिप्रसादजम् ७ अमृतोपमम् ८ तत् ९ सुखम् १० सात्विकम् ११ प्रोक्तम् १२ ॥ ३७ ॥ अ० जो १ सि०सुख ❋ प्रथमप्रारंभसमय२ विषवत् ३।४ सि० प्रतीत होता है, ❋ सो ५ पीछे ६ अपने अंतःकरणके प्रसादसे ७ सि० अमृतके सदृश ८ सि० है. ❋ सोई ९

सुख १० सतोगुणी ११ कहा है. १२ तात्पर्य वैराग्य, आत्मध्यान, ज्ञान, समाधि, इनके समय और शरीर, इन्द्रिय, और प्राण, इनके निरोधमें प्रथमदुःख प्रतीत होता है. जब अन्तःकरणकी वृत्ति रजोगुणी तमोगुणी कम हो जाती हैं,निर्मल सतोगुणीवृत्ति प्रधान होजाती है,अर्थात् दया, क्षमा, कोमलता. सत्य, संतोष, धैर्य, शम, दम, उपरति,तितिक्षा, श्रद्धा,सावधानता, मुक्तिकी इच्छा, विवेक और वैराग्य, इत्यादि यह वृत्ति जब प्रधान होती हैं, उससमयका सुख अमृतके सदृश इसवास्ते कहा, कि वो सुख वास्तव सच्चिदानंदको दिखा देता है. बुद्धिकी प्रसन्नता इसीको कहते हैं, कि अंतकरणका रजतम दूर होकर यह सुख प्रकट होता है. इससुखके अवधीके सामने रजोगुणीतमोगुणीसुख जो आगे कहेंगे वो तुच्छ है. और इससुखके बड़ाईमें शास्त्र और अनुभव दोनों प्रमाण हैं जीतेजी इस सुखके अवधीका अनुभव आ सक्ता है. आत्मनिष्ठ और योगी इस सुखके अवधीका जीतेजी अनुभव ले सके हैं, और रजोगुणीसुखके अवधीमें शास्त्रपुराणादि प्रमाण हैं, जीतेजी उससुखके अवधीका अनुभव प्रत्यक्ष नहीं होसक्ता ॥ ३७ ॥

मू० विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेमृतोपमम् ॥
परिणामेविषमिवतत्सुखंराजसंस्मृतम् ॥ ३८ ॥

यत् १ विषयेंद्रियसंयोगात् २ तत् ३ अग्रे ४ अमृतोपमम् ५ परिणामे ६ विषम् ७ इव ८ तत् ९ सुखम् १० राजसम् ११ स्मृतम् १२ ॥ ३८ ॥ अ० उ० रजोगुणी सुखको कहते हैं, जो १ सि० सुख ❋ शब्दादिविषय और श्रोत्रादिइन्द्रियोंके संबन्धसे २ अर्थात् सुननेसे देखनेसे बोलनेसे स्त्रीसंगादिसे जो सुख होता है. २ सो ३ प्रथमक्षण(भोगसमय). ४ अमृतके बराबर है५ सि० और ❋ भोगके पश्चात् ६ विषके बराबर ७।८ सि० है जो सुख ❋ सो ९ सुख १० रजोगुणी ११ कहा है. १२ तात्पर्य विषके खानेसे तो

प्राणी एकवेरही मरता है, और शब्दादिविषयोंके भोगनेसे वारंवार मरता है. अष्टावक्रजीमहात्माने कहा है कि, हे प्यारे! जो तूं मुक्तहोने चाहता है तो विषयोंको विषवत् त्याग सावयवभगवन्मूर्ति और सावयववैकुंठलोकादिकी जो इच्छा रखते हैं, वे इसीरजोगुणीसुखके अवधीको चाहते हैं. उसको सतोगुणी वा दिव्यसुख समझना न चाहिये. क्यों कि वो सुख श्रवणदर्शनादिसे होता है. तमोगुणीसुख और मलिनरजोगुणी सुखकी जो इसलोकमें स्त्र्यादिके सम्बंधसे होता है, इससे सावयवलोकजन्यसुख श्रेष्ठ है. पुराणादिमें इसहेतुसे माहात्म्य लिखा है जो कोई शुद्धसच्चिदानन्द निराकारब्रह्मकी उपासना करनेको समर्थ नहीं है, उनको चाहिये कि, मूर्तिमान्रामकृष्णादिकी उपासना किया करें. जो निष्काम करेंगे तो अन्तःकरणशुद्धिद्वारा मोक्ष होगा और जो मन्दसुगन्धशीतलपवनखानेके इच्छासे, वा मणिमाणिक्यादिसौंदर्यतादेखनेके इच्छासे सावयवभगवन्मूर्तिका ध्यान करते हैं तो जैसे इसलोकके भोगी वैसेही वे रहे ॥ ३८ ॥

मू० यदग्रेचानुबन्धेचसुखंमोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थंतत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

यत् १ सुखम् २ निद्रालस्यप्रमादोत्थम् ३ च ४ अग्रे ५ च ६ अनुबंधे ७ आत्मनः ८ मोहनम् ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ ३९ ॥ अ० उ० तमोगुणीसुखको कहते हैं. जो १ सुख २ निद्रा आलस्य और प्रमाद, इनसे उत्पन्न होता है ३ अर्थात् खेल, मनोराज्य, हिंसा, लडाई, विषाद क्रोध, इत्यादि जानलेना. ३ और ४ पहले ५ और ६ पीछे ७ आत्माको ८ मोहकरनेवाला ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है. १२ तात्पर्य निद्रालस्यमनोराज्यक्रोधादिसमय न प्रथमसुख होता है, नपीछे. जीवको सुखकीभ्रांति रहती है. असंख्यात पशु जो आदमीके सूरतमें हैं, वे इसीतमोगुणी सुखके

भ्रांतीमें मरजाते हैं. कभी किसीकालमें रजोगुणी सुखका अनुभव किया होगा, और सतोगुणीसुखकी तो गंधभी ऐसे पुरुषोंके पास नहीं आती जैसे रजोगुणी इससुखको तुच्छ समझते हैं, ऐसेही सतोगुणी पुरुष तमोगुणी रजोगुणी इन दोनों सुखोंको तुच्छ समझता है. और ब्रह्मज्ञानी शुद्धानन्दको जाननेवाला तीनों सुखोंको तुच्छ जानताहै ये तीनोंगुण सबमें रहते हैं जिसमें तमोगुण प्रधान, रजोगुण सतोगुण कम, उसको तमोगुणी कहते हैं. रजोगुणीमें दोभेद हैं. जो इसीलोकके शब्दादिविषयोंमें तत्पर रहते हैं, वे बुरे कहेजाते हैं. और जो परलोकमें रूपरसादिविषयोंको भोगते, हैं, वा इस लोकमें वेदोक्तभोग भोक्ते हैं, वे अच्छे कहेजाते हैं. सतोगुणी भी दोप्रकारके हैं, एक ब्रह्मज्ञानरहितयोगी और एक ज्ञानसहित योगी. ये दोनों रजोगुणीसे श्रेष्ठ हैं ब्रह्मज्ञानरहितयोगीसे ब्रह्मवित् श्रेष्ठ है. तमोगुणी सबसे निकृष्ट है. ॥ ३९ ॥

मू०नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवापुनः ॥
सत्त्वंप्रकृतिजैर्मुक्तंयदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः॥४०॥

पृथिव्याम् १ वा २ दिवि ३ वा ४ देवेषु ५ पुनः ६ यत् ७ सत्वम् ८ एभिः ९ त्रिभिः १० गुणैः ११ प्रकृतिजैः १२ मुक्तम् १३ स्यात् १४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥ ४० ॥ अ० उ० जोजो क्रियाकारकफल देखनेसुननेमें आता है, सबको त्रिगुणात्मक जानना योग्य है पृथिवीमें १ वा २ स्वर्गमें ३ वा ४ देवतोंमें ५।६ जो ७ पदार्थ ८ इन तीनगुणोंकरके ९।१०।११ सि० कि जो ❋ मायासे उत्पन्न हुवे हैं १२ सि०इनकरके ❋ रहित १३ हो १४ सो १५ नहीं १६ है. १७ तात्पर्य एकशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप नित्यमुक्त, आत्मा स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंसे पृथक्, तीनों अवस्थाका साक्षी, त्रिगुण रहित,ऐसा है.उससे पृथक् सबपदार्थ इसलोकपरलोकके जोजो देखने सुननेमें आते हैं, वे सब मायामत्र हैं. इसमायाने सबको भ्रान्त

कररक्खा है. देवता सतोगुणमें भ्रान्त, मनुष्य रजोगुणमें भ्रान्त, पशु तमोगुणमें भ्रान्त है,जो मनुष्य सतोगुणमें भ्रान्त है. वो देवताके सदृश है, तमोगुणमें भ्रान्त है वो पशूके बराबर है ॥ ४० ॥

मू० ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचपरंतप ॥
कर्माणिप्रविभक्तानिस्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

परंतप १ ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् २ च ३ शूद्राणाम् ४ कर्माणि ५ गुणैः ६ स्वभावप्रभवैः ७ प्रविभक्तानि ८ ॥ ४१ ॥ अ० उ० यह गुणोंकी भ्रान्ति कि जो पीछे कही वो विनाब्रह्मविद्याके नहीं दूर होती और विनाअज्ञान दूर हुवे परमानन्दस्वरूपआत्माका साक्षात्कार नहीं होता. इसवास्ते अज्ञानके निवृत्तीकेलिये ब्राह्मणादि अपने अपने धर्मका अनुष्ठानकरें. कि जो धर्म ब्राह्मणादिका आगे कहना है. हेअर्जुन १ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्योंके २ और ३ शूद्रोंके ४ कर्म ५ प्रकृतीसे उत्पत्ति है जिनकी ६ गुणोंकरके ७ पृथक् पृथक् ८ सि० हैं. अज्ञानके निवृत्तीकेलिये उनका अनुष्ठान करना चाहिये, इसवास्ते मैं कहता हूं ❋ तात्पर्य ब्राह्मणादिके कर्म गुणोंके अनुसार पृथक् पृथक् है, सोई दिखाते हैं.सत्वगुण जिसमें प्रधान सो ब्राह्मण.रजोगुण जिसमें प्रधान और सत्त्वगुण उससे कमहो, तम सत्त्वसेभी कम हो, सो क्षत्रिय. रजोगुण प्रधान हो जिसमें तमोगुण कम हो सत्त्व उससेभी कम हो, सो वैश्य. तमोगुण प्रधान है जिसमें, सो शूद्र. स्पष्टार्थ होनेकेलिये एक यंत्रलिखे देते हैं. जिसगुणके नीचे तीनका अंक

ब्राह्मण			क्षत्रिय.			वैश्य			शूद्र.		
सत्व	रज	तम	रज	सत्व	तम	रज	तम	सत्व	तम	रज	सत्व
३	२	१	३	२	१	३	२	१	३	२	१

उसको प्रधान जानना. जिसके नीचे दोका अंक उसको उससे कम जानना.जिसके नीचे एकका अंक उसको उससेभी कम जानना.

जैसे क्षत्रिय वैश्य ये दोनों रजप्रधान हैं. भेद इन दोनोंमें यह है, कि क्षत्रियमें सत्त्व सिवाय, तम कम है. वैश्यमें तम सिवाय, सत्त्व कम है. परमार्थमें तो यही चार विभाग हैं. और लौकिकव्यवहारमें अनेक जाति हैं. उनमेंही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी हैं. इसद्वीपमें हिंदुलोगोंकी यह रीति है, कि ब्राह्मणको जातिके अपेक्षामें बडा समझते हैं. क्षत्रियको उससे कम, वैश्यको उससे कम, और फिर अनेक जाति हैं. शूद्र व्यवहारमें किसीका नाम नहीं. कोईकोई कायस्थोंको शूद्र. कहते हैं,परन्तु समस्त ब्राह्मणादि आचार्यलोगोंका इसमें संमत नहीं.. सिवाय इसके व्यवहारमें सबलोग उनको कायस्थही कहते हैं. और उनका व्यवहार चाल चलन क्रिया धर्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंसे कम नहीं. मद्यमांसखानेपीनेसे यह शंका नहीं आसक्ती है, कि कायस्थ शूद्र हैं. क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय बहुत खाते हैं, और बहुत कायस्थ मद्यमांसको छूतेभी नहीं.जेसे क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य श्रौतस्मार्तकर्म करते हैं. तैसेही वे करते हैं. और जो नहीं करते तो सब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी नहीं करते. यह कायस्थशब्द संस्कृत है. और जो इनके जातीके भेद भट, नागर, माथुर. इत्यादि हैं. वे भी सब संस्कृतपद हैं. इसहेतुसे अन्त्यजभी ये नहीं होसक्ते. लौकिकमें बडाई द्रव्य, ऐश्वर्य, हुकम, सौंदर्यता, लौकिक, विद्या इत्यादि करके होती है. और परमार्थमें भगवद्भजनादि शुभ कर्म करनेसे और ज्ञाननिष्ठ होनेसे, बडाई है. यह कोई नहीं कहसक्ता कि कायस्थ भगवद्भजन करनेसे मुक्त नहीं. तात्पर्य यह कि कायस्थ एक जाति है. जैसे ब्राह्मण क्षत्री रजपूत ये जाति हैं. व्यवहारमें बहुत जाति हैं. परमार्थमें चार. ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र.. व्यवहारमें रजपूतादिको भी चारवर्णमें समझते हैं. जाटगूजरादिको कोई क्षत्रिय कोई शूद्र, कोई अन्त्यज, ऐसा कहते हैं. यवनादिको म्लेच्छ कहते हैं. यह सब व्यवहारकी बोलचाल है..

जैसे मुसलमान वर्णाश्रमीको काफिर कहते हैं, ऐसेही हिंदू मुसलमानोंको म्लेच्छ कहतें हैं. परमार्थदृष्टीमें सबद्वीपोंके निवासी गुणोंके तारतम्यतासे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं, क्यों कि सब त्रिगुणात्मक हैं. और सब प्रजाका स्वामी एकही है, वो सम है. यह बात कैसी समझमें आवे कि ऐसे स्वामीने अन्यद्वीपनिवासियोंके वास्ते परलोकका साधन न कहाहो. आगे जो श्रीभगवान् ब्राह्मणादिका धर्म कहेंगे वो ऐसा साधारण है कि. अबतक उसधर्मका किसी एकभी जातीमें प्रचार नहीं. शमदमादि मुसलमान अंगरेजोंमें विशेष देखनेमें आते हैं. शमदमादिधारण करनेसे यह लोग पापके भागी न होंगे, इसीप्रकार खेती, वनज, और शूरतादिका यह नियम नहीं कि शूरतादिधर्म क्षत्रियहीमें हो, अन्यमें नहों. प्रत्युत जो व्यवहारमें क्षत्रिय कहे जाते हैं; उनमें शूरतादि नहीं. क्यों कि उनका राज बहुतदिनोंसे जातारहा. ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, परमार्थदृष्टीमें परलोकका साधन करनेकेलिये वे हैं कि जो पीछे यंत्रमें लिखे हैं. व्यवहारमें वे कोई जाति हों, व्यवहारमें जो ब्राह्मणादि कहलाते हैं इनकी व्यवस्था यह है कि जिसकालमें समस्त मनुष्योंके चार विभाग किये गयेथे, तो वो विभाग कोईदिन ऐसा चला कि ब्राह्मणका पुत्र सत्त्व प्रधान, शूद्रका पुत्र तमप्रधान होता रहा. वीर्यक्रियामें बिगाड न हुवा. अब इससमयमें न वीर्यका ठिकाना है, न क्रियाका. और न यह नियम रहा कि ब्राह्मण जातीमें सत्त्वप्रधानही उत्पन्न हों. ब्राह्मण तमप्रधान देखनेमें आते हैं म्लेच्छ शूद्र सत्त्वप्रधान देखनेमें आते हैं. जो तमप्रधानको वेद पढाया जावे, तो वो कब पढसक्ता है. और सत्त्वप्रधानसे टहलकराई जावे तो वो कब करसक्ता है. तात्पर्य व्यवहारमें तो यही समझना कि जैसा प्रचार है. अर्थात् ब्राह्मण कैसाभी कुपात्रहो इसीके जिमानेसे लौकिक दृष्टीमें सूतकपातक दूर होता है. परमार्थमें यह समझना कि जिसमें शमदमादि होंगे, वो मुक्तीका भागी होगा, मुमु-

क्षुका कल्याण भी इसीसे होगा.॥तदुक्तं महाभारते॥अर्थात् सोई महाभारतमें कहा है. वाक्य वादकी कुछ अपेक्षा नहीं. नजातिःकारणं तातगुणाःकल्याणकारणम् ॥ वृत्तिस्थमपिचांडालंतंदेवाब्राह्मणंविदुः॥ इसश्लोकका अर्थ यह है. कि भीष्मजी राजायुधिष्ठिरसे कहते हैं, कि हेतात! मुक्तीमें जाति कारण नहीं, शमदमादिगुण कारण हैं, जो शमादिगुण चांडालमेंभी होंगे,तो देवता उसचांडलको ब्राह्मण कहेंगे. जो व्यावहारिकब्राह्मण शमदमादिसाधनोंकरके युक्त हो तो वो सबसे श्रेष्ठ है इसमें कोई शंका नहीं करसक्ता. ॥ अविद्योवासविद्योवा ब्राह्मणोमामकीतनुः॥अद्यापिश्रूयतेघोषोद्वारावत्यामहर्निशम् ॥ इसश्लोकका स्पष्ट अर्थ है कि ब्रह्मका जाननेवाला विद्यावान् पढाहुवा हो वा न पढाहो, ब्रह्मवित् ब्रह्मही है.॥ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति॥ यह श्रुति है. लौकिक ब्राह्मण भगवत्स्वरूप होना तो बहुत कठिन है. दसरुपैये महीनेकी नौकरीभी उनको मिलना कठिन है. सिवाय इसके ऐसे वाक्योंमें हठकरनेसे शास्त्रसे बडा विरोध आता है. मूर्खोंको मूर्खही पसंद करता है. इसदेशमें जो अन्यद्वीपनिवासियोंका राज हुवा, ब्राह्मणादिवर्ण उनके दास गुलाम बने, उसमें कारण ऐसेही ऐसे मूर्ख हुवे. शास्त्रका पढना सुनना छोड दिया. मूर्खोंके कहनेपर चलने लगे.जो पुरुष काम क्रोधलोभादिमें फँसा हुवा है,उसके कहनेको सच्चा समझना कितनी बडी मूर्खता है. यह कब समझमें आवेगा कि ऐसे आदमी धोखा नदें. और जो पोथी बहुतादिनोंसे उनकेही पास रही हैं. क्या आश्चर्य है कि उन पोथियोंमें कुछका कुछ न बनादियाहो. विशेष क्या लिखें, इसीको वारंवार विचारना चाहिये ॥४१॥

मू०शमोदमस्तपःशौचंक्षांतिरार्जवमेवच ॥
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥४२॥

शमः १ दमः २ तपः ३ शौचम् ४ क्षांतिः ५ आर्जवम् ६ एव ७

च ८ ज्ञानम् ९ विज्ञानम् १० आस्तिक्यम् ११ ब्रह्मकर्म १२ स्वभावजम् १३ ॥ ४२ ॥ अ० उ० ब्राह्मणोंका कर्म कहते हैं. जिसमें शमादिगुण होंगे, सोई ब्राह्मण है. दुनियाँके व्यवहारमें वो कोईजाति हो. जो ब्राह्मण बनाचाहे वो शमादिकर्मोंका अनुष्ठान करे. अन्तःकरणका निरोध १ इन्द्रियोंका निरोध २ विचारकरना वा व्रतादिकरके शरीरका निरोध करना ३ बाहर भीतर पवित्र ४ क्षमा ५ कोमलता ६ और ७। ८ सि० शास्त्राचार्यद्वारा ❋ ज्ञान ९ अनुभव १० विश्वास ११ सि० वेदशास्त्राचार्यादिवाक्यमें. यह ❋ ब्राह्मणका कर्म १२ स्वाभाविक है. १३ अर्थात् पूर्वसंस्कारसे यह लक्षण ब्राह्मणमें अपनेआप वेयत्न होते हैं. ब्राह्मणकी निष्ठा सदा इनहीकर्मोंमें रहती है. इस समयमें वीर्य और क्रियाका तो ठिकाना नहीं, और जो यह लक्षणभी नदिखेंगे, तो कहो, कैसे उसको ब्राह्मण जानकर उसके वाक्यपर निश्चय किया जावे. शमादिकर्म ब्राह्मणोंके साधारण हैं. और प्रतिग्रह लेना, सूतकपातकमें जीमना, रसोई करना, विवाहादिमें समधीकेघर आनाजाना, इसप्रकारके कर्म असाधारण हैं. इनकर्मोंमें अधिकार उनही ब्राह्मणोंका है कि जो लौकिकव्यवहारमें ब्राह्मण कहेजाते हैं. सिवाय उनके अन्यजातीको शोभा नहीं देते ॥ ४२ ॥

मू०शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यंयुद्धेचाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रंकर्मस्वभावजम् ॥४३॥

शौर्यम् १ तेजः २ धृतिः ३ दाक्ष्यम् ४ युद्धे ५ च ६ अपि ७ अपलायनम् ८ दानम् ९ ईश्वरभावः १० च ११ क्षात्रम् १२ कर्म १३ स्वभावजम् १४ ॥ ४३ ॥ अ० उ० क्षत्रियोंका स्वाभाविककर्म कहते हैं. शूरता १ प्रागल्भ्यता २ धैर्य ३ चतुरता ४ युद्धमें ५।६। ७ पीछेको भागना नहीं ८ देना ९ अर्थात् सुपात्रोंको ९ नियाम-

कशक्ति १० । ११ क्षत्रियोंका कर्म १२ । १३ सि० यह ❋ स्वाभाविक है. १४ तात्पर्य विचारकरों ये सब लक्षण आजकल अंगरेजोंमें मौजूद हैं. जैसे इनकर्मोंमें अधिकार उनको था कि जो व्यवहारमें क्षत्रिय जाति हैं. उन्हींसे यह कर्म न होसके. जिन्होंने वे कर्म किये, प्रत्यक्ष देखलो राजका भोग करते हैं. इसीप्रकार जो शमदमादिसाधनसंपन्न होगा, सो वेसन्देह परमानंद ब्रह्मसुखको भोगेगा. जो कोई यह शंका करे कि ये म्लेच्छ हैं, उनको राज्यका अधिकार नहीं मरकर सब नरकगामी होंगे. आप्तकाम विद्वान् इस बातको कभी नहीं पसन्द करेंगे. सत्वादिगुणोंके तारतम्यतासे सद्गति दुर्गति सबजीवोंको होती है. और इसलोकमें सदा न पुण्यात्मा रहते हैं न पापात्मा. अधिकारके व्यवस्थामें यह भी सुनाजाता है कि चिकित्सावैद्यकविद्याके पढने करनेका अधिकार ब्राह्मणको ही है. अब विचारोकि व्यवरहामें हिकमत वैद्यकविद्या किनकी अच्छी है. और ब्राह्मणजातीसे अन्य जो वैद्यक करते हैं. उनसे रोगकी निवृत्ति होती है वा नहीं इसीप्रकार सब कर्मोंकी व्यवस्था है॥ ४३ ॥

मू०कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम्॥
परिचर्यात्मकंकर्मशूद्रस्यापिस्वभावजम् ॥ ४४ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् १ स्वभावजम् २ वैश्यकर्म ३ परिचर्यात्मकम् ४ कर्म ५ शूद्रस्य ६ अपि ७ स्वभावजम् ८ ॥ ४४ ॥ अ० उ० आधे श्लोकमें वैश्यका कर्म, आधेमें शूद्रका कर्म कहते हैं. खेती, गौकी रक्षा. वनज करना, १ सि० यह ❋ स्वभाविक २ वैश्यका कर्म ३ सि० है. और ❋ सेवाकरना, ४ सि० यह ❋ कर्म ५ शूद्रका ही ६।७ स्वाभाविक ८ सि० है. ❋ तात्पर्य शूद्रवैश्यक्षत्रियोंको चाहिये कि शमदमादिसंपन्नब्राह्मणकी यथाअधिकार यथाशक्ति सेवा करे. तब सबके धर्मबने रहेंगे ॥ ४४ ॥

मू० स्वेस्वेकर्मण्यभिरतःसंसिद्धिंलभतेनरः ॥
स्वकर्मनिरतःसिद्धिंयथाविन्दतितच्छृणु ॥ ४५ ॥

स्वे १ स्वे २ कर्मणि ३ अभिरतः ४ नरः ५ संसिद्धिम् ६ लभते ७ स्वकर्मनिरतः ८ सिद्धिम् ९ यथा १० विन्दति ११ तत् १२ शृणु १३ ॥ ४५ ॥ अ० उ० अपनेअपने कर्मोंका जो अनुष्ठान करते हैं उसका फल कहते हैं. अपने १ अपने २ कर्ममें ३ प्रीतिकरनेवाला ४ नर ५ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा भगवत्प्रसादसे ❋ मोक्षको ६ प्राप्त होता है. ७ अपने कर्ममें निरंतर प्रीतिकरनेवाला ८ मोक्षको ९ जैसे १० प्राप्त होता है ११ सो १२ सुन १३ ॥ ४५ ॥

मू० यतःप्रवृत्तिर्भूतानांयेनसर्वमिदंततम् ॥
स्वकर्मणातमभ्यर्च्यसिद्धिंविन्दतिमानवः ॥ ४६ ॥

यतः १ भूतानाम् २ प्रवृत्तिः ३ येन ४ इदम् ५ सर्वम् ६ ततम् ७ तम् ८ स्वकर्मणा ९ अभ्यर्च्य १० मानवः ११ सिद्धिम् १२ विन्दति १३ ॥ ४६ ॥ अ० उ० आधेमंत्रमें तटस्थलक्षण ईश्वरका कहकर फिर आधे श्लोकमें उसीकी भक्ति करनेका फल कहते हैं. जिससे १ भूतोंकी २ प्रवृत्ति ३ अर्थात् जिसके सत्तासे सब जगत् चेष्टा करता है ३ सि० और ❋ जिसकरके ४ यह ५ सर्व ६ सि० जगत् ❋ व्याप्त ७ सि० होरहा है ❋ तिसअन्तरयामीईश्वरका ८ अपने कर्मकरके ९ अर्थात् अपने कर्मसे ९ आराधन करके १० प्राणी ११ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा उसीअंतर्यामीके कृपासे ज्ञाननिष्ठ होकर ❋ परमानन्दस्वरूपआत्माको १२ प्राप्त होता है. १३ तात्पर्य समस्त जगतमें आनंदपूर्ण होरहा है. कोई पदार्थ ऐसा नहीं कि जिसमें आनंद नहो, और वो आनंदही साक्षात् भगवतका स्वरूप है. जिसके तनकसे छायामें त्रिलोकी आनंदित है ॥ ४६ ॥

मू० श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात्॥
स्वभावनियतंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ४७ ॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वभावनियतम् ६ कर्म ७ कुर्वन् ८ किल्बिषम् ९ न १० आप्नोति ११ ॥ ४७ ॥ अ० उ० अपने धर्ममें अवगुण समझकर पराये धर्मका जो अनुष्ठान करते हैं उनको पाप होता है. अर्थात् जो प्रवृत्तिधर्मके योग्य हैं,वे निवृत्तिधर्मको श्रेष्ठ समझकर, जो निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान किया चाहें, तो अंतःकरणमें रजोगुणतमोगुण भरे रहनेसे उसनिवृत्तिधर्मका अनुष्ठान कब होसक्ता है. प्रवृत्तिधर्मकोभी छोडकर, दोनों तर्फसे भ्रष्ट होजाते हैं और जो निवृत्तिधर्मके योग्य हैं, वे कुसंगके सामर्थ्यसें सेवा और किसीसंस्कारसे, अपने धर्मको छोड प्रवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करेंगे, तो फिर गईहुई रजोगुणी तमोगुणीवृत्ति उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होजावेगी. इसीको पाप कहते हैं. इसवास्ते अपने ही धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये. सुन्दर १ परायेधर्मसे २ अपना धर्म ३ गुणरहित ४ सि० भी ❋ श्रेष्ठ. ५ सि० है. ❋ अपने गुणके अनुसार जिसका नियम किया गया है, उसकर्मको६।७कर्ता हुवा ८ पापको ९ नहीं १० प्राप्त होता ११ तात्पर्य जैसे विषमें रहनेवाला जीव विषखाकर नहीं मरता. इसीप्रकार अपने गुणके अनुसार कर्म करता हुवा बन्धको नहीं प्राप्त होता. मेवा तस्मैका भोजन बहुत सुन्दर है परंतु ज्वरवालेको कामका नहीं ॥ ४७ ॥

मू०सहजंकर्मकौन्तेयसदोषमपिनत्यजेत्॥
सर्वारंभाहिदोषेणधूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

कौंतेय १ सहजम् २ कर्म ३ सदोषम् ४ अपि ५ न ६ त्यजेत् ७ सर्वारम्भाः ८ हि ९ दोषेण १० आवृताः ११ धूमेन १२ अग्निः

१३ इव १४ ॥ ४८॥ अ० उ० कोई कर्म शुभ अशुभ ऐसा नहीं कि जिसमें कुछ दोष न हो. सि० इसवास्ते ❀ हे अर्जुन १स्वभावके अनुसार जो गुण अपनेमें प्रधानहो, (सत्त्व, रज, वा तम,) वैसेही कर्म शमादि, वा परिचर्या, युद्ध, कृषि, इत्यादिकर्म २।३ दोषसहित ४ भी ५ सि० हैं,परंतु यावत् अन्तःकरण शुद्ध न हो तावत् उनको ❀ नहीं ६ त्यागना. ७समस्त कर्म ८।९ सि० किसी न किसी ❀ दोषकरके १० मिले हुवे हैं. ११ धूमकरके १२ अग्नि १३ जैसा. १४ तात्पर्य गुणदोषका फल कांटेके तरह संग है. बुद्धिमानको चाहिये कि धर्ममें कंटकवत् दोषपर दृष्टि नदे, गुणग्राही रहे ॥ ४८॥

मू० असक्तबुद्धिःसर्वत्रजितात्माविगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिंपरमांसंन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

सर्वत्र १ असक्तबुद्धिः २ जितात्मा ३ विगतस्पृहः ४ परमाम् ५ नैष्कर्म्यसिद्धिम् ६ संन्यासेन ७ अधिगच्छति ८ ॥ ४९ ॥ अ० सि० इसप्रकार कर्मकरे ❀ सर्वत्र शुभ अशुभ पापपुण्यजनक किसीकर्ममें १ जिसकी बुद्धि आसक्त नहीं २ जीता हुवा है कार्यकारणसंघात जिसने ३ दूर होगई है इसलोकके पदार्थोंकी इच्छा जिसकी ४ सि० सो ❀ परम ५ निष्कामताके अवधीको ६ सबका त्यागकरके ७ प्राप्त होता है. ८ तात्पर्य आनंदस्वरूप ऐसे निष्क्रिय आत्माकी प्राप्ति सबपदार्थोंका त्याग करनेसे होती है. सिवाय आनन्दस्वरूपआत्माके किसीके पन्थ मत सम्प्रदायमें आसक्त नहीं होना. यही परमासिद्धि है ॥ ४९॥

मू० सिद्धिंप्राप्तोयथाब्रह्मतथाप्नोतिनिबोधमे ॥
समासेनैवकौन्तेयनिष्ठाज्ञानस्ययापरा ॥ ५० ॥

यथा १ सिद्धिम् २ प्राप्तः ३ ब्रह्म ४ आप्नोति ५ तथा ६ कौंतेय ७ या ८ ज्ञानस्य ९ परा १० निष्ठा ११ समासेन १२ एव

१३ मे १४ निबोध १५ ॥ ५० ॥ अ० उ० परानिष्ठा श्रीभगवान् अब आगे पांचश्लोकोंमें कहेंगे. इसवास्ते अर्जुनको संबोधन-करके कहते हैं. कि हेकौन्तेय! चैतन्यहो, चित्तको एकाग्रकरके, परमसिद्धान्तको सुन. जैसे १ सि० सबकर्मोंका यथाअधिकार अनुष्ठानकरके और उनके फलका त्यागकरके नैष्कर्म्यके ❀ सि-द्धीको २ प्राप्तहुवा ३ ब्रह्मको ४ प्राप्त होता है. ५ तैसा ६ हे अ-र्जुन ७ जो ८ ज्ञानकी ९ परा १० निष्ठा ११ सि० है सो ❀ सं-क्षेपसे १२ ही १३ मुझसे सुन. १४।१५ ॥ ५० ॥

मू० बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तोधृत्यात्मानंनियम्यच ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषौव्युदस्यच ५१ ॥

विशुद्धया १ बुद्ध्या २ युक्तः ३ च ४ धृत्या ५ आत्मानम् ६ नियम्य ७ शब्दादीन् ८ विषयान् ९ त्यक्त्वा १० च ११ रागद्वेषौ १२ व्युदस्य १३ ॥ ५१ ॥ अ० उ० सोई ज्ञानकी परानिष्ठा श्री-भगवान् कहते हैं. सतोगुणीबुद्धीकरके युक्त १।२।३ और ४ सि० सतोगुणी ❀ धृतीकरके ५ कार्यकारणसंघातका ६ निरोधकरके ७ शब्दादिविषयोंका ८।९ त्यागकरके १० और रागद्वेषको १२ दूर करके १३ सि० ब्रह्मको प्राप्त होता है. तीसरेश्लोकके साथ इस-का संबंध है ❀ तात्पर्य शब्दादिके त्यागमें देहयात्रामात्रक्रिया-का निषेध नहीं. शरीरका निरोध यह है, कि शौच स्नानादिसमय तो अवश्य उठना, रात्रीके बीचमें डेढपहर सोना. सिवाय इसके एकजगे एकान्तआसनपर विनाआश्रय सीधा बैठकर आत्माका ध्यानकरना चाहिये. संन्यासी एकजगे जो न रहें, तो चार गौकोससे सिवाय न चले ॥ ५१ ॥

मू० विविक्तसेवीलघ्वाशीयतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरोनित्यंवैराग्यंसमुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

विविक्तसेवी १ लघ्वाशी २ यतवाक्कायमानसः ३ नित्यम् ४ ध्यानयोगपरः ५ वैराग्यम् ६ समुपाश्रितः ७ ॥ ५२ ॥ अ०वनमें, जंगलमें, पहाडमें, नदीके किनारे, इत्यादिदेशमें कि जिसजगे स्त्री चोर, बालक, मूर्ख, सिंह, सर्प, इत्यादिका भयसंबंध नहो ऐसे देशके सेवनकरनेका स्वभाव है जिसका १ सि० ऐसाहो ❋ दोभाग अन्नकरके एकभाग जलसे पूर्ण करके और एकभाग श्वासके आनेजानेकेलिये अवशेष (खाली) रक्खे. तात्पर्य थोडीसी क्षुधा बनी रहै. अर्थात् कमभोजन करनेका स्वभाव है जिसका, उसको लघ्वाशी कहते हैं २ जीतेहुवे हैं वाणी शरीर मन जिसके ३ अर्थात् जो लक्षण सत्रहवें अध्यायमें सतोगुणीतपका लिखा हैं उसीप्रकार वर्तते हैं. ३ सि० आत्मध्यानयोगको अर्थात् निदिध्यासनको परात्पर जानकर ❋ नित्य ४ ध्यानयोगपरायण रहते हैं. ५ सि० नित्यशब्दका कहनेका यह तात्पर्य है कि पढनापढाना जपपाठादिकर्मोंका त्याग चाहिये ज्ञाननिष्ठाको ❋ वैराग्यका ६ बहुत अच्छीतरह आश्रयकर रक्खा है ७ सि० सिवाय परमानन्दस्वरूपआत्माके यावत् पदार्थ इसलोकपरलोकके देखे सुने हैं सबको अनित्य दुःखदाई, अनात्मधर्मवाले जानकर किसीमें न कुछ प्रीति करता है, न द्वेष करता है. परमज्ञाननिष्ठाका यह लक्षण है ❋ ॥ ५२ ॥

मू०अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंपरिग्रहम् ॥
विमुच्यनिर्ममःशान्तोब्रह्मभूयायकल्पते॥५३॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ परिग्रहम् ६ विमुच्य ७ निर्ममः ८ शान्तः ९ ब्रह्मभूयाय १० कल्पते ११ ॥५३॥ अ० देहादिमें अहंबुद्धि १ अर्थात् हम विरक्तसंन्यासी ब्राह्मण जगतके गुरु श्रीमान् विद्यावाले हैं ऐसाऐसा अहंकार १ योगके

बलसे किसीका बुरा भला करना,विद्याके बलसे दूसरेका मत खंडन करना २ विद्याविरक्तिधनऐश्वर्यादिका मनमें गर्व रखना.३इस लोक परलोकके पदार्थोंकी इच्छा ४ नास्तिकादिके साथ द्वेष ५ देहयात्रासे सिवाय संचय करना ६ सि० जो ऊपर कहे इन सब अहंकारादिको मनसे ❋ त्यागकर ७ सि० संन्यासादिधर्म और अद्वैतवादमतादिमें ❋ ममतारहित ८ भूतादिकालके चिंतासे रहित ९ सि० पुरुष ❋ ब्रह्मको १० प्राप्त होता है. ११ तात्पर्य परमानन्दस्वरूपनित्यप्राप्त ऐसे आत्माको प्राप्तवत् मानकर, यह कहा जाता है कि ब्रह्मको प्राप्त होता है. वास्तव ब्रह्म सदा एकरस है ॥ ५३ ॥

मू०ब्रह्मभूतःप्रसन्नात्मानशोचतिनकांक्षति॥
समःसर्वेषुभूतेषुमद्भक्तिंलभतेपराम्॥ ५४ ॥

ब्रह्मभूतः १ प्रसन्नात्मा २ न ३ शोचति ४ न ५ कांक्षति ६ सर्वेषु ७ भूतेषु ८ समः ९ पराम् १० मद्भक्तिम् ११ लभते १२॥५४॥अ० उ० ब्रह्मको जो प्राप्त होता है उसका फल निरूपण करते हैं. दो-श्लोकोंमें. ब्रह्मस्वरूप हुवा १ प्रसन्नचित्त है जिसका २ सि० सो बीतीहुईबातोंका❋नहीं३शोचकरता है.४सि० आगेको कुछ ❋नहीं ५ चाहता है.६सबभूतोंमें ७।८सम ९सि० है. जो श्रीभगवान् कहते हैं कि वो❋मेरे पराभक्तीको१०।११प्राप्त होता है.१२तात्पर्य सातवें आध्यायमें चार प्रकारकी भक्ति कही है,चारोंमें जो पीछे परेकही उसको पराभक्ति कहते हैं.ज्ञानकी परानिष्ठा कहो वा पराभक्ति कहो बात एकही है. इसजगे पाषाणादिमूर्तियोंका पूजनादि, और रामकृष्णादिसावयवमूर्तिमान्भगवतकी भक्ति इसजगे भक्ति नहीं. ज्ञाननिष्ठाका नाम यहां भक्ति है. यह पराभक्तिफल है. और सेवापूजादि साधन हैं. प्रकरण देखकर अर्थ समझना चाहिये. इसअध्यायमें पचासवेंश्लोकमें श्रीभगवानने स्पष्ट कहा है,कि हे अर्जुन ज्ञानकी परानि-

ष्ठा मुझसे सुन. और वो प्रकरण अबतक समाप्त नहीं हुवा. पचपनवें श्लोकमें समाप्त होगा. वहांतक ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है. ॥ ५४ ॥

मू० भक्त्यामामभिजानातियावान्यश्चास्मितत्त्वतः ॥
ततोमांतत्त्वतोज्ञात्वाविशतेतदनन्तरम्॥ ५५ ॥

तत्त्वतः १ यावान् २ च ३ यः ४ अस्मि ५ माम् ६ भक्त्या ७ अभिजानाति ८ ततः ९ तत्त्वतः १० माम् ११ ज्ञात्वा १२ तदनन्तरम् १३ विशते १४ ॥ ५५ ॥ अ० उ० श्रीभगवान् कहते हैं. कि जो मेरा यथार्थ स्वरूप है, वो इसीज्ञाननिष्ठासे (कि जो पीछे चारश्लोकोमें कही) जानाजाता है. और सब वेदविधि इसका साधन है. वास्तव १ जैसा २ और ३ जो ४ मैं हूं ५ सि० वैसा ❋ मुझको ६ सि० ज्ञानलक्षणा ❋ भक्तीकरके ७ भले प्रकार जानता है ८ पीछे उसके ९ सि० अर्थात् ❋ यथार्थ १० मुझको ११ जानकर १२ फिर १३ सि० मुझमेंही ❋ मिलजाता है. १४ तात्पर्य जैसे परमानन्दस्वरूप आत्माउपाधिसहित और उपाधिरहित है, सो ज्ञाननिष्ठासेही जानाजाता है. जो आत्माका जानना वोही उसमें मिलना है. पहले जानना और पीछे उसमें मिलना यह एकबोलीकी रीति है. ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मरूपही है, यह वेदार्थ है ॥ ५५ ॥

मू० सर्वकर्माण्यपिसदाकुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतंपदमव्ययम् ॥ ५६॥

सदा १ सर्वकर्माणि २ मद्व्यपाश्रयः ३ कुर्वाणः ४ अपि ५ मत्प्रसादात् ६ अव्ययम् ७ शाश्वतम् ८ पदम् ९ अवाप्नोति १० ॥५६॥ अ० उ० ज्ञाननिष्ठा भगवतके कृपासे प्राप्त होती है, जब प्रथम वेदोक्तनिष्कामकर्मकरे. यह परमपदका मार्ग श्रीभगवान् दिखाते हैं. सदा १ सबकर्मोंको २ मुझ भगवतका आश्रा लेकर ३ करता हुवा ४ निश्चय ५ भगवत्प्रसादसे ६ निर्विकारनित्यपदका ७।८।९ प्राप्त हो-

ता है. १० तात्पर्य प्रभूका आश्रा लेकर यथाशक्ति देशकालवस्तूके अनुसार निष्कामकर्म करना चाहिये. विनाआश्रय कर्मोंका निर्वाह कठिन है. और इससमयमें तो सिवायपरमेश्वरके और किसी कर्मधर्मका भरोसा नहीं. केवल उसीकरुणाकरके कृपासे सब अनर्थ दूर होसक्ते हैं.और परमपदपरमानन्दस्वरूपआत्माकी प्राप्ति होना उसीके कृपाका फल समझना चाहिये. अकृतउपासकके ज्ञाननिष्ठाका कभी परिपाक नहीं होता ॥ ५६ ॥

मू० चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्यमच्चित्तःसततंभव ॥ ५७ ॥

मत्परः १ चेतसा २ सर्वकर्माणि ३ अपि ४ संन्यस्य ५ बुद्धियोगम् ६ उपाश्रित्य ७ सततम् ८ मच्चित्तः ९ भव १० ॥ ५७ ॥
अ० मुझपरायणहोकर १ चित्तसे २ सबकर्मोंको ३ मेरेविषय ४ त्यागकरके ५ सि० और ❋ ज्ञानयोगका ६ आश्रयकरके ७ सदा ८ मुझमें चित्तवाला ९ हो १० अर्थात् तेरा चित्त सदा मुझमेंही लगारहे ऐसा हो. १० तात्पर्य यह कि सबधर्मकर्म वास्ते अन्तःकरणके शुद्धीके हैं. जिसका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, उसपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं. तब ज्ञानमें निष्ठा होती है. फिर उसज्ञाननिष्ठाके परिपाकार्थ कर्मोंका त्याग अवश्यक है, यह प्रभूकी आज्ञा है. प्रभूके आज्ञासे कर्मोंका त्याग करना यही प्रभूमें कर्मोंका संन्यासकरना है. कर्मोंको संन्यासकरके फिर निरन्तर भक्ति करना चाहिये. ज्ञानयोगका आश्रा यह है कि हरिभक्तीसे मुझको ज्ञाननिष्ठा अवश्य प्राप्त होगी. ऐसे ज्ञाननिष्ठाकी आशा रखना. यही ज्ञानयोगका आश्रा करना है. इसप्रकरणमें ज्ञानयोगका आश्रय करनेका यही अर्थ है ॥ ५७ ॥

मू० मच्चित्तःसर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथचेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

मच्चित्तः १ सर्वदुर्गाणि २ मत्प्रसादात् ३ तरिष्यसि ४ अथ ५ चत् ६ त्वम् ७ अहंकारात् ८ न ९ श्रोष्यसि १० विनंक्ष्यसि ११ ॥ ५८ ॥ अ० मुझमें चित्त लगाकर १ सबदुर्गमोंको २ मेरे प्रसादसे ३ तरजायगा तूं ४ और ५ जो ६ तूं ७ अहंकारसे ८ नहीं ९ सुनगा १० सि० तो ❋ नष्ट होजायगा तूं. ११ तात्पर्य परमेश्वर मोक्षमार्गका सुगम उपाय अपनी भक्ती वताते हैं. जो वर्णाश्रमके अहंकारसे भक्तीका आदर न करेंगे, तो उनका पुरुषार्थ भ्रष्ट होजायगा. विनाप्रसादप्रभूके अपने मतलवको न पहुंचेंगे हरिकी कृपा ऐसा पदार्थ है, कि कैसाही कठिन पदार्थ हो भगवद्भक्तको सुलभ होजाता है भगवानकी आज्ञा मानना यही भक्ति है. चतुरताका भक्तीमें कुछ काम नहीं. ॥ ५८ ॥

मू०यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥
मिथ्यैवव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति॥५९॥

यत् १ अहंकारम् २ आश्रित्य ३ इति ४मन्यसे ५ न ६ योत्स्ये ७ ते ८ एव ९ व्यवसायः १० मिथ्या ११ प्रकृतिः १२ त्वाम् १३ नियोक्ष्यति १४ ॥ ५९ ॥ अ० जिसअहंकारका १।२ आश्रय करकें ३ यह ४ तूं मानता है ५ सि० कि ❋ नहीं ६ युद्ध करूंगा मैं ७ तेरा ८ यह ९ निश्चय १० झूंटा ११ सि० है; ❋ तेरा स्वभाव १२ तुझसे १३ युद्ध करावेगा. १४ तात्पर्य जिसका जो धर्म है, उसको उसीका अनुष्ठान करना चाहिये अन्यधर्मका अनुष्ठान उससे नहीं होसकेगा. जैसा अर्जुन क्षत्रिय है. भिक्षामांगना उससे कठिन है. क्योंकि क्षत्रियमें रजोगुण प्रधान होता है. वो शूरतादिधर्मोंमेंही प्रेरता है. और वोही अंतःकरणके शुद्धीका हेतु है ॥ ५९ ॥

मू०स्वभावजेनकौन्तेयनिबद्धःस्वेनकर्मणा ॥
कर्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोपितत् ॥ ६० ॥

कौन्तेय १ स्वभावजेन २ स्वेन ३ कर्मणा ४ निबद्धः ५ यत् ६ कर्तुम् ७ न ८ इच्छसि ९ मोहात् १० अवशः ११ तत् १२ अपि १३ करिष्यसि १४ ॥६०॥ अ० हे अर्जुन १ स्वाभाविक २ अपने ३ कर्मकरके ४ बंधाहुवा ५ जो ६ सि० युद्ध ❀ करनेकी ७ नहीं ८ इच्छा करता है तूं. ९ अविवेकसे १० अवशहुवा ११ सोई १२।१३ सि० युद्ध ❀ करेगा तूं. १४ तात्पर्य इससमय तेरे अन्तःकरणमें सतोगुणीवृत्तीका आविर्भाव होरहा है कि जिससे तुझको दया औरही है. युद्ध अच्छानहीं लगता, भिक्षामागना प्रिय प्रतीत होता है. जब यह वृत्ति तिरोभावको प्राप्त होगी, रजोगुणी वृत्ति कि जो विशेषकरके तेरे अन्तःकरणमें प्रधान रहती है, उसका जब आविर्भाव होगा, उससमय यह दया तेरी सब जातीरहेगी. रजोगुणके वशहोकर अवश्य युद्ध करेगा तूं ॥ ६० ॥

मू० ईश्वरःसर्वभूतानांहृद्देशेर्जुनतिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया ॥६१॥

अर्जुन १ ईश्वरः २ सर्वभूतानाम् ३ हृद्देशे ४ तिष्ठति ५ सर्वभूतानि ६ मायया ७ भ्रामयन् ८ यंत्रारूढानि ९ ॥ ६१ ॥ अ० उ० प्रकृतीके वश जीव है, और प्रकृति ईश्वरके वश है. सोई हे अर्जुन १ ईश्वर २ सबभूतोंके ३ हृदयमें ४ विराजमान है. ५ सबभूतोंकूं ६ मायाकरके ७ भ्रमा रहा है. ८ सि० कैसे हैं वे भूत कि जैसे ❀ यंत्रमें आरूढ ९ अर्थात् कलमें लगीहुई पुतली जैसा बाजीगर (खिलारी) नचाता है. ९ तात्पर्य जीव स्वतंत्र नहीं. शास्त्रमार्गको छोड अपने बुद्धीसे बुरेभले कर्मोंको नहीं जानसक्ता. श्रुतिस्मृति दो ईश्वरकी आज्ञा हैं. जो दोनोंको सत्य समझकर वेदोक्तमार्गपर चलता रहेगा, उसको ईश्वर सबबखेडोंसे छुडाकर परमानंदको प्राप्तकरदेंगे. और जो अपनी चतुराई चलावेगा, वो बेसन्देह धोखा खावेगा ॥ ६१ ॥

मू०तमेवशरणंगच्छसर्वभावेनभारत ॥
तत्प्रसादात्परांशांतिंस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

भारत १ सर्वभावेन २ तम् ३ एव ४ शरणम् ५ गच्छ ६ तत्प्रसादात् ७ पराम् ८ शांतिम् ९ शाश्वतम् १० स्थानम् ११ प्राप्स्यसि १२ ॥ ६२ अ० उ० जबकि जीव स्वतंत्र नहीं, तो उसको अवश्य परमेश्वरका आश्रा चाहिये. इसहेतुसे हे अर्जुन! तूंभी परमेश्वरका आश्रय ले. हेअर्जुन १ सबभावकरके २ अर्थात् तनमनधनकरके.२ तिस ३ ही ४रक्षाकरनेवालेको ५ प्राप्त हो.६ अर्थात् उसीअन्तर्यामीका आश्रय ले ६ उसअन्तर्यामीके प्रसादसे ७परमशान्तीको-८।९ सिं० और * नित्यस्थानको १०।११ प्राप्त होगा तूं १२॥६२॥

मू०इतितेज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥
विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ॥ ६३ ॥

इति १ मया २ गुह्यात् ३ गुह्यतरम् ४ ज्ञानम् ५ आख्यातम् ६ ते ७ एतत् ८ अशेषेण ९ विमृश्य १० यथा ११ इच्छसि १२ तथा १३ कुरु १४ ॥ ६३ ॥ अ० यह १ मैंने २ गुप्तसे ३ अतिगुप्त ४ ज्ञान ५ कहा ६ तुझसे. ७ इस ८ समस्तका ९ विचारकरके १० जैसी ११ तेरी इच्छा हो १२ तैसाकर. १३।१४ तात्पर्य ग्रन्थको प्रारंभसे अन्ततक भलेप्रकार विचारना चाहिये, तब ग्रन्थका तात्पर्य प्रतीत होता है. दोचारपत्र, वा दोचारअध्यायके विचारनेसे वक्ताका तात्पर्य नहीं जानाजाता. प्रत्युत मूर्खलोग पूर्वपक्षको सिद्धान्त समझ बैठते हैं. क्योंकि बहुतजगे पूर्वपक्ष कैकैपत्रोंमें होता है. इसीहेतुसे साधनोंको सिद्धान्त समझ बैठते हैं बहुतलोग ॥ ६३ ॥

मू०सर्वगुह्यतमंभूयःशृणुमेपरमंवचः ॥
इष्टोसिमेदृढमतिस्ततोवक्ष्यामितेहितम् ॥ ६४॥

सर्वगुह्यतमम् १ मे २ परमम् ३ वचः ४ भूयः ५ शृणु ६ अति ७

दृढम् ८ मे ९ इष्टः १० असि ११ ततः १२ तो १३ हितम् १४ ॥६४॥ अ० उ० जो तुझसे समस्तगीताशास्त्रका विचार न होसके, तो मैंही समस्तगीताका सार दोश्लोकोंमें कहता हूं. तूं मेरा प्याराहै, तेरे हितकेवास्ते वारंवार कहता हूं. प्रथम तो कर्ममार्गही वतलाना गुप्त है, और भक्तिमार्ग उससेभी गुप्ततर है. और ज्ञाननिष्ठा सबसे गुप्ततम है ऐसे गुप्ततम १ मेरे २ परम ३ वचनको ४ फिर ५ सुन. ६ अत्यन्त ७।८ मेरा ९ प्यारा १० है तूं ११ इसवास्ते १२ तेरे १३ हितकेलिये १४ कहूंगा १५ ॥६४॥

मू० मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसिसत्यंतेप्रतिजानेप्रियोसिमे ॥ ६५ ॥

मन्मनाः १ मद्भक्तः २ मद्याजी ३ भव ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ माम् ७ एव ८ एष्य ९ ते १० सत्यम् ११ प्रतिजाने १२ मे १३ प्रियः १४ असि १५ ॥६५॥ अ० उ० इसमंत्रमें कर्मनिष्ठाका सार कहते हैं. मुझमें मनवाला १ सि० हो ❋ अर्थात् मुझ परमेश्वरमें मन लगा १ सि० और ❋ मेरा भक्त २ सि० हो ❋ अर्थात् मेरी भक्ति कर २ सि० और ❋ मेरा पूजन करने वाला ३ हो तूं ४ अर्थात् मेरा पूजनकर. ४ सि० और ❋ मुझको. ५ नमस्कारकर ६ मुझको ७ ही ८ प्राप्त होगा, ९ तुझसे १० सत्य ११ प्रतिज्ञा करता हूं मैं. १२ मेरा १३ प्यारा १४ है तूं. १५ तात्पर्य ज्ञाननिष्ठाका साधन कर्मनिष्ठा है, कर्मोंमें भगवद्भक्ति सार है, सो दोप्रकारकी है, अन्तरंग, और वहिरंग. नमस्कार पूजनादि वहिरंग है. भगवतमें मनलगाना इत्यादि अन्तरंग. यावत् परमेश्वरके स्वरूपमें भले प्रकार मन न लगे तावत् पाठमंत्रोंका जप, भगवत्सेवा, भगवद्भक्तोंकी सेवा, शास्त्रश्रवण इत्यादि करता रहे. यद्यपि ज्ञानके साधन वहुत हैं, परन्तु सवमें ये तीन सार हैं. भगवद्भक्ति, साधुसेवा, शास्त्रका श्रवण. और इन तीनोंमेंभी साधुसेवा सार है. कि जिसके प्रतापसे सव साधन प्रा-

म हो जाते हैं. ये तीनो साधन सुगम प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं और इससमयमें इनका ही अनुष्ठान हो सक्ता है. यज्ञादिकर्म और वर्णाश्रमविहित धर्मका अनुष्ठान होना कठिन है. साधु सेवादि साधनोंमें जो प्रतिबन्ध है, सो दिखाते हैं. बहुतजीव भगवतसे विमुख तो इसवास्ते हैं, कि भगवतका निराकार, एकरस, नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप, उनके समझमें नहीं आता. दुराग्रह, अश्रद्धा, मन्दभाग्य, कमसमझ, इनकारणोंसे और रामकृष्णादि साकार भगवद्रूपको मनुष्य समझते हैं, और उसस्वरूपमें नानाप्रकारका तर्क करते हैं. भगवद्भक्तीमें यही प्रतिबन्ध है. यावत् भगवतका स्वरूप शुद्ध सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, शास्त्रके रीतिपूर्वक समझमें न आवे, तावत् मूर्तिमान्ईश्वरकी उपासना अवश्यक है. और शास्त्रके श्रवणसे इसहेतुसे विमुख हैं, कि ब्रह्मविद्यावेदान्तशास्त्रउपनिषद्, सांख्य, पातंजल, इत्यादि शास्त्रतो उनके समझमें आते नहीं. प्रत्युत बहुतलोग यह भी नहीं जानते, कि उन पोथियोंमें, क्या बात है. और रामायण महाभारत श्रीमद्भागवतादिग्रन्थोंको कहानी बताते हैं. उनग्रन्थोंके तात्पर्यको इतनातो समझतेही नहीं कि जैसे समुद्रमेंसे एक बूंद जल होता है. यावत् वेदांतशास्त्रका अर्थ भलेप्रकार समझमें न आवे, तावत् महाभारतादिग्रन्थोंको श्रवण करना चाहिये. और साधुसेवासे इसवास्ते विमुख है, कि साधूको कमजात, और बेविद्या, बेस्वरूप, ऐसे मानकर संग और सेवा साधुओंकी नहीं करते. अनेकमान बडाई अहंकारादिमें फँसे रहते हैं. जैसे आप सदोष हैं साधुओंकोभी अपनेही सदृश जानते हैं. वेमंदभाग्य हैं इस हेतुसे उनकी शुभकर्म पूजा, पाठ जप, शमदमादि वैराग्य, विद्या, इनपर दृष्टि नहीं जाती. गुण देखनेके आंखोंसे वे अन्धे हैं. कुकर्मोंसे कौवेकेसी दृष्टि उनकी होरही है. और एक बडा आश्चर्य यह है कि साधूको तो वेदोक्त निर्दोष तालाश करते हैं और जोरू, पुत्र, मित्र इत्यादिमें

हजारों दोषभरे हुवे हैं, उनको मोक्षका साधन समझते हैं. मूर्ख यह नहीं समझते कि निर्दोषमहात्मा निर्दोषोंकोही मिलते हैं. मुझ ऐसे निर्भागोंको दरशनभी नहीं देते. कहते हैं कि. और वहुतलोग ऐसी साधुसेवा करते हैं, कि जहांतक उनसे होसके साधुवोंकी बुराईकरना, और साधुओंको दुःखदेना, इसीको मोक्षका साधन समझते हैं तात्पर्य इससमयमें साधु वहुत हैं. हंसके सदृश जो हैं, उनको दीखते हैं. और जिनकी कौवेकी सी दृष्टि है, उनको साधु न कभी मिलेंगे, न शास्त्रार्थ उनके समझमें आवेगा, न भगवद्भक्ति उनसे होसकेगी. जैसे माता अपने पुत्रके मुखपर दुष्टोंकी दृष्टि बचानेकेलिये स्याहीकी विंदी लगादेती है, इसीप्रकार जो कदाचित् किसीसाधूमें कोई दोष अपने दोषसे प्रतीत हो, तो उस दोषको स्याहीके विंदीवत् समझना चाहिये भगवद्भक्त भगवतके पुत्रके सदृश हैं ॥ ६५ ॥

मू० सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज ॥
अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः॥ ६६ ॥

सर्वधर्मान् १ परित्यज्य २ एकम् ३ माम् ४ शरणम् ५ व्रज ६ अहम् ७ त्वा ८ सर्वपापेभ्यः ९ मोक्षयिष्यामि १० माशुचः ११ अ० उ० समस्तगीतामें कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है. कर्मनिष्ठाका सारार्थ तो पीछले मंत्रमें कहा. अब ज्ञाननिष्ठाका सार संक्षेपसे इसमंत्रमें कहते हैं. सब धर्मोंको १ त्यागकर २ अकेले मुझशरणको ३।४।५ प्राप्त हो. ६ मैं ७ तुझको ८ सब पापोंसे ९ छुडादूंगा, १० मत शोचकर. ११ तात्पर्य शरीरइन्द्रियप्राणअन्तःकरणके जो जो धर्म हैं, उन सब धर्मोंको त्यागकर जो आश्रय लेना चाहिये सो कहते हैं. शरण और एक ये दोनों माम् शब्दके विशेषण हैं ॥ शरणंगृहरक्षित्रोःइत्यमरः ॥ अमरको-

शमें शरणाका अर्थ गृह है. अर्थात् आश्रय और रक्षा करनेवाला ये दो अर्थ हैं. श्रीभगवान् कहते हैं, कि मुझको प्राप्त हो कैसा हूं मैं, कि एक. अर्थात् अद्वैत. कभी किसी कालमें जिसमें दूसरा नहीं. और फिर कैसा हूं मैं, कि आश्रय. शरण हूं, वा रक्षाकरनेवाला हूं. ॥ द्वितीयाद्वै भयं भवति॥ दूसरेसे अवश्य भय होता है, यह वेदने कहा हैं. इसवास्ते तूं अद्वैतको प्राप्त हो, वो रक्षाकरनेवाला है, वहां भय नहीं. वोही आश्रय है. इस मंत्रका तात्पर्य वेसंदेह अभेदमें है. और कहनेसुननेमें इसका तात्पर्यार्थ भेदमें प्रतीत होता है. जहांतक वाणी है, वहांतक व्यावहारिक द्वैत है, परमार्थमें द्वैत नहीं सिवाय इसके अक्षरार्थसे भी इसश्लोकका अर्थ अद्वैतविषय है. सोभी सुनो अहम् शब्द और माम् शब्द ये दोनों अस्मत्शब्दके प्रयोग हैं श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं, कि अहं यह शब्द अर्थात् केवल माया अविद्यारहित शुद्धअहंकार अर्थात् अहंब्रह्मास्मि (यह महावाक्यार्थ) यह निष्ठा तुझको संसारसे छुडावेगी. शरीरादिके जो धर्म उनके त्यागमें मत शोचकर.यह अर्थ गीताभाष्यमें बहुत विस्तारपूर्वक सिद्धान्ताभेदाद्वैतज्ञाननिष्ठामें किया है. क्योंकि सब धर्मोंका त्याग कर्मनिष्ठासे नहीं होसक्ता. ज्ञानीसे ही होसक्ता है. व्याकरणके रीतिसे युष्मत् अस्मत्शब्दोंके अर्थको और शब्दधर्मको अर्थधर्मको जो समझते हैं. वे ॥ माम् ॥ अहम् ॥ त्वाम् ॥ त्वम् ॥ इन शब्दोंके अर्थको समझेंगे. और जो किसीका यह हठ और निश्चय है, कि इस मंत्रका अर्थभी भेदमें है, तो उसको उचित है कि कहे हुवेका अनुष्ठान करे, हमको भगवद्भक्तिसे विरोध नहीं. भेदवादिका यदि ज्ञाननिष्ठासे विरोध है, इसमेंभी हमको लाभ है. क्योंकि अज्ञानी वनारहेगा तो सेवा करेगा, ज्ञानी वनवैठेगा तो हमको क्या लाभ होगा, ज्ञाननिष्ठाका उपदेश तो दूसरेके लाभार्थ है. श्रद्धा करो वा

मतकरो. अश्रद्धावानूको ज्ञानका उपदेश करना निषेध करते हैं श्रीभगवान् ॥ ६६ ॥

सि० पांचश्लोकोंका अर्थ अन्यप्रकार दूसरे प्रकारसे लिखते हैं. उसरीतिसे अर्थ शीघ्र समझमें आवेगा. पंडितशंकरलाल विष्णुनागरब्राह्मणकी बेटी बीबीजानिकीने समस्तगीताका अर्थ उसीरीतिसे लिखा है. उसटीकाका नाम जानिकीविनिर्मिता प्रसिद्ध है. ❋

मू० इदंतेनातपस्कायनाभक्तायकदाचन ॥
नचाशुश्रूषवेवाच्यंनचमांयोभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

वि०	व०	पद.		अर्थ.
१	१	इदम्	१	यह
				गीताशास्त्र
६	१	ते	२	तुमने
४	१	अतपस्काय	३	जिसने तप न कियाहो उस बहिर्मुखको
अ.		न	४	नहीं
				सुनाना चाहिये
अ.		न	५	न
४	१	अभक्ताय	६	अभक्तको
				जो गुरु भगवतका भक्त नहो उसको
अ.		कदाचन	७	कभी
				सुनाना न चाहिये
अ.		च	८	और
				जो
४	१	अशुश्रूषवे	९	शुश्रूषा टहल न करे अथवा जिसको सुननेकी इच्छा नहो उसको
अ.		न	१०	नहीं
१	१	वाच्यम्	११	कहना योग्य है.
				अर्थात् पूर्वोक्तोंका सुनाना न चाहिये
अ.		च	१२	और

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	यः	१३	जो
२	१	माम्	१४	मुझको
				अर्थात् मेरी
क्रि.	१	अभ्यसूयति	१५	निन्दा करता है
				उसकोभी
अ.		न	१६	नहीं
				सुनाना योग्य है. यह मेरी आज्ञा है.

तात्पर्य जो मूलके अनधिकारी कहे, वेही इसटीकाके अनधिकारी हैं.॥ ६७॥

मू० यइमंपरमंगुह्यंमद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिंमयिपरांकृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

उ० तपस्वी भक्त शुश्रूषु जिज्ञासु निन्दारहित इसगीताशास्त्रके पढनेसुननेके अधिकारी हैं ऐसे अधिकारीयोंको जो यह गीताशास्त्र पढाते सुनाते हैं, उनकी महिमा दोश्लोकोंमें कहते हैं ॥

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	परमम्	३	परम
२	१	गुह्यम्	४	गुप्त
				गीताशास्त्रको
७	ब०	मद्भक्तेषु	५	मेरे भक्तोंके विषय
क्रि.	१	अभिधास्यति	६	धारण करावेगा
				अर्थात् गीताका अर्थ भलेप्रकार प्रेमपूर्वक विनालोभ जो भगवद्भक्तोंको समझावेगा सो
७	१	मयि	७	मुझमें
२	१	पराम्	८	परा
२	१	भक्तिम्	९	भक्ति

वि०	व०	पद		अर्थ
अ.	कृ.	कृत्वा	१०	करके
२	१	माम्	११	मुझको
अ.		एव	१२	ही
क्रि.	१	एष्यति	१३	प्राप्त होगा
१	१	असंशयः	१४	नहीं है संशय इसमें.

तात्पर्य गीताशास्त्रको जो पढाते हैं वे परमभक्त महानुभाव हैं ६८

मू० नचतस्मान्मनुष्येषुकश्चिन्मेप्रियकृत्तमः ॥
भवितानचमेतस्मादन्यःप्रियतरोभुवि ॥ ६९ ॥

वि०	व०	पद		अर्थ
७	१	भुवि	१	पृथिवीके ऊपर
अ.		कश्चित्	२	कोई
५	१	तस्मात्	३	तिससे
				अर्थात् गीता पढानेवालेसे सिवाय
६	१	मे	४	मुझको
१	१	प्रियकृत्तमः	५	अत्यंत प्रसन्न करनेवाला
७	ब०	मनुष्येषु	६	मनुष्योंमें
अ.		नच	७	नही
क्रि.	१	भविता	८	है.
				और
५	१	तस्मात्	९	तिससे
				अर्थात् गीतापढानेवालेसे
६	१	मे	१०	मुझको
१	१	अन्यः	११	दूसरा अन्य
१	१	प्रियतरः	१२	प्यारा, विशेष
अ.		नच	१३	नहीं

तात्पर्य जो गीताका अर्थ जानते हैं, उनको कुछ कर्तव्य नहीं, न वेदका विधि उनपर है. उनको इसलोकपरलोकके पदार्थोंकी इच्छा-

भी नहीं. ऐसे जो महात्मा किसीको विनाप्रयोजन दुःखविक्षेपसहकर गीताशास्त्र पढावें, सुनावें, तो वेसन्देह उनसे सिवाय परमेश्वरको और कौन प्यारा लगेगा. ऐसे महात्मा भगवतका नित्य अवतार कह जाते हैं ॥ ६९ ॥

मू० अध्येष्यतेचयइमंधर्म्यंसंवादमावयोः॥
ज्ञानयज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामितिमेमतिः॥ ७० ॥

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	धर्म्यम्	३	धर्मकेमिले हुवे
६	२	आवयोः	४	मेरे और तर
२	१	संवादम्	५	संवादको
क्रि.	१	अध्येष्यते	६	पढेगा
अ.		च	७	
३	१	तेन	८	तिसने
३	१	ज्ञानयज्ञेन	९	ज्ञानयज्ञसे
				मुझको प्रसन्नकिया अर्थात् जैसा ज्ञानयज्ञसे मैं प्रसन्न होताहूं वैसाही गीतापढनेवालेसे
१	१	अहम्	१०	मे
१	१	इष्टः	११	प्रसन्न
क्रि.	१	स्याम्	१२	होताहूं
अ.		इति	१३	यह
६	१	मे	१४	मेरी
१	१	मतिः	१५	समझ
				है.

टी० चकारःपदपूरणार्थम् ७ तात्पर्य चतुर्थ अध्यायमें बारह यज्ञ प्रभूने कह सबयज्ञोंसे ज्ञानयज्ञको बडा कहा. क्योंकी ज्ञानमें सब कर्मोंकी समाप्ति है. गीताको जो पढते हैं उनके कर्मभी समाप्त

होजाते हैं. गीताका पढना पाठकरना यही सबसे बडाकर्म है, इसी-एकशुभकर्मसे भगवत्पूजाकियेगयेहोकर प्रसन्न होजाते हैं॥७०॥

८+५ । १० । १२ १३ । १४ ११

मू० श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपियोनरः ॥

६ +४ +३। ६ +७ । १ । २

सोपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥७१॥

उ० जो गीताशास्त्रको श्रवण करते हैं उनकी स्तुती श्रीमहाराज अपने मुखसे करते हैं.

वि०	व०	पद		अर्थ
१	१	यः	१	जो
१	१	नर	२	पुरुष
अ.		च	३	*
१	१	अनसूयः	४	निंदारहित
१	१	श्रद्धावान्	५	श्रद्धासहित
क्रि	१	शृणुयात्	६	सुने
अ.		अपि	७	भी
१	१	सः	८	सो
अ.		अपि	९	भी
				सबझगडोंसे
१	१	मुक्तः	१०	छूट
६	ब०	पुण्यकर्मणाम्	११	धर्मात्माओंके
२	ब०	शुभान्	१२	शुभऐसे
२	ब०	लोकान्	१३	लोकोंको
क्रि.	१	प्राप्नुयात्	१४	प्राप्तहोगा

टी०चकारःपदपूरणार्थम् ३॥७१॥

मू० कच्चिदेतच्छ्रुतंपार्थत्वयैकाग्रेणचेतसा ॥

कच्चिदज्ञानसंमोहःप्रनष्टस्तेधनंजय ॥ ७२ ॥

पार्थ १ त्वया २ एकाग्रेण ३ चेतसा ४ कच्चित् ५ एतत् ६ श्रुतम् ७ धनंजय ८ ते ९ अज्ञानसंमोहः १० कच्चित् ११ प्रनष्टः १२ ॥ ७२ ॥अ० उ० परमकरुणाकी खान श्रीभगवान् अर्जुनसे इस-श्लोकमें यह बूझते हैं, कि हे अर्जुन! इसउपदेशसे तुम्हारे अज्ञानका नाश हुवा वा नहीं. जो अज्ञानका नाश न हुवा हो, तो फिर दूसरे प्रकारसे उपदेश करूंगा. सि० यह अपनी कृपा और आचार्योंका धर्म दिखाते हैं. जबतक शिष्यका आज्ञान दूर नहो, तबतक गुरूको चाहिये कि फिर वारंवार दूसरे प्रकारसे उपदेश करे. यह आचार्योंका धर्म है. ❋ हेअर्जुन १ तुमने २ एकाग्र ३ चित्तकरके ४ कुछ ५ यह ६ सि० कि जो मैंने उपदेश किया वह ❋ सुना. ७ सि० वो तुम्हारे समझमें आया वा नहीं. और ❋ हे अर्जुन ८ तुम्हारा ९ तत्त्वज्ञानका विपर्यय अज्ञानसंमोह १० कुछ ११ नष्ट हुवा १२ सि० वा नहीं. ॥ आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ शारीरक भाष्यका यह सूत्र है. ❋ तात्पर्य इसका यह कि जबतक अज्ञान भले प्रकार नष्ट न हो, तबतक वारंवार वेदांतशास्त्रका श्रवण करे. श्रवणकरनेसे अज्ञानका, मननसे संशयका, निदिध्यासनसे विपर्ययका, नाश होता है ॥ ७२ ॥

मू० अर्जुनउवाच ॥ नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्व-त्प्रसादान्मयाच्युत ॥ स्थितोऽस्मिगतसन्देहः करिष्येवचनंतव ॥ ७३ ॥

अच्युत १ त्वत्प्रसादात् २ मोहः ३ नष्टः ४ मया ५ स्मृतिः ६ लब्धा ७ गतसंदेहः ८ स्थितः ९ अस्मि १० तव ११ वचनम् १२ करिष्ये १३ ॥७३॥अ०उ० अज्ञानसंशयविपर्ययरहित कृतार्थ हुवा अर्जुन श्रीभगवानसे कहता है.कि आपके कृपासे मेरा अज्ञान, संशय विपर्यय, असंभावना, विपरीतभावना, प्रमाणगत और अप्रमेयगत,

इनसबका नाश हुवा. और आपके कृपासे मैं कृतकृत्य हुवा. अब मुझको कुछ करनेके योग्य नहीं. मैं अक्रिय असंग ऐसा हूं. हे अविनाशी १ आपके कृपासे २ मोह ३ सि० मेरा * नष्ट ४ सि० हुवा, और * मुझको ५ सि० अपने स्वरूपकी * स्मृति ६ प्राप्त हुई ७ सि० अब * संदेहरहित ८ स्थित ९ हूं मैं. १० आपके ११ वचनको १२ करूंगा. १३ टी० चौथे अध्यायमें अर्जुनने कहाथा, कि आपका जन्म तो अब हुवा है. और इसजगे अविनाशी कहा, यह ज्ञानका प्रताप है १मूलाज्ञान समस्तसंसारका जड ३ स्मरण याने याद. ६ कमसमझ यह समझते हैं, कि अर्जुनने यह कहा कि आपके वचनको करूंगा. अर्थात् युद्ध करूंगा और विद्वान् यह समझते हैं, कि अर्जुनने यह कहा कि आपका वचन करूंगा. अर्थात् जो आपने कहा उसीप्रकार अनुष्ठान करूंगा. अर्थात् मैं कृतकृत्य हूं. मुझको कुछ कर्तव्य नहीं. यह युद्धादि अज्ञानियोंके दृष्टीमें है. इस आपके उपदेशका अनुष्ठान करूंगा. जो अर्जुनको कुछ युद्धादि कर्तव्य रहा तो कृतकृत्यका अर्थ क्या किया जावेगा ॥ ७३ ॥

मू०संजयउवाच ॥ इत्यहंवासुदेवस्यपार्थस्यचमहात्मनः ॥ संवादमिममश्रौपमद्भुतंरोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

इति १ वासुदेवस्य २ महात्मनः ३ पार्थस्य ४च५इमम् ६ अद्भुतम् ७ रोमहर्षणम् ८ संवादम् ९ अहम् १० अश्रौपम् ११ ॥७४॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, इसप्रकार १ श्रीकृष्णचन्द्रमहात्मा २।३ और अर्जुनका ४।५ यह ६ अद्भुत ७ रोमका हर्षकरनेवाला ८ संवाद ९ मैंने १० सुना ११ ॥ ७४ ॥

मू०व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरम् ॥ योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम् ॥ ७५ ॥

एतत् १ परम् २ योगम् ३ गुह्यम् ४ स्वयम् ५ साक्षात् ६ कथयतः ७ योगेश्वरात् ८ कृष्णात् ९ व्यासप्रसादात् १० श्रुतवान् ११ अहम् १२ ॥ ७५ ॥ अ० यह १ परम २ योग ३ गुप्त ४ आप ५ साक्षात् ६ कहते हुवे ७ योगेश्वर ८ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजसे ९ व्यासजीके प्रसादसे १० सुना ११ मैंने. १२ ॥ तात्पर्य यह ब्रह्मविद्या परमयोग है, और गुप्त है. महात्मा इसको गुप्तरखते हैं. साधनचतुष्टयसंपन्नसे कहते हैं. पहले यह विद्या ब्रह्मलोकमेंही थी. मुनीश्वरोंने तप करके इसलोकमें इसविद्याका प्रचार किया है ब्रह्मविद्या आकाशमें आकर उसने मुनीश्वरोंसे यह कहा, कि मर्त्यलोकमें जब मै आवूंगी, तब तुम मुझको पुत्रीके सदृश समझकर अधिकारीको दो. मुनीश्वरोंने इसवाक्यका अंगीकार किया, तब ब्रह्मविद्या इसलोकमें आई. सिवाय इसद्वीपके और किसीद्वीपमें नहीं और सिवाय ब्रह्मलोकके और किसीलोकमें नहीं. जो इसविद्याको लालच या आशासे अनधिकारीको पढाते सुनातेहैं,वे अधम हैं. क्यों कि कंगालभी अपनी पुत्री अनधिकारीको नहीं देता. जो पुरुष इसविद्याको लालचसे सीखते हैं सो विद्या भोगकेलिये हैं नहीं, जैसे वर्णसंकरपुत्र इसीलोककी शोभा है. ॥ ७५ ॥

मू० राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोःपुण्यंहृष्यामिचमुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

राजन् १ इदम् २ केशवार्जुनयोः ३ पुण्यम् ४ अद्भुतम् ५ संवादम् ६ संस्मृत्य ७ च ८ संस्मृत्य ९ मुहुर्मुहुः १० हृष्यामि ११ ॥ ७६ ॥ अ० हे राजन् १ इस २ केशव अर्जुनके ३ पुण्यरूप ४ अद्भुत ५ संवादका ६ स्मरणकरके ७ फिर ८ स्मरणकरके ९ वारंवार १० आनंदित होता हूं मैं. ११ तात्पर्य हे राजन् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनका यह संवाद पुण्यरूप है. इसके श्रवणमात्रसे पुण्य होता है. इसवास्ते मुझको वारंवार स्मरण होता है; स्मरणकरनेसे परमानंद होता है ॥ ७६ ॥

मू० तच्चसंस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतंहरेः ॥
विस्मयोमेमहान्राजन्हृष्यामिचपुनःपुनः ॥ ७७॥

तत् १ हरेः २ अत्यद्भुतम् ३ रूपम् ४ संस्मृत्य ५ च ६ संस्मृत्य ७ मे ८ महान् ९ विस्मयः १० च ११ राजन् १२ पुनः १३ पुनः १४ हृष्यामि १५ ॥ ७७ ॥ अ० तिस १ श्रीमहाराजके २ अतिअद्भुतरूपका ३। ४ अर्थात् विश्वरूपका ३।४ स्मरणकरके ५ फिर ६ स्मरणकरके ७ मुझको ८ बडा ९ आश्चर्य १० सि० होता है ❋ और ११ हेराजन् १२ क्षणक्षणप्रति १३।१४ मैं हर्षित होता हूं. १५ तात्पर्य हे राजन्! श्रीमहाराजका वो अद्भुतविश्वरूप मेरे वारंवार यादमें आता है. और उसका जब मैं ध्यान करता हूं, तब मेरे रोम खडे होजाते हैं. मुझको बडा आनन्द होता है. वो रूप बडा आश्चर्यकारक है ॥ ७७ ॥

मू० यत्रयोगेश्वरःकृष्णोयत्रपार्थोधनुर्धरः ॥
तत्रश्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

यत्र १ योगेश्वरः २ कृष्णः ३ यत्र ४ धनुर्धरः ५ पार्थः ६ तत्र ७ श्रीः ८ विजयः ९ भूतिः १० नीतिः ११ ध्रुवा १२ मम १३ मतिः १४ ॥ ७८ ॥ अ० जिससेनामें १ योगेश्वर २ श्रीकृष्णचन्द्र ३ सि० हैं. और ❋ जिससेनामें ४ धनुषधारी ५ अर्जुन ६ सि० है. ❋ उसीसेनामें ७ लक्ष्मी ८ विजय ९ ऐश्वर्य १० न्याय ११ सि० है, यह ❋ निश्चययुक्त १२ मेरी १३ मति १४ सि० है. ❋ तात्पर्य संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि हे राजन्! तुम्हारे पुत्रोंकी जय नहोगी. अपनेविजयकी आशा छोडो. जिसतर्फ श्रीकृष्णचन्द्र महाराज हैं, उनकी विजय होगी. जिनपर कृपादृष्टि श्रीभगवानकी हैं, वे सदा इसलोक और परलोकमें परमानन्द भोक्ते हैं यहसिद्धांत हैं ॥ ७८ ॥

मू० इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

योगंयोगे·

समस्त गीताका सार समाप्तीका मंगलाचरण.

परमानन्दपरमात्मा जीवात्मासे अभिन्न हैं. परमानन्दकी इच्छा है जिसको वो सदा परमानन्दकी उपासना कियाकरे. परमानन्दमें सबका संमत है. ब्रह्मवादी, ज्ञानी, उपासक, कर्मी, विषयी, बालक, मूर्ख, पशु, सबमतवाले, पन्थाई, सम्प्रदाई, दिनरात आनन्दकेलिये यत्न करते हैं. सब कर्म बुरे भले ईश्वरके भजनतक सबके बोलीसे साधन हैं, और आनन्द फल है. सब यह कहते हैं, कि इसबातमें बडा आनन्द है. कि जो हम कहते हैं, करते हैं. इसहेतुसे आनन्द सबसे बडा और परात्परपदार्थ है. सबको प्रिय है. किसीका आनन्द-से वैर नहीं. बातभी वो ही सच्ची है, कि जिसको विद्वान् श्रुतियुक्ति-सहित कहते हैं. और उसका अनुभव समझमें आवे. बहुतलोग तो ऐसा कहते हैं. कि वो बात वेदशास्त्रमें तो लिखी है, परन्तु समझमें नहीं आती. इसवास्ते उसमें निश्चय नहीं होता. सबका अनुष्ठान करनेमें मन कच्चा रहता है, और बहुतलोग ऐसा कहते हैं, कि वो बात समझमें तो आती है, परन्तु वेदविरुद्ध है. इसवास्ते वह बात अच्छी नहीं समझी जाती. इसजगे वो बात लिखी जाती है, कि जो वेदोक्तभी हो, और अनुभव समझमेंभी आवे. जिसआनन्दके वास्ते सब यत्न करते हैं, वो आनन्द अपना आप आत्माही है. और वो सदा प्राप्त है. अज्ञानसे कंठभूषणवत् उसको अप्राप्त. अपनेसे जूदा, ऐसा मानकर उसीके प्राप्तीकेलिये नानाप्रकारके (लौकिक और वै-दिक) यत्न करते हैं. जो वो अज्ञान जातारहे, तो आनन्द सदा प्राप्त है. यह बात विद्वान् वेदोक्त कहते हैं. परन्तु यह बात किसीकिसीके समझमें (रजोगुण तमोगुणप्रधान होनेसे) नहीं आती. वे रजोगुण

तमोगुण दूर होनेकेलिये उनका कारण अज्ञानका स्वरूप सुनो. अज्ञान सत्वरजतम इन तीन गुणोंकरके युक्त है. संसारमें स्थूलसूक्ष्म जितने पदार्थ हैं सब इनतीनगुणोंका कार्य हैं. परमानन्द इन तीनगुणोंसे परे है. देवता मनुष्य पशु इत्यादि इनतीनगुणोंमें मोहित होकर तमोगुणी रजोगुणी सतोगुणी इसआनन्दको(कि जिससुखका लक्षण अठारहवें अध्यायमें ३७।३८।३९इनश्लोकोंमें निरूपण हुवा है) बडा समझते हैं. परमानन्दको नहीं जानते. परमानंदको ज्ञानी मुक्त महापुरुष जानते हैं. रजोगुणी आनंद दोप्रकारका है, अच्छा बुरा. सावयव भगवन्मूर्ति, वैकुंठस्वर्गादीमें जो आनन्द मानते हैं, वो आनंद अच्छा है. लौकिकपदार्थोंमें जो आनंद मानते हैं सो बुरा है. कोईकोई मतवाले रजोगुणी आनंदकोही परात्पर मानते हैं, और कोईमतवाले सतोगुणीआनंदको परेसेपरे मानते हैं. रजोगुणी आनंदको क्षणिक तुच्छ, अल्प ऐसा समझते हैं. और यह कहते हैं कि तमोगुणीआनन्दसे परलोकजन्य रजोगुणी आनंद अच्छा है, इसीवास्ते उसको अच्छा कहते हैं. इसवातमें लौकिक वैदिक दोनों पुरुषोंका सम्मत है. और रजोगुणीआनन्दके अवधीको जो परेसेपरे मानते हैं, इसवातमें केवल वैदिकमार्गवालोंका संमत है, यौक्तिकलोगोंका संमत नहीं. कमी विशेषता आनंदके दृष्टान्तसे समझो, तमोगुणीआनंद, रजोगुणीआनन्द, सतोगुणीपरमानन्द, ये जैसे तीनघटमें जल है.एकमें मैला,दूसरेमें सामान्यकरके दीखता है. तीसरेमें भलेप्रकार दीखता है. ऐसेही तमोगुणमें सुख प्रतीत नहीं होता. रजोगुणमें सामान्य करके प्रतीत होता है, और सतोगुणमें भलेप्रकार प्रतीत होता है. तीनोंगुणोंमें दर्पणसुखवत् आनंद-

की छाया प्रतीत होती है, जिसकी वो छाया है. वास्तव परमानंद वोही है, और सो नित्य है. जितना जल निर्मल ठहरा हुवा होगा, उतना ही मुख अच्छा दिखेगा. इसीप्रकार जितनी अन्तःकरणकी वृत्ति निर्मल और स्थिरहोगी, उतनाही सुख सिवाय अच्छा प्रतीत होगा. आनंदके प्राप्तीमें अन्तःकरणकी निर्मलता और स्थिरता कारण है. कोई पदार्थ सावयव इसलोकपरलोकका कारण नहीं, वृत्ति पदार्थके संबंधसेभी स्थिरहोती है, और विचारज्ञानसेभी होती है. परन्तु पदार्थके संबंधसे जो होती है, वो स्थिरता क्षणक्षणमें नष्ट होतीरहती है. इसहेतूसे पदार्थजन्य आनंद क्षणिक है, एकरस नहीं, थोडीदेर रहता है. विचारज्ञानयोगसे जो वृत्ति स्थिर होती है, उसमें आनन्द ठहरता है. परमानन्दके ज्ञानसे जब मूलअज्ञानका नाश होजावे, तब ये तीनों वृत्ति नष्टहों. फिर केवलपरमानन्दकी प्राप्ति सदाको होजाती है. इसीपरमानन्दके वास्ते सब इसलोकपरलोकके झगडे हैं. समस्तवेदोंके विधिनिषेधका विचार करके देखो. सबका तात्पर्य दुःखकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति इसमें है. शरीरइन्द्रियमनसे बुरे भले जितने कर्म यत्न और विनायत्नके होते हैं, सबमें दुःख सुख है. किसीमें दुःख बहुत सुख थोडा. किसीमें सुख बहुत दुःख थोडा. जिसकर्ममें ४९ भाग दुःख है और ५१ भाग सुख है, वेदमें उसकीभी स्तुति है. जिसकर्ममें सुख बहुत है, उसके आदीमें दुःख तनक है. और पीछे सुख बहुत है. और जिसकर्ममें ५१ भाग दुःख है, और ४९ भाग सुख है, उसकी निन्दा है. जिसकर्ममें सुख कम है, उसके आदीमेंही सुखप्रतीत होता है, अन्तमें दुःख होता है. यह व्यवस्था यहांतक है कि १०० में ९९ या ९८ या ९७ भाग

किसी किसी कर्ममें सुख है, और १ या २ या ३ भाग दुःख है. और किसी किसी कर्ममें १०० में ९९ या ९८ या ९७ भाग दुःख है, और १ या २ या ३ भाग सुख है. इसीप्रकार ६०, ४०।७०,३०, ८०, २०।९०,१०। इत्यादिभागसे कल्पना करलेना परमानंद पूर्ण सुख एकरस है, कर्मकरनेसे वो नहीं प्राप्त होता. क्रियाके अभावमें प्राप्त होता है. जिसकर्ममें ५१ भाग दुःख है उसकी वेदमें किसी जगे स्तुति होगी और ५२ भागके अपेक्षासे किसी जगे उसकी निंदा होगी. इसीप्रकार परमानंदके अपेक्षासे सबकर्मोंकी निंदा है.जो परमानंद प्राप्त है, तो सतोगुणीसुख उसके सामने तुच्छ है. और सतोगुणीसुखके सामने रजोगुणीसुख तुच्छहै.रजोगुणीसुखके सामने तमोगुणसुख तुच्छहै.मूर्खवेदोंके तात्पर्यको न समझकर सिद्धांतके श्रुतियोंका प्रमाण देदेकर मूर्तिमान्परमेश्वरश्रीकृष्णचंद्रादि और पाषाणादिमूर्तियोंकी, और तीर्थव्रतोंकी निंदा करने लगते हैं. यह नहीं समझते कि यह उपदेश कैसे पुरुषोंके लिये है. आप तो मलमूत्रके पात्रोंमें सक्त होकर नीचोंके सामने वंदरकीनांई नाचते हैं. और पुत्रस्त्रीमित्रादीके साथ ममताकरके उनकेलिये दिनरात तेलीके बैलकीनांई घूमते हैं. वहां यह नहीं समझते कि, इन अनित्य दुःखदाई दुर्गन्धरूप ऐसे कुपात्रोंके संबंधसे मुझको क्या प्राप्तहोगा. बहुत लोग तो ज्ञाननिष्ठा है जिनमें, ऐसी जो श्रुति स्मृति हैं,उनका अर्थ सीखसीख कर्मोंकी निंदाकरने लगते हैं. और बहुत लोग ज्ञाननिष्ठाके महत्त्वको न जानकर अपने मूर्खतासे ज्ञाननिष्ठासे और ज्ञानियोंसे वैर बांधकर दोनोंकी निन्दा करने लगते हैं.यह सब निन्दक पापात्मा वृथा पाप और दुःखके भागी होतेहैं. उनसे अनजान अच्छे हैं,

सब मतवाले आपसमें लडते झगडते हैं. जैसे होसके दूसरे की निं
करना यही उनकी कर्मनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा, और भक्ति है. विद्वान् प
मानन्दका जाननेवाला (परमानन्ददेवका उपासक) जीवतेही परम
नन्दको भोक्ता है. परमानन्ददेवके उपासकका किसीसे वैर न
क्यों कि सबको आनंदका उपासक जानता है. वास्तव सबका इष्ट
व परमानन्ददेव है. कर्म, भक्ति, ज्ञान, और ईश्वरादि, ये उस
धन हैं. *आनन्दका उपासक सबकर्मोंमें अपने इष्टदेव परमानन्द*
कोही देखता है. कोई कर्म ऐसा नहीं, कि जिसमें कुछ आनंद न हो
ौर जो कोई कर्म करता है, वो यही समझकर करता है, कि इस
आनन्द मिलेगा. यद्यपि कर्ममें यथार्थ परमानन्दकी प्राप्ति नहीं
न्तु जैसे मित्रके सदृश अन्यको देखकर वा उसके एक अंगके सदृ
देखकर, वा उसकी छाया देखकर वा उसके तसवीरको देखकर,
उसके वस्त्रादिको देखकर, या सुनकर उस वास्तव मित्रका स्म-
होता है, ऐसेही सबकर्ममें परमानन्द देवका उपासक अपने
देवपरमानन्दकाही स्मरण ध्यान करता है. सब विषयी मतवा-
ले उसका सम्मत है. जो कोई किसीमतवाला उससे बूझे कि तुम
के उपासक हो, तुम्हारा क्या मत है. परमानन्दका उपासक
उत्तर देता है, कि जिसके तुम उपासकहो उसीका मैं हूं. जो
ारा मत, और इष्टदेव है. वोही मेरा मत, और इष्टदेव है. फिर वे
अपना मत और इष्टदेव रामकृष्णादि, इनको बताते हैं. तब
ानंदका उपासक कहता है कि, इष्ट फल होता है, साधन इष्ट
जिस परमानन्दकेलिये तुम भक्ति कर्म पूजा पत्री करते हो, वो
परमानन्द इष्टदेव है. चर्चा कर करते पीछे फ

कि जाता है. ऐसा कौन मूर्ख है, कि परमानन्दको फल और पूर्णब्रह्म औ त्पर न कहे. इसीप्रकार बालक विषयी और मूर्ख इनके साथभी (?) का संमत है. क्योंकी परमानंदको सब चाहते हैं. परमानंद सब- (?) उपास्य है. इसनगे परमानंद अपने स्वामी इष्टदेवका निरूपण और माहात्म्य संक्षेपकरके कहा है. आनंदामृतवर्षिणीमें और इस परमानंदप्रकाशिकाटीकामें भी किसी किसी जगे परमानंदके प्राप्ति- को साधन और कहीं कहीं साक्षात् परमानंदका स्वरूप. और माहात्म्य निरूपण किया है आनंदगिरिने. पढने सुननेवालोंको परमानंदकी प्राप्ति हो. ॥ परमानंदाय नमोनमः ॥ ॥ छ ॥

इतिश्रीस्वामिआनंदगिरिविरचितायां श्रीभगवद्गीता-
भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्लो॰ पदच्छेदःपदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजनम् ॥
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम् ॥ १ ॥

ओंतत्सत् ओंतत्सत् ओंतत्सत्

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास.
"श्री[illegible]टेश्वर" छापाखाना—मुंब[illegible]